वैद्य जादवजी त्रिकमजी आचार्य
जन्म १९३८ विक्रम संवत्।

# द्रव्यगुणविज्ञानम्

उत्तरार्धस्य औषधद्रव्यविज्ञानीयो नाम

द्वितीयः खण्डः

आचार्योपाह्वेन त्रिविक्रमात्मजेन यादवशर्मणा

विरचितम् ।

विक्रम संवत् २००७

निर्णयसागर प्रेस, बम्बई नं. २

मूल्यं १२ रूप्यकाः

# लेखकका निवेदन

द्रव्यगुणविज्ञानका **पूर्वार्ध** (द्रव्य-गुण-रस-विपाक-वीर्य-प्रभाव-कर्मविवेचनात्मक) तथा उत्तरार्धका **परिभाषाखण्ड** नामका प्रथमखण्ड पहिले प्रकाशित हो चुके हैं। आज उत्तरार्धका **औषधद्रव्यविज्ञानीय** नामक द्वितीयखण्ड पाठकोंकी सेवामें उपस्थित किया जाता है। इस खण्डमें उद्भिज और जाङ्गम (प्राणिज) दो प्रकारके द्रव्योंका वर्णन किया गया है। पार्थिव द्रव्योंका वर्णन एक स्वतन्त्र ग्रन्थके रूपमें लिख रहा हूं। आशा है कि उसको भी १-१॥ वर्षमें प्रकाशित किया जायगा। इस खण्डको **उद्भिज्जाङ्गप्रत्यङ्गविज्ञानीय, उद्भिज्जद्रव्यविज्ञानीय** और **जाङ्गमद्रव्यविज्ञानीय** नामके तीन अध्यायोंमें विभक्त किया गया है। प्रथम अध्यायमें उद्भिज्जोंके अङ्गप्रत्यङ्ग-वाचक संज्ञाओंकी व्याख्या दी गई है। उद्भिज्ज द्रव्योंके सम्यक् ज्ञानके लिये सर्व प्रथम उनके स्वरूपको जानना आवश्यक है। स्वरूपका वर्णन करते समय उद्भिज्जोंके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके नामोंका जानना भी आवश्यक है। अतः इस अध्यायमें उद्भिज्जोंके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके नाम और उनकी व्याख्या लिखी गई है। प्राचीन कोशोंमें उद्भिज्जोंके मुख्य अङ्गोंके लिये पारिभाषिक शब्द मिलते हैं, परन्तु प्रत्यङ्गोंके लिये, विशेषतः आकृतिभेदसे होनेवाले उनके भेदोंके लिये, पारिभाषिक शब्द नहीं मिलते। अतः उनके लिये आधुनिक उद्भिजशास्त्र( बॉटेनी )की सहायतासे नवीन पारिभाषिक शब्द बनानेका यत्न किया है। प्रत्येक द्रव्यका वर्णन करते समय सर्व प्रथम उसके संहिताग्रन्थोंमें तथा आयुर्वेदीयनिघण्टुओंमें आये हुए मुख्य संस्कृत पर्याय (नाम), यथाशक्य उत्तर भारतमें प्रचलित भिन्न-भिन्न भाषाओंके नाम, यूनानी वैद्यकमें प्रचलित अरबी और फारसी नाम तथा आधुनिक वैद्यकमें प्रचलित लॅटिन (बॉटेनिकल) नाम दिये हैं। उसके बाद उस द्रव्यका संक्षिप्त परिचय, उपयुक्त अङ्ग और मात्रा लिखी है। गुण-कर्मका वर्णन करते समय चरक-सुश्रुतमें गणों( वर्गों )में उनका उल्लेख कहाँ कहाँ मिलता है वह, तथा यदि चरक-सुश्रुतमें उस द्रव्यके गुण-कर्म लिखे हों तो प्रथम वे और अनन्तर धन्वन्तरीय निघण्टु-राजनिघण्टु आदि निघण्टुओंसे मैंने जिनको विशेष ठीक समझा वे गुण-कर्म लिखे हैं। अन्तमें आधुनिक और यूनानी वैद्यकमतानुसार उस द्रव्यके गुण-कर्म लिखे हैं।

इस खण्डमें प्रायः वैद्योंके नित्य व्यवहारमें आनेवाले और असंदिग्ध द्रव्योंका वर्णन किया गया है। साथमें आयुर्वेदमें अप्रचलित परन्तु यूनानी वैद्यकमें और आधुनिक चिकित्साशास्त्रमें विशेष प्रचलित बनफशाह, जूफा, सुरंजान, जुन्दबेदस्तर, डिजीटेलिस, बेलाडोना, अर्गट आदि कुछ द्रव्योंका वर्णन दिया गया है।[1]

**औषधद्रव्यविज्ञाननीय खण्डमें** जिन ग्रन्थोंकी सहायता ली गई है उनके नाम और संकेतचिह्न—

अमरकोश (अ. को.)
शब्दार्थचिन्तामणि
वङ्गसेन
औषधीसंग्रह (डॉ. वा. ग. देसाई)

---

१ ये द्रव्य विशेष उपयोगी हैं। यूनानी हकीम और डॉक्टर लोग चिकित्सामें उनका सफलतापूर्वक उपयोग करते हैं। वैद्योंको चाहिये कि वे भी उनके उपयोगसे लाभ उठावें।

पुरुषसूक्त
मनुस्मृति ( म. स्मृ. )
सुश्रुतसंहिताकी डल्हणकृत व्याख्या

राजनिघण्टु ( रा. नि. )
वैजयन्तीकोश
चरकसंहिता ( च. )
सुश्रुतसंहिता ( सु. )
योगरत्नाकर
रसकामधेनु
रसरत्नसमुच्चय
कैयदेवनिघण्टु ( कै. नि. )
वैद्यमनोरमा ( वै. म. )
भारतीयभैषज्यतत्त्व
( डॉ. कार्तिकचन्द्र वसु कृत )
रसेन्द्रचूडामणि. ( र. चू. )

रसार्णव

आयुर्वेदप्रकाश. ( आ. प्र. )
उद्भिज्जशास्त्र ( वैं. गंगाधरशास्त्री जोशीकृत )

भावप्रकाशनिघण्टु ( भा. प्र. )
धन्वन्तरीय निघण्टु ( ध. नि. )

काश्यपसंहिता
चक्रदत्तचिकित्सा ( च. द. चि. )
गदनिग्रह ( ग. नि. )
वाग्भट ( अष्टाङ्गहृदय, वा. )
शार्ङ्गधरसंहिता ( शा. सं. )
निघण्टुसंग्रह ( नि. सं. )
राजवल्लभनिघण्टु ( रा. व. नि. )
शोढलनिघण्टु ( शो. नि. )

रसतरङ्गिणी ( र. त. )
रसरत्नाकर–रसायनखण्ड

वनस्पतिशास्त्र ( स्व. वा. जयकृष्ण इन्द्रजीकृत )
जन्तुजगत
( हिन्दुस्तानीएकेडेमीद्वारा प्रकाशित )
यूनानीद्रव्यगुणविज्ञान
( वैद्य दलजीतसिंहजीकृत )

उद्भिज्जाङ्गप्रत्यङ्गवाचक नवीन शब्द बनानेमें तथा कुछ संदिग्ध द्रव्योंके निर्णय करने में श्रीयुत **प्रो. बलवन्तसिंहजी ठाकुर** तथा श्रीयुत **वैद्य बापालाल जी. शाह** ने वहुत सहायता की है, इसलिये उनका मैं आभारी हूं। वनस्पतियोंके कश्मीरी भाषाके नाम बतानेमें श्रीनगर (कश्मीर) निवासी श्रीयुत **वैद्यराज पं. जीयालालजी, आयुर्वेदाचार्य पं. जानकीनाथजी हकीम तथा भिषगाचार्य पं. प्रेमनाथजी खजानचीने,** कुमाऊंके नाम बतानेमें श्रीयुत **वैद्यराज पं. घनानन्दजी पन्त**ने, सिन्धी भाषाके नाम बतानेमें **आयुर्वेदाचार्य पं. नन्दलाल शर्माने,** मारवाडी भाषाके नाम बतानेमें श्रीयुत **वैद्यभूषण पं. गोवर्धन शर्मा छांगाणीने** तथा अरबी और फारसी नाम बतानेमें श्रीयुत **हकीम दलजीतसिंहजी**ने जो सहायता की है उसके लिये मैं उनका आभार मानता हूं।

इस ग्रन्थके प्रूफ देखनेमें मेरे प्रिय शिष्य **पं० श्रीरणजितराय आयुर्वेदालङ्कार**ने बड़ी सहायता की है, इसलिये उनको धन्यवाद देता हूं।

डॉ. विगास स्ट्रीट, बम्बई. नं. २
ता. ९-१०-५०

**वैद्य जादवजी त्रिकमजी आचार्य**

# द्रव्य-गुण-विज्ञानम् ।

## उत्तरार्धः ।

## औषधद्रव्यविज्ञानीयो नाम द्वितीयः खण्डः ।

### उद्भिज्जाङ्ग-प्रत्यङ्ग-विज्ञानीयो नाम प्रथमोऽध्यायः ।

योनिभेदसे औषधद्रव्योंके भेद—

योनिभेदसे औषधद्रव्य तीन प्रकारका होता है[1]–(१) औद्भिद[2], (२) **प्राणिज[3]** (**जान्तव–जाङ्गम**) और (३) **पार्थिव[4]** (**भौम**)="तत् पुनस्त्रिविधं प्रोक्तं जाङ्गमं भौममौद्भिदम् ।" (च. सू. अ. १)। इस खण्डमें प्रथम औद्भिद द्रव्योंका, पीछे प्राणिज द्रव्योंका और अन्तमें पार्थिव द्रव्योंका वर्णन किया जायगा । इस अध्यायमें 'उद्भिज्ज' शब्दकी निरुक्ति, उद्भिज्जोंके प्रधान भेद तथा उद्भिज्जोंके स्वरूपका वर्णन करते समय उनके अङ्ग-प्रत्यङ्गोंके लिये प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दोंकी व्याख्या दी जाती है ।

'उद्भिज' शब्दकी निरुक्ति और पर्याय—

**उद्भिदस्तरुगुल्माद्या उद्भिदुद्भिज्जमुद्भिदम् ।**
(अ. को. ३ कां. विशेष्यनिघ्नवर्ग, ५१ श्लो.)

'उद्भिनत्ति भुवम्' इति **उद्भित्**, **उद्भिदं** च; 'उद्भेदनमुद्भित्, ततो जायते' इति **उद्भिज्जम्** (**क्षीरस्वामी**व्याख्या)।

वृक्ष, गुल्म, लता आदि भूमिको फोडकर उत्पन्न होते हैं, इसलिये उनको **उद्भित्**, **उद्भिज्ज** और **उद्भिदं** कहते हैं । ये तीनों पर्याय (एकार्थवाचक नाम) हैं ।

**वक्तव्य**—वैदिकसाहित्यमें उद्भिज्जोंके लिये **'ओषधि'** शब्दका व्यवहार पाया जाता है (देखें **पं. भगवद्दत्तजी** विरचित **वैदिककोष** पृ. १२२–१२४)।

---

(१) देखें इसी ग्रन्थके पूर्वार्धमें पृ. १६–१८ प्रथम संस्करणमें, तथा पृ. १४–१८ द्वितीय संस्करणमें । (२) Vegetable drugs–वेजिटेबल ड्रग्स् । (३) Animal drugs–ॲनिमल ड्रग्स् । (४) Mineral drugs–मिनरल ड्रग्स् । (५) Plant–प्लॅन्ट् ।

लौकिक साहित्यमें 'ओषधि' शब्दका फलपाकान्त उद्भिज्जोंके लिये विशेषार्थमें, तथा उद्भिज्जोंके सब प्रकारके लिये सामान्यार्थमें भी व्यवहार होता है="**ओषधिः फलपाकान्ते व्रीहियवादौ, जातिमात्रविवक्षायामप्यस्य प्रयोगो भवति**" (**शब्दार्थचिन्तामणि** भा. १, पृ. ४४४)। **शार्ङ्गधराचार्यने शार्ङ्गधरपद्धतिके उपवनविनोदाध्याय**(८२)में सब प्रकारके उद्भिज्जोंके लिये '**पादप**' शब्दका प्रयोग किया है="**वनस्पति-द्रुम-लता-गुल्माः पादपजातयः**"। हिन्दी भाषामें उद्भिज्जोंके लिये **वनस्पति, ओषधि** और **पेड़-पौधा** इन शब्दोंका व्यवहार होता है।

उद्भिज्ज साशन और स्थावर वर्गके हैं—

सृष्टिमें उत्पन्न सब पदार्थोंका मुख्यतः दो प्रकारसे वर्गीकरण किया जाता है; पहला, **साशन** और **अनशन** भेदसे, तथा दूसरा **स्थावर** और **जङ्गम** भेदसे। इन दोनों प्रकारके वर्गीकरणका नीचे संक्षेपमें वर्णन दिया जाता है;—

१ साशन और अनशन—

**साशन**—जो दूसरे बाह्य पदार्थोंका अशन करता है अर्थात् उन्हें खाता-पीता है, बाह्य पदार्थोंको खा-पीकर तथा उनको अपने शरीरमें हजम करके जीवित रहता है, बढ़ता है और अपनी जातिकी परंपरा कायम रखनेके लिये सन्तति (अपने समान दूसरेको) उत्पन्न करता है, उसको **साशन** कहते हैं। जैसे उद्भिज्ज, पशु, पक्षी, मनुष्य आदि। बाह्यपदार्थोंका अशन करना, खाये हुए पदार्थोंका अन्तःक्रियाओंद्वारा सात्म्यीकरण[१] करना, बढ़ना, सन्तति उत्पन्न करना, क्षीण होना और मरना ये सब धर्म सेवार जैसे क्षुद्र उद्भिज्जसे लेकर मनुष्य जैसे उच्च श्रेणीके प्राणीतक सबमें समानरूपसे देखनेमें आते हैं। अतः उद्भिज्ज और प्राणी दोनों **साशन** वर्गके अन्तर्गत हैं। इस साशन वर्गको **सजीव**[२], **सेन्द्रिय**[३] और **चेतन**[४] भी कहते हैं। साशन वर्गके **उद्भिज्ज**[५] और **प्राणी**[६] ये दो उपवर्ग हैं।

**अनशन**—जो अशन नहीं करते (बाह्यपदार्थोंको खाते पीते नहीं), जिनमें अन्तःक्रियाओंद्वारा बाह्य पदार्थोंका सात्म्यीकरण नहीं होता और जो सन्तति उत्पन्न नहीं करते, उनको **अनशन** कहते हैं। जैसे लोहा, पत्थर, मिट्टी आदि। अनशन वर्गको **निर्जीव**[७], **निरिन्द्रिय**[८] और **अचेतन**[९] भी कहते हैं।

---

(१) Assimilation–ॲसिमिलेशन्। (२) Living–लिविंग्। (३) Organic–ओर्‌गॅनिक्। (४) Animate–ॲनिमेट्। देखें पूर्वार्ध पृ. ६–७। (५) Vegetable–वेजिटेबल्। (६) Animal–ॲनिमल्। (७) Non-living–नॉन्‌लिविंग्। (८) Inorganic–इनूओर्गेनिक्। (९) Inanimate–इनूॲनिमेट्।

इस प्रकार प्रथम वर्गीकरणके अनुसार यह सृष्टि **साशन** और **अनशन** दो वर्गोंमें विभक्त हुई है-**"ततो विष्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि"** (**पुरुषसूक्त** मन्त्र ४)।

२ स्थावर और जङ्गम—

**स्थावर**[1]—जो स्वयं गति नहीं कर सकता उसको **स्थावर** और **अचर** कहते हैं। सब पार्थिव तथा कुछ अपवाद छोड़कर उद्भिज्ज स्थावर वर्गके अन्तर्गत हैं।

**जङ्गम**[2]—जो स्वयं गति कर सकता है (एक स्थानसे दूसरे स्थानपर जा सकता है) उसको **जङ्गम** और **चर** कहते हैं। मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्राणी जङ्गम वर्गके हैं।

इस प्रकार दूसरे वर्गीकरणके अनुसार यह सृष्टि **स्थावर** और **जङ्गम** दो वर्गोंमें विभक्त हुई है।

ऊपरके वर्णनसे विदित होगा कि-उद्भिज्ज, सृष्टिके प्रथम वर्गीकरणके अनुसार **साशन** और दूसरे वर्गीकरणके अनुसार **स्थावर** वर्गके अन्तर्गत हैं।

उद्भिज्ज अन्तश्चेतन हैं—

उद्भिज्जोंको सजीवावस्थामें अन्तःसंज्ञा और सुखदुःखका ज्ञान होता है="**अन्तःसंज्ञा भवन्त्येते सुखदुःखसमन्विताः**" (**मनुस्मृति** अध्याय १, श्लोक ४५), अतः उद्भिज्ज **अन्तःसंज्ञ** (**अन्तश्चेतन**) हैं।

उद्भिज्जसृष्टिकी मुख्य श्रेणियाँ—

समस्त उद्भिज्ज सृष्टि **सपुष्प**[3] और **अपुष्प**[4] इन दो मुख्य श्रेणियों (समूह) में विभक्त हुई[5] है। जिन उद्भिज्जोंमें पुष्प होते हैं (जैसे आम-नीम-चमेली-बड़-गूलर आदि) उनको **सपुष्प** कहते हैं। सपुष्प उद्भिज्जोंमें प्रथम पुष्प होते हैं, पुष्पोंसे फल होते हैं, प्रत्येक फलमें एक या अधिक बीज होते हैं, इन बीजोंसे पुनः तत्सदृश दूसरा उद्भिज्ज उत्पन्न होता है, इस प्रकार सपुष्प उद्भिज्जोंकी पुनरुत्पत्ति प्रायः बीजसे होती है। जिन उद्भिज्जोंमें पुष्प नहीं होते और पुष्प न होनेसे फल तथा बीज भी नहीं होते उनको **अपुष्प** कहते हैं। हंसराज, मयूरशिखा, सेवार आदि अपुष्प उद्भिज्ज हैं। इनकी

---

(१) Stationary-स्टेशनरी। (२) Moving-मूविंग; Locomotive-लोकोमोटिव्। (३) Phanerogams-फॅनरोगॅम्स् या Flowering plants-फ़्लॉवरिंग् प्लॅन्ट्स्। (४) Cryptogams-क्रिप्टोगॅम्स् या Flowerless plants-फ़्लॉवरलेस् प्लॅन्ट्स्। (५) **"याः फलिनीर्या अफला अपुष्पा याश्च पुष्पिणीः"** (ऋग्वेद १०।९७।१५)।

पुनरुत्पत्ति प्रायः उनके पत्रादिमें उत्पन्न पिष्टसम परागसे भरे हुए बीजकोंसे[1] होती है। सृष्टिमें सपुष्प उद्भिज्जोंकी संख्या अधिक और अपुष्प उद्भिज्जोंकी संख्या अल्प है।

सपुष्प उद्भिज्जोंमें सन्तानोत्पत्ति अधिकांशमें बीजसे होती है, परन्तु कई सपुष्प उद्भिज्जोंमें बीज होनेपर भी उनकी सन्तानोत्पत्ति बीजसे न होकर ऊर्ध्वगामी काण्ड या अधोगामी काण्ड( कन्द )में लगी हुई अक्षि( आँख )से होती है। जिन उद्भिज्जोंमें बीजसे सन्तानोत्पत्ति होती है उनको **बीजप्ररोही**[2] और जिनमें काण्डमें लगी हुई अक्षिसे सन्तानोत्पत्ति होती है उनको **काण्डप्ररोही** कहते हैं। उद्भिज्जोंकी पुनरुत्पत्तिका विशेष वर्णन आगे पुनरुत्पत्तिके प्रकरणमें किया जायगा।

सपुष्प उद्भिज्जोंकी उपश्रेणियाँ—

सपुष्प उद्भिज्जोंमें दो उपश्रेणियाँ हैं;—(१) **आवृतबीज**[3] और (२) **नग्नबीज**[4]। जिन उद्भिज्जोंके बीज फलोंसे आवृत ( ढके हुए ) होते हैं ( जैसे–अमरूद, अनार आदिमें ), उनको **आवृतबीज** और जिनके बीज फलोंसे ढके हुए नहीं किंतु खुले ( नग्न ) रहते हैं ( जैसे–देवदार, चीड़, सरो आदिमें ), उनको **नग्नबीज** कहते हैं।

आवृतबीज उद्भिज्जोंके विभाग—

आवृतबीज उद्भिज्जोंमें दो विभाग हैं;–( १ ) **एकदल** और ( २ ) **द्विदल**। इन दो विभागोंका वर्णन क्रमशः नीचे दिया जाता है।

१ **एकदल**–इस विभागके उद्भिज्जोंके बीजके अन्दर एक ही दल[5] होता है, इसलिये इनको **एकदल**[6] कहते हैं। इनके बीजोंको बोनेपर अङ्कुरोत्पत्तिके समय अङ्कुरकी बाजूसे एक ही पत्र बाहर आता है, इसलिये इनको **एकबीजपत्र*** भी कहते हैं। जौ, गेहूँ, चावल आदि **एकदल** उद्भिज्ज हैं।

२ **द्विदल**–इस विभागके उद्भिज्जोंके बीजके ऊपरका आवरण( कवच ) निकाल देनेसे दो दल ( विभाग–दाल ) देखनेमें आते हैं। ये दल स्वभावतः अलग होनेसे अङ्कुरोत्पत्तिके समय ऊपरका आवरण निकल जानेपर दो दल अपने आप अलग हो जाते हैं। ऐसे बीजवाले उद्भिज्जोंको **द्विदल**[7] कहते हैं। द्विदल उद्भिज्जके बीजको बोनेपर अङ्कुरोत्पत्तिके प्रायः समय अङ्कुरके दोनों बाजुओंपर दो पत्र बाहर आते हैं, इसलिये उनको **द्विबीजपत्र*** भी कहते हैं।

---

(१) Spores–स्पोर्स्। (२) 'उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः' ( **मनुस्मृति** अ. १, श्लो. ४६ )। (३) Angiosperms–अॅन्जिओस्पर्म्स्। (४) Gymnosperms–जिम्नोस्पर्म्स्। (५) Cotyledons–कोटीलिडन्स्। (६) Monocotyledons–मोनोकोटीलिडन्स्। (७) Dicotyledons–डाइकोटीलिडन्स्।
* देखें डॉ. वा. ग. देसाईकृत औषधीसंग्रहका उपोद्घात पृ. ८।

एकदल और द्विदल उद्भिज्जोंमें भेददर्शक लक्षण—

| **अवयव** | **एकदलमें** | **द्विदलमें** |
|---|---|---|
| मूल | जटा | शिफा |
| काण्ड | त्वक्सार | अन्तःसार |
| ग्रन्थि और पर्व | स्पष्ट | अस्पष्ट |
| पर्ण | अवृन्त और न झड़ने वाले | सवृन्त और झड़ने वाले |
| सिरारचना | सरल ( समानान्तर ) | जालिनी |
| पुष्पके सब अवयव | तीन किंवा तद्गुणित | ४,५ किंवा तद्गुणित । |

कुछ अपवाद छोड़कर इन लक्षणोंसे यह उद्भिज्ज एकदल है या द्विदल इसका निर्णय हो सकता है ( यहाँ प्रयुक्त **जटा, शिफा** आदि पारिभाषिक संज्ञाओंकी व्याख्या इसी अध्यायमें आगे दी जायगी ) ।

उत्पत्ति और निवासस्थानके भेदसे उद्भिज्जोंके भेद—

उत्पन्न होने और रहनेके स्थानके भेदसे उद्भिज्जोंके **स्थलज, जलज, वृक्षरुह** और **वृक्षादन ( परोपजीवी )** ये चार भेद होते हैं । जो उद्भिज्ज स्थल( भूमि ) पर उत्पन्न होते हैं ( जैसे आम–नीम आदि ), उनको **स्थलज**[1] कहते हैं । जो जलमें या जलभरे हुए स्थानमें उत्पन्न होते हैं ( जैसे जलकुम्भी–कमल आदि ), उनको **जलज**[2] कहते हैं । जो दूसरे वृक्षके अन्दर अपने मूल दाखिल किये विना ही उसपर उत्पन्न होते हैं ( जैसे बंगालकी रास्ना और स्वर्णजीवन्ती ), उनको **वृक्षरुह**[3] कहते हैं । जो दूसरे वृक्षपर उत्पन्न होते हैं और उसमें अपने मूल दाखिल करके उसके रसद्वारा अपना पोषण करते हैं ( जैसे–अमरबेल, बाँदा आदि ), उनको **वृक्षादन**[4] ( परोपजीवी ) कहते हैं ।

आयुष्यके भेदसे उद्भिज्जोंके भेद—

आयुष्यके भेदसे उद्भिज्जोंके **एकवर्षायु** या **एकवर्षजीवी, द्विवर्षायु** ( द्व्यर्त्वायु–द्व्यर्तुजीवी ) और **बहुवर्षायु** या **बहुवर्षजीवी** ये तीन भेद होते हैं । जो उद्भिज्ज एक ऋतु ( मौसिम ) या एक वर्षतक जीवित रहें, उनको **एकवर्षायु**[5] कहते हैं । जैसे जौ, गेहूँ, मटर, मूँग आदि । जो उद्भिज्ज दो मौसिम( ऋतु )तक जीवित रहें ( जैसे–गाजर–सलगम आदि ), उनको **द्विवर्षायु**[6] कहते हैं । जो दो सालसे अधिक अमर्याद समयतक जीवित रहें ( जैसे–आम, बड़, देवदार आदि ), उनको **बहुवर्षायु**[7] कहते हैं ।

---

(१) Terrestrial plants–टेरेस्ट्रिअॅल प्लॅन्ट्स् । (२) Aquatic plants–अॅकेटिक् प्लॅन्ट्स् । (३) Epiphytic plants–एपिफाईटिक् प्लॅन्ट्स् । (४) Parasitic plant–पॅरॅसाइटिक् प्लॅन्ट्स् । (५) Annuals–अॅन्युअल्स् । (६) Biennials–बायेनिअल्स् । (७) Perennials–पेरेनिअल्स् ।

आकृतिभेदसे उद्भिज्जोंके भेद—

ऊँचाई, फैलाव आदि आकारके भेदसे उद्भिज्जोंके **वृक्ष, क्षुप, गुल्म** और **लता** ये चार मुख्य भेद होते हैं। इन पारिभाषिक संज्ञाओंसे उद्भिज्जोंके स्थूल स्वरूपका सामान्य ज्ञान होता है। अतः इन पारिभाषिक संज्ञाओंकी व्याख्या नीचे क्रमशः दी जाती हैं।

**वृक्ष**—जिन उद्भिज्जोंकी ऊँचाई तीन पुरुषसे अधिक आठ-दश पुरुषतक हो, जिनके तलभागमें प्रायः शाखायें न निकलती हों और जिनका स्कन्ध मोटा, कठिन और काष्ठमय हो उनको सामान्यतः **वृक्ष**[1] **( पेड़-दरख्त )** कहते हैं। देवदार आदि वृक्ष जिनकी ऊँचाई ८-१० पुरुषसे अधिक १५-२० पुरुषतक होती है, उनको **महावृक्ष**[2] ( बड़ा पेड़ ) कहते हैं। वृक्षोंके पत्र-पुष्प-फल आदि हाथसे तोड़ना हो तो उनपर चढ़कर ही तोड़े जा सकते हैं और उनके स्कन्ध तथा शाखायें उनपर चढ़ने योग्य मजबूत होते हैं। वृक्षवर्गमें पपीता आदि कई वृक्ष छोटे होते हैं, उनको **वृक्षक**[3] **( छोटा पेड़ )** कहते हैं। संस्कृतभाषामें वृक्षको, उसमें शाखायें बड़ी और अधिक लगती हैं इसलिये **शाखी** और इसकी लकड़ी पानीमें तैरती है या इसकी लकड़ीद्वारा पानीमें तैरा जाता है इसलिये **तरु** कहते हैं। जिस वृक्षमें फल लगते हों उसको **फलेग्रही** तथा **अवन्ध्य** और जिसमें फल न लगते हों उसको **वन्ध्य, अफल** तथा **अवकेशी** कहते हैं।

**क्षुप**—जिन उद्भिज्जोंका आकार वृक्षके जैसा हो परन्तु ऊँचाई आधेसे एक पुरुष-पर्यन्त हो तथा जडें और शाखायें छोटी हों, उनको **क्षुप**[4] कहते हैं=**"ह्रस्वशाखा-शिफः क्षुपः"** ( अ. को. कां. २ वनौषधिवर्ग, श्लो. ८ )। धमासा, चना आदि क्षुप-वर्गके हैं परन्तु उनकी ऊँचाई एक-दो फीटसे अधिक नहीं होती, उनको **क्षुपक**[5] **( छोटा क्षुप )** कहते हैं।

**गुल्म**—जिन उद्भिज्जोंमें जमीनसे ही एक मूलसे अनेक काण्ड निकले हों उनको **गुल्म**[5] ( झाड ) कहते हैं=**"गुल्मा एकमूलाः संघातजाताः शरेक्षुप्रभृतयः"** ( मनुस्मृति अ. १, श्लो ४८ की टीकामें **कुल्लूकभट्ट** )। धाय ( धातकी ) आदि गुल्म वर्गके ही हैं परन्तु उनकी ऊँचाई एक पुरुषसे कम होती है उनको, **गुल्मक**[6] ( झाड़ी ) कहते हैं। एक मूलसे एक ही काण्ड निकलना यह वृक्षका और एक मूलसे अनेक काण्ड निकलना यह गुल्मका खास लक्षण है। वृक्ष, क्षुप और गुल्मके काण्ड **स्वावलम्बी** ( विना किसीके सहारे खड़े रहने वाले ) होते हैं।

**लता**—जो उद्भिज्ज उनका काण्ड नरम होनेसे स्वयं खड़े नहीं रह सकते-भूमिपर

---

(१) Tree-ट्री। (२) Tall tree-टॉल ट्री। (३) Small tree-स्मॉल ट्री। (४) Herb-हर्ब। (५) Shrub-श्रब्। (६) Under shrub-अन्डर् श्रब्।

फैल जाते हैं या वृक्ष दिवार आदि आश्रय पाकर उनपर चढ़ जाते हैं, उनको **लता** कहते हैं। **प्रसर, वल्ली, आरोहिणी** और **प्रतानिनी** ये लताके चार भेद हैं। जिनमें काण्ड जमीनसे कुछ ऊपर बढ़नेपर उससे चारों ओर शाखायें निकलकर ज़मीन-पर फैलती हैं और उनका फैलाव मर्यादित होता है उनको **प्रसर** कहते हैं। जैसे भटकटैया-बहुफली आदि="**कण्टकार्यादिकाः प्रोक्ताः प्रसरा इति संज्ञिताः**" (**शब्दार्थचिन्तामणि** भा. १. पृ. ४४४)। जिसका काण्ड किसी वृक्ष आदिको चारों ओरसे लपेट कर ऊँचे चढ़ता है उसको **वल्ली**[१] (बेल) कहते हैं। वल्लीके **वामावर्तिनी** और **दक्षिणावर्तिनी** ये दो भेद हैं। जो वल्ली बाँईं ओरसे वृक्षको लपेटकर ऊँचे चढ़ती है उसको **वामावर्तिनी** और जो दाहिनी ओरसे वृक्षको लपेटकर ऊँचे चढ़ती है उसको **दक्षिणावर्तिनी** कहते हैं। जो लता विना लपेटे ही दिवार आदिपर ऊँचे चढ़ती है (आरोहण करती है) उसको सामान्यतः **आरोहिणी**[२] कहते हैं। उसके **मूलारोहिणी**[३], **सूत्रारोहिणी**[४], **बडिशारोहिणी**[५] और **पत्रारोहिणी**[६] ये चार भेद हैं। जिनके काण्डमें थोड़े थोड़े अन्तरमें पर्वसन्धिसे सूक्ष्म जड़ें निकलें और उनके द्वारा वह दिवाल आदिको पकड़कर ऊपर चढ़े, उसको **मूलारोहिणी** कहते हैं। जिनमें काण्डपर पत्रकोण या शाखाग्रसे सूत्रसदृश सूक्ष्म तन्तु निकलें और उनके द्वारा जो दिवार आदिको पकड़कर ऊँचे चढ़े उनको **सूत्रारोहिणी** कहते हैं। जैसे कूष्माण्ड आदि की लतायें। कई लताओंमें बडिश (मछली पकड़ने काँटे) जैसे काँटे होते हैं, उनके द्वारा ये दिवार आदिको पकड़कर ऊँचे चढ़ती हैं, उनको **बड़िशारोहिणी** कहते हैं। कई लताओंका पत्रका कुछ अंश स्पर्शग्राही होता है, जो दिवार आदिके संसर्गमें आते ही उसको पकड़ लेता है, इस प्रकारके पत्रोंद्वारा जो ऊँचे चढ़ती हैं उनको **पत्रारोहिणी** कहते हैं। जैसे कलिहारी। वल्ली और आरोहिणी लतायें यदि वृक्ष आदिका आश्रय न मिलनेपर अथवा दूर्वा जैसी लतायें जमीनपर अमर्यादरूपसे फैलती जायँ, तो उनको **प्रतानिनी** कहते हैं। प्राचीनोंने गुल्म और लता दोनोंको **वीरुध्**[७] नाम दिया है।

उद्भिज्जोंके अङ्ग—

जैसे प्राणियोंके शरीरमें सिर, हाथ, पाँव आदि अंग होते हैं वैसे उद्भिज्जोंमें मूल, काण्ड, पत्र, पुष्प और फल ये पाँच अंग (प्रधान[८] अंग) होते हैं। सामान्य भाषामें

---

(१) Twinning plants–ट्विनिंग् प्लॅन्ट्स्। (२) Climbing plants क्लाइमिंग् प्लॅन्टस्। (३) Root climbers–रूट् क्लाइमर्स्। (४) Tendril climbers–टेन्ड्रिल क्लाइमर्स्। (५) Hook climbers–हूक् क्लाइमर्स्। (६) Sensitive leaf climbers–सेन्सिटिव् लीफ् क्लाइमर्स्। (७) "लता गुल्माश्च वीरुधः" **हारीत**। (८) Main organs–मेन् ओर्गन्स्।

इन पाँच अंगोंको **वनस्पतिके पञ्चाङ्ग** कहते हैं । इन पाँच अंगोंके जो अवयव होते हैं उनको **प्रत्यंङ्ग** या **उपाङ्ग** कहते हैं । इन अंगोंमेंसे मूल और काण्ड ये दो अन्य अंगोंका धारण करते हैं इस लिये इन दोनोंको **धारक**[2] **अंग** कहते हैं । मूल-काण्ड और पर्ण ये तीन अंग उद्भिज्जोंके लिये जमीन और वायुसे आहार लेते हैं और लिये हुए आहारका रस बनाकर उसके द्वारा समग्र उद्भिज्जका पोषण करते हैं, इसलिये उनको **पोषक**[3] **अंग** कहते हैं । पुष्प और फल सन्तानोत्पत्तिके लिये बीज तैयार करते हैं, इसलिये उनको **सन्तानोत्पादक**[4] या **जनक अंग** कहते हैं । जिन उद्भिज्जोंमें ये पाँचों अंग मौजूद हों उनको **पूर्ण**[5] **उद्भिज्ज** और जिनमें इन पाँचोंमेंसे किसी एक या अनेक अंगोंका अभाव हो उनको **अपूर्ण**[6] **उद्भिज्ज** कहते हैं ।

उद्भिज्जोंके स्वरूप ज्ञानके लिये उनके अंग प्रत्यंगोंका वर्णन करना और ज्ञान संपादन करना आवश्यक है । अतः इन पाँच अंगों और उनके प्रत्यंगोंका क्रमशः वर्णन किया जाता है । उद्भिज्जोंकी सूक्ष्म रचना और उनकी अन्तःक्रियाओंका वर्णन करना इस ग्रन्थका उद्देश्य नहीं हैं । इस विषयमें जिनको जिज्ञासा हो उनको उद्भिज्ज-शास्त्रके स्वतन्त्र ग्रन्थ ही देखने चाहियें ।

---

## मूँल[7]—जड़ ।

उद्भिज्जोंके पाँचों अंगोंमेंसे प्रधानतः मूलके द्वारा उद्भिज्जोंका धारण और पोषण होता है, इसलिये सबसे प्रथम मूलका वर्णन किया जाता है ।

'मूल' शब्दकी निरुक्ति—

'मूल' प्रतिष्ठायां, धातुसे 'मूलति–प्रतितिष्ठति उद्भिज्जं भूमौ अनेन, इति मूलम्= जिससे उद्भिज्ज जमीनमें फैलकर स्थिर रहता है वह **मूल** कहलाता है' इस व्युत्पत्तिसे 'मूल' शब्द बना है । जैसे मनुष्य आदि प्राणी पाद( पाँव)के आधार पर खडे रहते हैं वैसे वृक्षादि उद्भिज्ज भी मूलके आधार पर स्थिर रहते हैं इसलिये मूलको **पाद** और **अङ्घ्रि** भी कहते हैं ।

मूलका स्वभाव—

उद्भिज्जके इस अंगका स्वभाव काण्ड और प्रकाशसे विरुद्ध दिशामें जमीनके अन्दर जल और अन्धेरेकी ओर जानेका होता है । अर्थात् मूलका स्वभाव **अधोगामी** होता है । बड़, केवडे आदिके काण्ड या शाखासे जो मूल ( अवरोह ) निकलते हैं उनकी

---

(१) Secondary organs–सेकन्डरी ओर्ग्न्स् । (२) Supporting–सपोर्टिंग् । (३) Nutritive–न्यूट्रिटिव् । (४) Reproductive–रिप्रॉडक्टिव् । (५) Complete plant–कम्प्लीट् प्लॅन्ट् । (६) Incomplete plant–इन्कम्प्लीट् प्लॅन्ट् । (७) Root–रूट् ।

प्रवृत्ति भी नीचे जमीनकी ओर जानेकी होती है । वे जब अधिक बढ़ते हैं तब जमीनमें जाकर घुसते हैं[1] ।

मूलका स्वरूप—

बीजको जमीन, पानी और उष्णता योग्य प्रमाणमें मिलनेपर उसमें अंकुर-प्ररोह उत्पन्न होता है । बीजोद्भिदके समय नवजात सन्तान ( उद्भिज्ज ) दो अंकुरोंके रूपमें उत्पन्न होता है । एक अंकुर नीचेकी ओर जाता है उससे मूल बनता है और दूसरा अंकुर जो पहलेसे ही संवद्ध रहता है ऊपरकी ओर जाता है जिससे काण्ड बनता है । प्रयोगके लिये मटरके २-४ बीजोंको जल भरे हुए काँचके प्यालेमें डालकर खुले स्थानमें रख दें । प्रथम मटरके ऊपरका कवच-छिलका खुलकर अलग होगा । छिलका अलग होनेपर उसमें दो दल(दाल) और दलोंके बीचमें बीजाङ्कुर[2] ( अंकुर जैसा बीज ) दिखाई देगा । यह बीजाङ्कुर एक सिरेपर मोटा और दूसरे सिरेपर पतला नोकदार होगा । मटरके बीजमें जब अङ्कुरोद्भेद होगा तब बीजाङ्कुरका पतला सिरा लम्बा बढ़कर जमीनमें जायगा । उसको **आदिमूल**[3] ( मूलका पूर्वरूप ) कहना चाहिये, क्योंकि यह जमीनमें जाकर आगे पूर्ण मूलके रूपमें परिणत होता है । बीजाङ्कुरका दूसरा स्थूल सिरा ऊपरकी ओर बढ़कर जमीनके ऊपर आता है उसको प्ररोह[4] ( काण्डका पूर्वरूप ) कहते हैं, क्योंकि यह बढ़कर आगे पूर्ण उद्भिज्जके रूपमें परिणत होता है ।

मूल और काण्डमें भेद—

ऊपरके वर्णनसे मूल और काण्डका स्वरूप और इन दोनोंके बीचका भेद मालूम होगा । तथापि हल्दी-अदरख-बच आदि कई उद्भिज्जोंके भौमिक काण्ड जमीनके अन्दर

---

१ इस विषयमें **वैद्य बापालाल जी. शाह** अपने **उद्भिज्जशास्त्र** नामके ग्रन्थमें लिखते हैं कि—"हम भले ही इस आशासे पौधेको उलटा लटकायँ कि उनके मूल ऊपरकी ओर जायँ या बढ़े, परन्तु उस स्थितिमें रखनेपर भी मूल तो जमीनकी ओर ही जायँगें । मूलोंका यह **अधोगमनानुराग** ( Geotropism-जिऑट्रोपिझम् ) गुरुत्वाकर्षणके कारण होता है । जैसे मूल अधोगमनानुरागी होते है वैसे काण्ड और पत्र जहाँ प्रकाश हो उधर ही गमनशील होते हैं । अन्धेरे कमरेमें पौधोंको रखनेसे जिस ओर वारी-खिड़की होगी उसी ओर काण्ड और पत्ते प्रकाश ग्रहण करनेके लिये बढ़ेंगे । यह **प्रकाशानुराग** ( Heliotropism-हेलिओट्रोपिझम् ) भी गुरुत्वाकर्षणमूलक ही होता है । (२) वास्तवमें बीजमें सन्तानोत्पादक अवयव यही है, जो आगे संपूर्ण उद्भिज्जके रूपमें परिणत होता है । दाल, नवजात मूल-काण्ड आदि स्वयं अपने पोषण करनेमें समर्थ न हों तवतक उनके पोषणके लिये तथा छिलका बीजाङ्कुर और दालोंके रक्षणके लिये होता है । (३) Radical-रॅडिकल । (४) Plumule-प्ल्युम्युल ।

जाकर बढ़ते हैं और मूल जैसे दिखते हैं, ऐसे काण्डोंमें मूलका भ्रम न हो इसलिये मूल और काण्ड दोनोंमें जो भेदक लक्षण हैं वे लिखे जाते हैं;—( १ ) मूलकी वृद्धि भूमिकी ओर होती है, परन्तु काण्ड प्रायः प्रकाशकी दिशामें पृथ्वीके ऊपर बढ़ता है। ( २ ) ताजे मूल बाहरसे प्रायः सफेद रङ्गके होते हैं, उनमें हरापन कभी नहीं होता, परन्तु काण्डका रंग प्रायः हरा या हरापन लिये हुए सफेद अथवा अन्य किसी रंगका हो सकता है। ( ३ ) काण्डपर ग्रन्थियाँ और पर्व होते हैं। ग्रन्थियोंसे पत्तियाँ निकलती रहती हैं। इन पत्तियोंके पत्रकोणमें अक्षियाँ होती हैं, जिनके विकाससे वायवीय शाखायें उत्पन्न होती हैं। काण्डमें पर्व और ग्रन्थियाँ होनेसे काण्डसे निकलनेवाली शाखाओंका उत्पत्तिक्रम नियमित होता है, परन्तु मूलमें पर्व और ग्रन्थियाँ न होनेसे उसकी शाखाओं( उपमूलों )का उत्पत्तिक्रम नियमबद्ध नहीं होता। ( ४ ) काण्डपर यदि रोम होते हैं तो काण्डके संपूर्ण पृष्ठपर होते हैं और उनका मुख्य कार्य केवल काण्डकी रक्षा करना होता है, परन्तु मूलमें रोम एक निश्चित भागपर होते हैं और उनका मुख्य कार्य पृथ्वीसे क्षारमिश्रित जलका शोषण करना होता है। ( ५ ) काण्डके अग्र-भागपर शुङ्ग ( अक्षि ) होता है परन्तु मूलका अग्रभाग मूलकोषसे ढका रहता है। इन लक्षणोंपर ध्यान देनेसे मूल और भौमिक काण्डमें कदापि भ्रम न होगा।

मूलके विभाग—

मूलके चार विभाग ( हिस्से ) होते हैं। ( १ ) **मूलकोश, ( २ ) वर्धनशील-भाग, ( ३ ) शोषणशीलभाग** और ( ४ ) **शाखायुक्तभाग। मूलकोष**–मूलका अग्रभाग टोपी जैसे एक कोष( थैली )से ढका रहता है। जिसे **मूलकोष**[१] कहते हैं। यह कोमल वर्धनशील अग्रभागकी रक्षा करता है। यह केवड़ा और बड़के अवरोह मूलोंमें आँखसे देखा जा सकता है। जलवासी पौधोंमें मूलकोष नहीं होता। **वर्धनशीलभाग**[२]—यह मूलकोषके पीछेका भाग है। इस भागके घटक[३] सर्वदा विभक्त होकर नये घटक बनाते रहते हैं, जिससे मूल लम्बाईमें बढ़ता रहता है। **शोषण-शीलभाग**[४]-वर्धनशीलभागके पीछे शोषणशीलभाग होता है। इस भागमें बारीक मुलायम **रोम ( मूलकेश**[५] ) होते हैं। ये मूलकी बाहरी घटकतहके बढ़े हुए भाग हैं। ये मिट्टीके कणोंके बीचमें प्रवेश करके वहांसे क्षारमिश्रित जलका शोषण करते हैं। **शाखायुक्तभाग**[६]—काण्डके आधार भाग और शोषणशील भागके बीचका शेष संपूर्ण भाग मूलका **शाखायुक्तभाग** होता है। इस भागसे प्रधान मूलके पार्श्वसे

---

(१) Root cap–रूट् कॅप्। (२) Growing region–ग्रोइंग् रीजन्। (३) Cells–सेल्स्। (४) Absorbing region–एब्सोर्बिंग् रीजन्। (५) Root hairs–रूट् हेअर्स। (६) Branching region–ब्रांचिंग् रीजन्।

**उपमूल** ( मूलशाखायें ) क्रमशः निकलते रहते हैं । उपमूल अन्तर्जात[1] ( मूलके भीतरी तन्तुओंसे निकलनेवाले ) होते हैं ।

मूलके भेद—

प्राचीन उद्भिज्जवेत्ताओंने स्वरूपभेदसे मूलके **शिफा, जटा,** और **अवरोह** ये तीन भेद माने हैं । प्रत्येक मूलभेदकी संपूर्ण रचनाको **मूलसंस्थान**[2] कहते हैं । इन तीनों प्रकारके मूलभेदोंका नीचे क्रमशः वर्णन किया जाता है ।

**शिफा**[3]—'शीङ् स्वप्ने ( सोना ), धातुसे 'शेते भूमौ इति शिफा 'जैसे मनुष्य हाथ-पाँवरूप शाखाओंको फैलाकर सोता है, वैसे जो मूल जमीनमें अपनी शाखाओंको फैलाकर सोता है ( पड़ा रहता है ) वह **शिफा** कहलाता है' इस व्युत्पत्तिके अनुसार जमीनमें शाखायें फैलाकर पड़े रहनेवाले मूलके लिये **'शिफा'** शब्दका प्रयोग किया जाता है । आम–जामुन-मटर आदि द्विदल उद्भिज्जोंमें शिफामूल होते हैं । द्विदल उद्भिज्जोंमें आदिमूल[4] बढ़कर शंकु( कील )के आकारमें जमीनमें प्रायः सीधा गहरा जाता है, उसको **प्रारम्भिक मूल**[5] कहते हैं । प्रारम्भिक मूल जमीनमें कुछ नीचे जाने पर उसके पार्श्वसे क्रमशः गोपुच्छाकार शाखा-प्रशाखायें निकलती हैं, उनको **उपमूल**[6] कहते हैं । उपमूल जमीनमें प्रायः तिरछे फैलते हैं । यदि प्रारम्भिक मूल बराबर बढ़ता रहे और मोटा होता जाय तथा उसमें पार्श्वसे शाखायें निकलने पर भी वह सबसे बड़ा और प्रधान बना रहे तो उसको **प्रधानमूल**[7] कहते हैं । यदि प्रारम्भिक मूल मोटा हो परन्तु लम्बाईमें छोटा रह जाय और उसके पार्श्वसे सूत्रवत् पतले और लम्बे उपमूल निकलें तो उसको **सूत्रवत् शाखायुक्त प्रधानमूल**[8] कहते हैं ।

**जटा**[9]—'जट' सङ्घाते, धातुसे **'जटा'** शब्द बना है, जिसका अर्थ 'संघात-समूह-रूपमें उत्पन्न होनेवाले मूल, ऐसा होता है । गेहूं–मक्का आदि एकदल उद्भिज्जोंमें जमीनके समीप काण्डके तल( आधारभाग )से प्रायः समान आकारके अनेक सूत्रवत् पतले मूल संघातरूपमें निकलते हैं । ये मूल संघातरूपमें निकलते हैं और देखनेमें जटा ( शिखा ) जैसे मालूम होते है, अतः प्राचीनोंने इनका **'जटा'** नाम रखा है ।

**अवरोह**[10]—'अव' उपसर्ग पूर्वक 'रुह' उद्भवे, धातुसे 'अवरोहति लम्बते' इति **अवरोहः,** इस व्युत्पत्तिसे 'अवरोह' शब्द बनता है । जिसका 'हवामें लटकनेवाले या

---

(१) Endogenous–एन्डोजीनस् । (२) Root system–रूट् सिस्टम् । (३) Normal root–नॉर्मेल रूट् । (४) Radical–रॅडिकल । (५) Primary root–प्राइमरी रूट् । (६) Secondary roots–सेकन्डरी रूटस् । (७) Tap root–टॅप् रूट् । (८) Fibrous branching top root–फाइब्रस् ब्रांचिंग् टॅप् रूट् । (९) Fibrous roots–फाइब्रस् रूट्स् । (१०) Aerial roots–ऍरिअल रूट्स् ।

आश्रय लेनेवाले मूल' यह अर्थ होता है। केवड़ा बड़, दूर्वा आदिमें स्कन्ध, काण्ड या शाखाओंसे जो मूल निकलते हैं उनको **अवरोह** कहते हैं। अवरोह मूल यदि स्कन्धसे निकलें ( जैसे केवड़ेमें ), तो उनको **स्कन्धोद्भव** कहते हैं। ये मूल स्कन्धकी निचली ग्रन्थियोंसे निकलकर तिरछे बढ़ते हुए जमीनमें प्रवेश करते हैं और पौधेको सीधा खड़े रहनेमें सहायक होते हैं इस लिये इनको **सहायकमूल**[1] भी कहते हैं। अवरोह मूल यदि काण्डसे निकलें ( जैसे दूर्वामें ), तो उनको **काण्डोद्भव** कहते हैं। मूलारोहिणीलताओंके काण्डपरसे छोटे छोटे अवरोह मूल निकलते हैं जो वृक्ष-दीवाल आदिके सहारे उस लताको दृढ़तासे थामे रखते ( अवलम्बन देते ) हैं ( जैसे पोई और पानकी वेल आदिमें ), उन्हें **अवलम्बक**[2] कहते हैं। अवरोह मूल यदि वृक्षकी शाखाओंसे निकलें ( जैसे बड़-पीपल आदिमें ) तो उनको **शाखोद्भव** कहते हैं। ये मूल काण्डकी दूरतक फैली हुई शाखाओंसे निकलकर नीचेकी ओर बढ़ते हैं और जमीनमें पँहुचकर मोटे तथा काष्ठमय होकर फैली हुई काण्डशाखाओंको स्तम्भ-( खम्भे )के जैसे सहारा पँहुचाते हैं इसलिये इनको **स्तम्भाकार**[3] ( अवरोहमूल ) भी कहते हैं।

निवासस्थानके भेदसे मूलके भेद—

निवासस्थानके भेदसे मूलोंके तीन भेद होते हैं;—( १ ) **भौमिक**, ( २ ) **जलवासी**[4] और ( ३ ) **वायवीय**[5]। जो मूल प्रायः भूमिमें रहते हैं उनको **भौमिक** कहते हैं; जो मूल जलमें रहते हैं उनको **जलवासी** कहते हैं; और जो मूल जमीनके बाहर हवामें रहते हैं उनको **वायवीय** कहते हैं। शिफा और जटा ये दोनों मूल भौमिक तथा अवरोह मूल **वायवीय** हैं।

आधुनिकमतसे मूलके भेद—

आधुनिक उद्भिज्जवेत्ताओंने मूलके दो प्रधान भेद माने हैं;—( १ ) **नियमित** और ( २ ) **अनियमित**। जो मूल काण्डके तल( आधार )भागसे आदिमूलसे गोपुच्छाकार क्रमसे निकलते हैं उन्हें **नियमित मूल**[6] कहते हैं और जो मूल ऊपर बतलाये हुए नियतस्थानसे न निकलकर काण्डके किसी भागसे ( जैसे मक्का और दूर्वामें ), शाखासे ( जैसे बड़ आदिमें ) अथवा पत्रसे ( जैसे पथरचूर आदिमें ) निकलते हैं, उनको **अनियमितमूल**[7] कहते हैं।

---

(१) Stilt roots-स्टिल्ट् रूट्स्। (२) Clinging roots-क्लिंगिंग् रूट्स्। (३) Prop, pillar or columnar roots-प्रॉप्, पिलर् ऑर् कॉल्युम्नर् रूट्स्। (४) Acquatic roots-ॲक्वेटिक् रूट्स्। (५) Aerial roots-ऍरिॲल रूट्स्। (६) Normal roots-नॉर्मल रूट्स्। (७) Adventitious-ॲड्वेन्टिशस् रूट्स्।

## मूलभेददर्शक कोष्ठक ।
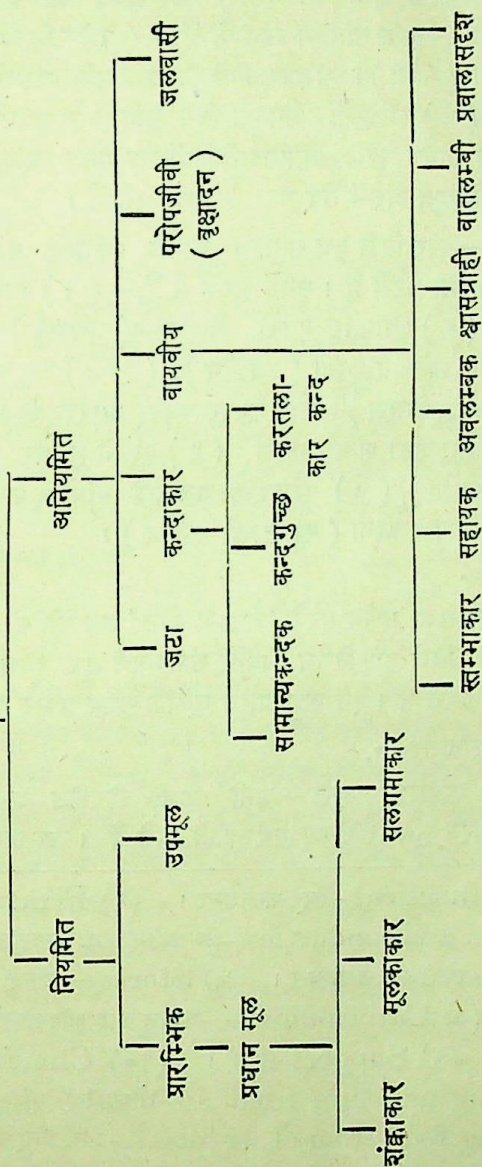
मूलके कार्य—

मूलके कार्य दो प्रकारके होते हैं; (१) **सामान्य** और (२) **विशेष** ।

**सामान्य कार्य**[1]—मूलके सामान्य कार्य दो हैं;—(१) उद्भिज्जोंको हवाके झोंके और प्राणियोंकी रगड (घर्षण) से संरक्षण मिले इसलिये भूमि आदिमें फैलकर दृढ़ता प्रदान करना[2], तथा (२) उद्भिज्जोंके पोषणके लिये भूमि, जल अथवा हवासे खाद्य-पदार्थमिश्रित जलका शोषण करके उसे रसवाहिनियोंद्वारा समग्र उद्भिज्जमें पहुँचाना[3]। ये सामान्य कार्य थोड़ेबहुत अंशमें सब प्रकारके मूल करते हैं।

**विशेष कार्य**[4]—ऊपर लिखे हुए सामान्य कार्यके अतिरिक्त कई प्रकारके मूल विशेष प्रकारका कार्य भी करते हैं। उनमें मुख्य ये हैं;—(१) खाद्यपदार्थोंका संचय करना (**संग्रह**[5]), (२) श्वासद्वारा हवासे विशुद्धवायु (प्राणवायु[6]) का ग्रहण करना और अशुद्ध वायुका[7] विसर्जन करना (**श्वसन**[8]), (३-४) लताओंको वृक्ष-दीवार आदिपर चिपकने (**अवलम्बन**[9]) में और उनपर चढ़ने (**आरोहण**[10]) में सहायता देना, (५) वायुमण्डलसे जलांशका शोषण[11] करना, (६) वृक्षोंमें घुसकर उनमें बने हुए रसको चूस लेना (चोषण[12]), (७) **संतरण**[13]-जलवासी पौधोंका पानीके ऊपर तैरना और (८) सन्तति उत्पन्न करना (**सन्तानोत्पादन**[14])।

मूलके रूपान्तर—

मूलके सामान्य स्वरूपका वर्णन पहले **'मूलके भेद'** इस शीर्षक प्रकरणमें किया गया है। परन्तु ऊपर लिखे हुए विशेष कार्योंके संपादनार्थ मूल भिन्न भिन्न प्रकारसे अपना रूपान्तर भी करते हैं। इन रूपान्तरित मूलोंके मुख्य प्रकार ये हैं:—

नियमित मूलके रूपान्तर[15]—

**संग्राहक[16] या संग्राही मूल**—कभी कभी नियमित प्रधान मूल खाद्य पदार्थोंके संचयके कारण फूलकर **कन्दसदृश** हो जाते हैं। आकार भेदसे उसके

---

(१) Main functions–मेन् फन्क्शन्स्। (२) Fixation–फिक्सेशन्। (३) Absorption and conduction–ॲब्सोर्प्शन् ॲन्ड कन्डक्शन्। (४) Special functions–स्पेशिअल् फन्क्शन्स्। (५) Storage–स्टोरेज्। (६) Oxygen–ऑक्सिजन्। (७) Carbon-dioxide–कार्बन् डाइ ऑक्साइड्। (८) Breathing–ब्रीदिंग्। (९) Support–सपोर्ट्। (१०) Climbing–क्लाईमिंग्। (११) Obtaining moisture from air–ओब्टेनिंग् मॉइश्चर् फ्रॉम् एअर्। (१२) Obtaining food from other plants–ओब्टेनिंग् फुड् फ्रॉम् अदर् प्लॅन्टस्। (१३) Floating–फ्लोटिंग्। (१४) Reproduction–रिप्रॉडक्शन्। (१५) Modified tap roots–मोडिफाइड् टॅप् रूट्स्। (१६) Storing roots–स्टोरिंग् रूट्स्।

तीन भेद होते हैः—(१) शंकाकार[1], (२) मूलकाकार[2] और (३) सलगमाकार[3]। जो मूल ऊपर मोटे और अग्रकी ओर क्रमशः पतले हों (जैसे गाजरमें), उनको **शंकाकार** कहते हैं। जो मध्यमें सबसे अधिक मोटे और दोनों सिरोंपर क्रमशः पतले हो गये हों (जैसे मूलीमें), उसको **मूलकाकार** कहते हैं। जो ऊपरके सिरेपर बहुत मोटा होकर गोल हो गया हो और नीचेके सिरेपर एकाएक बहुत पतला हो (जैसे सलगम और बीटमें), उसको **सलगमाकार** कहते हैं।

अनियमित मूलोंके रूपान्तर—

(१) **कन्दाकार[4] मूल**—जटामूल सामान्यतः पतले और सूत्रसदृश होते हैं, परन्तु किसी किसी पौधोंमें ये खाद्यपदार्थोंके संचयके कारण मोटे, फूले हुए और मांसल हो जाते हैं। उनके (१) **सामान्यकन्द[5]**, (२) **कन्दगुच्छ[6]** और (३) **करतलाकारकन्द[7]** ये तीन भेद होते हैं। जब कुछ अनियमित भौमिक मूल मांसल, मध्यमें मोटे और दोनों सिरोंपर क्रमशः पतले हो गये हों (जैसे शकरकन्द और रतालूमें), तो उनको **सामान्यकन्द** कहते हैं। जब काण्डके तल(आधार)भागसे बहुतसे मूल निकलें और सभी मांसल तथा कन्दाकार हों (जैसे शतावरीमें), तो उन्हें **कन्दगुच्छ** कहते हैं। जब मूलकन्दसे कई शाखाकन्द इस प्रकार निकले हों जैसे करतलसे अंगुलियाँ निकली रहती हैं (जैसे सालमपँजामें), उन्हें **करतलाकारकन्द** कहते हैं।

(२) **वायवीयमूल**—मूल सामान्यतः जमीनके अन्दर होते हैं, परन्तु कुछ पौधोंमें कुछ मूल विशेष कार्योंको पूरा करनेके लिये जमीनके ऊपर भी होते हैं। इनके ये भेद किये जा सकते हैं;—(१) **स्तम्भाकार** या **शाखोद्भव**—इनका वर्णन अवरोह मूलके भेदोंमें किया गया है। (२) **सहायक** या **स्कन्धोद्भव**—इनका वर्णन अवरोह मूलके भेदोंमें किया गया है। (३) **अवलम्बक**—इनका वर्णन अवरोह मूलोंके भेदोंमें किया गया है। (४) **श्वासग्राही मूल[8]**—खारे जलमें होनेवाले विना आदि पौधोंकी जड़ोंको श्वासक्रिया(श्वसन)के लिये कीचड़से यथेष्ट मात्रामें प्राणवायु नहीं मिलती। अतः ये मूल प्राणवायु खींचनेके लिये अद्भुत-विचित्र योजना करते हैं। ये पौधे ऐसे मूल उत्पन्न करते हैं जिनके पार्श्वपर अनेक छिद्र होते हैं। ये

---

(१) Conical कोनिकल। (२) Fusiform-फ्युसीफोर्म्। (३) Napiform-नेपीफोर्म्। (४) Tuberous-ट्यूबरस। (५) Simple tuberous-सिम्पल ट्यूबरस। (६) Fasciculated tuberous-फेसीक्युलेटेड् ट्यूबरस। (७) Palmated tuberous पॅल्मेटेड् ट्यूबरस। (८) Breathing roots-ब्रीदिंग् रूट्स।

मूल जमीनके भीतरके मूलोंकी शाखाओंके रूपमें जमीनके ऊपर निकलकर अपने छिद्रों द्वारा वायुमण्डलसे प्राणवायु ग्रहण करते हैं। (५) **वातलम्बी मूल**—कई वृक्षरुह उद्भिज्ज अन्य वृक्षोंपर उगते हैं, परन्तु वे उनसे किसी प्रकारका खाद्य पदार्थ नहीं लेते। कुछ छोटी छोटी जडोंके द्वारा केवल उन वृक्षोंसे चिपके रहते हैं। उनसे दूसरी लम्बी जडें निकलकर हवामें लटकती रहती हैं। ये जडें अपने जीवननिर्वाहके लिये हवासे जल और प्राणवायु ग्रहण करती हैं तथा हरी होनेसे खाद्यपदार्थोंका निर्माण भी कुछ न कुछ कर लेती हैं अर्थात् पत्तियोंका कार्य भी कर लेती हैं। इन मूलोंको **वातलम्बी**[1] मूल कहते हैं। (६) **प्रवालसदृश मूल**[2]—साईकस नामक वृक्षमें सामान्यमूलोंके अतिरिक्त कुछ अन्य प्रकारके मूल जमीनके ऊपर हवामें आकर अनेक शाखाओंसे वैसे ही युक्त हो जाते हैं जैसे प्रवाल पैदा करनेवाले प्राणियोंमें शाखायें होती हैं, इसलिये इनको **प्रवालसदृश मूल** कहते हैं।

चोषक मूल—

परोपजीवी उद्भिज्जोंके मूल अन्य (आश्रयदाता) वृक्षोंमें घुस, उस वृक्षकी रसवाहिनियोंके साथ अपनी रसवाहियाँ मिलाकर उसमें बने हुए रसका चूषण करते हैं, उन्हें **चोषक मूल**[3] कहते हैं।

**सन्तानोत्पादक मूल**—कुछ उद्भिज्जोंके मूलोंपर भी अक्षियाँ निकल आती हैं। इन मूलोंको कलम करके लगानेसे नये पौधे तैयार किये जाते हैं। जैसे—अमरूद, नाशपाती, कैथ आदिमें। ऐसे मूलोंको **सन्तानोत्पादक मूल**[4] कहते हैं।

## काण्ड (तना)।

काण्ड शाखा, पर्ण, पुष्प और फल सबका आधारभूत होनेसे मूलके पीछे काण्डका वर्णन किया जाता है।

काण्डकी व्याख्या—

मूलके ऊपरसे लेकर अन्तिम शाखा निकलने तकके उद्भिज्जके अवयवको **काण्ड** कहते हैं। वृक्षोंका जो काण्ड मोटा, मजबूत और काष्ठमय हो तथा जहाँसे शाखायें निकलनी आरम्भ होती हों वहांतकके काण्डको **प्रकाण्ड** (प्रकृष्टः काण्डः प्रकाण्डः) और **स्कन्ध** कहते हैं="अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधिस्तरोः" (अ. को. कां. २, व. ४, श्लो. १०)। काण्डपर प्रथम शाखायें निकलती हैं, पीछे उनपर

---

(१) Epiphyitc roots-एपिफाइटिक् रूट्स्। (२) Coralloid roots-कोरॅलाइड् रूट्स्। (३) Parasitic roots-पॅरॅसाइटिक् रूट्स्। (४) Reproductive roots-रिप्रोडक्टिव् रूट्स्।

पर्ण, पुष्प और फल आते हैं । कांण्ड प्रायः भूमिके पृष्ठभागपर प्रकाशकी ओर बढ़ता है तथा सामान्यतः रंगमें हरा होता है ।

काण्डके विभिन्न भाग—

काण्डमें जहाँसे पत्तियाँ निकलती हैं वह स्थान कठिन और चारों ओरसे उभडा हुआ होता है, उसको **परुस्, पर्वसन्धि** या **ग्रंन्थि** कहते हैं । दो ग्रन्थियोंके बीचके सरल भागको **पर्वं** कहते हैं । बाँस, गन्ने आदि लक्सार उद्भिज्जोंके काण्डमें ग्रन्थि और पर्व स्पष्ट दिखते हैं । बड़ आम आदि अन्तःसार उद्भिज्जोंके काण्डमें ऊपर ही ऊपर बनते हुए त्वचाके स्तरोंसे ग्रन्थियाँ ढक जानेसे पर्व और ग्रन्थियाँ स्पष्ट नहीं दिखते । काण्ड और पत्तीसे बने हुए कोणको **पत्रकोणं** कहते हैं । पत्रकोणमें प्रायः एक **अंक्षि** होती है । काण्डके या शाखाके अग्रपर भी अक्षि होती है । अक्षिका आगे स्वतन्त्र वर्णन किया जायगा ।

काण्डके कार्य—

काण्डके कार्य दो प्रकारके होते हैं;—( १ ) **सामान्य कार्य** और ( २ ) **विशेष कार्य ।**

**सामान्य कार्य**—( १ ) पत्तियोंको इस प्रकार स्थान देना कि जिससे उनको सूर्यका प्रकाश और हवा अच्छीतरह मिल सके । ( २ ) भूमिसे मूलद्वारा शोषित क्षारमिश्रित जलको रसवाहिनियों द्वारा ऊपर ले जाकर समग्र उद्भिज्जमें पहुँचाना और ऊपर पत्तियोंद्वारा बने हुए खाद्यपदार्थोंको अभीष्ट भागोंमें पहुँचाना ।

**विशेष कार्य**—( १ ) **संचय**—बहुतसे पौधे अनुकूल ऋतुमें बने हुए और खर्चसे बचे हुए खाद्यपदार्थोंको भविष्यके लिये संचय करके रखते हैं, जो उनको प्रतिकूल समयमें जीवननिर्वाहके लिये काममें आता है । ( २ ) **अवलम्बन**—आरोही लतायें अपने दुर्बल काण्डके कारण ऊँचे आश्रय स्थानपर चढ़नेमें असमर्थ होती हैं । ऐसे काण्ड विशेष प्रकारके अवयवों( तन्तु, काँटे, आदि )को उत्पन्न करके उनकी सहायता( अवलम्बन )से आश्रय स्थानपर चढ़ते हैं । ( ३ ) **संरक्षण**—कुछ काण्ड अत्यधिक जलत्याग और प्राणियोंसे बचनेके लिये कण्टकीभूत शाखायें उत्पन्न करते हैं । ( ४ ) **खाद्यपदार्थोंका निर्माण**—पत्राभास काण्ड पत्तियोंकी तरह चिपटे और हरे होकर खाद्यपदार्थ भी बनाते हैं । ( ५ ) **शोषण**—जलमग्न काण्ड सामान्य जड़ोंकी तरह जल तथा उसमें घुले हुए पदार्थोंका शोषण करते हैं । ( ६ ) **सन्तानोत्पत्ति**—कुछ पौधोंके अक्षिसमेत काटे हुए काण्डसे और अक्षिवाले भौमिक काण्डोंसे बिना बीजके नवीन पौधे तैयार किये जाते हैं ।

---

(१) Stem–स्टेम् । (२) Node–नोड् । (३) Inter node–इन्टर् नोड् । (४) Axil–ॲक्सिल । (५) Bud–बड् ।

**काण्डके आकार—**

काण्डके आकार अनेक प्रकारके होते हैं; (१) **गोल**[1], (२) **अर्धगोल**, (३) **त्रिकोण**[2] (त्रिधार), (४) **चतुष्कोण**[3] (चतुर्धार), (५) **चिपटा**[4], (६) **नलाकार**[5] (भीतरसे पोला), (७) **शाखारहित**[6] (जैसे मक्का-ताड आदिमें)।

**काण्डका पृष्ठ[7]—**

काण्डका पृष्ठ चार प्रकारका होता है;—(१) **मसृण**[8] (चिकना-रोमरहित); (२) **रोमश**[9] (मृदु-मुलायम रोयेँदार); (३) **कर्कश** या **खर** (सख्त रोयेँदार) और (४) **कंण्टकी**[10] (काँटेदार)। कण्टकी काण्डके **मृदुकण्टकी, तीक्ष्णकण्टकी** और **दृढकण्टकी** ये तीन उपभेद होते हैं।

**काण्डके प्रकार—**

सब प्रकारके काण्ड मुख्य दो भेदोंमें विभक्त किये जाते हैं;—(१) **वायवीय**[11] और (२) **भौमिक**[12]।

**वायवीय काण्ड**—ये जमीनके ऊपर बढ़ते हैं और उनके सब भागोंको वायु तथा प्रकाश मिलता है। ये **स्वावलम्बी**[13] (कठिन) और **परावलम्बी**[14] (मृदु-दुर्बल) दो प्रकारके होते हैं। **स्वावलम्बी**—ये कठिन होनेसे बिना किसीके सहारे वायु तथा प्रकाशमें खड़े रहते हैं। वृक्ष, गुल्म और क्षुपके काण्ड स्वावलम्बी होते हैं। **परावलम्बी**—ये प्रायः पतले, लम्बे और दुर्बल होनेसे अपनेको खड़े रखनेमें असमर्थ होते हैं। ये या तो जमीनपर फैलते हैं (विसर्पी) या वृक्षादिका सहारा पाकर ऊपर चढ़ जाते हैं (आरोही)। इनके **प्रसर, वल्ली, आरोहिणी** और **प्रतानिनी** ये चार भेद होते हैं; जिनका वर्णन पहले पृ. ७ पर किया गया है।

**भौमिक काण्ड**[15]—काण्ड स्वभावतः प्रायः मूलकी विरुद्ध दिशामें जमीनके ऊपर प्रकाशकी ओर हवामें बढ़ता है अर्थात् काण्ड प्रायः **ऊर्ध्वगामी-ऊर्ध्ववर्धिष्णु** होता है। परन्तु कुछ काण्ड नीचे जमीनमें जाकर बढ़ते हैं अर्थात् **अधोगामी-अधोवर्धिष्णु** होते हैं। ऐसे काण्डोंको **भौमिक काण्ड** कहते हैं। भौमिक काण्ड

---

(१) Rounded-राउन्डेड्। (२) Triangular-ट्राएन्ग्युलर्। (३) Square-स्केअर्। (४) Flattend-फ्लैटन्ड्। (५) Fistular फिस्च्युलर्। (६) Caudex-कॉडेक्स्। (७) Surface of Stem-सर्फेस् ऑव् स्टेम्। (८) Glabrous-ग्लेब्रस्। (९) Hairy-हेअरी। (१०) Thorny-थोर्नी। (११) Aerial-एरिअल्। (१२) Subterranean सब्टेरॅनिअन्। (१३) Erect Stems-इरेक्ट् स्टेम्स्। (१४) Weak Stems-वीक् स्टेम्स्। (१५) Subterranean Stem-सब्टेरॅनिॲन् स्टेम्।

और मूलके बीचके भेदक लक्षणोंका वर्णन पीछे मूलके प्रकरणमें पृ. १० पर किया गया है। भौमिक काण्ड स्थूल, मांसल, रसदार तथा मेदे( स्टार्च ) और शर्करासदृश खाद्यपदार्थोंसे परिपूर्ण होते हैं। भौमिक काण्डोंका मुख्य कार्य—( १ ) खाद्यपदार्थोंका संग्रह कर रखना, जिससे प्रतिकूल ऋतुमें उस खाद्यसामग्रीसे पौधेके जीवनकी रक्षा हो तथा ( २ ) प्रजननावयवोंके बिना भी सन्तति उत्पन्न करना है। भौमिक काण्ड जमीनके नीचे कुछ गहराईपर कन्दके रूपमें रहते हैं और इनके ऊपर वायवीय शाखायें निकलती हैं। भौमिक काण्डके भेदोंका वर्णन आगे **रूपान्तरित भौमिक काण्ड**के प्रकरणमें किया जायगा।

अक्षि[1]—

काण्डका सिरा, पत्रकोण, मूल, कन्द, पत्र आदिसे जो नये पौधे उत्पन्न करनेवाले अङ्कुर उत्पन्न होते हैं उनको **अक्षि** ( आँख ) कहते हैं। अक्षिमें पर्व, ग्रन्थि और पत्तियाँ एकत्र खूब दबकर रही हुई होती हैं। अक्षियाँ तीन प्रकारकी होती हैं। ( १ ) काण्ड या शाखाके अग्रभागपर अक्षियाँ निकलती हैं। ये प्रायः वल्कपत्रों या पुष्पपत्रोंसे ढकी रहती हैं। इनको **शुङ्ग**[2] या **अन्तिमाङ्कुर** कहते हैं। जैसे बड़, पीपल आदिमें। ( २ ) पत्रकोणसे अक्षियाँ निकलती हैं। इनको **पत्रकोणोद्भव**[3] **अक्षि** कहते हैं ( ३ ) काण्ड या शाखाके अग्र और पत्रकोणके अतिरिक्त पौधेके अन्य स्थानोंपर भी अक्षियाँ निकलती हैं, उनको **अनियमित**[4] **अक्षि** कहते हैं। अनियमित अक्षियोंके चार भेद होते हैं;—( १ ) कुछ वृक्षोंमें उनके पुराने स्कन्धपर अक्षियाँ निकलती हैं ( जैसे कटहलमें ), उनको **स्कन्धोद्भव** कहते है। ( २ ) काण्डके कटे हुए भागके समीप उसके चारों ओर नवीन शाखाओंकी उत्पत्तिके लिये अक्षियाँ उत्पन्न हो जाती हैं ( जैसे सहिंजना-नीम आदिमें ), उनको **काण्डोद्भव** कहते हैं। ( ३ ) किसी किसी पौधेके मूलपर भी अक्षियाँ उत्पन्न होती हैं ( जैसे कैथ, अमरूद आदिमें ), उनको **मूलोद्भव** कहते हैं। ( ४ ) पत्थरचूर आदिकी पत्तियोंपर अक्षियाँ उत्पन्न होती हैं, उनको **पत्रोद्भव** कहते हैं। ( ५ ) कुछ पौधोंमें पत्रकोणोद्भव अक्षिके अतिरिक्त एक या दो और अक्षियाँ होती है, जो एक दूसरेके पार्श्वमें या ऊपर-नीचे होती हैं, इन्हें **अतिरिक्त**[5] **अक्षि** कहते हैं। अक्षियाँ एक प्रकारके सजीव अङ्कुर हैं **"अक्षीणि पर्वसन्धिषु प्ररोहजननसमर्था अङ्कुराः"** ( ड. सु. सू. अ. ४५, श्लो. १५६ ) इनसे नई शाखा या नया पौधा उत्पन्न होता है। **मांसल अक्षि**[6]—यह पत्रकोणसे निकलनेवाली मांसल अक्षि है जो जनक पौधेसे अलग होकर नया पौधा तैयार कर सकती है। जैसे लहसुन, वाराहीकन्दकी लता, अनानास आदिमें। यह काण्डके रूपान्तररूप होती है।

---

(१) Buds-बड्स्। (२) Terminal-Buds-टर्मिनल् बड्स्। (३) Axillary-Buds-ॲक्सिलरी बड्स्। (४) Adventitious buds-ॲड्वेन्टिशस् बड्स्। (५) Accessory Buds-ॲक्सेसरी बड्स्। (६) Bulbil-बल्बिल्।

शाखोद्भव[1]—

काण्डसे जो शाखाओंका उद्भव ( निकलना ) होता है उसको **शाखोद्भव** कहते हैं। शाखोद्भव दो प्रकारका होता है;—( १ ) **पार्श्विक**[2] और ( ३ ) **अग्र्य** या **द्विविभक्त**[3]। **पार्श्विक**—जब काण्डके पार्श्वभागसे शाखायें निकलती हैं तब उसको **पार्श्विक शाखोद्भव** कहते हैं। पार्श्विक शाखोद्भवके दो प्रकार होते हैं;—( १ ) **अपरिमित**[4] या **अकुण्ठताग्र** और ( २ ) **परिमित** या **कुण्ठताग्र**[5]। जब शुङ्गके द्वारा मुख्य काण्ड अपरिमित( अकुण्ठत )रूपसे बिना रुकावटके ऊँचा बढ़ता जाता है और उसके पार्श्वभागसे गोपुच्छाकार क्रमसे शाखायें निकलती रहती हैं ( जैसे देवदार-चीड आदिमें ), तो उसको **अपरिमित शाखोद्भव** कहते हैं। जब मुख्य काण्डके कुछ बढ़नेके बाद उसकी वृद्धि रुक जाती है ( कुण्ठित होती है ) और बाजूसे शाखायें फूटती हैं, ये शाखायें भी कुछ बढ़कर रुक जाती हैं और उन पर प्रशाखायें निकलती हैं ( जैसे करौंदा, गुल अब्बास आदिमें ), तब उसको **परिमित** या **कुण्ठताग्र शाखोद्भव** कहते हैं। **अग्र्य या द्विविभक्त शाखोद्भव**—जब काण्डके सिरेकी अक्षि(शुङ्ग)के दो भाग होकर दो शाखायें उत्पन्न होती हैं तब उसको **अग्र्य या द्विविभक्त शाखोद्भव** कहते हैं।

काण्डके रूपान्तर—

काण्ड कई विशेष कार्योंके संपादन करनेके लिये अपनेको रूपान्तरित कर लेता है, काण्डके रूपान्तरके मुख्य दो भेद होते हैं;—( १ ) **वायवीय रूपान्तर** और ( २ ) **भौमिक रूपान्तर**।

**काण्डके वायवीय रूपान्तर**[6]—ये मुख्य पाँच प्रकारके होते हैं;—( १ ) **मूलिनी शाखा**, ( २ ) **प्ररोहिणी शाखा** ( ३ ) **पत्राभास काण्ड**, ( ४ ) **कण्टकीभूत काण्ड** और ( ५ ) **सूत्रीभूत काण्ड**। इन पाँचोंका वर्णन क्रमशः नीचे किया जाता है।

**मूलिनी शाखा**—इसके ( १ ) **दीर्घमूलिनी**, ( २ ) **ह्रस्वमूलिनी** और ( ३ ) **नतमूलिनी** ये तीन भेद होते हैं। **दीर्घमूँलिनी**—यह पतली लम्बी जमीनपर फैलनेवाली शाखा है जो जमीनपर कुछ दूरतक फैल, जडें पैदाकर, उन्हें

---

(१) Branching-ब्रांचिंग्। (२) Lateral Branching-लॅटरल् ब्रांचिंग्। (३) Terminal or Dichotomous-टर्मिनल् ऑर् डाइकोटोमस्। (४) Racemose, Indefinite or Monopodial-रेसिमोस्, इन्डेफिनिट् ऑर् मोनोपोडिअल्। (५) Cymose, Definite or Sympodial-साइमोस्, डेफिनिट् ऑर् सिम्पोडिअल् (६) Aerial Modifications of Stems-एरिअल् मोडिफिकेशन्स् ऑव् स्टेम्स्। (७) Runner-रनर्।

जमीनमें स्थापित कर, एक नये पौधेके रूपमें ऊपर बढ़ जाती हैं; जैसे ब्राह्मीमें। **ह्रस्वमूलिनी**[2]—यह दीर्घमूलिनी जैसी ही होती है परन्तु उसका काण्ड छोटा तथा मोटा होता है और उसपर पत्तियोंका गुच्छा होता है; जैसे जलकुंभीमें। **नतमूलिनी**[3]—यह एक पतली लम्बी शाखा है जो किसी पत्तीके पत्रकोणसे निकलकर पहले ऊपरकी ओर बढ़ती है और फिर नीचेकी ओर झुककर बढ़ने लगती है। जब जमीनतक पहुँचती है तो इससे जड़ें निकलकर जमीनमें चली जाती हैं और उनसे वहाँ नया पौधा तैयार होता है; जैसे पिपरमेन्टमें।

**प्ररोहिणी शाखा**[3]—यह भौमिक काण्डसे निकली हुई शाखा है जो जमीनमें कुछ दूरतक बढ़नेके बाद बाहर निकल आती है और उससे नया पौधा तैयार हो जाता है; जैसे पुदीना और गुलाबमें।

**पत्राभासकाण्ड**[4]—यह एक हरा चिपटा काण्ड या शाखा है जो देखनेमें पत्राकार होता है और पत्रके सामान्य कार्यको भी सम्पन्न करता है। इसपर पत्तियाँ बहुत छोटी होती हैं या कोमल काँटोंमें रूपान्तरित होती हैं अथवा कभी कभी उनका सर्वथा अभाव रहता है। पत्राभास काण्ड प्रायः शुष्क भूमिमें पाये जाते हैं, जहाँ जमीनमें जलकी मात्रा कम होती है। अतः इनमें जलत्याग रोकनेके लिये पत्तियोंकी उत्पत्ति कम या नहीं होती है; जैसे नागफनी थूहरमें। शतावरीमें सूईकी तरह पतले, लम्बे, नोकीले तथा एक पर्ववाले पत्राभासकाण्ड होते हैं, उनको **सूच्याकार** कहते हैं।

**कण्टकीभूतकाण्ड**—प्राणियोंसे पौधेकी रक्षा करने और पत्रोत्पत्ति बन्द करके जलत्याग रोकनेके लिये काण्ड काँटोंमें रूपान्तरित होते हैं। काँटोंके तीन भेद होते हैं;—(१) **शाखोद्भव**[5], (२) **पत्रोद्भव**[6] और (३) **उभयोद्भव**[7]। **शाखोद्भव**—ये काँटे कठिन और तीक्ष्णाग्र होते हैं। ये रूपान्तरित शाखायें हैं। क्योंकि ये शाखाके जैसे पत्रकोणसे निकलते हैं, अन्तर्जात होते हैं, आन्तरिक रचनामें काण्डकी रचनाके समान होते हैं, इनपर कईबार पत्र और पुष्प निकलते हैं और कईबार इनसे प्रशाखायें (अन्य काँटे) भी निकलती हैं। **पर्णोद्भव**—ये पर्ण या पर्णका कोई अवयव रूपान्तरित होकर बनते हैं। ये तीक्ष्णाग्र और बहिर्जात होते हैं (अर्थात् इनका संबन्ध काण्डके ऊपरी भागसे होता है), पत्तियोंके क्षेत्रफल-(स्थान)को कम करके जलत्यागको कम कर देना और प्राणियोंसे पौधेकी रक्षा करना इनका मुख्य कार्य है; जैसे नागफनी थूहरमें। ये काँटे पत्रके पृष्ठपर, किनार-धार-पर या दोनोंपर होते हैं। थूहर और कीकरमें उपपत्र तथा दारुहल्दीमें मुख्य काण्डके

(१) Stolon–स्टोलोन्। (२) Offset–ओफ्सेट्। (३) Sucker–सकर्। (४) Phylloclade–फाइलोक्लेड्। (५) Thorns–थोर्न्स। (६) Spines–स्पाइन्स्। (७) Prickles–प्रिकल्स्।

समग्र पत्र काँटोंमें रूपान्तरित होते हैं । **उभयोद्भव**—ये सख्त, तीक्ष्णाग्र, पत्रोद्भव काँटोंसे छोटे और प्रायः टेढ़े होते हैं । ये काण्ड या पत्रादिपर अनियमितरूपसे निकलते हैं और बहिर्जात होते हैं । इनको बगलसे दबानेसे ये आसानीसे अलग हो जाते हैं । इनको न तो काण्डके और न तो पत्रके रूपान्तर कहा जा सकता है, किन्तु इन्हें काण्डादिके **बहिरुद्भेद**[१] कह सकते हैं ।

**तन्तुभूतकाण्ड**[२]—ये पतले तार या सूतकी तरह होते हैं, इनमें पत्तियाँ नहीं होतीं । ये तारकी तरह लिपटे हुए और स्पर्शग्राही होते हैं, जिससे किसी सहारेको स्पर्श करते ही उसे लपेटकर पौधेको उसपर चढ़नेमें सहायता करते हैं । जैसे रक्त कूष्माण्ड ( काशीफल ), अंगूर आदि सूत्रारोहिणी लताओंमें ।

काण्डके भौमिक रूपान्तर—

भौमिक काण्डका सामान्य वर्णन पीछे पृष्ठ १८–१९ पर किया गया है । यहाँ रूपान्तरित भौमिक काण्डके भेदोंका वर्णन किया जाता है । भौमिक काण्डको सामान्यतः **कन्द** और शास्त्रीय परिभाषामें **काण्डकन्द** कहते हैं । काण्डकन्दके चार भेद होते है;—( १ ) **अनियताकार कन्द**[३], ( २ ) **गोलाकार कन्द**[४], ( ३ ) **वज्रकन्द**[५] और ( ४ ) **वल्कीकन्द**[६] । **अनियताकार कन्द**—यह पुष्ट, मोटा और मांसल भौमिक काण्ड है जिसमें मेदे( स्टार्च )के रूपमें खाद्यपदार्थ भरा रहता है । यह सामान्यतः जमीनके अन्दर अनेक शाखाकन्दोंमें फैलकर पड़ा रहता है । इनमें ग्रन्थि, पर्व, वल्कपत्र और अक्षियाँ होती हैं । इससे वायवीय शाखायें जमीनके ऊपर निकलती रहती हैं और नीचे पृष्ठसे अनियमितरूपमें जड़ें निकलती रहती हैं; जैसे अदरक और हल्दी । अनियताकार कन्द प्रायः बहुशाखी होते हैं, परन्तु कभी कभी एकशाखी भी होते हैं; जैसे जंगली अरवीमें । **गोलाकारकन्द**—भौमिक काण्ड या शाखाके मेदके रूपमें संचित खाद्यपदार्थके कारण फूले हुए मांसल तथा गोल अग्रभागको **गोलाकार कन्द** कहते हैं । इसके पृष्ठपर अनेक छोटे छोटे खड्ढे होते हैं जिनमें छोटी छोटी अक्षियाँ ( आँखें ) होती हैं, प्रत्येक अक्षिसे एक स्वतन्त्र पौधा तैयार हो सकता है । जैसे आलू, कसेरू, कमलके कन्द आदि । **वज्रकन्द**—यह कदमें बड़ा, मांसल-फूला हुआ, आकारमें प्रायः गोल और मेदे सदृश खाद्यद्रव्यसे प्रचुर मात्रामें भरा रहता है । इसपर आँखें और आधार-भागमें अनियमित मूल भी होते हैं; जैसे सूरण । **वल्कीकन्द**—इसमें भोज्य पदार्थोंका संचय वल्कपत्रोंमें रहता है और वास्तविक काण्ड बहुत छोटा रहता है, जो मोटे तथा मांसल वल्कपत्रोंसे पूर्णतः ढका रहता है; जैसे प्याज । वल्कीकन्दको **पत्रमयकन्द** भी कहते हैं ।

---

(१) Out-growth-आउट् ग्रोथ । (२) Stem-tendril-स्टेम् टेन्ड्रिल । (३) Rhizome-राइझोम् । (४) Tuber-ट्यूबर् । (५) Corm-कोर्म् । (६) Bulb-बल्ब् ।

## पर्ण[१]–पत्ता।

'पर्ण'शब्दकी निरुक्ति—

'पर्ण' शब्द 'पर्ण' हरितभावे, 'पॄ' पालनपूरणयोः, अथवा 'पृण' प्रीणने, इन धातुओंसे 'पर्णयतीति पर्णं=जो स्वयं हरा होकर उद्भिज्जमें हरापन लाता है, 'पिपर्तीति पर्णं=जो उद्भिज्जका पालन और पोषण करता है, अथवा पृणतीति पर्णं=जो उद्भिज्जका प्रीणन–तर्पण करता है, वह **पर्ण** कहलाता है; इन तीनोंमेंसे किसी एक व्युत्पत्तिसे बनता है। इन व्युत्पत्तियोंसे स्वयं हरा होना, उद्भिज्जमें हरापन लाना और खाद्यसामग्री उत्पन्न करके उद्भिज्जका पालन, पोषण और तर्पण करना ये पर्णके गुण–कर्म व्यक्त होते हैं। उद्भिज्जके सब अंगोंमें पत्तेमें ये गुण-कर्म प्रधानतया वर्तमान होनेसे उसको **पर्ण** नाम दिया गया है। उद्भिज्जके सब अंगोंमें पत्तियां उत्पन्न होकर शीघ्र गिर जाती हैं, इस लिये उनको **पत्र** भी कहते हैं=**पततीति पत्रम्**। आधुनिक उद्भिज्ज-वेत्ताओंने 'काण्ड या शाखासे निकला हुआ पार्श्विक प्रवर्धन जिसके पत्रकोणमें अक्षि उत्पन्न होती है उसको **पत्र** कहना चाहिये, यह पत्रका सामान्य लक्षण लिखा है।

पत्रके कार्य—

**पत्रके सामान्य कार्य**—(१) प्रकाशकी सहायतासे खाद्यपदार्थोंका निर्माण[२] करना (२) विशुद्ध वायु लेना और अशुद्ध वायुको बाहर निकालना[३] (श्वसन), तथा (३) मूलके द्वारा शोषित और आवश्यकतासे अधिक जलका भापके रूपमें बाहर निकालना (जलत्याग[४]) ये तीन हैं। पत्तियोंके विशेष कार्य और उनके सम्पादनार्थ पत्तियोंके रूपान्तरित होनेका वर्णन इस प्रकरणके अन्तमें किया जायगा।

पर्णके भेद—

आधुनिक उद्भिज्जवेत्ताओंने पर्णके (१) **बीजपत्र**, (२) **वास्तवपर्ण**, (३) **वल्कपत्र**, (४) **उपपत्र (पुष्पपत्र)** (५) **पुष्पच्छद और** (६) **सबीजक पत्र** ये छः भेद माने हैं।

**बीजपत्र[५]**—बीजके अन्दर एक, दो अथवा कहीं दोसे अधिक दल (विभाग–दाल) होते हैं, जो बीजोद्भेदके बाद पौधेकी सर्व प्रथम निकली हुई पत्तियोंके रूपमें प्रायः बाहर आते हैं, उनको **बीजपत्र** कहते हैं।

**वास्तवपर्ण[६]**—उद्भिज्जोंकी सामान्य हरी पत्तियोंको **वास्तवपर्ण या प्रामाणिक-**

---

(१) Leaf–लीफ्। (२) Photosynthesis or Carbon assimilation–फोटोसिन्थिसिस् ऑर् कार्बन् ॲसिमिलेशन्। (३) Respiration or breathing–रेसिपरेशन् ऑर् ब्रीधिंग्। (४) Transpiration–ट्रॅन्स्पिरेशन्। (५) Seed–leaves or cotyledons–सीड्लीव्स् ऑर् कोटीलीडन्स्। (६) Foliage–Leaves–फोलिएज् लीव्स्।

**पत्र** ( सची पत्तियाँ ) कहते हैं । इनके लिये केवल **पर्ण** या **पत्र** शब्दका प्रयोग किया जाता है ।

**वल्कपत्र**[1]—मगर या मछलीकी पीठपर जो त्वचा होती है उसको **वल्क** कहते हैं । जैसे वल्कमें एकके ऊपर एक कई परत होते हैं ऐसे इस पत्रमें एकके ऊपर एक कई परत होते हैं, इसलिये इसको **वल्कपत्र** कहते हैं । ये प्रायः छोटे, शुष्क और भूरे रंगके होते हैं । ये भौमिककाण्ड ( कन्द ) या शाखापर अक्षियोंके पार्श्वसे निकलते हैं । इनमें वृन्त नहीं होता । ये स्वतः काण्डसे ठीक लगे रहते हैं । आँखकी रक्षा करना इनका मुख्य कार्य है ।

**उपपत्र**[2]—पर्णवृन्तके मूलसे दोनों ओर एक एक ( मिलकर दो ) छोटे छोटे पत्र निकलते हैं, उन्हें **उपपत्र** कहते हैं । ये पत्रवृन्तके दोनों ओर निकलते हैं और देखनेमें बाणके पुङ्खके जैसे मालूम होते हैं इसलिये इन्हें **पुङ्खपत्र,** तथा ये पर्ण-कलिकाको ढाँककर उसकी रक्षा करते हैं अतः इन्हें **पर्णच्छद** भी कहते हैं । कई उद्भिज्जोंमें उपपत्र बहुत स्पष्ट मालूम होते हैं और कइयोंमें ये होते ही नहीं ।

**पुष्पच्छद**[3]—पुष्पवृन्तके तलभागसे या पुष्पकी पँखड़ियोंके नीचे प्रायः हरे रंगके पत्र निकलते हैं, ये कलिकावस्थामें पुष्पको आच्छादित करके उसकी रक्षा करते हैं, अतः इन्हें **पुष्पच्छद** कहते हैं ।

**सबीजकपत्र**[4]—इन पत्तियोंमें अलैङ्गिकी सन्तानोत्पत्तिके निमित्त **बीजक** होते हैं । जैसे हंसराज आदि अपुष्प उद्भिज्जोंमें.

पर्णके विभाग—

पर्णके मुख्य तीन भाग होते हैं;—( १ ) **पर्णतल,** ( २ ) **पर्णवृन्त** और **फलक** ।

**पर्णतल**[5]—पर्ण काण्ड या शाखाकी ग्रन्थिपर जिस भागसे चिपका रहता है उसको **पर्णतल** कहते हैं । पर्ण प्रायः वृन्तके अधोभागसे काण्डपर चिपका हुआ होता है, परन्तु कई पर्ण वृन्तरहित होते हैं ( जैसे सत्यानाशीका पर्ण ), वे पत्र( फलक )के मूलभागसे काण्डपर ठीक सटे हुए होते हैं, उन्हें **काण्डसंसक्त पत्र** कहते हैं । पर्णतल चिपटा और काण्डपर फैला हुआ होता है । दूर्वा, मक्का, प्याज, आदि बहुत एकदल उद्भिज्जोंमें और धनिया-जीरा-सौंफ आदि कुछ द्विदल उद्भिज्जोंमें पर्णतल या पर्णवृन्त फैलकर कोषाकार हो जाता है और काण्डको चारों ओर पूरा या कुछ दूरतक घेर लेता है, उसे **परिवेष्टक**[6] कहते हैं ।

---

(१) Scale-Leaves or Cata-phylls-स्केल लीव्स् ऑर् कॅटॅफिल्स् । (२) Stipules-स्टिप्युल्स् । (३) Bracts-ब्रॅक्ट्स् । (४) Sporophylls-स्पोरोफिल्स् । (५) Base of Leaf-बेस् ऑव् लीफ् । (६) Perfoliate-पर्फोलिएट् ।

**पर्णवृन्त**[1]—पर्णतल और फलकके बीचके भागको **पर्णवृन्त** (पानकी **डंडी, डंठी** या **डंठल**) कहते हैं। जो पर्ण वृन्तवाला हो उसको **सवृन्त**[2] और जो वृन्तरहित हो उसको **अवृन्त**[3] कहते हैं। पर्णवृन्त प्रायः फलकके मूलभागसे जुड़ा रहता है, परन्तु किसी किसी पत्रमें मध्यमें अधरपृष्ठपर जुड़ा हुआ होता है। जैसे एरण्ड, कमल आदिके पत्रमें। उसको **पत्रमध्यलग्न**[4] कहते हैं। पर्णवृन्त साधारणतः गोल, नीचेसे सँकडा और ऊपरसे कुछ चौड़ा (अर्धबेलनाकार) होता है। जलवासी पौधोंका पर्णवृन्त प्रायः फूला हुआ होता है। उसके अन्दर वायुपूर्ण छिद्र होते हैं, जिसके कारण वे पौधे जलके ऊपर तैरा करते हैं (जैसे जलकुंभीका पर्ण), उसको **स्फीत**[5]**-पर्णवृन्त** कहते है।

**फलक**[6]—पर्णवृन्तके ऊपर लगे हुए पर्णके पतले और चौड़े भागको **फलक** कहते हैं। स्व. वा. **वैद्य गंगाधर शास्त्री जोशीने** वृन्तसमेत फलकको **पर्ण** और वृन्तरहित फलकको **पत्र** नाम दिया है। यह पर्णका सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण भाग है। खाद्यपदार्थोंका निर्माण, श्वसन और जलत्याग ये पर्णके मुख्य कार्य इसीके द्वारा होते हैं। यह रंगमें प्रायः हरा होता है। फलकमें मध्यरेखाके दोनों बाजू दो **पार्श्व** होते हैं। दोनों पार्श्व मिलकर पूर्ण फलक बनता है। पत्रका जो आकार और माप लिखा रहता है वह पूर्ण फलकका समझना चाहिये। उसमें प्रायः वृन्तका समावेश नहीं किया जाता।

**पत्रपृष्ठ**[7]—पत्रमें ऊपर-नीचे दो पृष्ठ होते हैं। आकाश और सूर्यकी किरणकी ओरके पृष्ठको **अपरपृष्ठ**[8] तथा जमीन और काण्डकी ओरके पृष्ठको **अधरपृष्ठ**[9] कहते हैं। पत्रपृष्ठ चमकीला और चिकना हो तो उसको **मसृण**[10], मुलायम रोयेंदार हो तो **रोमश**[11], कड़े रोयेंदार (खुरदरा) हो तो **खर**[12] या **कर्कश** और काँटेदार हो तो उसे **कंटकी**[13] कहते हैं।

**फलकमूल**—जहाँ फलक वृन्तसे जुड़ा हुआ होता है और जहाँसे किनारें निकलती हैं उस भागको **फलकमूल** या **पत्रमूल**[14] कहते हैं।

---

(१) Petiole or Leaf-stalk-पेटिओल ऑर् लीफ़स्टॉक्। (२) Petiolate-पेटिओलेट्। (३) Sessile-सेसाईल। (४) Peltate-पेल्टेट्। (५) Swollen-स्वोलन्। (६) Lamina or Leaf-Blade-लॅमिना ऑर् लीफ् ब्लेड्। (७) Surface of Leaf-सर्फेस ऑव् लीफ। (८) Upper Surface-अपर् सर्फेस्। (९) Lower Surface-लोअर् सर्फेस्। (१०) Glabrous-ग्लॅब्रस्। (११) Pubescent-प्युबेसेन्ट्। (१२) Hispid-हिस्पिड्। (१३) Spinous-स्पाइनस्। (१४) Lamina-base-लॅमीना-बेस्।

**पत्राग्र**[1]—पत्रमें जहाँ दोनों ओरकी किनारें मिलती हैं तथा मध्यसिरा समाप्त होती है उस भागको **पत्राग्र** कहते हैं। पत्रका अग्रभाग यदि नोकीला हो ( जैसे आममें ), तो उसको **तीक्ष्णाग्र**[2]; यदि लम्बा, क्रमशः पतला और आगेकी ओर बहुत निकला हुआ हो ( जैसे पीपलमें ), तो उसको **लम्बाग्र**[3]; यदि गुठल हो ( जैसे बड़में ) तो उसको **कुण्ठिताग्र**[4]; यदि अग्रभाग मध्यसिरापर भीतरकी ओर दबा हुआ हो ( जैसे कचनारमें ), तो उसको **नताग्र**[5] और यदि देखनेमें ऐसा मालूम हो कि पत्रका अग्रभाग काट दिया है तो उसको **छिन्नाग्र**[6] कहते हैं।

**पत्रधारा**[7]—पत्रमें दाहिनी और बाईं दोनों बाजू जो किनार-कोर होती है, उसको **पत्रधारा** कहते हैं। जब पत्रधारा कहींसे भी खण्डित ( कटी ) हुई न हो ( जैसे वटपत्रमें ), तो उसको **अखण्ड**[8] कहते हैं। जब पत्रकी धार अखण्ड परन्तु लहरकी तरह नीचे ऊपर उठी हुई हो ( जैसे आमके पत्रमें ), तो उसे **लहरदार**[9] **( तरङ्ग-सदृश )** कहते हैं। जब पत्रकी धार आरे( करौत )के समान तीक्ष्णदाँतोंवाली हो ( जैसे गुलाबके पत्तेमें ), तो उसको **तीक्ष्णदन्तुरा**[10] कहते हैं। जब पत्रकी धार गुठल नोकवाले दाँतोंवाली हो ( जैसे ब्राह्मीकी पत्तीमें ), तो उसको **कुण्ठितदन्तुरा**[11] कहते हैं।

**पत्रसिरा**[12]—पत्रमें चारों ओर जो रसवाहिनियाँ फैली होती हैं, उनको **पत्रसिरा** कहते हैं। इन सिराओंके कारण ही पत्रमें अकडाई और उसका चपटा आकार कायम रहता है। पत्रके मध्यमें पत्रमूलसे पत्राग्रतक गई हुई मध्यसिराको **माढि**[13] या **मध्यसिरा** कहते हैं। पत्रमें विविध प्रकारकी जो सिराओंकी रचनायें होती हैं उनको **सिरारचना**[14] या **सिराक्रम** कहते हैं। सिरारचना मुख्य दो प्रकारकी होती है;—( १ ) **जालिनी**[15] और ( २ ) **समानान्तर**[16]। **जालिनी**—इस रचनामें मध्यसिरासे या बड़ी बड़ी मुख्य सिराओंसे अनेक शाखासिरायें निकलकर और अनियमितरूपमें विभक्त होकर परस्पर मिल जाती हैं और जालसदृश रचना बना लेती हैं। इसके **पक्षाकार**[17] और **करतलाकार**[18] दो भेद होते हैं। **पक्षाकार**—इस रचनामें मुख्य सिरा एक होती

---

(१) Apex of Leaf-ॲपेक्स् ऑव् लीफ्। (२) Acute-ॲक्युट्। (३) Acuminate-ॲक्युमिनेट्। (४) Obtuse-ओब्ट्यस्। (५) Emarginate-इमार्जिनेट्। (६) Trucate-ट्रन्केट्। (७) Margin of the Leaf-मार्जिन् ऑव् थ लीफ्। (८) Entire-एन्टायर्। (९) Wavy-वॅवी। (१०) Serrate-सेर्‌रेट्। (११) Crenate-क्रिनेट्। (१२) Vein of the Leaf-वेइन् ऑव् थ लीफ्। (१३) 'पत्रमध्यसिरा माढिः' ( वैजयन्तीकोष, भूमिकाण्ड, वनाध्याय' )। (१४) Venation-वेनॅशन्। (१५) Reticulate-रेटिक्युलेट्। (१६) Parallel-पॅरॅलल्। (१७) Unicostate-युनिकोस्टेट्। (१८) Multicostate-मल्टिकोस्टेट्।

है, जिससे शाखायें और उससे प्रशाखायें निकलकर जालकी तरह फैली रहती हैं। जैसे आम-बड़ आदिमें। **करतलाकार**—इस रचनामें पत्रमूलसे कई बड़ी बड़ी सिरायें निकलकर ऊपरकी ओर जाती हैं। इसमें भी दो भेद होते हैं। प्रथममें पर्ण-वृन्ताग्रसे कई सिरायें निकलती हैं, परन्तु ऊपर जाती हुई इस प्रकार घूमकर जाती हैं कि पत्राग्रपर सभी फिर मिल जाती हैं; जैसे बेर आदिके पत्रमें। दूसरेमें पर्ण-वृन्ताग्रसे कई बड़ी बड़ी सिरायें निकलकर ऊपर इस प्रकार फैली रहती हैं कि ऊपरकी ओर क्रमशः एक दूसरेसे दूर होती जाती हैं, जैसे एरण्ड, पपीता आदिके पत्रमें। **समानान्तर सिरारचना**—इस क्रममें मुख्य सिरायें और उनसे निकली हुई शाखायें भी समानान्तर क्रमसे फैली रहती हैं। जैसे अनेक एकदल उद्भिज्जोंके पत्रमें। इसके दो भेद होते है;—(१) **एकपर्शुक** और (२) **बहुपर्शुक**। **एकपर्शुक**—इसमें माढिसे दोनों ओर शाखासिरायें निकलकर एक दूसरेके समानान्तर फैलकर किनारोंकी तरफ या अग्रकी ओर जाती हैं; जैसे केला, अदरक, हल्दी आदिमें। **बहुपर्शुक**—इसमें पत्रमूलसे कई बड़ी सिरायें निकलकर पत्रमें एक दूसरेके समानान्तर फैली रहती हैं। इसके भी दो भेद होते हैं। प्रथममें एक कद या लम्बाईकी कई बड़ी सिरायें पत्राग्रपर जाकर मिल जाती हैं; जैसे मक्का, बाँस आदिमें। दूसरेमें पत्रमूलसे सिरायें निकलकर पत्रधाराकी ओर बढ़ती हुई क्रमशः एक दूसरेसे दूर होती जाती हैं; जैसे ताड़में।

पत्राकृति[1]—

पत्रके आकार अनेक प्रकारके होते हैं। जब पत्र लम्बा, पतला तथा नोकीला सूईके आकारका हो (जैसे चीड़में), तो उसको **सूचिकाकार**[2] कहते है। जो पत्र हृदयके आकारका हो (जैसे गिलोयमें), उसको **हृदयाकार**[3] कहते है। जो वृक्क (गुर्दे)के आकारका हो (जैसे ब्राह्मीमें), उसको **वृक्काकार**[4] कहते हैं। जो मूल और अग्रमें सँकडा तथा मध्यमें चौड़ा हो (जैसे जामुनका पत्र), उसको **अण्डाकार**[5] कहते हैं। जो लम्बाईलिये गोल हो (जैसे आकका पत्र), उसको **लम्बगोल**[6] कहते हैं। जो पत्र गोल हो (जैसे कमलका पत्र), उसको **वर्तुल**[7] कहते हैं। जो पत्र भालेकी तरह मध्यमें अधिक चौड़ा और दोनों ओर क्रमशः पतला हो गया हो (जैसे कनेरका पत्र), उसको **भल्लाकार**[8] कहते हैं। जो पत्र लम्बा परन्तु कम चौड़ा हो और चौड़ाई मूलसे अग्रतक एकसी हो (जैसे घास और मक्कीका पत्र), उसको **रेखाकार**[9] कहते हैं। जो पत्र ऊपरके भागमें चौड़ा और मूलमें सँकड़ा अणीदार हो

(१) Shapes of the Leaves-शेप्स् ऑव् लीव्ज्। (२) Acicular-ॲसिक्युलर्। (३) Cordate-कॉर्डेट्। (४) Reniform-रेनिफोर्म्। (५) Elliptical-एलिप्टिकल। (६) Oblong-ऑब्लोंग। (७) Orbicular-ऑर्बिक्युलर्। (८) Lanceolate-लॅन्सिओलेट्। (९) Linear-लीनियर्।

( जैसे थूहरका पत्र ), उसको **दर्व्याकार**[1] कहते हैं । जो पत्र मूलमें सबसे अधिक चौड़ा और गोल हो तथा अग्रकी ओर क्रमशः पतला होकर नोकीला हो गया हो ( जैसे बड़का पत्र ), उसको **लट्वाकार**[2] कहते हैं । जो पत्र अग्रभागपर सबसे अधिक चौड़ा हो और नीचेकी ओर क्रमशः सँकरा होकर नोकीला हो गया हो ( जैसे देशी बादाम और कटहलका पत्र ), उसको **विपरीतलट्वाकार**[3] कहते हैं ।

पर्णके भेद—

पर्णके दो भेद होते हैं; ( १ ) **एकाकी** और **सदल** । जिस पर्णमें उसकी किनार ( पत्रधारा ) मध्यसिरातक खण्डित न हुई हो ( जैसे तुलसी, बड़ आदिमें ), उसको **एकाकी**[4] ( अकेला-सादा ) **पर्ण** कहते हैं और जिस पर्णमें पत्र ( फलक ) मध्यसिरातक कई स्वतन्त्र दलोंमें विभक्त हो गया हो ( जैसे अमलतास, कीकर, बेल आदिमें ), उसको **सदल**[5] ( अनेक दलोंमें विभक्त ) या **संयुक्तदल पर्ण** कहते हैं । सदल पर्णमें जो पत्रसदृश विभाग होते हैं उनको **दल**[6] कहते हैं । एकाकी पर्णकी किनार भी विभक्त होती है ( जैसे एरण्ड आदिके पत्रमें ), परन्तु वह मध्यसिरातक विभक्त नहीं होती किन्तु कुछ भागतक ही विभक्त रहती है । एकाकी पत्रके ये विभाग उसकी किनार कई स्थानोंमें कुछ दबकर जैसे हथेलीसे अंगुलियाँ निकली हुई हों ऐसे दिखते हैं, उनको **पत्राङ्गुल** कहते हैं । एरण्डका **पञ्चाङ्गुल** नाम प्रसिद्ध है । एकाकी और सदल पर्णमें अन्य भी विशेषतायें होती हैं; जैसे—( १ ) एकाकी पर्णके पर्णकोणमें अक्षि होती है परन्तु सदल पर्णके किसी भी दलके पत्रकोणमें अक्षि नहीं होती, ( २ ) एकाकी पर्णके वृन्तमूलपर प्रायः पुच्छपत्र ( उपपत्र ) होते हैं परन्तु सदल पर्णके किसी दलके वृन्तमूलपर उपपत्र नहीं होते ।

सदल पर्ण और शाखामें भेद—

( १ ) शाखाके अग्रभागपर अक्षि ( शुंग ) होती है, परन्तु सदल पर्णमें मध्यदण्डके अग्रपर अक्षि कभी नहीं होती; ( २ ) सदल पर्णके दल शाखाकी तरह गोपुच्छाकार क्रमसे नहीं निकलते; ( ३ ) किसी शाखाके कोणमें अक्षि नहीं होती किन्तु वह स्वयं किसी पत्तीके पत्रकोणसे निकलती है, परन्तु सदल पत्ती किसी पत्तीके पत्रकोणसे नहीं निकलती । पक्षाकार सदलपर्ण एक साधारण शाखाकी तरह मालूम होते हैं इसलिये प्रारम्भमें सदल पत्तीमें शाखाका भ्रम होनेकी संभावना है, परन्तु ऊपर लिखे हुए लक्षणोंसे आसानीसे दोनोंको अलग कर सकते हैं ।

---

(१) Spatulate–स्पॅच्यूलेट् । (२) Ovate–ओवेट् । (३) Obovate–ओबूओवेट् । (४) Simple Leaf–सिम्पल लीफ् । (५) Compound Leaf–कम्पाउन्ड् लीफ् । (६) Leaflets–लीफ्लेट्स ।

सदल पर्णके भेद—

सदल पर्णके मुख्य दो भेद हैं;—( १ ) **पक्षाकार**[1] और ( २ ) **करतलाकार**[2]। जैसे पँखमें मध्यदण्डसे दोनों ओर बाल निकले हुए होते हैं वैसे जिस पर्णमें मध्य-सिरा( मध्यदण्ड )से दोनों ओर दल निकले हों उसको **पक्षाकार** कहते हैं । पक्षाकार पर्णके तीन उपभेद होते हैं;—( १ ) **समदल**, ( २ ) **विषमदल** और ( ३ ) **उपपक्षयुक्त** । जिस पर्णमें मध्यदण्डसे दोनों ओर समसंख्यामें दल विभक्त हों ( जैसे अमलतास, कसौंदी आदिमें ) उसको **समदल**[3] कहते हैं । जिस पर्णमें मध्यदण्डके दोनों बाजू समसंख्यामें दल विभक्त हों और मध्यदण्डके अग्रपर एक दल अधिक हो ( जैसे गुलाब, कोयल आदिमें ), उसको **विषमदल**[4] कहते हैं । जिस पर्णमें मध्यदण्डसे कई छोटी छोटी शाखायें ( उपपक्ष ) निकली हों और इन शाखाओंपर भी पक्षकी तरह दोनों बाजू दल हों ( जैसे गुलमोर, कीकर, लाजवंती आदिमें ), तो उसको **उपपक्षयुक्त**[5] कहते हैं । जब सदल पर्णके वृन्ताग्रसे दल इस प्रकार निकले हों जैसे करतल( हथेली )से अंगुलियाँ निकलती हैं और उसका आकार करतल जैसा मालूम होता हो तो उसको **करतलाकार पर्ण** कहते हैं । करतलाकार पर्णमें जब वृन्तके अग्रसे एक दल निकला हो ( जैसे नीबू-संतरा आदिमें ), तब उसको **एकदल**[6]; जब दो दल निकले हों ( जैसे इंगुदीमें ), तब उसको **द्विदल**[7]; जब तीन दल निकले हों ( जैसे बेल, वरुण, चाङ्गेरी आदिमें ), तब उसको **त्रिदल**[8]; जब चार दल निकले हों ( जैसे सुनिषण्णक-चौपतियामें ), तब उसको **चतुर्दल**[9] और जब पाँच या पाँचसे अधिक दल निकले हों ( जैसे गोरखइमली, हुरहुर आदिमें ), तो उसको **बहुदल**[10] कहते हैं ।

पर्णक्रम[11]—

पत्तियोंको उचितमात्रामें सूर्यका प्रकाश प्राप्त होनेके लिये काण्ड या शाखापर उनके निकलनेका जो विशेष प्रकारका क्रम होता है उसको **पर्णक्रम** या **पर्णविन्यास** कहते हैं । पर्णक्रम तीन प्रकारका होता है; ( १ ) **अभिमुख**[12], ( २ ) **वर्तुल**[13] और ( ३ ) **पेचदार**[14] । जब काण्ड या शाखापर प्रत्येक ग्रन्थिसे आमने सामने दो पत्तियाँ

---

(१) Pinnate-पिनेट् । (२) Palmate-पामेट् । (३) Paripinnate-पेरिपिनेट् । (४) Imparipinnate-इम्पेरिपिनेट् । (५) Bipinnate-बाइ-पिनेट् । (६) Unifoliate-यूनिफोलिएट् । (७) Bifoliate-बाईफोलिएट् । (८) Trifoliate-ट्राइफोलिएट् । (९) Quadrifoliate-कॉड्रिफोलिएट् । (१०) Multifoliate-मल्टिफोलिएट् । (११) Phyllotaxis-फायलोटॅक्सिस । (१२) Opposite-ऑपोझिट् । (१३) Verticillate-वर्टिसिलेट् । (१४) Alternate-ऑल्टर्नेट् ।

निकली हों तब उसको **अभिमुख** कहते हैं । जब प्रत्येक ग्रन्थिसे चारों ओर दोसे अधिक पत्तियाँ निकली हों ( जैसे कनेर, सप्तपर्ण आदिमें ), तो उसको **वर्तुल** कहते हैं । जब प्रत्येक ग्रन्थिसे एक एक पत्ती अन्तर देकर ( बल खाकर ) निकले और उसका दृश्य पेच जैसा मालूम हो तो उसको **पेचदार** या **एकान्तर पर्णक्रम** कहते हैं । जैसे जपा, बड़, आसोपालव आदिमें ।

मधुग्रन्थियाँ[1]—

पत्तेमें शहद जैसे मधुर पदार्थसे भरी हुई ग्रन्थियाँ होती हैं, उन्हें **मधुग्रन्थि** कहते हैं । कसौंदीके काण्डपर पत्रकोणमें नीले काले रंगकी मधुग्रन्थियाँ होती हैं । अर्जुनके पत्रके अधरपृष्ठपर मध्यसिराके दोनों ओर दो बड़ी मधुग्रन्थियाँ होती हैं । कई अन्य वनस्पतियोंके पत्तेपर भी ऐसी ग्रन्थियाँ होती हैं ।

तैलग्रन्थियाँ[2]—

नीबूका पत्ता लेकर सूर्यप्रकाशके सामने रखें तो उसमें अनेक पारदर्शक बिन्दु-सदृश ग्रन्थियाँ दिखाई देंगी । इन ग्रन्थियोंमें तैल भरा होता है । प्रायः सुगन्धित पत्तियोंमें तैलग्रन्थियाँ होती हैं ।

पत्रका संगठन[3]—

जो पत्ती मोटी और रसाल हो ( जैसे पथरचूरका पत्र ) उसको **मांसल**[4], जो कुछ कड़ी हो ( जैसे बड़ और आम्रका पत्र ) उसको **चर्मसदृश**[5], जो कड़ी और आसानीसे टूट सके ऐसी हो ( जैसे हारसिंगारकी पत्ती ) उसको **भंगुर**[6] और जो पतली और मुलायम हो ( जैसे गुलाबासकी पत्ती ) उसके **कौशेयसदृश**[7] ( रेशमी वस्त्र जैसी ) कहते हैं ।

विशेष कार्योंके लिये पत्तियोंका रूपान्तर—

प्रामाणिक पत्तियोंके खाद्यपदार्थोंका निर्माण, श्वसन और जलत्याग ये तीन कार्य होते हैं । इनके अतिरिक्त कुछ उद्भिज्जोंमें विशेष कार्योंके निमित्त उनकी पत्तियोंके विशेष प्रकारके रूपान्तर होते हैं । जिन विशेष कार्योंके निमित्त पत्तियाँ रूपान्तरित होती हैं वे छः हैं;—( १ ) **अवलम्बन**[8] ( **सहारा** ), ( २ ) **शोषण**[9], (३) **आकं-**

---

(१) Nectarial glands-नेक्टेरीअल ग्लॅन्ड्स् । (२) Oil glands-ऑइल ग्लॅन्ड्स् । (३) Texture of the Leaf-टेक्स्चर ऑव् दि लीफ् । (४) Succulent-सक्यूलेन्ट् । (५) Coriaceous-कोरिएसस् । (६) Crustaceous-क्रस्टेसस् । (७) Membranous-मेम्ब्रेनस् । (८) Support-सपोर्ट् । (९) Absorption-ॲब्सॉर्प्शन् । (१०) Attraction-ॲट्रॅक्शन् ।

र्षण, (४) **सन्तानोत्पत्ति**, (५) **संचय** और (६) **रक्षा**। इनका वर्णन क्रमशः किया जाता है। **सहारा**—सहारा देना या वायवीय अंगोंका धारण करना यह काण्डका मुख्य कार्य है, परन्तु कई पत्तियाँ रूपान्तरित होकर यह कार्य करती हैं। उनके चार प्रकार होते हैं;—(१) **धारक वृन्तमूल**, (२) **तन्तुभूत पत्र**, (३) **पत्रोद्भूत बडिश** और (४) **स्फीत वृन्त**। **धारकवृन्त मूल**—कुछ पौधोंमें वृन्तमूल बहुत लम्बे हो जाते हैं और ऐसे अनेक वृन्तमूल इस प्रकार मिल-जुलकर अपनी वृद्धि करते हैं कि उनसे काण्डसदृश रचना बन जाती है; जैसे केला, अदरक आदिमें। **तन्तुभूत पत्र**—कुछ दुर्बलकाण्ड उद्भिज्जोंमें पूरी पत्ती या उसका कुछ भाग तन्तु जैसा हो जाता है जो किसी सहारेको लपेटकर पौधेको उसपर चढ़नेमें सहायता देता है; जैसे मटर, लाङ्गली आदिमें। **पत्रोद्भूत बडिश**—कुछ आरोहिणी लताओंमें पत्तियोंसे बडिशाकार रचनायें निकली रहती हैं, जो उनको दूसरे आश्रय-स्थानपर चढ़नेमें सहायता देती हैं। **स्फीतवृन्त**—कई जलवासी पौधोंके पर्णवृन्त फूले हुए होते हैं, इनसे ये पत्तियाँ पानीमें तैरती रहती हैं। जैसे सिंघाड़ामें। **शोषकपत्र**—पृथिवीसे क्षारमिश्रित जलका शोषण करना यह जड़ोंके प्रधान कार्योंमेंसे है। परन्तु कुछ पौधोंमें यह कार्य करने योग्य पत्तियाँ भी होती हैं। इनके दो भेद हैं;—(१) **जलशोषक** और (२) **मांसाहारी**। **जलशोषक**—जलमग्न पौधोंकी पत्तियाँ जलाशयोंसे क्षारमिश्रित जलका शोषण करती हैं। शुष्क भूमिमें होनेवाले कुछ पौधोंके पत्रपर शोषक रोम होते हैं, ये रोम बरसाती पानी या ओसका शोषण कर लेते हैं। **मांसाहारी**—मांसाहारी पौधे अपनी पत्तियोंकी ऐसी विचित्र योजना करते हैं कि उनपर बैठे हुए कीटादिसे भोज्य पदार्थका शोषण कर लेती हैं (इनका विशेष विवरण उद्भिज्जशास्त्रके स्वतन्त्र ग्रन्थोंमें देखें, विस्तारभयसे यहाँ नहीं दिया है)। **आकर्षकपत्तियाँ**—पुष्पकी रंगीन पँखड़ियोंका मुख्य कार्य परागवितरणके लिये कीड़ोंको आकर्षित करना है। कुछ पौधोंमें पुष्प बहुत छोटे होनेसे अनाकर्षक होते हैं, इसलिये उनमें रंगीन पत्तियाँ होती हैं, जो कीड़ोंको आकर्षित करती हैं। **संतानोत्पादक पत्र**—कुछ पौधोंकी पत्तियोंमें छोटी अक्षियाँ होती हैं। उन पत्तियोंको जमीनमें लगानेसे उससे नया पौधा उत्पन्न होता है; जैसे पथर-

---

(१) Reproduction-रीप्रॉडक्शन्। (२) Storage-स्टोरॅज्। (३) Protection-प्रोटेक्शन्। (४) Supporting leaf-bases-सपोर्टिंग् लीफ् बेसिस्। (५) Leaf-tendrils-लीफ् टेन्ड्रिल्स्। (६) Leaf-hooks-लीफ् हूक्स्। (७) Leaf-floats-लीफ् फ़्लोट्स्। (८) Water-absorbing leaves-वॉटर् ॲब्सोर्बिंग् लीव्स्। (९) Carnivorous leaves-कार्निवोरस् लीव्स्। (१०) Attractive-leaves-ॲट्रॅक्टिव् लीव्स्। (११) Reproductive leaves-रीप्रोडक्टिव् लीव्स्।

चूरमें । **संग्राही पत्तियाँ**—ऐसी पत्तियाँ प्रायः मांसल और मोटी होती हैं । इनके तीन भेद होते हैं—( १ ) जिनमें जलसंचयके लिये विशेष प्रकारके तन्तु हों ( जैसे घीकुँवार, थूहर आदिके पत्र ), ( २ ) जिनमें भोज्यपदार्थके संचयके लिये विशेष प्रकारके तन्तु हों, ( जैसे प्याज आदिमें ) और ( ३ ) जिनमें खाद्यपदार्थके संचयके लिये छोटी थैलियाँ हों । **रक्षक पत्तियाँ**—कुछ पौधोंमें संपूर्णपत्ती या उसका कुछ भाग पौधेकी रक्षाके लिये रूपान्तर कर लेता है । रक्षक पत्तियोंके तीन प्रकार हैं—( १ ) **कण्टकीभूत पत्र, गतिशील पत्र** और **कलिकावल्क** । **कण्टकीभूत पत्र** इनका वर्णन पीछे काँटोंके वर्णनमें पृ. २१–२२ पर किया गया है । **गतिशील-पत्र**—लाजवन्तीकी पत्तीको हम स्पर्श करते हैं तो उसकी पत्तीके सभी दल गतिशील होकर संकुचित हो जाते हैं । **कलिकावल्क**—कुछ पौधोंमें विशेष प्रकारकी पत्रवत् रचनायें होती हैं, जो जाड़ोंमें कलिकाकी रक्षा करती हैं; उन्हें **कलिकावल्क** कहते हैं । ये रचनायें संपूर्ण पत्ती, पुँखपत्र या अर्धविकसित फलकवाली पत्तियोंके पत्रवृन्तोंके रूपान्तरसे प्राप्त होती हैं । जैसे पीपल, कटहल, चम्पा आदिमें ।

---

## पुष्प–फूल ।

उद्भिज्जोंके धारक और पोषक अवयवोंका वर्णन किया । अब सन्तानोत्पादक अवयवोंका वर्णन किया जाता है । उद्भिज्जोंमें संतानोत्पादक अवयव दो होते हैं—( १ ) **पुष्प** और ( २ ) **फल** । प्रथम पुष्प होकर पीछे उसमें फल लगते हैं, इसलिये पहले पुष्पका वर्णन किया जायगा ।

'पुष्प'शब्दकी निरुक्ति—

'पुष्प' विकसने, धातुसे 'पुष्प्यतीति पुष्पं=जो विकसित होता है ( खिलता है ) वह पुष्प कहलाता है, इस व्युत्पत्तिसे पुष्प शब्द बनता है'। उद्भिजमें विकसित होनेवाले अवयवको पुष्प कहते हैं ।

पुष्पकी अवस्थायें—

पुष्प जब अविकसित होता है तब उसको **कलिका** या **कोरक ( फूलकी कली )** कहते हैं । कलिका जब विकासोन्मुख होती है तब उसको **कुड्मल** या

---

(१) Storing leaves-स्टोरिंग् लीव्स् । (२) Water storage-वॉटर् स्टोरेज् । (३) Food-storage-फूड् स्टोरेज् । (४) Pocket-leaves-पोकेट् लीव्स् । (५) Leaf-spines-लीफ् स्पाइन्स् । (६) Motile-leaves-मोटाइल लीव्स् । (७) Bud-scale-बड्स्केल्स् । (८) Flower-फ्लावर । (९) Bud-बड् ।

**मुकुल** कहते हैं और जब पूर्ण विकसित होती है तब उसको **फुल्ल** (खिला हुआ फूल) कहते हैं।

पुष्पोद्भव और पुष्पविन्यास—

काण्ड या शाखाके अग्रभागसे या पत्रकोणसे पुष्पकलिकाका निकलना **पुष्पोद्भव** कहलाता है। पुष्पोद्भव यदि काण्ड या शाखाके अग्रभागसे हुआ हो तो उस पुष्पको अग्र्य या **अग्रोद्भूत** और पत्रकोणसे हुआ हो तो उसको **पत्रकोणोद्भूत** कहते हैं। काण्ड या शाखाके अग्रभागसे या पत्रकोणसे निकले हुए पुष्पोंकी जो विभिन्न प्रकारकी रचनायें होती हैं उनको **पुष्पविन्यास** या **पुष्पव्यूह** कहते हैं। पुष्पविन्यास दो प्रकारका होता है;—(१) **एकाकी** और (२) **कुसुमोच्चय** या **पुष्पसमूह**। काण्ड या शाखाके अग्रभागसे अथवा पत्रकोणसे यदि एक ही पुष्प निकला हो तो उसको **एकाकी पुष्प** कहते हैं और एक पुष्पस्तम्भसे अनेक पुष्प समूह रूपमें निकले हों तो उसको **कुसुमोच्चय** कहते हैं। कुसुमोच्चयके रचनाभेदसे तीन मुख्य भेद होते हैं—(१) **गुच्छ**, (२) **मञ्जरी** और (३) **स्तबक**। गुच्छके दो मुख्य भेद होते हैं—(१) **मुकुटाकार** या **चूड़ाकार** और (२) **छत्राकार**। यदि एक लम्बे पुष्पस्तम्भ(पुष्पदण्ड)पर भिन्न भिन्न स्थलोंपरसे चारों ओर अनेक सवृन्त पुष्प निकले हों तो उसको **मुकुटाकार** या **चूड़ाकार** कहते हैं। यदि एक लम्बे पुष्पदण्डके सिरेपर एक ही स्थलसे अनेक सवृन्त पुष्प चारों ओरसे निकले हों और उसका दृश्य छतरीकासा हो तो उसको **छत्राकार** कहते हैं। यदि एक पुष्पदण्डपर अनेक अवृन्त पुष्प भिन्न भिन्न स्थलोंसे निकले हों तो उसको **मञ्जरी** कहते हैं। यदि मञ्जरीका अग्रभाग सिंहकी पूँछ या हाथीकी सूँडके समान मुड़ा हुआ हो तो उसको **सिंहपुच्छाकार** या **हस्तिशुण्डाकार** मञ्जरी कहते हैं। जब वृन्ताग्र तश्तरी जैसा गोल और चौड़ा हो (जैसे सूरजमुखीके फूलमें) तथा उसपर अनेक अवृन्त छोटे छोटे पुष्प लगे हों तो उसको **स्तबक** कहते हैं। जब वृन्ताग्र गेंदके जैसा गोल हो (जैसे बबूलके फूलमें) और उसपर अनेक अवृन्त पुष्प लगे हो तो उसको **कन्दुकाकार** या **उन्नतोदर स्तबक** कहते हैं। जब वृन्ताग्र बढुए जैसा हो अर्थात् उसका मध्यभाग नीचेकी ओर हो और किनारी संकुचित होकर ऊपरकी ओर मिल गई हो तथा अन्दरकी ओरमें अनेक अवृन्त पुष्प लगे हों (जैसे बड़, गूलर आदिमें) तो उसको **गुह्यपुष्प** या **नतोदर स्तबक** कहते हैं।

---

(१) Inflorescence–इन्फ्लोरेसन्स्। (२) Terminal–टर्मिनल्। (३) Axillary–ॲक्सिलरी। (४) Solitary–सॉलिटरि। (५) Raceme–रेसीम। (६) Umbel–अम्बेल्। (७) Spike–स्पाइक्। (८) Scorpioid–स्कोर्पिओइड्। (९) Capitulum–कॅपिट्युलम्।

पुष्पके अवयव—

प्रत्येक पूर्ण पुष्पमें पाँच प्रधान अवयव होते हैं—(१) **वृन्त**[१], (२) **बाह्यकोश**[२], (३) **आभ्यन्तरकोश**[३], (४) **पुंकेशर**[४] और (५) **स्त्रीकेशर**[५]। जिस पुष्पमें ये पाँचों अवयव विद्यमान हों उसको **पूर्णपुष्प**[६] और जिसमें इनमेंसे कुछ अवयवोंका अभाव हो उसको **अपूर्णपुष्प**[७] कहते हैं। इन पाँचों अवयवोंका क्रमशः वर्णन नीचे किया जाता है।

**वृन्त**—पुष्पके नीचे जो डंठल होता है उसको **वृन्त** या **पुष्पवृन्त** कहते हैं। जिस पुष्पके नीचे डंठल हो उसको **सवृन्त पुष्प**[८] और जिसके नीचे डंठल न हो उसको **अवृन्त पुष्प**[९] कहते हैं। जिस पुष्पवृन्तपर अनेक दूसरे वृन्त शाखा रूपसे निकलें और उन प्रत्येक शाखावृन्तपर एक एक पुष्प लगकर कुसुमोच्चय (पुष्पसमूह) बने, उसको **पुष्पस्तम्भ**[१०] या **पुष्पदण्ड** कहते हैं। पुष्पसमूहमें प्रत्येक पुष्पके नीचे जो शाखावृन्त होता है उसको **वृन्तक**[११] (छोटी डंडी) कहते हैं। पुष्पच्छद और शाखावृन्त रहित जो लम्बा पुष्पवृन्त सीधा जड़ (मूलभण्डार) से निकले (जड़की पत्तियोंके बीचसे निकले) और उसके अग्रपर पुष्प निकलें, उसको **पुष्पध्वज**[१२] कहते हैं। पुष्पवृन्तके सिरेको जहांसे पँखड़ियाँ पुंकेशर और स्त्रीकेशर निकलते हैं **वृन्ताग्र**[१३] (ढेंप) या **पुष्पासन** कहते हैं।

**पुष्पच्छद**—जैसे पर्णवृन्तके नीचे उपपत्र (पर्णच्छद) होते हैं और प्रारम्भावस्थामें पर्णकलिका उनसे आच्छादित होती है, उसी प्रकार पुष्पके नीचे भी उपपत्र होते हैं जो कलिकावस्थामें पुष्पको ढांके रखते हैं, इन्हें **पुष्पच्छद**[१४] कहते हैं। पुष्पच्छद बहुत करके वृन्तमूलसे निकलते हैं, परन्तु गुड़हल (जपा) के फूलोंमें वृन्तमूलके अतिरिक्त वृन्ताग्रमें कलिकाके नीचे चक्राकारमें भी पुष्पच्छद लगे हुए होते हैं, इनको **पुष्पच्छदवलय**[१५] कहते हैं। केलेके फूलमें प्रत्येक पुष्पसमूहपर एक एक बड़ा पुष्पच्छद पुष्पसमूहको ढाँककर लगा हुआ रहता है। पुष्पच्छद प्रायः हरे रंगके होते हैं, परन्तु कभी कभी अन्य रंगके भी होते हैं, जैसे—केलेमें।

**पुष्पबाह्यकोश**—पुष्पमें सबसे बाहर जो कोश (आच्छादन) या पुट

---

(१) Pedicel-पेडिसिल् । (२) Calyx-कॅलिक्स् । (३) Corolla-कॉरोला । (४) Androecium-ॲन्ड्रिसिअम् । (५) Gynœcium-गाय्नेसिअम् । (६) Complete flower-कम्प्लीट् फ्लावर् । (७) Incomplete flower-इन्कम्प्लीट् फ्लावर् । (८) Pedcillate-पेडिसिलेट् । (९) Sessile-सेसाइल । (१०) Rachis-रॅचिस् । (११) Pediuncle-पिडन्कल् । (१२) Scape-स्केप् । (१३) Thalamus-थॅलेमस् । (१४) Bract-ब्रॅक्ट् । (१५) Epicalyx-एपिकॅलिक्स् ।

होता है उसको **बाह्यकोश**[1] या **बाह्यपुट** कहते हैं। बाह्यकोश प्रायः हरे रंगका होता है, परन्तु कहीं कहीं अन्य रंगका भी देखा जाता है। इसका कार्य कलिकावस्थामें पुष्पके अन्य अंगोंको आच्छादित करके उनकी रक्षा करना है। बाह्यकोशकी जो पत्तियाँ होती हैं उनको **पुष्पबाह्यकोशके दल**[2] कहते हैं। पुष्पबाह्यकोशके दल यदि पूर्णतः विभक्त हों तो उसको **विभक्तदल**[3] और यदि अंशतः मिले हुए हों तो उसको **संयुक्तदल**[4] (पुष्पबाह्यकोश) कहते हैं। संयुक्तदलमें भी ऊपरकी ओर दल कुछ न कुछ विभक्त होते हैं। इन स्वतन्त्र दलों (विभागों) को गिनकर बाह्यकोशके दलोंकी संख्या बताई जाती है। बाह्यकोशके दल यदि नीचेसे थोड़े-बहुत भी जुड़े हुए हों तो उनको **बाह्यकोशनलिका** कहते हैं; तथा शेष स्वतन्त्र विभागोंको **दाँते, खण्ड** या **विभाग**[5] कहते हैं। कई पुष्पोंमें पुष्पकलिकाके खिलनेके साथ बाह्यकोशके दल गिर जाते हैं (जैसे सत्यानाशीमें), उसको **पूर्वपाती**[6] (पुष्पबाह्यकोश) कहते हैं। परन्तु बहुतसे पुष्पोंमें बाह्यकोश पुष्पके साथ सूखकर गिरता है, उसको **पश्चात्पाती**[7] कहते हैं। बहुतसे पुष्पोंमें वह फल तैयार होनेपर उसको आच्छादित करके रहता है (जैसे रसभरीमें), उसको **स्थायी**[8] (पुष्पबाह्यकोश) कहते हैं। बाह्यकोशके दल यदि बाहरसे चिकने हों तो उन्हें **मसृण, खुरदरे** (सख्त रोयेंदार) हों तो **खर** या **कर्कश,** मृदु रोयेंदार हों तो **रोमश** और काँटेदार हों तो उन्हें **कण्टकी** कहते हैं। बाह्यकोशके समग्र दल आकार और कदमें यदि समान हों तो उनको **नियताकार**[9] और यदि असमान हों तो उन्हें **अनियताकार**[10] (पुष्पबाह्यकोश) कहते हैं। बाह्यकोशकी आकृतिके भेदसे उसके विभिन्न नाम रखे जाते हैं। यथा—बाह्यकोश यदि नलिकाकी तरह नीचेसे ऊपरतक एक चौड़ाईका हो तो **नलिकाकार**[11]; यदि बाह्यकोशका एक दल सर्पकी फणके आकारका हो और इतना बड़ा हो कि पुष्पके शेष भाग उसके नीचे पड़ जायँ तो **फणाकार**[12]; यदि छोटी घंटीके आकारका हो तो **घण्टिकाकार**[13]; यदि नीचे कम चौड़ा और ऊपर क्रमशः अधिक चौड़ा होता गया हो तो **गलन्तिकाकार**[14]; और यदि बाह्यकोशकी नलिका नीचे चौड़े पेटवाली होकर लगभग गोल हो गई हो

---

(१) Calyx–कॅलिक्स्। (२) Sepals–सेपल्स्। (३) Polysepalous–पोली सेपल्स्। (४) Gamosepalous–गेमोसेपलस्। (५) Teeth, Lobes, Segments–टीथ्, लोब्स् अथवा सेग्मेन्ट्स्। (६) Caducous–कॅड्युकस्। (७) Deciduous–डेसिड्युअस्। (८) Persistent–पर्सिस्टन्ट्। (९) Regular–रेग्युलर्। (१०) Irregular–इर्रेग्युलर्। (११) Tubular–ट्युब्युलर। (१२) Hooded–हुडेड्। (१३) Campanulate–कॅम्पेन्युलेट्। (१४) Funnel-shaped–फनल्–शेप्ड्।

और सिरेकी ओर सँकड़ी होकर पुनः थोड़ी विस्तृत होकर सुराहीके जैसी दीखती हो तो उसको **सुराहीसदृश**[1] ( पुष्पबाह्यकोश ) कहते हैं । बहुतसे पुष्पोंमें बाह्यकोशके अतिरिक्त एक और दलचक्र होता है उसको **उपबाह्यकोश** कहते हैं ।

**पुष्पाभ्यन्तरकोश**—पुष्पमें बाह्यकोशके भीतर जो दूसरा कोश या पुट होता है उसको **पुष्पाभ्यन्तरकोश, आभ्यन्तरकोश** या **आभ्यन्तरपुट** कहते हैं । कई पुष्प ऐसे होते हैं जिनमें बाह्य और आभ्यन्तर दोनों कोश एक दूसरेसे, अलग नहीं किये जा सकते, दोनों रंग-रूपमें समान होनेसे मानो एक ही हों ऐसे प्रतीत होते हैं, ऐसी अवस्थामें उसे **बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश**[2] कहते हैं । आभ्यन्तरकोश अनेक पत्तियोंसे बनता है; इन पत्तियोंको **आभ्यन्तरकोशके दल**[3]**, पँखड़ी** या **पखड़ी** कहते हैं । ये पँखडियाँ सफेद या नाना रंगकी तथा बाह्यकोशके दलोंकी अपेक्षया कोमल और प्रायः सुगन्धयुक्त होती हैं । पँखडियोंका प्रधान कार्य गर्भाधानके लिये अपने सुंदर रंग और सुगन्ध द्वारा भ्रमर–पतंग आदिको आकर्षित करना है । इसलिये गर्भाधानके बाद प्रायः वे सूख जाती हैं । ये कलिकावस्थामें पुंकेशर और स्त्रीकेशरको आच्छादित करके उनका रक्षण भी करती हैं । पुंकेशरके चारों ओर आभ्यन्तरकोशके दलोंका जो चक्र होता है उसको **दलचक्र** कहते हैं । जिस आभ्यन्तरकोशमें इकहरा दलचक्र हो उसको **एकदलचक्र,** जिसमें दोहरा दलचक्र हो उसको **द्विदलचक्र** और जिसमें दोसे अधिक दलचक्र हों उसको **बहुदलचक्र ( आभ्यन्तरकोश )** कहते हैं ।

आभ्यन्तरकोशकी रचना और आकृति प्रायः बाह्यकोशके जैसी ही होती है । अतः विशेषणरूप जो पारिभाषिक संज्ञायें बाह्यकोशके लिये लिखी गई हैं वे आभ्यन्तर कोशके लिये भी यथासंभव प्रयुक्त होती हैं । जब उनको आभ्यन्तरकोश या उसके दलोंके लिये प्रयुक्त करना हो तब उन संज्ञाओंके आगे **आभ्यन्तरकोश** या **आभ्यन्तरकोशके दल** इन विशेष्य शब्दोंका प्रयोग करना चाहिये ।

पुष्पके सन्तानोत्पादक अवयव—

मनुष्य आदि प्राणियोंमें जैसे सन्तानोत्पादनके लिये पुरुषमें अण्ड और शिश्न ये पुंजननेन्द्रियाँ तथा स्त्रियोंमें गर्भाशय, अन्तःफल और योनि ये स्त्रीजननेन्द्रियाँ होती हैं इसीप्रकार उद्भिज्जोंमें भी परागकोशसहित पुंकेशर **पुंजननेन्द्रिय** और बीजाणु, गर्भाशय, परागवाहिनी तथा योनिसमेत स्त्रीकेशर ये **स्त्रीजननेन्द्रियें** होती हैं । पहले पुंजननेन्द्रिय–पुंकेशर और पीछे स्त्रीजननेन्द्रिय–स्त्रीकेशर-का वर्णन किया जाता है ।

---

(१) Urceolate-अर्सिओलेट् । (२) Perianth-पेरिॲन्थ् । (३) Petals-पेटल्स् ।

पुंकेशर—

पुष्पमें आभ्यन्तरकोशके भीतर **पुंकेशर**[1] होते हैं। पुंकेशरके दो मुख्य अवयव हैं;—(१) **केशरसूत्र**[2] और (२) **परागकोश**[3]। पुंकेशरमें परागकोशके नीचे जो तन्तुसदृश भाग होता है उसको **केशरसूत्र** कहते हैं। पुंकेशरमें यदि केशरसूत्र हो तो उसको **ससूत्र** और यदि केशरसूत्र न हो तो उसको **असूत्र पुंकेशर** कहते हैं। केशरसूत्रके ऊपर जो कोशसदृश भाग होता है उसको **परागकोश** या **पुंकेशरमणि** कहते हैं। परागकोशके अन्दर जो सूक्ष्म रजःकण होते हैं उनको **पराग**[4] या **पुष्परज** कहते हैं। परागकोशके अन्दर पराग प्रायः धूलके छोटे छोटे कणोंके रूपमें पाया जाता है। परन्तु कभी कभी पराग मोम जैसा नरम भी होता है। उनको **सिक्थसदृश** (पराग) कहते हैं। परागकण प्रायः अलग रहते हैं, परन्तु कहीं कहीं आपसमें मिलकर पिण्ड जैसे बन जाते हैं, उन्हें **परागपिण्ड**[5] कहते हैं। पराग पुष्पमें सन्तानोत्पादनके कार्यमें पुंबीज( वीर्य )का काम करता है। जैसे मनुष्यके अण्डकोशमें दो अण्ड होते हैं वैसे परागकोशमें प्रायः दो **थैलियाँ**[6] (प्रसेव) होती हैं। इन थैलियोंमें प्रायः पीले रंगका पराग बनता है। ये दो थैलियाँ कलिकावस्थामें जुड़ी हुई होती हैं। उनके संयोगस्थानपर एक पड़दा (**संयोजक**[7]) रहता है। परागकण जब परिपक्व होते हैं और पुष्प खिलता है तब परागकोश फटकर पराग बाहर आता है। इस प्रकार परागकोशके फटनेको **परागकोशस्फुटन**[8] कहते हैं। परागकोश यदि अन्दरकी तरफ स्त्रीकेशरकी ओर फटे तो उसको **अन्तःस्फुटन**[9] और उसकी विरुद्ध दिशामें बाहरकी ओर फटे तो उसको **बहिःस्फुटन**[10] कहते हैं। यदि पुंकेशरमें परागकोश न हो या होनेपर भी उसमें पराग उत्पन्न न होता हो तो उसको **षण्ढपुंकेशर**[11] कहते हैं। पुंकेशरोंकी संख्या निश्चित नहीं होती। अदरखमें पुंकेशर १, जाईमें २, गेहूँमें ३, मरोडफलीमें ४, धतूरेमें ५, चावलमें ६, और किसी किसी पुष्पमें इससे अधिक भी होते हैं। तुलसीके वर्गके फूलोंमें प्रायः चार पुंकेशर दो जोड़ियोंमें होते हैं। इनमें एक जोड़ी बड़ी और दूसरी छोटी होती है। ऐसी जोड़ीको **विषमयुग्म**[12] कहते हैं। पुंकेशर प्रायः अलग अलग रहते हैं, पन्तु कभी कभी वे आपसमें मिलकर **गुच्छाकार** हो जाते हैं।

---

(१) Stamens–स्टेमन्स्। (२) Filament–फिलामेन्ट्। (३) Anther–ॲन्थर्। (४) Pollen-grains-पोलन् ग्रेन्स्। (५) Pollinium–पोलिनिअम्। (६) Cells–सेल्स्। (७) Connective–कनेक्टिव्। (८) Dehiscence of Anthers–डिहीसन्स ओफ् ॲन्थर्स्। (९) Introrse–इन्ट्रोर्स। (१०) Extrorse–एक्स्ट्रोर्स। (११) Staminode–स्टॅमिनोड्। (१२) Didynamous–डाइडेनेमस्।

**स्त्रीकेशर—**

पुष्पके चार अवयवोंमेंसे मध्यवर्ती अवयवको **स्त्रीकेशर**[1] कहते हैं । स्त्रीकेशर आकारमें सुराही जैसा होता है । जैसे सुराही नीचे चौड़ी, मध्यमें सँकडी होती हुई और सिरेपर फिर कुछ चौड़ी होती है, स्त्रीकेशर भी वैसा ही होता है । स्त्रीकेशरके तीन विभाग होते हैं;—( १ ) गर्भाशय[2], ( २ ) **परागवाहिनी**[3] या **स्त्रीकेशर-नलिका** और ( ३ ) **परागवाहिनीमुख**[4] । स्त्रीकेशरके नीचेके फूले हुऐ चौड़े पोले भागको **गर्भाशय** कहते हैं । गर्भाशयमें एक या अधिक खाने या अवकाश होते है, इनको **बीजकोश**[5] कहते हैं । प्रत्येक बीजकोशमें एक या अधिक **बीजाणु** ( **स्त्रीबीज**[6] ) होते हैं । गर्भाशयके अन्दर जिस भागपर स्त्रीबीज संसक्त ( लगे हुए ) होते हैं और जिसके द्वारा बीजको पोषक पदार्थ मिलता है उसको **उल्ब**[7] कहते हैं । जिस सूत्रसदृश भागद्वारा स्त्रीबीज उल्बसे चिपके हुए होते हैं उसको **बीजनाल**[8] कहते हैं । यदि गर्भाशयमें एक बीजकोश हो तो उसको **एककोश**[9] और दो या उससे अधिक बीजकोश हों तो उसको **बहुकोश**[10] कहते हैं । स्त्रीकेशर एक[11] या अनेक[12] हो सकते हैं । अनेक होनेपर यदि बीजकोश एक दूसरेके साथ थोड़े बहुत जुड़े हुए हों तो उसको **संयुक्त**[13] और यदि एक दूसरेसे अलग हों तो उसको **असंयुक्त**[14] स्त्रीकेशर कहते हैं । गर्भाशयके ऊपर जो नली होती है उसको **परागवाहिनी** या **स्त्रीकेशरनलिका** कहते हैं । परागवाहिनीके सिरेपर जो सच्छिद्र फूला हुआ भाग होता है उसको **परागवाहिनीमुख** या **योनि** कहते हैं । योनि विभक्त, गोल या पंख जैसी होती है । जिन पुष्पोंमें वायुद्वारा पराग आकर गर्भाधान होता है उनकी योनि गद्दीसरीखी होती है और जिनमें भ्रमर आदि जन्तुओं द्वारा गर्भाधान होता उनकी योनि छोटे बिन्दुसरीखी होती है । गर्भाशयमें जितने खाने ( बीजकोश ) होते हैं योनिपर प्रायः उतने ही कोण दिखाई देते हैं । हुलहुलके फूलमें योनि सादी ( कोण-

---

(१) Pistil–पिस्टिल् । (२) Ovary–ओवरी । (३) Style–स्टाइल । (४) Stigma–स्टिग्मा । (५) Loculus–लोक्युलस् । (६) Ovules–ओव्युल्स् । (७) Placenta–प्लेसेन्टा । (८) Funicle–फ्युनिकल । (९) Unilocular–युनिलोक्युलर् । (१०) Polylocular–पोलिलोक्युलर् । जब संयुक्त गर्भाशय ( Compound Ovary–कम्पाउन्ड् ओवरी ) के भीतर रहे हुए बीजाणुओंके बीचमें पड़दा नहीं होता या गर्भाशयके भीतर एक पोल दिखनेके बदले अनेक पोल दिखे इस प्रकार ये पड़दे मध्यमें जुड़े हुए न हों तब उसको **एककोश** कहते हैं । परन्तु जब दो या अधिक पोल स्पष्टतया दिखे इस प्रकार गर्भाशयकी पोलके बीचमें पड़दे रहे हुए हों तब उसको **बहुकोश** कहते हैं । (११) Monocarpellary-मोनोकार्पेलरी । (१२) Polycarpellary-पोलिकार्पेलरी । (१३) Syncarpous–सिन्कार्पस । (१४) Apocarpous–ॲपोकार्पस ।

रहित ) होती है, क्योंकि उसके गर्भाशयमें एक ही बीजकोश होता है। गोखरूके परागवाहिनीके मुखपर पाँच कोण होते है, क्योंकि उसके गर्भाशयमें पाँच खाने होते हैं। जब गर्भाशय वृन्ताग्र( पुष्पासन )के ऊपर हो और बाह्यकोश, आभ्यन्तरकोश तथा पुंकेशर नीचेकी बाजू किनारेपर जुड़े हों ( जैसे बेंगनके फूलमें ) तो उस पुष्पको **ऊर्ध्वस्थगर्भाशय**[1] और **अधः**[2]**स्थकोश** कहते हैं। जब पुष्पासन प्याले जैसा नतोदर हो, गर्भाशय पुष्पासनपर मध्यमें अधिष्ठित हो और शेष भाग ( बाह्यकोश, आभ्यन्तरकोश और पुंकेशर ) पुष्पासनके किनारेपर जुड़े हों ( जैसे गुलाबके पुष्पमें ) तो उस पुष्पको **परिस्थकोश**[3] कहते हैं। यहां भी गर्भाशय ऊर्ध्वस्थ होता है। जब पुष्पासनके किनारे बढ़कर उसे केवल गहरे प्यालेके आकारका नहीं बनाते बल्कि बढ़ते बढ़ते ऊपर जाकर मिल जाते हैं जिससे गर्भाशय पूर्णतः पुष्पासनमें बन्द हो जाता है और शेष तीनों भाग गर्भाशयके सिरेस निकले हुए मालूम होते हैं ( जैसे अनारके फूलमें ) तब उस पुष्पको **ऊर्ध्वस्थ**[4]**कोश** और **अधःस्थ गर्भाशय**[5] कहते हैं।

पुष्पमें जातिभेद—

जिस पुष्पमें केवल पुंकेशर हों परन्तु स्त्रीकेशर न हों, उसे **पुंपुष्प**[6] **( नरफूल )** कहते हैं। जिस पुष्पमें केवल स्त्रीकेशर हों परन्तु पुंकेशर न हों उसको **स्त्रीपुष्प**[7] **( मादा फूल )** कहते हैं। यदि एक ही पुष्पमें पुंकेशर और स्त्रीकेशर दोनों हों तो उसको **उभयलिङ्ग**[8] कहते हैं। पुष्प प्रायः उभयलिङ्ग होते हैं। जिस पुष्पमें पुंकेशर और स्त्रीकेशर दोनों न हों उसको **नपुंसक**[9] कहते हैं। जब किसी कारण-वश पुष्पमें पुंकेशर और स्त्रीकेशर दोनों हों परन्तु वे फलोत्पादनमें समर्थ न हों तो उसको **वन्ध्य पुष्प** कहते हैं। यदि किसी उद्भिज्जपर केवल नर या मादा फूल लगते हों तो उसको **एकलिङ्ग**[10] **पुष्प** कहते हैं। यदि नर और मादा दोनों प्रकारके पुष्प एक ही उद्भिज्जपर अलग अलग लगते हों तो उस उद्भिजको **पृथगुभयलिङ्ग**[11] **पुष्प** कहते हैं।

उद्भिज्जोंमें सन्तानोत्पत्ति—

प्रत्येक जीवधारी—प्राणी या उद्भिज्ज-के जीवनका प्रधान उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति करके अपने वंशकी परंपरा चालू रखना होता है। उद्भिज्जोंमें सन्तानोत्पत्ति दो

---

(१) Superior Ovary–सुपीरिअर् ओवरी। (२) Hypogynous–हाइपोजिनस्। (३) Perigynous–पेरिजिनस्। (४) Epigynous–एपिजिनस्। (५) Inferior Ouary–इन्फीरिअर् ओवरी। (६) Male Flower–मेल फ्लावर्। (७) Female Flower–फीमेल फ्लावर्। (८) Bisexual–बाइसेक्सयुअल्। (९) Neuter–न्युटर्। (१०) Unisexual–यूनिसेक्सयूअल्। (११) Monœcious–मोनिसिअस्।

प्रकारसे होती है—(१) लैङ्गिकी[1] और (२) अलैङ्गिकी[2] । दोनोंका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है ।

लैङ्गिकी सन्तानोत्पत्ति—

गर्भाशयमें जब बीजाणु ( स्त्रीबीज ) परिपक्व अर्थात् गर्भाधानके योग्य होते हैं तब योनिसे मधुर रसवाला चिकना द्रव पदार्थ ( **रज** ) झरने लगता है । इस चिकने रसपर जब पराग पड़ता है तो वह इस रसके साथ परागवाहिनीद्वारा गर्भाशयमें पँहुचकर स्त्रीबीजसे मिलता है । इस प्रकार उद्भिज्जोंमें गर्भाधानक्रिया संपन्न होती है । गर्भाधानक्रिया संपन्न होने पर गर्भ बढ़ने लगता है । गर्भाधान होनेके कुछ समय बाद पहले बाह्यकोश, आभ्यन्तरकोश और पुंकेशर सूखकर गिर जाते हैं तथा पीछे योनि और परागवाहिनी भी गिर जाती है और गर्भाशयसे फल बनता है तथा बीजाणुसे बीज बनते हैं । सपुष्प उद्भिज्जोंमें प्रायः इस प्रकारसे सन्तानोत्पत्ति होती है । इस प्रकारकी सन्तानोत्पत्ति पुंबीज ( पराग ) और स्त्रीबीजके संयोगसे होती है, इसलिये इसको **लैङ्गिकी** कहते हैं ।

अलैङ्गिकी सन्तानोत्पत्ति—

काण्डके प्रकरणमें कहा गया है कि—काण्डके सिरे ( अग्रभाग ), पत्रकोण, मूल, कन्द, पत्र आदिसे जो नये पौधे उत्पन्न करनेवाले अङ्कुर निकलते हैं उनको **अक्षि** ( **आँख** ) कहते हैं । काण्डका वह भाग जिसपर एक या अनेक आँखें लगी हों उसको जमीनमें बोनेपर या जमीनमें स्थित जिस अधोगामी काण्ड( कन्द )पर आँखें निकली हों, उनको अनुकूल अवस्था मिलनेपर इन आँखोंके नीचेसे जड़ें निकलकर जमीनमें जाती हैं और ऊपरसे प्राङ्कुर निकल कर जमीनके बाहर बढ़ने लगता है, जो बढ़कर नया पौधा बन जाता है । इस प्रकार केल, वाँस, हल्दी, प्याज, सूरण आदिमें काण्डसे निकली हुई आँखोंसे सन्तानोत्पत्ति होती है । दूर्वा आदिमें काण्डसे जो अवरोहमूल निकलते हैं वे जमीनमें जाकर नया पौधा उत्पन्न करते हैं । पत्थरचूर-जख्मेहयात आदिकी पत्तियोंमें आँखें होती हैं । आँखोंवाली उनकी पत्ती जमीनपर गिरकर जमीनमें घुसनेपर या उसको जमीनमें घुसेड़नेपर उससे तत्सदृश नया पौधा उत्पन्न होता है । हंसराज आदि अपुष्प उद्भिज्जोंकी पत्तियोंमें बीजक[3] होते हैं, उनसे भी इस प्रकार सन्तानोत्पत्ति होती है । इस प्रकारकी सन्तानोत्पत्ति पराग ( पुंबीज ) और बीजाणु ( स्त्रीबीज )के संयोगके विना ही होती है, इसलिये उसको **अलैङ्गिकी सन्तानोत्पत्ति** कहते हैं ।

---

(१) Sexual reproduction-सेक्स्यूअल रीप्रोडक्शन् । (२) Asexual reproduction-ऍसेक्स्यूअल् रीप्रोडक्शन् । (३) Spores-स्पोर्स् ।

# फल और बीज

उद्भिज्जके सन्तानोत्पादक अवयवोंमेंसे पुष्पका वर्णन अगले प्रकरणमें किया गया। है। उद्भिज्जोंमें प्रधान सन्तानोत्पादक अवयव बीज होता है । बीज फलके भीतर रहता है और फल बीजका रक्षण करता है, इसलिये इस प्रकरणमें पहले फलका और पीछे बीजका वर्णन किया जायगा ।

'फल'शब्दकी निरुक्ति—

**'फल'** शब्द 'फल' निष्पत्तौ, इस धातुसे 'फलति निष्पद्यते' इति फलं=जो उद्भिज्ज-जीवनमें अन्तमें उत्पन्न होता है वह **फल** कहलाता है, इस व्युत्पत्तिसे बना है ।

फलके अवयव—

फलमें (१) **वृन्त,** (२) **त्वचा,** (३) **मांस,** (४) **अस्थि** और (५) **बीज** ये पाँच अवयव होते हैं। पुष्पके प्रकरणमें कहा गया है कि पुष्पमें गर्भाधान होनेके बाद बाह्यकोश, आभ्यन्तरकोश और पुंकेशर सूखकर गिर जाते हैं। पुष्पवृन्तके ऊपर केवल स्त्रीकेशर (स्त्रीकेशरके गर्भाशयका भाग) ही बीजके पोषण और रक्षणके लिये शेष रह जाता है। फल बननेपर पुष्पवृन्तको ही **फलवृन्त**[१] नाम दिया जाता है। गर्भाशय परिपक्व होनेपर परिपक्व गर्भाशय[२] (फलकी दीवाल) तीन तहोंमें विभक्त हो जाता है। सबसे ऊपरकी तह जो चर्मवत् होती है उसको **फलत्वचा**[३] कहते हैं। बीचकी मांसल (गूदेदार) तहको **फलमांस**[४] या **मांस** (गूदा) कहते हैं। अन्दरकी कठोर तहको **अस्थि** या **अँष्टि**[५] कहते हैं । आम, जामुन आदि रसाल फलोंमें ये तीनों तहें स्पष्ट देखी जा सकती हैं। फलकी दीवालके भीतर **बीज** होता है। बीजका विशेष विवरण बीजके प्रकरणमें किया जायगा । कच्चे फलको **शलाटु**[६] और सूखे हुए फलको **वान**[७] कहते हैं ।

फलोंका वर्गीकरण—

प्राचीन और अर्वाचीन उद्भिज्जवेत्ताओंने फलोंका भिन्न भिन्न प्रकारसे वर्गीकरण किया है। उनमेंसे मुख्य मुख्य वर्गोंका वर्णन नीचे दिया जाता है।

प्राचीनमतसे फलोंका वर्गीकरण—

प्राचीनोंने सब प्रकारके फलोंका तीन वर्गोंमें समावेश किया है—(१) **शूकवर्ग,** (२) **शिम्बीवर्ग** और (३) **शस्यवर्ग**। जिन फलोंमें बीजकवच और फलत्वचा

---

(१) Carpophore–कार्पोफोर। (२) Peri-carp–पेरिकार्प्। (३) Epicarp–एपिकार्प्। (४) Mesocarp–मेसोकार्प्। (५) Endocarp–एन्डोकार्प्। (६) Raw fruit–रॉ फ्रूट्। (७) Dry fruit–ड्राय् फ्रूट्।

मिलकर एकसे हो गये हों उनको **शूकफल** या **शूकधान्य**[1] कहते हैं; जैसे शालि, गेहूँ, मकई आदि। जो फल नीरस, एकबीज या बहुबीज और प्रायः विदारी (बीज पकनेपर जिनकी त्वचा संधिस्थानपरसे अपने आप फट जाय ऐसे) हों उनको **शिम्बीफल (सेम)**[2] कहते हैं। शिम्बी अविदारी भी होती है, जैसे अमलतास और मूँगफलीकी शिम्बी। इन दोनों वर्गोंसे भिन्न अन्य सब प्रकारके फलोंको प्राचीनोंने **शस्य** या **फल** नाम दिया है।

आधुनिक मतसे 'फल' शब्दकी व्याख्या—

सामान्य बोलचालमें आम, अमरूद, सेव, शहतूत, कटहल, अंजीर, मटरकी सेम आदि जिनको हम **'फल'** कहते हैं, उनके लिये शास्त्रीय परिभाषामें भिन्न भिन्न पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग किया जाता है।

वास्तविक और फलाभास फल—

शास्त्रीय परिभाषामें स्त्रीकेशरके नीचेका गर्भाशय परिपक्व (फलके रूपमें परिणत) हो कर जो फल बनता है उसको **वास्तविक (सच्चा) फल**[3] कहते हैं; जैसे आम, जामुन आदि। कहीं कहीं पुष्पके अन्य अवयव भी गर्भाशयके साथ फल बननेमें सहायता पहुँचाते हैं अर्थात् फलके रूपमें परिणत होते हैं। जैसे सेव और नासपातीमें पुष्पवृन्ताग्र गर्भाशयके चारों ओर बढ़कर मांसल हो जाता है और फलका रूप धारण करता है, भव्य(चालता)में पुष्पबाह्यकोश कायम रहकर मांसल हो जाता है और यह फलका अधिकांश होता है, काजू और भिलावेमें पुष्पवृन्त ही मांसल और फूला हुआ होता है, जो फल जैसा दिखता है और खाया जाता है। इस प्रकारके फलोंको **फलाभास**[4] कहते हैं।

एकाकी, सामूहिक और संयुक्त फल—

फलके मुख्य तीन भेद होते हैं—(१) **एकाकी**, (२) **सामूहिक** और (३) **संयुक्त फल**। जो फल एक ही पुष्पसे (वह पुष्प एककोश हो या अनेककोश हो परन्तु संयुक्तगर्भकोश हो उससे) बनता है उसको **सादा** या **एकाकी**[5] फल कहते हैं; जैसे आम, नारियल, आदि। जो फल असंयुक्तगर्भकोश (पृथग्गर्भकोश) वाले एक ही पुष्पसे बनता है उसको **सामूहिक**[6] **फल** कहते हैं; जैसे कमल, सीताफल (शरीफा) आदि। जो फल पुष्पसमूहसे बनता है उसको **संयुक्त**[7] **फल** कहते हैं; जैसे अंजीर, शहतूत, कटहल, अनन्नास आदि।

---

(१) Caryopsis-केरिओप्सिस्। (२) Legume-लेग्युम्। (३) True fruits-ट्रु फ्रूट्स। (४) Pseudo carp Fales fruits स्यूडोकार्प् या फॉल्स् फ्रूट्स्। (५) Simple fruits-सिम्पल फ्रूट्स। (६) Aggregate fruit-ॲग्रिगेट् फ्रूट। (७) Composite fruit-कॉम्पोझिट् फ्रूट।

रसाल और नीरस फल—

आम, अनार, अंगूर, संतरा आदि फलोंमें पक्वदशामें रसवाला भाग होता है, इस लिये उनको **रसाल**[१] या **मांसल फल** कहते हैं । मटर, चना, मूंगफली आदि फलोंमें पक्वदशामें रसवाला पदार्थ नहीं होता, इसलिये उनको **नीरस**[२] **फल** कहते हैं ।

विदारी और अविदारी फल—

जो फल बीज पकनेपर बीजोंको बाहर निकालनेके लिये अपने आप विदीर्ण होते हैं–फटते हैं, उनको **विदारी**[३] कहते हैं; जैसे मटर कोयलकी सेम आदि । जो फल अपने आप न फटकर पकनेपर सूखकर जमीनपर गिरते हैं उनको **अविदारी**[४] कहते हैं । विदारी फलोंमें विदरण ( फटना ) कई प्रकारसे होता है । मटर, मूंग आदिकी सेम दोनों बाजुओंपर संधिस्थानसे फटती है और बीज बाहर आते हैं । सरसों, राई आदिकी सेम दोनों सन्धियोंपर नीचेसे ऊपरकी ओर फटती है, परन्तु बीज एक पड़देपर चिपके रहते हैं । भिंडीकी फली अनेक सन्धियोंपर फटती है । अफीमके फलमें अग्रभागपर अनेक सूक्ष्म छिद्र होते हैं । कडवी तोरईमें फलके अग्रपर एक बड़ा छिद्र होता है । इस प्रकार कहींसे भी सूखनेपर अपने आप फटनेवाले फलोंको सामान्यतः **विदारी** फल कहते हैं ।

एकबीज, बहुबीज और अबीज फल—

जिन फलोंमें एक ही बीज होता है उनको **एकबीज**[५] कहते हैं; जैसे आम, जामुन आदि । जिनमें एकसे अधिक बीज होते हैं उनको **बहुबीज** कहते हैं; जैसे अमरूद, अनार आदि । जिन फलोंमें बीज न हों उनको **अबीज** कहते हैं; जैसे किशमिश ( बेदाना अंगूर ) ।

फलोंके अन्य प्रकार—

**तूलफल**—आक, रूई, सेमल आदिके फलोंमें रूई होती है, ऐसे फलोंको **तूलफल** कहते हैं ।

अष्ठिल फल[६]—

जिन फलोंमें अष्ठि हो उनको **अष्ठिल** कहते हैं; जैसे आम, नारियल, बादाम आदि ।

**संयुक्त फल**—जब एक फल एक पुष्पसे नहीं किन्तु संपूर्ण पुष्पसमूह-( कुसुमोच्चय )से बनता है अर्थात् संपूर्ण कुसुमोच्चय फलके रूपमें परिणत होता है, उसको **संयुक्त फल** या **संकीर्ण फल** कहते हैं । इसके दो भेद होते हैं

---

(१) Fleshy or succulent-फ्लेशि या सक्युलेन्ट् । (२) Dry fruit-ड्रायफ्रूट् । (३) Dehiscent डिहिसेन्ट् । (४) Indehiscent-इन्डिहिसेन्ट् । (५) Achene-ॲकीन । (६) Drupe-ड्रुप् ।

(१) **गोलाकार** और (२) **शंक्वाकार**। जब वृन्ताग्र (कर्णिका) पोला और गोल बटुएके आकारका होता है और भीतर अनेक छोटे छोटे फल ढके हुए होते हैं तथा कर्णिका बढ़कर और मांसल हो कर फल जैसी मालूम होती है, उसको **गोलाकार[1] संयुक्त फल** कहते हैं। जैसे अंजीर, गूलरके फल आदि। जब एक पुष्पमञ्जरीसे एक मांसल फल बनता है तो उसको **शंक्वाकार[2] संयुक्त** फल कहते हैं। ऐसे फलोंमें गर्भाधानके बाद पुष्पसमूहके सब पुष्प आपसमें तथा पुष्पदण्डके साथ ऐसे मिल जाते हैं कि संपूर्ण पुष्पसमूह एक फल कहा जाने लगता हैं। जैसे अनन्नास, कटहल, शहतूत आदि।

सपक्ष फल—

कई फलोंमें फलकवचमेंसे पाँखें फूटती है। इन पँखोंकी सहायतासे फल हवामें उड़ सकते हैं। ऐसे फलोंको **सपक्ष[3] (पंखवाले) फल** कहते हैं।

---

## बीज[4]

गर्भाधानके बाद बीजाणुसे बीज बनता है यह पहले कहा गया है। बीजके दो भेद होते हैं—(१) **आवृतबीज[5]** और (२) **नग्नबीज**। जो बीज फलसे आवृत (ढके हुए) होते हैं (जैसे आम, मटर, अनार आदिके बीज) उनको **आवृतबीज** और जो फलसे ढके हुए नहीं होते अर्थात् खुले (नग्न) होते हैं उनको **नग्न[6]बीज** कहते हैं। बीजमें **बीजत्वचा** (बीजकवच) और **बीजगर्भ** ये दो मुख्य भाग होते हैं। बीजके बाहर जो आवरण होता है उसको **बीजत्वचा** कहते हैं। धान्यकी त्वचाको **तुष** कहते हैं। बीजकी त्वचा (छिलका) दो स्तरोंसे बनी हुई होती है। बाहरका स्तर मोटा होता है, उसको **बहिस्त्वक्[8]**; और अन्दरका स्तर पतला होता है उसको **अन्तस्त्वक्[9]** कहते हैं। शालि, गेहूँ, मकई आदिमें बीजकी त्वचा और फलकी त्वचा मिलकर एकसी हो जाती है। बीजकी त्वचा कभी रसाल (जैसे अनारके बीजमें), प्रायः नीरस, कभी चिकनी (जैसे कोयलके बीजमें), कभी खर (जैसे चनेके बीजमें), कभी रूई वाली (जैसे सेमल, कपास आदिमें), इत्यादि विविध प्रकारकी होती है। चने आदिके बीजपर कुछ उभरा भाग होता है, उसको **नाभि[10]** कहते हैं। इस नाभिसे बीजनाल[1] निकलकर उल्बसे संसक्त होता है। बीजनाल गिरनेपर

---

(१) Syconus-सायकोनस्। (२) Sorosis-सोरोसिस्। (३) Samara-समारा। (४) Seed-सीड्। (५) Angio spermous-ॲन्जिओस्पर्मस्। (६) Gymnospermous-जिम्नोस्पर्मस्। (७) Embryo-एम्ब्रिओ। (८) Testa-टेस्टा। (९) Tegmen-टेग्मेन्। (१०) Hilum-हिलम्।

नाभिस्थानपर सूक्ष्म छिद्र रह जाता है, उसको बीजरन्ध्र[2] कहते हैं । बीजको जलमें भिगोकर कुछ समय रखनेपर वह फूल जाता है । फूले हुए बीजको दबानेसे इस बीजरन्ध्रसे पानीकी बूँद बाहर आती है । बीजगर्भमें एक या दो दलें (दाल)[3], प्ररोह[4] और आदिमूल (बुध्न) होता है ।[5]

---

प्राचीनमतेनोद्भिज्जानां भेदाः—

**द्रव्यं यदङ्कुरजमाहुरार्यास्तत्ते पुनः पञ्चविधं वदन्ति । वनस्पतिश्चापि स एव वानस्पत्यः क्षुपो वीरुदथौषधी च ॥ ज्ञेयः सोऽत्र वनस्पतिः फलति[6] यः पुष्पैर्विना, तैः फलाद्वानस्पत्य इति स्मृतस्तनुरसौ ह्रस्वः क्षुपः कथ्यते । या वल्ल्यगमादिसंश्रयवशादेषा तु वल्ली स्मृता, शाल्यादिः पुनरोषधिः फलपरीपाकावसाना मता ॥**

जो उद्भिज्ज पुष्पके विना उत्पन्न होता है उसको **वनस्पति,** जो पुष्पसे उत्पन्न होता है उसको **वानस्पत्य,** जो वृक्ष छोटा हो उसको **क्षुप,** जो वृक्ष आदि आश्रयको लपेटती है उसको **वल्ली** और फल पकनेपर जिसका नाश होता है उसको **ओषधि** कहते हैं (रा. नि.) ।

उद्भिज्जानां पाञ्चभौतिकत्वम्—

**यत् काठिन्यं सा क्षितिर्यो द्रवोऽम्भस्तेजस्तूष्मा वर्धते यत् स वातः । यच्छिद्रं तन्नभः स्थावराणामित्येतेषां पञ्चभूतात्मकत्वम् ॥ (रा. नि. १ वर्गः) ।**

उद्भिज्जोंमें जो काठिन्य है वह पृथ्वीका, द्रवत्व जलका, ऊष्मा और रूप तेजका, बढ़ना वायुका और छिद्र आकाशका अंश (कार्य) है, इसलिये सब उद्भिज्ज पाञ्चभौतिक हैं ।

प्राचीनकोशप्रोक्ता उद्भिजाङ्गनां पर्यायाः—

**वृक्षनाम**—**कुजः क्षितिरुहोऽङ्घ्रिपः शिखरिपादपौ विष्टरः कुटस्तरुरनोकहः कुरुहभूरुहद्रुद्रुमाः । अगो नगवनस्पती विटपिशाखिभूजागमा महीजधरणीरुहक्षितिजवृक्षशा(सा)लाह्वयाः ॥ फलितवृक्षनाम—फलितः फलवानेष फलिनश्च फली तथा । फलेग्रहिरवन्ध्यो यः स्यादमोघफलोदयः ॥ अफलवृक्षनाम—अथावकेशी वन्ध्योऽयं विफलो निष्फलोऽफलः । मूलनाम—मूलं तु नेत्रं पादः स्यादङ्घ्रिश्चरणमित्यपि ॥ अङ्कुरनाम—उद्भेदस्त्वङ्कुरो ज्ञेयः प्ररोहोऽङ्कूर इत्यपि । अर्वाग्भागोऽस्य बुध्नः स्यान्नितम्बः स पृथुर्भवेत् । प्रकाण्डनाम-आस्कन्धा(त्) तु प्रकाण्डः स्यात् काण्डो दण्डश्च कथ्यते ॥ स्कन्धः प्रघाणो; शाखानाम—ऽस्य**

---

(१) Funicle-फ्युनिकल । (२) Micropyle-माइक्रोपाइल । (३) Cotyledon-कॉटिलिडन् । (४) Plumule-प्ल्युम्युल । (५) Radical-रॅडिकल । (६) फलति निष्पद्यते ।

लतास्तु शाखाः, शाखोत्थशाखास्तु भवन्ति शालाः । **जटानाम**—जटाः शिखास्तस्य, किलावरोहः शाखाशिफा; **सारनाम**—मज्जनि सारमाहुः ॥ **कोटरत्वङ्नाम**—निष्कुटं कोटरं प्रोक्तं, त्वचि वल्कं तु वल्कलम् । **वल्लरीनाम**—नवपुष्पाढ्यशाखाग्रे वल्लरी मञ्जरी तथा ॥ **पर्णनाम**—पर्णं पत्रं दलं बर्हं पलाशं छदनं छदः । **पल्लवनाम**—स्यात् पल्लवः किश(स)लयः प्रवालः पल्लवं नवम् ॥ **विटप-शिखरनाम**—विस्तारो विटपः प्रोक्तः, प्राग्रं तु शिखरं शिरः । **पर्णसिरा-वृन्तनाम**—माढिः पर्णसिरा ज्ञेया, वृन्तं प्रसवबन्धनम् ॥ **कलिकानाम**—कोरक-मुकुल-क्षोरक-जालक-कलिकास्तु कुड्मले कथिताः । **पुष्पनाम**—कुसुमं सुमनः प्रसूनप्रसवसुमं सून-फुल्ल-पुष्पं स्यात् ॥ **मकरन्दनाम**—मकरन्दो मरन्दश्च मधु पुष्परसाह्वयम् । **परागनाम**—पौष्पं रजः परागः स्यान्मधूली धूलिका च सा ॥ **गुच्छनाम**—गुच्छो गुलुञ्छः स्तबको गुच्छकः कुसुमोच्चयः । ××× । **फलनाम**—आहुस्तरूणां फलमत्र सस्यं तदाममुक्तं हि शलाटुसंज्ञम् । शुष्कं तु वानं प्रवदन्ति; **गुल्मनाम**—गुल्मस्तम्बौ प्रकाण्डै रहिते महीजे ॥ **लतानाम**—उलपं गुल्मिनी वीरुल्लता वल्ली प्रतानिनी । व्रतती व्रततिश्चैषा विस्तीर्णा वीरुदुच्यते (रा. नि. २ वर्ग) ॥ **वृक्षो** द्रुमो भूरुहो द्रुर्विटपी विष्टरोऽङ्घ्रिपः । अनोकहो नगो भूरुट् तरुः शाखी कुठः कुजः ॥ वसुः करालिकोऽगच्छो ज(जी)र्णो रूक्षः पुलाक्यपि । **वानस्पत्यः** पुष्पफली, फली त्वेव **वनस्पतिः** ॥—**ओषधिः** फलपाकान्ता, ह्रस्वशाखाशिफः **क्षुपः** । अप्रकाण्डे स्तम्बगुल्मावुलपस्तु प्रतानिनी ॥ गुल्मिन्यपि च, **वल्ली** तु व्रततिर्व्रतती लता । वन्ध्यो वृक्षोऽवकेशी स्यादवन्ध्यस्तु **फलेग्रहिः** ॥ **पुष्पितः** स्यात् कुसुमितः, फलितः फलिनः फली । **फुल्ले** प्रफुल्लसंफुल्लव्याकोचविकचस्फुटाः ॥ उत्फुल्लोन्मिषितोन्निद्रा उद्बुद्धोन्मीलितस्मिताः । फलमामं **शलाटुः** स्याद्वानं शुष्कतरं फलम् ॥ त्रिषु वन्ध्यादयोऽथ स्यादङ्कुरोऽङ्कूरमस्त्रियौ । **प्ररोहश्चाथ** वंशस्याद्योऽङ्कुरः पर्वसूत्थितः ॥ परुः पर्व पुमान् ग्रन्थिर्निर्यासः खपुरो लशः । **शिफा** जटा, **ऽवरोहस्तु** सा शाखाजा वटादिषु ॥ **मूलं** बुध्नोऽङ्घ्रिनामा स्यादास्कन्धात् स्यात् **प्रकाण्डकम्** । स दारुमात्रः **स्थाणवस्त्री**, **दारु** काष्ठमथ त्रयी ॥ छल्ली **त्वक्** स्त्री त्वचा न क्ली वल्कलं चोलकोऽस्त्रियौ । चोचं वल्कं च, **सारस्तु** **मज्जा**, **स्त्रावः** किनाटकम् ॥ निष्कुटः **कोटरो** न स्त्री, **विदलं** दारु पाटितम् । **स्कन्धः** प्रघाणोऽथ शिखा शाखाऽथ **शिखरं** शिरः ॥ स्कन्धशाखा तु **शाला** स्यात्, **प्रवालः** पल्लवाङ्कुरः । विस्तारो **विटपस्तम्ब**, **उच्छ्रायस्तु** समुन्नतिः ॥ **छदस्तु** छदनं **पत्रं** पलाशं पतनं दलम् । पर्णं बर्हं पतत्रं च, त्रयी **शुङ्गाऽस्य** कोशिका ॥ **पल्लवोऽस्त्री** किसलयं किसलोऽपि नवे दले । पत्रमध्यसिरा **माढिः**, **पुष्पोऽस्त्री** कुसुमं सुमम् ॥ मणीवकं प्रसूनं च सूनं सुमनसः स्त्रियः । **मकरन्दो** मरन्दोऽस्य

रसे, जालं तु जालकम् ॥ कलिका कोरकश्चाथ कुड्मलो मुकुलोऽस्त्रियौ। गुच्छो गुलुञ्छस्तबको, मञ्जर्यां मञ्जरिवल्लरी ॥ प्रसवः पिप्पलं सस्यं फलं, वृन्तं तु बन्धनम्। (वैजन्तीकोश) ॥ वृक्षोऽगः शिखरी च शाखिफलदावद्रिर्हरिद्रुर्द्रुमो जीर्णो द्रुर्विटपी कुटः क्षितिरुहः कारस्करो विष्टरः। नन्द्यावर्तकरालिकौ तरुवसू पर्णी पुलाक्यङ्घ्रिपः सालाऽनोकहगच्छपादपनगा रूक्षागमौ पुष्पदः ॥ पुष्पैस्तु फलवान् वृक्षो वानस्पत्यो, विना तु तैः। फलवान् वनस्पतिः स्यात्, फलावन्ध्यः फलेग्रहिः ॥ फलवन्ध्यस्त्ववकेशी, फलवान् फलिनः फली। ओषधिः स्यादौषधिश्च फलपाकावसानिका ॥ क्षुपो ह्रस्वशिफाशाखः, प्रततिर्व्रततिर्लता। वल्लयस्यां तु प्रतानिन्यां गुल्मिन्युलपवीरुधः ॥ स्यात् प्ररोहोऽङ्कुरोऽङ्कूरो रोहश्च, स तु पर्वणः। समुत्थितः स्याद्वलिशं, शिखाशाखालताः समाः ॥ साला शाला स्कन्धशाखा, स्कन्धः प्रकाण्डमस्तकम्। मूलाच्छाखावधिर्गण्डिः प्रकाण्डोऽथ, जटा शिफा ॥ प्रकाण्डरहिते स्तम्बो विटपो गुल्म इत्यपि। शिरोनामाऽग्रं शिखरं, मूलं बुध्नोऽङ्घ्रिनाम च ॥ सारो मज्जि, त्वचि छल्ली चोचं वल्कं च वल्कलम्। स्थाणौ तु ध्रुवकः शङ्कुः, काष्ठे दलिकदारुणी ॥ निष्कुहः कोटरो, मञ्जा मञ्जरिर्वल्लरिश्च सा। पत्रं पलाशं छदनं बर्हं पर्णं छदं दलम् ॥ नवे तस्मिन् किसलयं किसलं पल्लवोऽत्र तु। नवे प्रवालोऽस्य कोशी शुङ्गा, माढिर्दलस्नसा ॥ विस्तारविटपौ तुल्यौ, प्रसूनं कुसुमं सुमम्। पुष्पं सूनं सुमनसः प्रसवश्च मणीवकम् ॥ जालकक्षारकौ तुल्यौ, कलिकायां तु कोरकः। कुड्मले मुकुलं, गुञ्छे गुच्छस्तबकगुत्सकाः ॥ गुलुञ्छोऽथ, रजः पौष्पं परागोऽथ रसं मधु। मकरन्दो मरन्दश्च, वृन्तं प्रसवबन्धनम् ॥ प्रबुद्धोज्जृम्भफुल्लानि व्याकोशं विकचं स्मितम्। उन्मिषितं विकसितं दलितं स्फुटितं स्फुटम् ॥ प्रफुल्लोत्फुल्लसंफुल्लोच्छ्वसितानि विजृम्भितम्। स्मेरं विनिद्रमुन्निद्रविमुद्रहसितानि च ॥ संकुचितं तु निद्राणं मीलितं मुद्रितं च तत्। फलं तु सस्यं, तच्छुष्कं वानमामं शलाटु च ॥ ग्रन्थिः पर्व परुर्बीजकोशी शिम्बा शमी शिमिः। शिम्बिश्च (अभिधानचिन्तामणौ भूमिकाण्डः) ॥ वृक्षो महीरुहः शाखी विटपी पादपस्तरुः। अनोकहः कुटः सा(शा)लः पलाशी द्रुद्रुमागमाः ॥ वानस्पत्यः फलैः पुष्पात्, तैरपुष्पाद्वनस्पतिः। ओषधिः फलपाकान्ता, स्यादवन्ध्यः फलेग्रहिः ॥ वन्ध्योऽफलोऽवकेशी च, फलवान् फलिनः फली। प्रफुल्लोत्फुल्लसंफुल्लव्याकोशविकचस्फुटाः ॥ फुल्लश्चैते विकसिते स्युरवन्ध्यादयस्त्रिषु। स्थाणुर्वा ना ध्रुवः शङ्कुर्ह्रस्वशाखाशिफः क्षुपः ॥ अप्रकाण्डे स्तम्बगुल्मौ, वल्ली तु व्रततिर्लता ॥ लता प्रतानिनी वीरुद्गुल्मिन्युलप इत्यपि। नगाद्यारोह उच्छ्राय उत्सेधश्चोच्छ्रयश्च सः ॥ अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधिस्तरोः। समे शाखालते, स्कन्धशाखाशाले, शिफाजटे ॥ शाखाशिफाऽवरोहः

स्यान्मूलाच्चाग्रं गता लता । शिरोऽग्रं शिखरं वा ना, मूलं बुध्नोऽङ्घ्रिनामकः ॥ सारो मज्जा नरि, त्वक् स्त्री वल्कं वल्कलमस्त्रियाम् । काष्ठं दार्विन्धनं त्वेध इध्ममेधः समित् स्त्रियाम् । निष्कुहः कोटरं वा ना, वल्लरिर्मञ्जरिः स्त्रियौ ॥ पत्रं पलाशं छदनं दलं पर्णं छदः पुमान् । पल्लवोऽस्त्री किसलयं, विस्तारो विटपोऽस्त्रियाम् ॥ वृक्षादीनां फलं सस्यं, वृन्तं प्रसवबन्धनम् । आमे फले शलाटुः स्याच्छुष्के वानमुभे त्रिषु ॥ क्षारको जालकं क्लीबे, कलिका कोरकः पुमान् । स्याद्गुच्छकस्तु स्तवकः, कुड्मल(द्म)लो मुकुलोऽस्त्रियाम् ॥ स्त्रियः सुमनसः पुष्पं प्रसूनं कुसुमं सुमम् । मकरन्दः पुष्परसः, परागः सुमनोरजः ॥ किंशारुः सस्यशूकं स्यात्, कणिशं सस्यमञ्जरी । धान्यं व्रीहिः स्तम्बकरिः, स्तम्बो गुच्छस्तृणादिनः ॥ नाडी नालं च काण्डोऽस्य, पलालोऽस्त्री स निष्फलः । कडङ्गरो बुसं क्लीबे, धान्यत्वचि तुषः पुमान् । शूकोऽस्त्री सूक्ष्मतीक्ष्णाग्रे, शमी शिम्बा त्रिषूत्तरे । बीजकोशे वराटः स्यात्, किञ्जल्कः केशरः पुमान् । ( अमरकोश, भूम्यादिकाण्ड ) ॥

---

१ 'वृश्च्यते छिद्यते' इति वृक्षः । 'मह्यां रोहति' इति **महीरुहः**, 'शाखा अस्यास्ति' इति **शाखी** । 'विटपः शाखाविस्तारोऽस्त्यस्य' इति **विटपी** । 'पादैः मूलैः पिबति' इति **पादपः** । 'तरति, तरन्त्यनेन वा' इति **तरुः** । 'अनसः शकटस्याकं गतिं हन्ति' इति **अनोकहः** । 'कुटति' ( 'कुट' कौटिल्ये ) इति **कुटः** । 'पलाशानि पत्राणि सन्त्यस्य' इति **पलाशी** । 'द्रवत्यूर्ध्वं' इति **द्रुः** । 'द्रुः शाखा अस्त्यस्य' इति **द्रुमः** । त्रयोदश **वृक्षस्य** । 'ओषः प्लोषो दीप्तिर्वा धीयतेऽत्र' इति **ओषधिः**; एकं **फलपाकान्तस्य व्रीहियवादेः** । 'फलानि गृह्णाति' इति फलेग्रहिः । **फलसमये फलग्राहकस्य** । 'बध्नाति फलं' इति **बन्ध्यः** । 'अवसन्नाः केशा यस्य सोऽवकेशः निष्केशः, सोऽस्ति दृष्टान्तत्वेनास्य' इति स यथा निष्केशः एवमयं निष्फलः **अवकेशी** । त्रीणि **ऋतावपि फलरहितस्य** । फलवानित्यादीनि त्रीणि **फलसहितवृक्षस्य** । 'प्रकर्षेण उत्कर्षेण सम्यक् वा फुल्लति' ( 'फुल्ल' विकसने ) इति प्रफुल्लोत्फुल्लसंफुल्लाः । 'व्यावृतः कोशः संकोचो यस्मात्' इति व्याकोशः । 'विगतः कचो यस्मात्' ( 'कच' बन्धने ) इति विकचः । 'स्फुटति' इति स्फुटः । अष्टौ **प्रफुल्लितवृक्षस्य** । 'तिष्ठति' इति स्थाणुः । 'ध्रुवति' ( 'ध्रुव' गतिस्थैर्ययोः ) इति ध्रुवः । 'शङ्कते अस्मात्' इति शङ्कुः । त्रीणि **शाखापत्ररहिततरोः** । स्तम्बगुल्मौ अप्रकाण्डे **स्कन्धरहिते** । 'वल्लते' ( 'वल्ल' संवरणे ) इति वल्ली । 'प्रकृष्टा ततिर्यस्याः', 'प्रतनोति' इति वा प्रततिः; पृषोदरादित्वात् पस्य वो वा व्रततिः । 'लतति' इति लता ( लतिः सौत्रो धातुर्वेष्टनार्थः ) । त्रीणि **लतामात्रस्य** । 'शाखापत्रसंचयः प्रतानः, सोऽस्त्यस्याः' इति प्रतानिनी । ईदृशी लता वीरुधादिशब्दवाच्या । 'विरुणद्धि' इति वीरुध् । 'गुल्मः प्रतानोऽस्त्यस्याः' इति गुल्मिनी । 'उलपते' ( 'उलः' सौत्रो धातुरावरणार्थः ) इति उलपः । त्रीणि **शाखादिभिर्विस्तृतलतायाः** । उच्छ्रायोत्सेधोच्छ्रयाः **वृक्षादिदैर्घ्यस्य** । 'शाखति व्याप्नोति' इति शाखा । शाखालते द्वे **वृक्षादिशाखायाः** । स्कन्धशाखाशाले द्वे **स्कन्धात् प्रथमोत्पन्नशाखायाः** । **'शेते भूमौ' इति शिफा** । 'जटति सङ्घातेनोत्पद्यते' इति जटा । द्वे **तरुमूलस्य** । 'अवरोहति

कुज, क्षितिरुह, अङ्घ्रिप, शिखरी, पादप, विष्टर, कुट(ठ), तरु, अनोकह, कुरुह, महीरुह, द्रु, द्रुम, अग, नग, वनस्पति, विटपी, शाखी, भूज, अगम, महीज, धरणीरुह, क्षितिज, वृक्ष, साल, वसु, करालिक, अगच्छ, जी(ज)र्ण, रूक्ष, पुलाकी, फलद, अद्रि, हरि, कारस्कर, नन्द्यावर्त, पर्णी, गच्छ, पुष्पद और पलाशी ये **वृक्षके** पर्याय हैं। फलित, फलवान्, फली, फलिन, फलेग्रहि, अव(ब)न्ध्य और अमोघफलोदय ये **फल-वाले** ( जिसमें फल लगते हों ऐसे ) **वृक्ष( उद्भिज्ज )**के पर्याय हैं । अवकेशी, व(ब)न्ध्य, विफल, निष्फल और अफल ये **जिसमें फल न लगते हों** ऐसे उद्भिज्जके पर्याय हैं । पत्र और शाखारहित वृक्षको 'स्थाणु', 'ध्रुव' और 'शङ्कु' कहते हैं । जिस वृक्षमें शाखायें और मूल छोटे हों उसको 'क्षुप' कहते हैं । प्रकाण्डरहित उद्भिज्जको 'गुल्म', 'स्तम्ब' और 'विटप' कहते हैं । वल्ली, व्रतति(ती), प्रतति(ती) और लता ये **बेल-लता**के पर्याय हैं । अनेक शाखा और पत्रोंके संचयसे जो लता बहुत विस्तारवाली हो उसको 'प्रतानिनी', 'वीरुध्',

---

लम्बते' इति अवरोहः; वटादेः शाखाया अवलम्बिनी शिफा । एकं **शाखामूलस्य** । मूला-दूर्ध्वं गता शिफा लता स्यात् । एकं **वृक्षाग्रगामिन्या लतायाः** । शिरः, अग्रं, शिखरं त्रीणि **वृक्षादिशिखरस्य** । 'मूलति' ( 'मूल' प्रतिष्ठायां' ) इति मूलम् । 'बध्यते' 'बुध्यते अनेन' इति वा बुध्नः । अङ्घ्रिर्नाम यस्य सः अङ्घ्रिनामकः, तेन पादादयोऽपि । त्रीणि **मूलमात्रस्य** । 'सरति' ('सृ' स्थिरे) इति सारः । 'मज्जति' इति मज्जा । द्वे **वृक्षादेः स्थिरांशस्य** । 'त्वचति' ( 'त्वच' संवरणे ) इति त्वक् । 'वलति ( 'वल' संवरणे )' इति वल्कम् । 'वल्कं लाति' इति वल्कलम् । त्रीणि **वृक्षादिस्त्वचः** । 'काशते' ( 'काशृ' दीप्तौ ) इति काष्ठम् । 'दीर्यते' ( 'दॄ' विदारणे ) इति दारु । द्वे **काष्ठमात्रस्य** । 'निश्चयेन कुहयते' ( 'कुह' विस्मापने ) इति निष्कुहः । कुटनं कोटः ( 'कुट' कौटिल्ये ), 'कोटं राति' इति कोटरः । द्वे **वृक्षादिरन्ध्रस्य** । वल्लरिः, मञ्जरिः, द्वे **तुलस्यादेर्नवोद्भिदि** । 'पतति' इति पत्रम् । 'पलति रक्षति' इति पलाशम् । 'छद्यते अनेन' ( 'छद' अपवारणे ) इति छदम् । 'दलति' ( 'दल' विदारणे ) इति दलम् । 'पिपर्ति' ( 'पॄ' पालनपूरणयोः )', 'पृणति' ( 'पृण' प्रीणने ), 'पर्णयति' ( 'पर्ण' हरितभावे ) इति वा पर्णम् । 'छाद्यते अनेन' इति छदः । षट् **पत्रमात्रस्य** । पल्लवः, किसलयं, द्वे **नवपत्रस्य** । विस्तारः, विटपः, द्वे **शाखादिविस्तारस्य** । 'फलति निष्पद्यते' इति फलम् । 'शस्यते हिंस्यते भक्षणार्थम्' इति शस्यम् । द्वे **फलस्य** । 'वृणोति' ( 'वृञ्' वरणे ) इति वृन्तम् । प्रसवस्य पुष्प-फल-पत्रस्य बन्धनम् । द्वे **पुष्पादिमूलाधारवृन्तस्य** । शलाटुः **एकमपक्वफलस्य** । 'वायति स्म ( 'ओ वै' शोषणे )' इति वानम् । एकं **शुष्कफलस्य** । क्षारकः, जालकं, द्वे **नवकलिकावृन्दस्य** । कलिका, कोरकः, द्वे **अविकसितकलिकायाः** । गुत्सः, स्तबकः, कुड्मलः, मुकुलः, चत्वारि **ईषद्विकासोन्मुखकलिकायाः** । सुमनः, पुष्पं, प्रसूनं, कुसुमं, चत्वारि **पुष्पसामान्यस्य** । मकरन्दः, पुष्परसः, द्वे **पुष्पमधुनः** । परागः, सुमनोरजः, द्वे **पुष्परेणोः** ( अमरकोशकी व्याख्याओंसे उद्धृत ) ।

'गुल्मिनी' और 'उलप' कहते हैं । वृक्षादिकी ऊँचाईको 'उच्छ्राय, उत्सेध' और 'उच्छ्रय' कहते हैं । वृक्षादिके फैलावको 'विस्तार', 'विटप' और 'स्तम्ब' कहते हैं । पुराने वृक्षमें जो पोल होती है उसको 'निष्कुह(ट)' और 'कोटर' कहते हैं । मूल, नेत्र, पाद, अङ्घ्रि, चरण, शिफा, जटा और बुध्न ये **मूल**के पर्याय हैं । बड़, पीपल आदिमें जो शाखासे मूल निकलते हैं उनको 'अवरोह' कहते हैं । उद्भेद, अङ्कु(ङ्कू)र, प्ररोह और रोह ये **बीजसे निकले हुए अंकुर**के पर्याय हैं । पर्व ( सन्धि )से निकले हुए अङ्कुरको 'बलिश' कहते हैं । अंकुरके नीचेको चौड़े भागको जो जमीनमें जाकर मूल बनता है उसको 'बुध्न' और 'नितम्ब' कहते हैं ( रा. नि. ) । मूलके ऊपरसे लेकर जहांसे शाखायें निकलती हैं वहाँतकके वृक्षके भागको 'गण्डि', 'प्रकाण्ड', 'स्कन्ध', 'प्रघाण', 'काण्ड' और 'दण्ड' कहते हैं । शिखा, शाखा, साला, शाला और लता ये शाखाके पर्याय हैं । वृक्षके अग्र ( ऊपरके ) भागको 'शिर', 'अग्र', 'प्राग्र' और 'शिखर' कहते हैं । वृक्षके स्थिर, ( कठिन ) भागको 'सार' और 'मज्जा'[1] कहते हैं । छल्ली, त्वक्, त्वचा, वल्कल, चोलक, चोच और वल्क ये **छाल**के पर्याय हैं । वृक्षके गोंदको 'निर्यास', 'खपुर' और 'लश' कहते हैं । 'परुष्,' 'पर्व' और 'ग्रन्थि' ये काण्डकी **ग्रन्थि ( गाँठ )** के पर्याय हैं । काष्ठ, दलिक, दारु, इन्धन, इध्म, एध, एधस् और समित् ये **लकडी( काष्ठ )**के पर्याय हैं । फाडे हुए काष्ठको 'विदल' कहते हैं । पर्ण, पत्र, दल, बर्ह, पलाश, छदन, छद, पतन और पतत्र ये **पत्ती**के पर्याय हैं । नयी पत्तीको 'किश(स)लय', 'किशल', 'प्रवाल' और 'पल्लव' कहते हैं । पत्तीकी कलीको 'शुङ्ग' और 'शुङ्गा' कहते हैं । पत्रके मध्यकी सिराको या पत्रकी समस्त सिराओंको 'माढि' कहते हैं । पत्र, पुष्प और फलके **बन्धन**को ( जिसके द्वारा पत्र, पुष्प और फल काण्ड या शाखासे बँधे हुए होते हैं उसको ) **वृन्त** कहते हैं । नये पुष्पकी शाखाओंके अग्रभागको 'मञ्जा(ञ्जी)', मञ्जरि(री) और 'वल्लरि(री)' कहते हैं । कोरक, मुकुल, क्षारक, जालक, कलिका और कुड्मल ये **फूलकी कलिका**के पर्याय हैं । कुसुम, सुमनस्, प्रसून, सून, प्रसून, फुल्ल, पुष्प और मणीवक ये **फूल**के पर्याय हैं । गुच्छ(ञ्छ), गुलुञ्छ, स्तवक, गुच्छक, गुत्सक और कुसुमोच्चय ये फूलके गुच्छे ( पुष्पसमूह ) के पर्याय हैं । पुष्परज, पराग, मधूली, धूलिका और सुमनोरज ये **पराग**के पर्याय हैं । मकरन्द, मरन्द, मधु और पुष्परस ये **मधु**( पुष्पके अन्दर रहे हुए शहद )के नाम हैं । प्रसव(क), पिप्पल, स(श)स्य और फल ये फलके नाम हैं । कच्चे फलको 'शलाटु' और सूखे फलको 'वान' कहते हैं । उज्जृम्भित, उज्जृम्भ, स्मित, उन्मिषित, विनिद्र, उन्निद्र, उन्मिलित, विजृम्भित, उद्बुद्ध, उद्भिदुर, उद्भिन्न, विकसित, हसित, विकस्वर, विकच, व्याकोश, फुल्ल, संफुल्ल, स्फुट, उदित, दलित, दीर्ण, स्फुरित

१ फलके भीतरके मग्जको भी 'मज्जा' कहते हैं ।

उत्फुल्ल और प्रफुल्ल ये **खिले हुए फूलके** नाम हैं । शालि, यव आदि धान्यके अग्रभागको 'किंशारु' कहते हैं । शालि, यव आदि धान्यकी मञ्जरीको 'कणिश' कहते हैं । शालि, मकई आदिके काण्डको 'नाडी' और 'नाल' कहते हैं । धान्य-बीज-रहित यव आदिके काण्डको 'पलाल' कहते हैं । धान्यकी त्वचाको 'तुष' कहते हैं । वृक्षादिकी **स्नायु**को 'किनाटक'[1] कहते हैं । यव आदिके सूक्ष्म और तीक्ष्ण अग्रभागको 'शूक' कहते हैं । शमी, शिम्बा और शिम्बी ये **सेम-फली**के नाम हैं । कमलके बीजकोशको 'वराटक' और 'कर्णिका' कहते हैं । कमल आदिके फूलमें रहे हुए तन्तुसदृश भागको 'केशर' और 'किञ्जल्क' कहते हैं ।

उद्भिज्जेभ्य औषधार्थमुपयुज्यमानान्यङ्गानि—

> **मूल-त्वक्-सार-निर्यास-नाल(ड)-स्वरस-पल्लवाः ।**
> **क्षाराः क्षीरं फलं पुष्पं भस्म तैलानि कण्टकाः ॥**
> **पत्राणि शुङ्गाः कन्दाश्च प्ररोहाश्चौद्भिदो गणः ।**
> (च. सू. अ. १) ।

मूलं शिफादि, त्वक् वल्कलं, सारः अन्तर्गतः स्थिरांशः, निर्यासः वेष्टकं यथा लाक्षा-सर्जरसादि, नाडः नालं, पल्लवः किशलयः, क्षीरं क्षीरवन्निर्यासः यथा स्नुहीक्षीरादि, तैलानि बीज-दारु-प्रभवाः स्नेहाः, पत्राणि पर्णानि किसलयभिन्नानि, प्ररोहा अङ्कुराः (यो.) । सारः काष्ठान्तर्भूतः परिणतः, निर्यासः स्वतो विनिर्गत-वेष्टकं, शुङ्गा अग्रभागाः (ग.) ।

**तत्र स्थावरेभ्यस्त्वक्-पत्र-पुष्प-फल-मूल-कन्द-निर्यास-स्वरसादयः प्रयोजनवन्तः** (सु. सू. अ. १) ॥

**स्वरसादय इति आदिग्रहणात्तैल-क्षार-भस्म-कण्टकादिग्रहणम्** (ड.) ।

शिफा आदि सब प्रकारके मूल, वृक्ष-लता-मूल-फल आदिकी त्वचा (छाल), वृक्षके मध्यका काष्ठ (सार—हीर, जैसे चन्दन, चीड़, देवदार आदिकी लकड़ी), निर्यास (वृक्षसे निकला हुआ गोंद, हींग-गंधाबिरोजा आदि), नाड (कमल आदिके नाल-पोली लंबी डंठी और पोला लंबा काण्ड), स्वरस (ताजी वनस्पतिको कूट और निचोड़कर निकाला हुआ स्वरस तथा नीम आदि वृक्षोंसे स्वयं निकला हुआ जलसदृश मद), पल्लव (कोंपल), क्षार, क्षीर (आक-थूहर आदिसे निकला हुआ दूध), फल, फूल, भस्म (राख), तैल (बीज-लकडी आदिसे निकाला हुआ स्थिर या उड़नेवाला तेल), कण्टक (काँटे), पत्र, शुंग (शाखाके अग्रभागसे निकली हुई अक्षि-पर्ण-

---

१ 'किनाटक' शब्दकी व्याख्या देते हुए शब्दार्थचिन्तामणिमें कहा है कि—'वृक्षस्य त्वचोऽभ्यन्तरे काष्ठसंलग्ने वल्कलरूपे'; इससे प्रतीत होता है वृक्षकी रेशेदार अन्तर्छालको 'किनाटक' कहते हैं ।

कलिका ) और कन्द ये उद्भिज्जोंके अंग आहार और औषधके रूपमें उपयोगमें लिये जाते हैं ।

**वक्तव्य**—चरकमें 'प्ररोहाश्च' यहां 'च'शब्दसे तथा सुश्रुतमें 'स्वरसादयः' यहां 'आदि' शब्दसे काण्ड, बीज, केशर, मज्जा (मगज) आदि मूलमें अनुक्त अंगोंका ग्रहण करना चाहिये । आगे वनस्पतियोंके **उपयुक्त अंग**का निर्देश करते हुए इन शब्दोंका प्रयोग किया जायगा ।

## द्रव्योंका प्राचीन और आधुनिक मतसे वर्गीकरण ।

प्राचीन मतसे द्रव्योंका वर्गीकरण—

**चरकने** औषधद्रव्योंका उनके एक एक प्रधान कर्मके अनुसार या उनके प्रधान रसके अनुसार वर्गीकरण किया है । चरक सू. अ. २ में तथा वि. अ. ८ में **वमन, विरेचन** आदि पञ्चकर्मोंके अनुसार पाँच वर्ग लिखे हैं । सू. अ. ४ में कर्मोंके अनुसार **जीवनीय** आदि पचास गण दिये हैं । वि. अ. ८ में मधुरादि रसोंके अनुसार छः गण लिखे हैं । **सुश्रुतने** भी सूत्रस्थानके अ. ३८ में अनेक समान कर्म करनेवाले द्रव्योंके **विदारिगन्धादि** आदि ३७ वर्ग लिखे हैं । सूत्रस्थानके अ. ३९ में एक एक कर्म करनेवाले द्रव्योंके **ऊर्ध्वभागहर, अधोभागहर, शिरोविरेचन, वातसंशमन, पित्तसंशमन** और **कफसंशमन** ये छः वर्ग लिखे हैं । सूत्रस्थान अ. ४२ में रसोंके अनुसार मधुरादि छः वर्ग लिखे हैं । **वृद्धवाग्भट** और **वाग्भटने** द्रव्योंके वर्गीकरणके विषयमें चरक-सुश्रुतका ही अनुसरण किया है । चरक, सुश्रुत, वृद्धवाग्भट और वाग्भट इन चारों संहिताकारोंका दिया हुआ वर्गीकरण कर्मानुसार होनेसे द्रव्यगुणशास्त्रकी दृष्टिसे शास्त्रीय पद्धतिके अनुसार है । परन्तु **धन्वन्तरीयनिघण्टु, राजनिघण्टु, कैय्यदेवनिघण्टु** आदि पीछे लिखे गये निघण्टु ग्रन्थोंमें जो **गुडूच्यादि, हरीतक्यादि** आदि वर्ग दिये गये हैं उनमें कर्मानुसार या रचनानुसार वर्गीकरण करनेपर कोई ध्यान नहीं दिया गया है । अतः उनके वर्गीकरणको शास्त्रीय नहीं कहा जा सकता ।

उद्भिज द्रव्योंके रचनानुसार वर्गीकरणपद्धति प्राचीन कालमें प्रारम्भ हुई थी, परन्तु उसका विकास नहीं हुआ था । वेदोंमें उद्भिज्जोंके **सपुष्प** और **अपुष्प** इन दो प्रधान वर्गोंका उल्लेख मिलता है । पीछेके ग्रन्थोंमें वनस्पति, वानस्पत्य, ओषधि, वृक्ष, क्षुप, गुल्म, लता आदि नामोंसें रचनानुसार वर्गीकरण करनेका यत्न किया गया है । कोशकारोंमें **श्रीहेमचन्द्राचार्यने** अपने **निघण्टुशेष** नामके कोशमें उद्भिज्ज द्रव्योंके रचनानुसार वृक्षकाण्ड, गुल्मकाण्ड, लताकाण्ड, शाककाण्ड, तृणकाण्ड और

१ द्रव्योंके कर्मानुसार वर्ग, उनकी व्याख्या और उदाहरण इसी ग्रन्थके पूर्वार्धमें प्रथम संस्करणमें पृ. २२ से ६५ तक, तथा द्वितीय संस्करणमें पृ. २२ से पृ. ७९ तक दिया है ।

धान्यकाण्ड ये छः वर्ग लिखे हैं । **अमरकोश, वैजयन्तीकोश, राजनिघण्टु** आदिमें उद्भिज्जोंके अङ्गोंके रचनाबोधक पर्याय दिये हैं ।

आधुनिक मतसे द्रव्योंका वर्गीकरण—

आधुनिक द्रव्यगुणविज्ञान( मेटीरिया मेडिका )के ग्रन्थोंमें द्रव्योंकी शरीरके भिन्न भिन्न अवयवोंपर होनेवाली क्रियाओंके अनुसार उनका वर्गीकरण किया जाता है । उद्भिज्ज द्रव्योंके रचनानुसार वर्गोंका नाममात्र देकर उल्लेख होता है । उद्भिज्जशास्त्र-( बॉटेनी )के स्वतन्त्र ग्रन्थोंमें उद्भिज्ज द्रव्योंके रचनानुसार वर्गीकरणका विस्तृत वर्णन पाया जाता है । वैद्योंको उसका सामान्य परिचय करानेके लिये उसका संक्षिप्त वर्णन नीचे दिया जाता है ।

यूरोपमें ईसाकी १७ वीं शताब्दीके मध्य तक उद्भिज्जशास्त्रका विकास नहीं हुआ था । ईसाकी १७ वीं शताब्दीके अन्तमें यूरोपके कई विद्वानोंने उद्भिज्जोंके अंग–प्रत्यंगोंका सूक्ष्म अवलोकन करना आरम्भ किया । उन्होंने उद्भिज्जोंके अंग–प्रत्यंगोंके विशेषतः संतानोत्पादक अवयवोंके साम्य और विभिन्नताके आधारपर उनके श्रेणी, गण, वर्ग, कुटुंब, जाति आदि भेद निश्चित किये और तदनुसार उद्भिज्जोंका वर्णन लिखना आरम्भ किया । इस प्रकार उद्भिज्जोंके वर्णन करनेकी पद्धतिसे उद्भिज्जोंके जिज्ञासुओंको उनका परिचय प्राप्त करनेमें बड़ी सरलता हो गई । इस वर्गीकरण पद्धतिका स्थूल परिचय नीचे दिया जाता है ।

हम आम या पीपलके सौ-पचास वृक्ष देखेंगे तो उन सबके काण्ड, पत्र, पुष्प, फल आदिमें समानता देख कर आसानीसे समझ सकेंगे कि ये सब भिन्न भिन्न व्यक्ति होनेपर भी एक जाति[1]( आम या पीपल )के वृक्ष हैं । एक जातिके उद्भिज्जके बीजसे उसी जातिका उद्भिज्ज उत्पन्न होता है । परन्तु खेती, खाद, जल-वायु, जमीन, कलम करना ( पैबन्द लगाना ) आदि कारणोंसे एक ही उद्भिज्जके अनेक प्रकार बनते हैं । उसे उस जातिका **भेद**[2] या **प्रकार** कहते हैं । उद्भिज्जोंकी असंख्य जातियाँ हैं । उनका वर्गीकरण किये विना ज्ञान प्राप्त करना कठिन हो जाता है । अतः उनका सरलतासे ज्ञान प्राप्त करनेके लिये वर्गीकरणपद्धति निकाली गई । समान जातियोंके समूहको **कुटुम्ब**[3] नाम दिया गया । एक कुटुंबकी सब जातियोंके आकार और रूप-रंगमें भिन्नता होनेपर भी उनके सन्तानोत्पादक अवयवोंमें ( पुष्प, फल और बीजमें ) समानता पाई जाती है, इसलिये उनका एक कुटुम्बमें समावेश किया गया । ऐसे समान कुटुंबोंके फिर वर्ग बनाये गये । इन वर्गोंको **प्राकृतिक वर्ग**[4] कहते हैं । इस ग्रन्थमें इन वर्गोंके उद्भिज्जोंमेंसे जो उद्भिज्ज विशेष प्रसिद्ध और परिचित हैं उनके नामके

( १ ) Species. ( २ ) Varieties. ( ३ ) General. ( ४ ) Natural-order.

साथ 'आदि' शब्द लगाकर वर्गोंके नाम रखे गये हैं। जैसे **वत्सनाभादि वर्ग, गुडूच्यादि वर्ग, दारुहरिद्रादि वर्ग** आदि। आधुनिक उद्भिज्जवेत्ताओंने उद्भिज्जोंके नाम लेटिन भाषाके दो शब्दोंमें रखे हैं। उनमेंसे पहला शब्द कुटुंबवाचक और दूसरा शब्द जातिवाचक होता है। प्राकृतिक वर्गोंके भी उनके सन्तानोत्पादक अवयवोंकी समानताके आधार पर **गण** बनाये गये हैं। उद्भिज्जसृष्टि दो प्रधान श्रेणियोंमें विभक्त हुई है—(१) **सपुष्प (सबीज)** और (२) **अपुष्प (अबीज)**। सपुष्प (सबीज) उद्भिज्जोंकी दो उपश्रेणियाँ हैं—(१) **आवृतबीज** और (२) **नग्नबीज**। आवृतबीज उपश्रेणिके दो विभाग हैं—(१) **द्विदल** और **एकदल**। द्विदल उद्भिज्जोंके तीन गण किये गये हैं—(१) **विभक्तदल**, (२) **संयुक्तदल** और (३) **अपूर्णपुष्प**। विभक्तदल गणके पुष्पमें बाह्यकोश, आभ्यन्तरकोश, पुंकेशर और स्त्रीकेशर ये चारों अवयव होते हैं। इस गणके पुष्पमें आभ्यन्तरकोशके दल विभक्त (अलग-पृथक्) होते हैं, इसलिये इस गणको **विभक्तदल** कहते हैं। विभक्तदल गणके तीन उपगण होते हैं—(१) **अधःस्थकोश**, (२) **परिस्थकोश** और (३) **ऊर्ध्वस्थकोश**। संयुक्तदल गणके पुष्पमें आभ्यन्तरकोशके दल संयुक्त होते हैं। इसके दो उपगण होते हैं—(१) **अधःस्थगर्भाशय** और **ऊर्ध्वस्थ गर्भाशय**। अपूर्णपुष्प गणके पुष्पमें पुष्पके चार उपाङ्गोंमेंसे (बाह्यकोश, आभ्यन्तरकोश, पुंकेशर और स्त्रीकेशरमेंसे) कोई एक उपांगका अभाव होता है या बाह्याभ्यन्तर संयुक्तकोश होता है। एकदल उद्भिज्जोंके दो गण होते हैं—(१) **अधःस्थ गर्भाशय** और (२) **ऊर्ध्वस्थ गर्भाशय**।

---

**उद्भिज्जसृष्टि।**

- सपुष्प ( सबीज )
  - आवृतबीज
    - द्विदल
      - विभक्तदल
        - अधःस्थकोश
          - सीताफलादि वर्ग आदि
        - परिस्थकोश
          - आम्रादि वर्ग जम्बीरादि वग, आदि
        - ऊर्ध्वस्थकोश
          - शिम्बी वर्ग, दाडिमादि वर्ग आदि
      - संयुक्तदल
        - अधःस्थगर्भाशय
          - कॉफी वर्ग भृङ्गराजादि वग आदि
        - ऊर्ध्वस्थगर्भाशय
          - वृन्ताकादि वर्ग, तुलस्यादि वर्ग, आदि
      - अपूर्णपुष्प
        - एरण्डादि वर्ग चन्दनादि वर्ग आदि
    - एकदल
      - अधःस्थगर्भाशय
        - कदल्यादि वर्ग आदि
      - ऊर्ध्वस्थगर्भाशय
        - नारिकेलादि वर्ग आदि
  - नग्नबीज
    - देवदार्वादि वर्ग, आदि
- अपुष्प ( अबीज )
  - शैवालादि वर्ग, हंसपद्यादि वर्ग, आदि
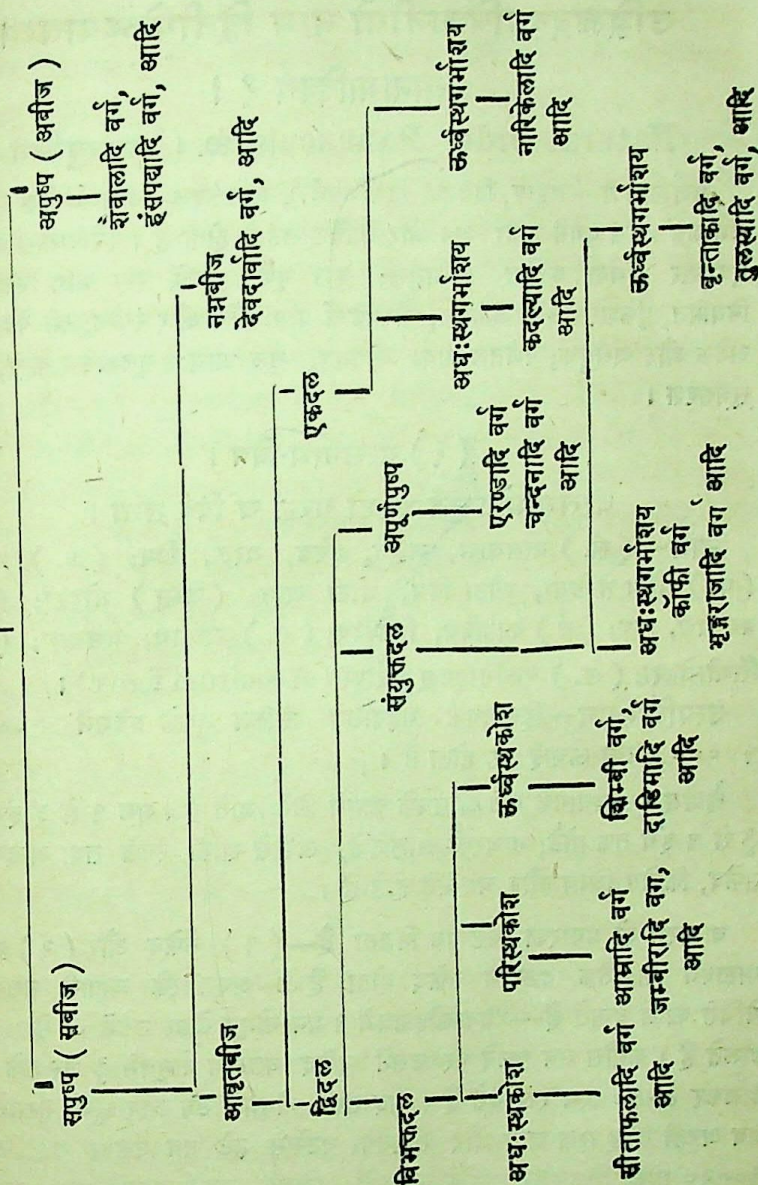
# उद्भिज्जद्रव्यविज्ञानीयो नाम द्वितीयोऽध्यायः ।

## वत्सनाभादिवर्ग १ ।

## Natural Order Ranunculaceæ. ( रेननक्युलेसी )

**वर्गलक्षण**—सपुष्प, द्विदल ( द्विबीजपर्ण ), विभक्तदल, अधःस्थकोश ( ऊर्ध्वस्थ गर्भाशय । इस वर्गमें प्रायः क्षुप और क्वचित् लतायें होती हैं । पर्णविन्यास मूलोद्भव; एकान्तर अथवा क्वचित् अभिमुख; पुष्प पूर्ण; पुष्पके सब भाग स्पष्ट और नियमित, पुंकेशर संख्या अनियत; पँखडियाँ प्रायः पाँच और रंगीन; स्त्री केशर प्रायः अनेक और असंयुक्त; पर्णतल प्रायः कोषमय; मूल प्रायः मूलकाकार कन्द, क्वचित् सूत्रसदृश ।

### ( १ ) वत्सनाभ-विष ।

**वत्सनाभोऽमृतं क्ष्वेडो गरलं च विषं तथा ।**

**नाम**—( सं. ) वत्सनाभ, अमृत, क्ष्वेड, गरल, विष; ( क. ) मोहन्द; ( पं. ) मीठा तेलिया, मीठा विष, मीठा जहर; ( जम्मू ) मोहरा; ( हिं. ) बछनाग, विष; ( बं ) काठविष, मिठेविष; ( गु. ) वछनाग, वसनाग; ( मा. ) सिंगीमोहरा; ( ले. ) एकोनाइटम् फेरोक्स( Aconitum ferox ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—हिमालयके गढ़वालसे सिक्किम तकके प्रदेशमें १०००० से १४००० फुटकी ऊँचाई पर होता है ।

**वर्णन**—बछनागके मूल औषधके काममें लिये जाते हैं । मूल १ से ३ इंच लंबे, ½ से १ इंच तक मोटे, गाजरकी आकृतिके, ऊपरसे खाकी रंगके तथा अन्दर फीके सफेद, किञ्चित् स्निग्ध और चमकीले होते हैं ।

बाजारमें दो प्रकारका बछनाग मिलता है—( १ ) सफेद और ( २ ) काला । वास्तवमें प्राकृतिक बछनाग सफेद होता है । अमृतसरके व्यापारी उसको इस विधिसे काला बनाते हैं—"एक लोहपात्रमें १ मन गोमूत्र लेकर उसमें ७ सेर कसीस डालते हैं । कसीस सब घुलने पर उसमें सफेद बछनाग गोमूत्रमें ⅔ भर सके इतना डालकर ८–१० दिन रख देते हैं । बाद उसी गोमूत्रमें उबालकर धूपमें सुखाते हैं । जब अच्छी तरह सूख जाय और तोड़नेपर चटखसे टूटे तब उसपर सरसोंका तेल १०–२० तोला छिड़ककर हाथोंसे मलते हैं, जिससे सब स्निग्ध हो जाय । बस यही

---

१ वत्सनाभका वर्णन प्राचीनोंने इस प्रकार किया है–"सिन्धुवारसदृक्पत्रो वत्सनाभ्याकृतिस्तथा । यत्पार्श्वे न तरोर्वृद्धिर्वत्सनाभः स उच्यते ॥" ( भा. प्र. ) । "यः कन्दो गोस्तनाकारो न दीर्घः पञ्चमाङ्गुलात् । न स्थूलो गोस्तदूर्ध्वं", "वत्सनाभं तु पाण्डुरम्" ( र. र. स. ) ।

काला वछनाग है जो अमृतसरसे सब जगह भेजा जाता है । इस प्रकार रंगे हुए बछनागमें कीड़े नहीं लगते" (स्वामी हरिशरणानंदजी वैद्यके पत्रसे उद्धृत)।

वत्सनाभशुद्धिः—

"विषं तु खण्डशः कृत्वा वस्त्रखण्डेन बन्धयेत् । गोमूत्रमध्ये निक्षिप्य स्थापयेदातपे त्र्यहम् ॥ गोमूत्रं तु प्रदातव्यं प्रत्यहं नूतनं बुधैः । त्र्यहेऽतीते तदुद्धृत्य शोषयेदातपे मृदौ ॥ शुध्यत्येवं विषं सम्यक् सेव्यं भवति चार्तिजित् । अन्यच्च—खण्डीकृत्य विषं वस्त्रपरिबद्धं तु दोलया । अजापयसि संस्विन्नं यामतः शुद्धिमाप्नुयात् ॥ अजादुग्धाभावतस्तु गव्यक्षीरेण शोधयेत् ।" (योगरत्नाकर)।

**विषमारणं**—"तुल्येन टङ्कणेनैव द्विगुणेनोषणेन च । विषं संयोजितं शुद्धं मृतं भवति सर्वथा ॥" (योगरत्नाकर) । "समांशटङ्कणोपेतं[1] तद्विषं मृतमुच्यते । योजयेत् सर्वरोगेषु न विकारं करोति तत् ॥" (रसकामधेनु पृ. ४८)।

आयुर्वेदमें शुद्ध किये हुए बछनागका ही प्रयोग करनेका विधान है । बछनागकी शुद्धि इस प्रकार की जाती है—बछनागके छोटे छोटे टुकड़े कर, कपड़ेमें बांध, काँचके या मिट्टीके पात्रमें गोमूत्र भर, उसमें बछनागकी पोटली डालकर धूपमें रख दे । प्रतिदिन गोमूत्र बदलता रहे । चौथे दिन उन्हें धो, कपड़ेमें पोटली बाँधकर बकरी या गायके दूधमें दोलायन्त्रमें[2] ३ घण्टेतक मंदी आँचपर पकावे । पीछे गरम जलसे धो, छायामें सुखा, काँचकी शीशीमें भरकर रख दे । खानेके काममें इस प्रकार शुद्ध किये हुए विषका ही प्रयोग करना चाहिये । लगानेके काममें अशुद्ध विषका प्रयोग कर सकते हैं । यदि केवल विषका प्रयोग करना हो तो उसमें सम भाग शुद्ध टंकण (सुहागा) और द्विगुण काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर प्रयोग करना चाहिये । अथवा एक भाग शुद्ध बछनागमें नौ भाग मुलेठीका चूर्ण, गिलोयका सत्त्व, सांबरशृंगभस्म, अतिविष या बचका चूर्ण मिलाकर १ रत्तीकी मात्रामें प्रयोग करना चाहिये ।

वत्सनाभगुणाः—

**विषं रसायनं बल्यं वातश्लेष्मविकारनुत् । व्यवायि शीतनुद्दाहि कुष्ठ-शोथविनाशनम् ॥ अग्निमान्द्य-श्वास-कास-प्लीहोदर-ज्वरापहम् । कण्ठरुक्-सन्निपातघ्नं मधुमेहहरं तथा ॥ प्रलेपाच्छ्वयथुं पीडामपचीं च विनाशयेत् ।**

बछनाग विष[3], रसायन, बल्य तथा वातरोग, कफरोग, शीत (ठंढी), कुष्ठ, शोथ, अग्निमान्द्य, श्वास, खांसी, प्लीहाकी वृद्धि, उदररोग, ज्वर, कण्ठके रोग, सन्निपातज्वर

---

१ आयुर्वेदमें विषघटित योगोंमें टङ्कणका उपयोग प्रायः मिलता है । २ दोलायन्त्रका विधान इसी ग्रन्थके परिभाषाखण्डमें पृ. ७४ पर देखें । ३ विषका लक्षण इसी ग्रन्थके पूर्वार्धमें पृ. ६७–६९ पर देखें । विषके जो गुण-कर्म वहां लिखे हैं वे सब वत्सनाभमें विद्यमान हैं ऐसा समझना चाहिये ।

और मधुमेहको दूर करता है। बछनागका लेप शोथ, पीड़ा और अपचीका नाश करता है।

**नव्य मत—**"अशोधित बछनागका प्रयोग निषिद्ध है। शोधित बछनाग हृदयोत्तेजक, स्वेदजनन तथा पीड़ाशामक है और अशुद्ध बछनाग जैसा हृदयावसादक नहीं है।" (भा. भै. त. पृ. ३९८)। "गोमूत्रमें शुद्ध किया हुआ बछनाग हृदयको बल देता है, रक्तका दबाव और शाखागत रक्ताभिसरणको बढ़ाता है। यह प्रभाव देरतक रहता है। बछनागको गोमूत्रके बदले गोदुग्धमें शुद्ध किया जावे तो यह परिवर्तन विशेष स्पष्ट रूपसे मालूम होता है" (डॉ. म्हसकर)। "बछनाग खानेको देनेसे आमाशयके ज्ञानतन्तु संज्ञारहित होते हैं, आमाशयका रस और कफ कम होता है। इसलिये आमाशयकी पीड़ा, दाह और गर्भिणीके वमनमें बछनाग दिया जाता है। बछनागका वीर्य रक्तमें शीघ्र मिलकर हृदय, हृदयकेन्द्र, श्वासोच्छ्वासकेन्द्र, त्वचा और मूत्रपिंड (वृक्कों) पर शीघ्र क्रिया करता है। × × ×। बछनागसे पसीना और मूत्र पुष्कल होता है तथा सब शरीरके ज्ञानतन्तु थोड़े-बहुत संज्ञारहित होते हैं। इन सब गुणोंसे बछनागका उपयोग जब शोथ, ज्वर और पीड़ा हो तब किया जाता है। शरीरमें कहीं भी शोथ हो तब ज्वर होता है। ज्वरमें बछनाग देनेसे पसीना होता है, पेशाब छुटता है और नाड़ीकी गति कम होती है तथा शोथ और ज्वर भी कम होता है। × × ×। गला, श्वासनलिका, फुप्फुस, फुप्फुसावरणकला, हृदय, अन्त्र, अन्त्रावरणकला, सन्धि आदिके शोथप्रधान रोगोंमें प्रारम्भमें ही बछनाग देनेसे व्याधि शांत होता है और आगेकी अवस्थाएँ उत्पन्न नहीं होतीं। बछनाग उत्तम पीड़ाशामक होनेसे शिरका दर्द, दांतकी पीड़ा, कानका दर्द, पीठका दर्द आदि ज्ञानतन्तुओंके पीड़ायुक्त रोगोंमें खानेको दिया जाता है और लेप[1] किया जाता है। बछनागमें पीड़ाशामक गुण है परन्तु वह औषधीय मात्रामें देनेसे बहुत सौम्य होता है। इसलिये बछनागके साथ अफीम, धतूरा या खुरासानी अजवायन देते हैं। सर्दीसे स्त्रियोंका मासिक बन्द हो गया हो तो बछनाग दिया जाता है। मधुमेह, बहुमूत्र, तन्तुमेह, स्वप्नमें शुक्रस्राव और पेशाब होना इन रोगोंमें बछनाग दिया जाता है। बछनागके आयुर्वेदोक्त पुराने योग सब अच्छे हैं, परन्तु उनमें बछनागकी मात्रा कम करनी चाहिये। बछनागके योगोंमें सुगन्धि द्रव्य मिलाने चाहिये" (औ. सं. पृ. ३९–४२ से सारांश रूपमें उद्धृत)।

---

१ एक तोले शार्ङ्गधरोक्त दशांगलेपमें १ माशा बछनाग मिला, धत्तूरेकी पत्तियोंके रसमें पीसकर लेप करनेसे शीघ्र पीड़ा और शोथ शांत होता है।

## ( २ ) शृंगीविष।

**नाम**—( क. ) मोहरी; ( पं. ) श्याममोहरी, मोहरी; ( ले. ) एकोनाइटम् चसेन्थम् ( Aconitum chasmanthum )।

**उत्पत्तिस्थान**—पश्चिम हिमालयके चित्राल और हजारासे लेकर कश्मीरतकके प्रदेशमें ७००० से १२००० फुटकी ऊँचाई पर होता है।

**वर्णन**—शृंगी विषके मूल ( कन्द ) औषधके लिये उपयोगमें लिये जाते हैं। मूल—द्विवर्षायु, युग्म गोलाकार कन्द, १ से १॥ इंच लंबे, ।· से ·॥· अंगुली जितने मोटे, भूरे या कालापन लिये भूरे रंगके, भीतरसे कुछ सफेद, झुर्री( शिकन )वाले और बछनागकी अपेक्षया वजनमें हलके होते हैं[२]।

**शोधन**—शृंगीविषका शोधन भी बछनागके समान ही किया जाता है।

**गुण-कर्म**—शृंगी विषके गुण-कर्म भी वत्सनाभके समान ही हैं। कश्मीर, उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त और पंजाबमें यह प्रसिद्ध है। वहांके वैद्य औषधार्थ इसका प्रयोग करते हैं। वहांके वैद्योंका कहना है कि वत्सनाभसे यह अधिक तीक्ष्ण और गुणकारक है। योगोंमें ग्रन्थोक्त प्रमाणसे आधी मात्रामें इसे डालना चाहिये।

**वक्तव्य**—**चरक** चि. स्था. के अ. २३ में मूलविषोंकी गणनामें **वत्सनाभ** और **शृंगीविषका** उल्लेख आया है। चरकने चि. स्था. अ. ३, पा. ३ में ऐन्द्र-रसायनमें १ मात्रामें तिल प्रमाण विष डालनेको लिखा है। **सुश्रुत** कल्पस्थानके दूसरे अध्यायमें कन्द विषोंमें **वत्सनाभ** और **शृंगीविषका** उल्लेख आया है। चरकने जङ्गम विषको अधोभागदोषहर और मूलविषको ऊर्ध्वभागदोषहर, तथा दोनोंको परस्पर विरोधी कहा है और एक-दूसरेके विकारोंमें प्रयोग करनेका विधान किया है—**"जङ्गमं स्यादधोभागमूर्ध्वभागं तु मूलजम्। तस्माद्दंष्ट्राविषं मौलं हन्ति मौलं च दंष्ट्रजम्॥" ( च. चि. अ. २३ )।**

रसग्रन्थोंमें ज्वर, अतिसार, अग्निमान्द्य, ग्रहणी, कास, श्वास, कफरोग, वातरोग आदिमें वत्सनाभ और शृङ्गीविषका पुष्कल प्रयोग देखनेमें आता है। रसरत्नसमुच्चयके विषकल्प नामके २९ वें अध्यायमें विषके भेद, शोधन, मात्रा, भिन्न भिन्न रोगोंमें विषके प्रयोग आदि विषय विस्तारसे वर्णित हैं। वैद्योंको वह अध्याय अवश्य देखना चाहिये। उसमेंसे कुछ महत्वके वचन यहां उद्धृत किये जाते हैं—

**"उद्धृतं फलपाके तु नवं स्निग्धं घनं गुरु। अव्यापन्नं विषहरैरवातातपशोषितम्॥ रक्तसर्षपतैलेन लिप्ते वाससि धारितम्। × × ×। अथ गोमूत्रसंयुक्तमातपे**

---

१ "शृङ्गिकं कृष्णपिङ्गलम्" ( र. र. स. )। २ एकोनाइटम् चसेन्थम्के पत्र और पुष्पका रंगीन चित्र "Wild Flowers of Kashmir" नामक ग्रन्थके तीसरे खण्डमें पृ. १९ पर दिया है।

धारितं ऽयहम् ॥ विषं, बृंहणमेतद्धि विषस्यादौ प्रशस्यते । आरोटं भक्षयेद्देवि विषं सर्षपमात्रकम् ॥ प्रथमे दिवसे, पश्चाद्द्वितीयादौ द्विसर्षपम् । पञ्चमे दिवसे देवि भक्षयेत् सर्षपत्रयम् ॥ षट्सप्ताष्टदिनेऽप्येवं, नवमे वेदसंख्यया । भक्षयेद्राजिकावृद्ध्या यावद्गुञ्जामितं भवेत् ॥ मासत्रयप्रयोगेण कुष्ठान्यष्ट हरेद्विषम् । ××× । षण्मासस्य प्रयोगेण कामरूपो भवेन्नरः । संवत्सरप्रयोगेण सर्वरोगान् व्यपोहति ॥ अमृतं सहसा युक्तं सेवितं विषमेव वा । सात्म्यासात्म्यविकाराय मृत्यवे च वरानने ॥ ××× । विषं युञ्जीत नित्यं हि रसायनगुणैषिणः । घृतोपस्कृतदेहस्य विशुद्धस्य हिताशिनः ॥ सात्त्विकस्योदिते भानौ योज्यं शीतवसन्तयोः । ग्रीष्मे चात्ययिके व्याधौ, न वर्षासु न दुर्दिने ॥ न क्रोधिनि न पित्तार्ते न क्लीबे राजवेश्मनि । क्षुत्तृष्णाश्रमघर्माध्वव्याध्यन्तरनिपीडिते ॥ गर्भिण्यां बालवृद्धेषु न रूक्षेषु न मर्मसु । अभ्यस्तेऽपि विषे यत्नाद्वर्जनीयान् विवर्जयेत् । कट्वम्ललवणं तैलं दिवास्वप्नानलातपान् । ब्रह्मचर्यं वरारोहे विषकाले समाचरेत् ॥ गव्ये क्षीरघृते पेये शाल्यन्नं गोधुमं तथा । शीतलं च पिबेत्तोयं मधुराणि च सेवयेत् ॥"

वत्सनाभ आदिके फल पक जाँय तब उनके जो मूल-कन्द ताजे, स्निग्ध, भरे हुए, वजनदार और अन्य विषघ्न औषधोंसे अनुपहत हों उनको लेकर जहां प्रबल हवा न चलती हो और धूप न हो ऐसे स्थानमें ( छायामें ) सुखा, लाल सरसोंके तैलमें तर किये हुए कपड़ेमें लपेटकर काँचके पात्रमें रख छोड़े। उपयोगमें लानेके पहले तीन दिन गोमूत्रमें डालकर सुखा ले। इस संस्कारसे विषका कर्षण ( अवसादक ) गुण नष्ट होकर विषमें बृंहण ( बलकारक ) गुण उत्पन्न होता है। रसायन प्रयोगके लिये शुद्ध विष पहले दिन १ सर्षपप्रमाण; दूसरे, तीसरे और चौथे दिन २ सर्षप; पाँचवे, छठे, सातवें और आठवें दिन ३ सर्षप; नववें दिनसे ४–४ दिनके बाद १–१ राईकी मात्रा बढ़ाकर १ रत्तीतककी मात्रामें प्रयोग करे। ३ मासके प्रयोगसे आठों प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं। ६ मासके प्रयोगसे पुरुष सुन्दर रूपवान् होता है। एक वर्षके प्रयोगसे अन्य औषधोंसे अच्छे न होनेवाले रोगोंसे मुक्त होता है। पहले घृतपानसे स्नेहन और पीछे शोधन ( वमन, विरेचन और आस्थापन ) कराकर रसायनके लिये विषका प्रयोग करना चाहिये। शीत और वसन्त ऋतुमें प्रातःकाल विष प्रयोगका आरम्भ करना चाहिये। क्रोधी, पित्तरोगोंसे पीडित, नपुंसक, राजा, क्षुधा-तृषा-श्रम-धूप और मार्गगमनसे पीडित, गर्भिणी स्त्री, बालक और वृद्धको विषका प्रयोगविधिसे सेवन नहीं कराना चाहिये। विषका सेवन करते समय कटु, अम्ल और लवणरसवाले द्रव्य ( तथा अन्य पित्तकारक पदार्थ ), तैल, दिनमें सोना, धूपमें बैठना–फिरना और अग्निके पास बैठना ये न करना चाहिये। विषसेवन कालमें ब्रह्मचर्य पालना चाहिये। गायका दूध और घी, चावल, गेहूँ, ठंढा जल और मधुर पदार्थका सेवन करना चाहिये।

इस समय सारे हिन्दुस्तानके वैद्य जिस विषका उपयोग कर रहे हैं और बाजारमें जो मिलता है वह वत्सनाभ ( एकोनाइटम् फेरोक्स्[१] ) है । शृंगीविष( एकोनाइटम् चस्मेन्थम् )का उपयोग केवल कश्मीर, उत्तरपश्चिम सीमाप्रान्त और पंजाबके कुछ वैद्य करते हैं । एकोनाइटम् चस्मेन्थम् कश्मीर सरकार बेचती है ।

**मात्रा**—शोधित विषकी १/८ रत्ती ।

वत्सनाभके विषलक्षण—

अशोधित या औषधीयमात्रासे अधिक विष खानेसे ये लक्षण होते हैं—प्रथम अवस्थामें आमाशयमें उष्णता मालूम होती है और थोड़ा जी मिचलाता है ( वमनकी इच्छा होती है )। थोड़े समयके बाद समग्र शरीर गरम मालूम होता है एवं ओष्ठ तथा जीभमें झनझनाहट मालूम होती है और क्रमशः हाथकी अंगुलियोंमें झनझनी मालूम होने लगती है । मांसपेशियां शिथिल और दुर्बल होती हैं । नाड़ी और श्वासकी गति मन्द ( एक मिनिटमें नाड़ीकी गति ७२ से ६४ तक और श्वासकी गति १८ से १६ तक) होती है। द्वितीयावस्थामें बाहु पर्यन्त झनझनी होती है और स्पर्शज्ञानका ह्रास होता है । १–१॥ घंटेमें नाड़ीकी गति एक मिनिटमें ५६ और श्वासकी गति १३ होती है । श्वास लेनेमें श्रम मालूम होता है । शारीरिक अवसाद इतना होता है कि उठनेसे सिरमें चक्कर आता है, चारोंओर अंधेरा मालूम होता है और हाथ-पांव ठंढे होते हैं । तृतीय अवस्थामें सारे शरीरमें झनझनी होकर शरीर अवश हो जाता है । अत्यन्त दौर्बल्य, सिर घूमना, नेत्रमें विकृति, नाड़ीकी क्षीणता और अनियमितता, सन्धिस्थानमें वेदना, श्वासकी गति शीघ्र और अनियमित, शरीर शीतल, पसीना आना, अत्यन्त वमन और क्वचित् दस्त होते हैं । चतुर्थावस्थामें मुखमण्डल फीका, मुँहसे फेन आना, नाड़ी क्षीण और अव्यवस्थित, कभी लुप्त, शरीर ठंढा और पसीनेसे तर, श्वासकी गति अत्यन्त क्षीण और द्रुत होती है तथा दर्शन, श्रवण और बोलनेकी शक्ति नष्ट होकर मृत्यु होती है । मृत्युके पहले कभी आक्षेप भी होता है । अन्त तक संज्ञा बनी रहती है । मृत्यु हृदयके अवसादसे होती है ।

विषकी चिकित्सा—

यदि विष खानेको अधिक समय न हुआ हो, विष आमाशयमें हो और वमन न होता हो तो रोगीको वमन करावे, स्टमक पम्पद्वारा गरम जलसे वारंवार आमाशय धोवे, यदि विष अन्त्रमें चला गया हो तो एरण्डतैल देकर विरेचन करावे । [२]गायके

---

१ कभी कभी बाजारमें जो बछनाग मिलता है उसमें विषकी अन्य जातिके मूल भी मिले हुए होते हैं । २ "अतिमात्रं यदा भुक्तं तदाऽऽज्यं टङ्कणं पिबेत् । लिह्याद्वा मधुसर्पिर्भ्यां संपिष्टमर्जुनत्वचम् ॥" ( रसकामधेनु ) ।

घीमें सुहागा मिलाकर पिलावे, अर्जुनके वृक्षकी त्वचाका चूर्ण शहद और गायके घीमें मिलाकर पिलावे । जद्वार पानीमें घीस कर थोड़ी थोड़ी देरसे चटावे[1] ।

---

## ( ३ ) अतिविषा ।

### अतिविषा शुक्लकन्दा भङ्गुरा घुणवल्लभा ।

**नाम**—( सं. ) अतिविषा ( विषमतिक्रान्ता अतिविषा—विषके वर्गकी होनेपर भी विष नहीं है ऐसी ), शुक्ल( श्वेत )कन्दा ( सफेदकन्दवाली ), भङ्गुरा ( शीघ्र-आसानीसे टूटनेवाली ), घुणवल्लभा ( कीड़ोंको प्रिय–जिसमें कीड़े लगते हैं ऐसी ), काश्मीरा ( कश्मीरमें अधिकतासे होनेवाली ); ( क. ) पतीस, पत्रीस; ( पं. ) पतीस, बतीस; ( हिं. ) अतीस; ( म. ) अतिविष; ( बं. ) आतईच; ( गु. ) अतिविष ( ख ), अतवखनी कळी; ( ता. ) अतिबिदयम्; ( ले. ) एकोनाइटम् हेटरोफाइलम् ( Aconitum Heterophylum ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—हिमालयके सिन्धुनदीसे कुमाऊँतकके प्रदेशमें ६००० से १२००० फुटकी ऊँचाई पर होती है ।

**वर्णन**—अतीसका २ से ४ फुट ऊँचा क्षुप होता है । मूल द्विवर्षायु, लंबगोल कन्दके आकारके होते हैं । मूल बाजारमें अतीसके नामसे बिकते हैं । अतीस ऊपरसे भूरे रंगकी; तोड़नेसे भीतर श्वेत, पिष्टमय पदार्थ युक्त और मध्यमें ४–५ बिन्दुओं( छिद्रों )वाली होती है । लंबाई १ से १॥ इंच, क्वचित् दो इँच होती है । स्वाद अति तिक्त ( कडुआ ) । कोई खास गन्ध नहीं होता । औषधके लिये जो मूल नये, ऊपरसे कुछ भूरे, अंदरसे श्वेत, मध्यमें ४–५ बिन्दुवाले और भंगुर हों वे ही लेने चाहिये[2] ।

**गुण-कर्म**—"अतिविषा दीपनीय-पाचनीय-संग्राहक-सर्वदोषहराणाम् (श्रेष्ठा)" ( च. सू. अ. २५ ) । चरकेण ( सू. अ. ४ ) पञ्चाशन्महाकषायेषु लेखनीये, अर्शोघ्ने च गणेऽतिविषा पठ्यते । सुश्रुतेन ( सू. अ. ३९ ) पिप्पल्यादौ, मुस्तादौ, वचादौ[3] च गणेऽतिविषा पठिता । "विषा सोष्णा लघुस्तिक्ता दीपनी पाचनी

---

१ डिजिटेलिनके इंजेक्शनसे अच्छा लाभ होता है । २ एकोनाइटम् हेटरोफाइलम्के पत्र और पुष्पका रंगीन चित्र "Wild Flowers of Kashmir" नामक ग्रन्थके तीसरे खण्डमें पृ. २५ पर दिया है । रॉयलके **फ्लोरा ऑफ् कश्मीरके** दूसरे खंडमें अतीसका रंगीन चित्र दिया है ( प्लेट नं १३ ) । ३ "पिप्पल्यादिः कफहरः प्रतिश्यायानिलारुचीः । निहन्याद्दीपनो गुल्मशूलघ्नश्चामपाचनः ॥ एतौ वचा-हरिद्रादी गणौ स्तन्यविशोधनौ । आमातिसारशमनौ विशेषाद्दोषपाचनौ ॥ एष मुस्तादिको नाम्ना गणः श्लेष्मनिषूदनः । योनिदोषहरः स्तन्यशोधनः पाचनस्तथा ॥" ( सु. सू. अ. ३८ ) ।

जयेत् । कफपित्तातिसारामविष-कास-वमि-क्रिमीन्" (कै. नि.)। "कास-ज्वरच्छर्दि-भिरर्दितानां समाक्षिकां चातिविषां तथैकाम्" ( वङ्गसेन बालरोगाधिकार ) ।

अतीस रसमें तिक्त, विपाकमें लघु, उष्णवीर्य, लेखन, पाचन, दीपन, संग्राहक, सर्वदोषहर, स्तन्यशोधन, आमपाचन, दोषपाचन तथा अतिसार, ग्रहणीरोग, विष ( अन्नाजीर्णोत्थ विष ), कास, वमन ( अन्नाजीर्णजन्य ), अर्श, ज्वर, कृमि, प्रतिश्याय, अरुचि, शूल और आमातिसारका नाश करती है ।

**नव्य मत**—अतीस उत्तम कटुपौष्टिक[1], विषमज्वरनाशक और ग्राही है । किसी भी कारणसे शरीरमें दुर्बलता आई हो और शरीर फीका पड़ गया हो तब इसके सेवनसे भूख लगती है, अन्न पचता है और शरीरकी सब विनिमय क्रियायें सुधरती हैं । कटुपौष्टिक और ग्राही होनेसे अतिसार और ग्रहणीमें इससे अच्छा लाभ होता है । बच्चोंके जुलाब, उलटी और ज्वरमें अतीस उत्तम औषध है । बच्चों और प्रसूता स्त्रियोंके अतिसारमें अतीस और सांबरशृंगभस्म मिलाकर देना चाहिये । अतीस, शुद्ध भांग और बचका चूर्ण अतिसारमें लाभ करता है । सुगन्धि द्रव्योंके साथ मिलाकर देनेसे अतीस शीघ्र लाभ करती है । विषमज्वरको रोकनेके लिये अतीस बड़ी ( ३ माशेकी ) मात्रामें देना चाहिये । अतीस बच्चोंको विशेष माफक आती है । ज्वरातिसारमें १५ गुंजा अतीस और १५ गुंजा रसौत थोड़े जलमें मिलाकर देते हैं । अतीसमें **अतिसीन** नामक सत्त्व ( ॲल्केलॉइड ) पाया जाता है ( डॉ. वामन गणेश देसाई ) ।

**यूनानी मत**—दूसरे दर्जेमें गरम और पहले दर्जेमें खुश्क ( रूक्ष ), वाजीकर, पाचन, दीपन, ज्वरको रोकनेवाली, ग्राही, रक्तस्तम्भन, कोष्ठवातहर, कफहर तथा अतिसार, प्रवाहिका, अर्श, जलोदर और वमनको दूर करती है । समभाग अतीस और दाडिमपुष्पका चूर्ण बच्चोंके दस्त बन्द करनेको देते हैं । मात्रा—१ माशा ।

उपयुक्त अंग—मूल-कन्द । मात्रा—५ से ३० रत्तीतक ।

---

## ( ४ ) प्रतिविषा ।

**नाम**—( सं. ) प्रतिविषा ( 'विषं प्रति विरुद्धा' इति प्रतिविषा–विषवर्गकी होनेपर भी विष नहीं—विषके विरुद्ध ऐसी ), श्यामकन्दा ( कुछ सफेदाई लिये हुए काले रंगकी ); ( हि. ) विखमा, विग्मा; ( म. ) वखमा; ( गु. ) वग्मो, वखमो; ( ले. ) एकोनाइटम् पामेटम् ( Aconitum palmatum ) ।

**प्राप्तिस्थान**—हिमालयके पूर्व प्रदेश( नेपालसे सिकिम तक )में १०००० से १६००० फुटकी ऊँचाई पर होती है ।

**वर्णन**—मूल द्विवर्षायु, युग्म शंकाकार या ढोल जैसे लंबगोल कन्द, १॥ से ४ इंच लंबे, $\frac{1}{2}$ इंचसे $\frac{3}{4}$ इंच मोटे और वजनदार होते हैं । तोड़नेसे चट जैसा

---

१ Bitter tonic.

शब्द होकर टूटते हैं। ऊपरसे रंग सफेदाई लिये काला और तोड़नेपर अन्दरसे लोबानी (ब्राउन) रंग या कुछ पीलापन लिया हुआ सफेद होता है। कन्द तोड़नेपर अन्दर कुछ चमकीले दिखते हैं। स्वाद-अति कड़ुआ होता है और जीभपर देरतक कड़ुआपन रहता है। अतीस नरम और भंगुर होती है, परन्तु विखमा सख्त होता है।

**गुण**—विखमा रसमें तिक्त (कड़ुआ), विपाकमें लघु, उष्णवीर्य, वातहर, कृमिघ्न, शूलघ्न, दीपन-पाचन और ज्वरघ्न है। इसमें **अतिसीन** नामका सत्त्व पाया जाता है।

**उपयोग**—अजीर्ण, पेटका दर्द, अजीर्णजन्य वमन, अतिसार और आध्मानमें इसको काली मिर्च और जावित्रीके साथ मिलाकर चूर्णके रूपमें देते हैं। जीर्णज्वर और कृमिविकारमें इसके सेवनसे लाभ होता है। हैजेमें भी इससे लाभ होता है।

**मात्रा**—२-५ रत्ती।

**वक्तव्य**—महाराष्ट्र और गुजरातके वैद्य इसका विशेषरूपसे प्रयोग करते हैं। अन्य प्रान्तके वैद्योंको भी इसका उपयोग करना चाहिये। विखमाको प्राचीन निघण्टुकारोंने अतीसकी एक जाति माना है—"अतिविषा शुक्लकन्दाऽपरा प्रतिविषा" (कैय्यदेवनिघण्टु)। 'अपरा प्रतिविषा' इससे स्पष्ट होता है कि कैय्यदेव प्रतिविषाको अतिविषासे भिन्न उसकी एक जाति मानते थे।

---

## (५) निर्विषा।

**नाम**—(सं.) निर्विषा(षी), अपविषा, विविषा, विषहा, विषहन्त्री, विषभवा, अविषा, विषवैरिणी; (हिं.) निर्बिषी; (फा.) माहबरवीन; (अ.) जद्वार; (ले.) डेल्फिनिअम् डेन्युडेटम्; (Delphinium denudatum)।

**उत्पत्तिस्थान**—हिमालयके खोतान (खता), लद्दाख, नेपाल, भोटान, तिब्बत आदि प्रदेशोंमें ८००० से १२००० फुटकी ऊँचाई पर होती है। राजनिघण्टुकारने इसका उत्पत्तिस्थान **केदारनाथ** (जि. गढ़वाल) बताया है।

**वर्णन**—बाजारमें जद्वारके कालाई लिये खाकी रंगके मूल मिलते हैं। मूल १ से १॥ इंच लंबे और शंकाकार होते हैं। स्वाद पहले कुछ मधुर और बादमें तिक्त होता है। इसको छीलकर चबानेसे बछनाग जैसी जीभपर सुन्नता और सनसनाहट नहीं मालूम होती[1]।

**विक्रयस्थान** (मंडी)—अमृतसर और दिल्ली।

---

[1] डेल्फिनिअम् डेन्युडेटमके पत्र और पुष्पका रंगीन चित्र Wild Flowers of Kashmir नामक ग्रन्थके ३ खंडमें पृ. १३ पर दिया है।

**गुण-कर्म**—निर्विषी रसमें कडवी, उष्णवीर्य, बलकारक, सर्वदोषहर, व्रणरोपक और कफ, वातरक्त तथा अनेक प्रकारके विषदोषोंका नाश करनेवाली है । इसका लेप सूजनको दूर करता है[1] ।

**यूनानी मत**—जद्वार एक बूटीकी जड़ है जो बछनागके समान शंक्वाकार (सनोबरी शकलकी), किञ्चित् सख्त और कड़वी होती है । यूनानी वैद्यकमें इसके ये पाँच भेद लिखे हैं—(१) बाहरसे श्यामवर्ण, भीतरसे बनफशई रंगकी तथा गोपुच्छाकार होती है । चखने पर प्रथम मधुर और बादको अत्यन्त कड़वी मालूम होती है । इस भेदको **जद्वार खताई** कहते हैं । क्योंकि यह खता-(खोतान) की पर्वतमालामें बहुतायतसे उत्पन्न होती है और यही अधिकतया औषधमें प्रयुक्त होती है । (२) भीतर और बाहरसे पिलाई लिये श्यामवर्ण, स्वादमें तिक्त और वृश्चिकपुच्छाकार होती है । इसको **जद्वार अकरबी**[2] कहते हैं । यह नेपाल और तिब्बतमें होती है । (३) भीतर और बाहरसे श्यामवर्ण, पीसनेपर नीलवर्ण और स्वादमें तिक्त होती है । यह नेपाल और तिब्बतमें होती है । (४) श्याही मायल और तिक्त होती है । यह भी नेपाल और तिब्बतमें होती है । (५) यह काली, नरम, अतितिक्त और एक बित्तातक लम्बी होती है । यह बछनागके समीप एक ही स्थानमें[3] उत्पन्न होती है । **प्रकृति**—(मिजाज-वीर्य) तीसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष । **गुण-कर्म**—विषनाशक, सौमनस्यजनन, उत्तमाङ्गोंको[4] और नाड़ीको बलप्रद, दोषविलयन, प्रमाथी, तारल्यजनक, दोषपाचन, वाजीकर, प्रवर्तक, अश्मरीनाशक, वेदनाशामक, लेखन तथा कफज और सोदावी रोगोंको दूर करनेवाली है । **अहितकर**—उष्ण प्रकृतिको । **निवारण**—धारोष्ण दूध और यवमण्ड । **मात्रा**—$\frac{3}{4}$ १ माशे तक । **आमयिक प्रयोग**—विषनाशक होनेके कारण सब प्रकारके उष्ण-शीत और खाद्य-पेय एवं दंशज विषोंमें प्रयोग की जाती है । इसको घिसकर पिलाते हैं तथा दंशज विषोंमें घिसकर दंशस्थानपर

---

१ "निर्विषाऽपविषा चैव विविषा विषहा तथा । विषहन्त्री विषभवा ह्यविषा विषवैरिणी ॥ निर्विषा कटुका सोष्णा कफवातास्रदोषनुत् । अनेकविषदोषघ्नी व्रणसंरोपणी च सा ॥ भाषानाम **निर्विषी** । केदारे उत्पत्तिः" (राजनिघण्टु-बनारसमुद्रित, पिप्पल्यादि वर्ग) । "निर्विषी श्याम-कन्दायां स्त्री ।" इयं चतुर्विधा भवति । "रक्ता श्यामा भृशं कृष्णा पीतवर्णा तथैव च । यथापूर्वं तु विज्ञेया वल्या श्रेष्ठा गुणोत्तमा ॥ सर्वदोषहरी भुक्ता लेपाच्छ्वयथुनाशिनी । श्लेष्मजान् विंशतिं रोगान् सद्यो हन्यान्निषेवणात् ॥" भावप्र. (श्च. चि., पृ. १४२७; वा. बृ. पृ. ४१०४) । २ **'अकरब'** अरबी भाषामें बिच्छूको कहते हैं । ३ राजनिघण्टुकारने निर्विषीका एक पर्याय **विषभवा** लिखा है (विषस्य समीपे भवतीति **विषभवा**) । ४ मस्तिष्क, हृदय और सिरको यूनानी वैद्यकमें **उत्तमाङ्ग** (आजाऽ रईसा) माना है ।

लगाते हैं । बछनागके विषमें वमन करानेके बाद इसको दूधमें घिसकर पिलाते हैं। वृश्चिक आदिके दंशपर मद्यमें घिसकर लगाते हैं। उत्तमाङ्गोंको बलप्रद, सौमनस्यजनन और विषनाशक गुणके कारण जनपदोध्वंसक रोगोंमें यह एक उत्तम रोगनिवारक है। प्लेग और हैजेमें उपयोग करनेसे यह उत्तमाङ्गोंका रक्षण करती है और उनकी शक्तिको बनाए रखती है। पीड़ाशामक होनेसे बाह्य और आन्तरिक वेदनाओंको शमन करनेके लिये इसका लेप किया जाता है तथा इसको खिलाते भी हैं। श्वयथुविलयन होनेके कारण सब प्रकारके शोथोंपर इसका प्रलेप किया जाता है। लेखन होनेके कारण इसके लेपसे सिध्म, श्वित्र, व्यंग तथा चेहरेके अन्य चिह्न दूर होते हैं । जद्वार स्रोतोंके अवरोधको दूर करनेवाली और दोषविलयन होनेके कारण स्रोतोंका अवरोध, कामला, मूत्रकृच्छ्र, कष्टार्तव और जलोदरमें लाभ करती हैं। वातनाड़ियोंको बलप्रद होनेसे पक्षाघात, अर्दित, अपस्मार, कम्पवात, त्वचाकी सुन्नता आदि वातरोगोंमें इसका प्रयोग किया जाता है । जद्वार प्रतिश्याय आदि कफरोगोंमें प्रयुक्त होती है ( यूनानी द्रव्यगुणविज्ञानसे उद्धृत ) ।

**वक्तव्य**—जद्वार एक उत्तम औषध है । हकीम लोग इसका पुष्कल प्रयोग करते हैं। वैद्योंको भी इसका प्रयोग करना चाहिये ।

---

## ( ७ ) ममीरा ।

**नाम**—( सं. ) पीतमूला; ( हिं., म. ) ममीरा, ममीरी; ( गु. ) ममीरो, ममीरी; ( आ. ) मिष्मीतीता[1]; ( फा. ) मामीरान; ( ले. ) कोप्टिस टीटा ( Coptis teeta ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—काबुलसे लेकर आसाम तक हिमालयके प्रदेशमें तथा चीनमें होता है ।

**वर्णन**—इसका काण्डहीन छोटा क्षुप होता है । क्षुप वर्षायु, परंतु मूल बहुवर्षायु होता है । पत्ती देखनेमें हंसराजकी पत्तीसी मालूम होती है । मूल ऊपरसे श्यामवर्ण और भीतरसे पीले होते हैं ।

**उपयुक्त अंग**—मूल । मूलमें **दारुहारिद्रिक ( बर्बेरिन् )** नामका सत्त्व पाया जाता है । **मात्रा**—एकसे दो माशेतक ।

**गुण-कर्म**—ममीरा रसमें तिक्त, वीर्यमें उष्ण और रूक्ष, लेखन, शोथहर, चक्षुष्य, ज्वरहर, दीपन, पाचन और सर है ।

---

१ यह आसामकी **मिष्मी** नामकी पर्वतमालामें अधिकतया होता है, वहाँकी **मिष्मी** नामकी जातिके लोग इसको बेचनेके लिये लाते हैं, तथा स्वादमें तीता ( तिक्त ) होता है इसलिये इसको आसाममें **मिष्मीतीता** कहते हैं ।

**उपयोग**—नेत्राभिष्यन्दमें आँखपर इसका लेप किया जाता है और २० भाग गुलाबके अर्कमें १ भाग ममीरा महीन पीस, कपड़ेसे छानकर बनाये हुए द्रवकी बूंदें नेत्रमें डाली जाती हैं । आँखकी फूलीमें शहदमें घिसकर लगाते हैं । आँखमें लगानेके सुरमेमें डाला जाता है । विषमज्वरको रोकनेके लिये १॥–३ मासे तककी मात्रामें ज्वर आनेके पूर्व ३–३ घंटसे ३ मात्रा देते हैं । यह कटुपौष्टिक और दीपन-पाचन होनेसे रोगान्तदौर्बल्यमें ५ से १० रत्तीकी मात्रामें अकेला या लोहभस्मके साथ मिलाकर दिया जाता है ।

**यूनानी मत**—यूनानी वैद्यकमें ऊपर लिखे हुए गुणोंके अतिरिक्त इसको कोष्ठ-वातप्रशमन और मूत्रल माना है । लेखन होनेके कारण नखोंका सफेद होना, श्वित्र, सिध्म, कच्छू, तथा त्वचाके दाग(धब्बे)में मधु और सिरकेके साथ इसको पीसकर लेप करते हैं । मूत्रल होनेके कारण अवरोधजन्य कामलामें अनीसूनके साथ पीसकर पिलाते हैं ।

---

## (८) पियारांँगा-पीआरंग ।

**नाम**—( सं. ) पीतरङ्ग; ( हिं. ) **पियारांँगा, पीलीजडी, शूम्रक;** ( ले. ) थेलिक्ट्रम् फोलिओलोझम् ( Thalictrum foliolosum ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—हिमालयमें सर्वत्र ५ से ९ हजार फुटकी ऊँचाईपर होता है । खासिया पर्वतमालापर विशेष होता है ।

**वर्णन**—पियारांँगाके मूल ललाई लिये पीले रंगके, १ अंगुली तक मोटे, ६ से ८ इंच तक लंबे और स्वादमें बहुत तिक्त होते हैं । इसके मूल विशेषतः चूर्णके रूपमें प्रयुक्त किये जाते हैं । कहीं कहीं इसको **ममीरा** भी कहते हैं ।

**उपयुक्त अंग**—मूल । इसके मूलमें **दारुहारिद्रिक ( बर्बेरीन्—Berberin )** सत्त्व पाया जाता है ।

**गुण-कर्म**—पियारांँगा रसमें तिक्त; वीर्यमें उष्ण और रूक्ष; कटुपौष्टिक, दीपन-पाचन, शोथहर, ज्वरघ्न, चक्षुष्य, मृदुरेचक, श्लेष्मनिःसारक और श्वासहर है ।

**नव्यमत**—पियारांँगा खानेसे पेटमें गरमी मालूम होती है, जठररस उत्पन्न होता है और अन्न पचता है । इसमें उत्तम कटुपौष्टिक गुण होनेके साथ यह सारक भी है । इसमें थोडा विषमज्वरको रोकनेका गुण भी है । जीर्णज्वरमें भी यह उपयोगी है । गंभीर रोगके पीछे जो शरीरमें दुबर्लता आती है उसमें और आमाशयकी शिथिलतासे जो कुपचन होता है उसमें विशेष उपयोगी है । इससे रोगीको भूख लगती है और प्रकृति अच्छी है ऐसा मालूम होता है । आँखकी

बीमारियोंमें पियारॉंगाका उपयोग ममीरीके समान किया जाता है । मात्रा २ से ५ रत्तीतक ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

**यूनानी मत**—पियारॉंगा वेदनास्थापन, श्वयथुविलयन, दीपन, श्लेष्मनिःसारक और विषनाशक है । हैजेमें इसे गुलाबपुष्पार्कमें घिसकर वारंवार पिलाते हैं । शीतल शोथोंको बैठानेके लिये और कई प्रकारके दर्दोंको शमन करनेके लिये इसका लेप करते हैं । कास, श्वास और फुप्फुसशोथमें उपयुक्त भेषजोंके साथ इसका प्रयोग करते हैं । **मात्रा**—४ से ८ रत्तीतक ।

---

## ( ९ ) उपकुञ्चिका-कलौंजी ।

### उपकुञ्ची च पृथ्वीका कालिका स्थूलजीरकः ।

**नाम**—( सं ) उपकुञ्ची, पृथ्वीका, कालिका, स्थूलजीरक; ( हिं. ) कलौंजी, मँगरैला; ( गु. ) कलोंजी: ( म. ) कलोंजी; ( बं. ) कालजीरा; ( फा. ) शोनिज, स्याह दाने; ( अ. ) हब्बतुस्सौदा; ( ले. ) नाईजेला सेटाइवा ( Nigella sativa ) ।

**वर्णन**—कलौंजीके त्रिकोणाकार काले रंगके बीज होते हैं । उनको मसलनेसे नीबू जैसी तीक्ष्ण सुगन्ध आती है । बीजको काटनेपर उसमें तैलसे भरा हुआ सफेद मगज दिखता है । बीजोंको गरम मसालेमें डालते हैं ।

**उपयुक्त अंग**—बीज ।

**गुण-कर्म**—"कारवी कुञ्चिकाऽजाजी यवानी-धान्य-तुम्बरु । रोचनं दीपनं वात-कफ-दौर्गन्ध्यनाशनम् ॥" ( च. सू. अ. २७, आहारयोगिवर्ग ) । "तीक्ष्णोष्णं कटुकं पाके रुच्यं पित्ताग्निवर्धनम् । कटु श्लेष्मानिलहरं गन्धाढ्यं जीरकद्वयम् ॥ कारवी करवी तद्वद्विज्ञेया सोपकुञ्चिका ॥" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "जीरकत्रितयं[1] रूक्षं कटूष्णं दीपनं लघु । संग्राहि पित्तलं मेध्यं गर्भाशयविशुद्धिकृत् ॥ ज्वरघ्नं पाचनं वृष्यं बल्यं रुच्यं कफापहम् । चक्षुष्यं पवनाध्मानगुल्मच्छर्द्यतिसारहृत् ॥" ( भा. प्र. हरीतक्यादिवर्ग ) । "पृथ्वीका कटुतीक्ष्णोष्णा वातगुल्मामदोषनुत् । श्लेष्माध्मानहरा जीर्णा जन्तुघ्नी दीपनी परा ॥" ( रा. नि. ) ।

कलौंजी रसमें कटु और तिक्त; विपाकमें कटु ( लघु ); वीर्यमें उष्ण, रूक्ष और तीक्ष्ण; रोचन, दीपन ( अग्निवर्धन ), दौर्गन्ध्यनाशन, ग्राही, पित्तकर, मेध्य, गर्भाशयशोधन, पाचन, बलकारक, वृष्य, सुगन्धी तथा कफ, वात, गुल्म, आमदोष, अफारा, वातगुल्म, वमन, अतिसार, कृमि और ज्वरका नाश करनेवाली है ।

---

१ जीरकत्रितयं—सफेद जीरा, स्याहजीरा और कलौंजी । सुश्रुत और भावमिश्रने इन तीनोंके गुण समान लिखे हैं ।

**नव्यमत**—कलौंजी तिक्त, सुगन्धी, कोष्ठवातप्रशमन, दीपन, ज्वरहर, कृमिघ्न और स्तन्यजनन है। इससे भूख लगती है, अन्न तथा घृत-तैल पचता है और पेटमें हवा नहीं भरती। यह त्वचा, स्तन तथा मूत्रपिंडके रास्तेसे बाहर निकलती है और बाहर निकलते समय इन अवयवोंको उत्तेजित करती है; अतः मूत्र तथा दूध बढ़ता है और पसीना आता है। गर्भाशयपर इसकी प्रत्यक्ष क्रिया होती है। गर्भाशयका संकोच-विकास जोरसे होता है और ऋतु साफ होता है। प्रसवके बाद स्त्रियोंको केवल कलौंजी देनेसे भूख लगती है, घी और अन्न पचता है, पेटमें हवा नहीं भरती, ऋतु साफ होता है, कमरकी पीड़ा कम होती है, मूत्र साफ होता है और पुष्कल दूध उत्पन्न होता है। विषमज्वरमें ½ तोला कलौंजी जरा भूनकर गुड़के साथ मिलाकर देते हैं। त्वग्रोगमें कलौंजी खानेको देते हैं और तैलमें मिलाकर लगाते हैं। इससे कण्डू कम होती है। सूजे हुए अर्शको कलौंजीकी धूनी देते हैं, इससे मसेकी वेदना और सूजन कम होती हैं। इसको खिलानेसे गोलकृमि पड़ते हैं। विरेचन द्रव्योंके साथ मिलाकर देनेसे पेटमें मरोड़ (ऐंठन) नहीं होता। **(डॉ. वा. ग. देसाई)।**

**यूनानी मत**—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है। **मात्रा** १ से ३ माशे तक। **प्रतिनिधि**-अनीसून। कलौंजी आर्तव, स्तन्य और मूत्रका प्रवर्तन करती है। सर्द खांसी, प्रतिश्याय, उरोवेदना, जलोदर, वातजन्य उदरशूल और पेटके कृमिमें लाभकारी है। इसके लेपसे सूजन उतरती है। कलौंजीको जलाकर बनाई हुई मसी मोम और तेलमें मिलाकर सिरके गंजपर लगाना गुणकारी है। इसे छासमें पीस, गरम करके नारूपर लगानेसे नारू बाहर निकल आता है। कलौंजी ५ तोला, बावची ५ तोला, गूगल ५ तोला, दारुहल्दी ५ तोला और गन्धक २॥ तोला, इनके कल्कमें १ प्रस्थ नारियलका तेल सिद्ध करके लगानेसे पामा, विचर्चिका आदि त्वचाके रोगोंमें लाभ होता है।

---

## (१०) ऊदसलीब।

**नाम**—(अ.) ऊदसलीब; (पं.) मामेख(?); (इं.) हिमालयन् पेओनी (Himalian Paeony); (ले.); पेओनिआ इमोडी (Pæonia emodi)।

**वर्णन**—ऊदसलीबके मूल जो बाजारमें मिलते हैं वे प्रायः यूरोपसे आते हैं। हिमालयमें यह हजारासे कुमाऊं तकके प्रदेशमें ५ से १० हजार फुटतककी ऊँचाई पर होता है। मूल १ से ३ इंच लंबे, ½ से ¾ इंच मोटे, मध्यमें मोटे और दोनों छोरोंकी ओर गोपुच्छाकार होते हैं। बाहरी पृष्ठ भूरा होता है और उसपर लंबाईके रुखमें गहरी रेखायें होती हैं। भीतरी भाग सफेद पिष्टमय होता है। काटनेपर छिलका कड़ा और कुछ पीले रंगका मालूम होता है। स्वाद किञ्चित् चरपरा होता है।

**उपयुक्त अंग**—मूल। इसका चूर्णके रूपमें प्रयोग होता है। यूनानी हकीम इसका अधिक उपयोग करते हैं।

**गुण-कर्म**—ऊदसलीब उष्ण और रूक्षवीर्य, रजःप्रवर्तक, मूत्रल तथा नाडियों-( ज्ञानतन्तुओं )को बल देनेवाला है। ऊदसलीब गर्भाशयके रोग, उदरशूल, जलोदर अपस्मार, आक्षेपक ,अपतन्त्रक ( हिस्टीरिया ), कम्पवात, पक्षाघात, अश्मरी और पित्तावरोधमें प्रयुक्त होता है। बच्चोंको रक्तशोधनार्थ देते हैं।

**मात्रा**—१ से ३ माशेतक। अधिक मात्रामें देनेसे सिरका दर्द, कानमें आवाज, दृष्टिभ्रम और वमन होता है। **निवारण**—गुलकन्द और मुलेठी।

---

## भव्यादिवर्ग २.

## N. O. Dilleniaceæ. ( डिल्लेनिएसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थबीजकोश; पर्णक्रम—एकान्तर; पर्ण सादे, बडे, चर्मसदृश; पुष्पबाह्यकोशके दल ५, स्थायी; पुष्पाभ्यन्तर-कोशके दल ४ से ५, पूर्वपाती; पुंकेशरसंख्या अनियमित; परागकोश अन्तर्मुख होते हैं।

---

### (११) भव्य।

**( सं. ) भव्य; ( बं. ) चाल्ता; ( म ) करंबळ, करमळ; ( ले. ) डिल्लेनिआ इण्डिका** ( Dillenia Indica )।

**वर्णन**—यह फल बंगाल, उड़ीसा और कोंकण आदिमें होता है। पक्के फल दाल, साग और चटनीमें खटाईके लिये डालते हैं। कच्चे फल कषाय और पके फल खट-मीठे होते हैं। भव्यमें पुष्पबाह्यकोश कायम रह कर मांसल हो जाता है और यह फलका अधिकांश होता है।

**गुण-कर्म**—**"हृद्यं स्वादु कषायाम्लं भव्यमास्यविशोधनम्। पित्तश्लेष्मकरं ग्राहि गुरु विष्टम्भि शीतलम्॥" ( सु. सू. अ. ४६. फलवर्ग )। "मधुराम्लकषायं च विष्टम्भि गुरु शीतलम्। पित्तश्लेष्मकरं भव्यं ग्राहि वक्त्रविशोधनम्॥" ( च. सू. अ. २७. फलवर्ग )।**

भव्य रसमें मधुर, अम्ल और कषाय; विपाकमें गुरु; शीतवीर्य; हृद्य, ग्राही, विष्टम्भि, मुँहको साफ करनेवाला और कफ तथा पित्तको उत्पन्न करनेवाला है।

**नव्यमत**—फलके रसमें चीनी और जल मिलाकर ज्वरमें शीतल पानकके रूपमें दिया जाता है। इसे खांसीमें देनेसे कफ पतला होकर गिर जाता है और दस्त भी साफ होता है। फल अधिक खानेसे अतिसार होता है। वृक्षकी त्वचा और पत्र ग्राही हैं।

---

# चम्पकादिवर्ग ३.

## N. O. Magnoliaceæ. ( मॅग्नोलिएसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थबीजकोश; पर्ण अखंड और एकान्तर; पुष्प सुगन्धि, नियमित, शाखाके अग्रसे या पत्रकोणसे निकलते हैं; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ३-३ चक्राकारमें होते हैं; पुंकेशर अनियत; फलोंके गुच्छे लगते हैं और उसमें बड़े बीज होते हैं।

---

### ( १२ ) चम्पक.

**चम्पकः स्वर्णपुष्पश्च काञ्चनः षट्पदातिथिः।**

**नाम**—( सं. ) चम्पक, स्वर्णपुष्प, पीतपुष्प, काञ्चन, षट्पदातिथि; ( हिं. ) चंपा; ( पं. ) चंपा, चंबा; ( बं. ) चांपा; ( म. ) पिंवळा चांफा, सोनचांफा; ( गु. ) पीळो चंपो, रायचंपो; ( ते. ) चांपेमु, चंपकमु; ( ता. ) संबगम्; ( का. ) संपिगे; ( मल. ) चंपकम्; ( ले. ) माइकेलिया चंपक ( Mihelia Champaca )।

**वर्णन**—चंपाके वृक्ष अपने सुगन्धि पुष्पोंके कारण बगीचोंमें लगाये जाते हैं। वृक्ष सुंदर, सीधा और ऊँचा होता है। पर्ण एकान्तर, नीचे चौड़े, सिरेपर नोकदार, ८ से १० इंच लंबे और २॥ से ४ इंच चौड़े होते हैं। पुष्प पीले रंगके होते हैं और वर्षाऋतुमें आते हैं। त्वचा बाहरसे फीके भूरे रंगकी और भीतरसे ललाई लिये भूरे रंगकी होती है।

**उपयुक्त अंग**—पुष्प और त्वचा। त्वचा कटु, कुछ तिक्त, कषाय और सुगन्धित होती है। त्वचामें सुगन्धि तैलके साथ मिश्रित कटु और कषाय द्रव्य होता है। छालको फांट किंवा चूर्ण बनाकर देना चाहिये, क्वाथ नहीं करना चाहिये। क्वाथ करनेसे सुगन्धि तैल उड़ जाता और केवल कषाय द्रव्य काढेमें अधिक उतरता है।

**गुण-कर्म**—"चम्पकं रक्तपित्तघ्नं तिक्तोष्णं कफनाशनम्" ( सु. सू. अ. ४६. पु. व. ) "चम्पकः कटुकस्तिक्तः शिशिरो दाहनाशनः। कण्डूकुष्ठव्रणहरः कफपित्तविनाशनः॥" ( रा. नि. )। "चम्पकं कटुकं तिक्तं कषायं मधुरं हिमम्। निहन्ति कफपित्तास्रमूत्रकृच्छ्रविषक्रिमीन्॥" ( कै. नि. )। "चम्पकशिफाकषायो निरुणद्धि मूत्रमवशगम्।" ( वै. म. )। "चम्पकं कुसुमं शीतं चक्षुष्यं विशदं शुभम्॥" ( क्षे. कु. )।

चंपा रसमें कटु, तिक्त, कषाय और मधुर; शीतवीर्य; चक्षुष्य तथा रक्तपित्त, दाह, कुष्ठ, कंडू, व्रण, मूत्रकृच्छ्र, विष, कृमि, रक्तविकार, कफ और पित्तका नाश करनेवाला है।

**नव्य मत**—चंपककी त्वचा कटुपौष्टिक, सुगन्धि, दीपन, स्वेदजनन, विषमज्वर-प्रतिबन्धक, मूत्रजनन, वातहर, कफहर, आमनाशन, गर्भाशयोत्तेजक, शोथहर, व्रणशोधन और रसायन है। चंपाके फूल तिक्त, दीपन, वायुनाशक, संकोचविकाशप्रति-बन्धक, मूत्रजनन, दाहनाशन, कुष्ठ-कण्डू-व्रणहर और उत्तम उत्तेजक हैं। मूलकी त्वचा मूत्रविरजन, आर्तवजनन और शोथहर है।

**उपयोग**—विषमज्वरमें चंपाकी छालका फांट ठंढी भरनेके पहले १-१ घंटेसे तीन बार और ज्वर चढनेके बाद ३-३ घंटेसे दिया जाता है। उपदंशकी दूसरी अवस्थामें व्रण, दुष्टव्रण, कोथ, गण्डमाला और सन्धिबन्धनका मोटा होना इत्यादि विकारोंमें त्वचा दी जाती है। आमवात और जीर्ण सन्धिवातमें त्वचा उपयोगी है। मूलकी छाल अनार्तव और पीडितार्तवमें उपयोगी है। फूलोंका फांट सुजाकमें देनेसे पेशाबकी जलन कम होती है और मूत्रका प्रमाण बढ़ता है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## सीताफलादि वर्ग ४.

### N. O. Anonaceæ (ॲनोनेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल, अधःस्थबीजकोश; **पर्ण**—सादे, एकान्तर, अखण्डित किनारीवाले; पुष्पबाह्यकोशके दल ३; पँखडियां ६,३-३ के दो चक्रोंमें; पुंकेशर अनियत; स्त्रीकेशरनलिका बहुत बारीक; बीज बड़ा और सख्त।

---

### (१३) सीताफल।

**सीताफलं गण्डगात्रं कृष्णबीजं तथैव च।**

**नाम**—(सं.) सीताफल, गण्डगात्र, कृष्णबीज; (हिं. म. गु.) सीताफल; (बं.) आता; (ता.) आत्तापळम्; (अ.) शरीफा; (ले.) एनोना स्क्वॅमोसा (Anona squamosa)।

**वर्णन**—सीताफल एक प्रसिद्ध फल है जो खाया जाता है।

**उपयुक्त अंग**—फल खाया जाता है। पत्र और बीजका कल्क लेपके काममें आता है।

**गुण-कर्म**—**सीताफलं तु मधुरं शीतं हृद्यं बलप्रदम्। तर्पणं बृंहणं दाह-रक्तपित्त-मरुत्प्रणुत्॥**

सीताफल मधुर, शीतवीर्य, हृद्य, बलकारक, तृप्तिजनन, बृंहण तथा दाह, रक्तपित्त, और वायुका नाश करनेवाला है।

सीताफलके पत्र या बीजका कल्क सिरमें लगानेसे सिरके बालोंमें पड़ी हुई जूं

मर जाती हैं । कल्क लगाकर सिरको कपड़ेसे बांध लेना चाहिये । २–३ घंटे बाद सिरको नीचा करके आँखोंमें पानी न जाने पावे इस प्रकार सावधानीसे सिर धोना चाहिये । दुष्टव्रणमें कीड़े पड़े हों तो इसके पत्रका कल्क लगाया जाता है । इससे कीड़े मर जाते हैं ।

---

## गुडूच्यादि वर्ग ५.

### N. O. Menispermaceæ ( मेनिस्पर्मेसी ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थबीजकोश; पर्णक्रम–एकान्तर; पर्ण–सादे, अखंड, लंबे, सवृन्त; पुष्प छोटे, हरे किंवा पीले, नियमित और पत्रकोणोद्भूत; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ६–६; पुंकेशर नियत और पुष्कल; दोनों कोशोंके दल और पुंकेशर दो चक्रोंमें; बीज मांसल होते हैं ।

---

### ( १४ ) गुडूची ।

**नाम—(सं.)** गुडूची, अमृता, छिन्नरुहा, छिन्नोद्भवा, कुण्डलिनी, चक्रलक्षणा, वत्सादनी; ( हिं. ) गिलोय; ( बं. ) गुलंच; ( म. ) गुळवेल; ( कों. ) गरुडवेल; ( गु. ) गळो; ( सिं. ) गिलोर; ( कच्छ ) गडू; ( क. ) अमरदवळ्ळि; ( ते. ) तिप्पतीगे; ( मल. ) चिट्टामृतम्; पैय्यमृतम्; ( ले. ) टिनोस्पोरा कोर्डिफोलिया ( Tinospora corbifolia ) ।

**वर्णन**—गिलोयकी बहुवर्षायु, मांसल और बड़े वृक्षोंपर चढ़नेवाली बड़ी लता होती है । पत्र एकान्तर, मसृण और हृदयाकृति होते हैं । इसके काण्डसे अवरोह-मूल निकलते हैं । फूल छोटे, पीले रंगके गुच्छोंमें लगते हैं । फल लाल रंगके होते हैं । काण्डकी अन्तस्त्वचा हरे रंगकी और मांसल होती है । बाह्यत्वचा सफेदाई लिये हुए भूरे रंगकी होती हैं । काण्डको काटनेसे अन्दरका भाग चक्राकार दिखता है ।

**गुणकर्म**—"वायुं वत्सादनी हन्याद्" (च. सू. अ. २७) । "अमृता सांग्राहिक-वातहर-दीपनीय-श्लेष्म-शोणित-विबन्धप्रशमनानाम्" (च. सू. अ. २५) । ××× गुडूची ××× । ××× तिक्ता पित्तकफापहा ।" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "ज्ञेया गुडूची गुरुरुष्णवीर्या तिक्ता कषाया ज्वरनाशिनी च । दाहार्ति-तृष्णा-वमि-रक्तवात-प्रमेह-पाण्डु-भ्रमहारिणी च ॥" ( रा. नि. ) । **चरके** (सू. अ. ४) तृप्तिघ्ने, स्तन्यशोधने, तृष्णानिग्रहणे, दाहप्रशमने, वयःस्थापने च गणे; तथा **सुश्रुते** ( सू. अ. ३८ ) आरग्वधादौ, पटोलादौ, काकोल्यादौ, गुडूच्यादौ, वल्लीपञ्चमूले च गणे गुडूची पठ्यते । **रसायने गुडूची** "× रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्प्याः"

**( च. चि. अ. १ ) । विषमज्वरे गुडूची—"गुडूच्या रसमेव वा" ( च. चि. अ. ३ ) । कामलायां गुडूची "× × गुडूच्या वा × × रसम् । शीतं मधुयुतं प्रातः कामलार्तः पिबेन्नरः ॥" ( च. चि. १६ ) ।**

गिलोय रसमें तिक्त, कुछ कषाय; गुरु, उष्णवीर्य, ग्राही, दीपनीय, रक्तशोधन, विबन्धप्रशमन, वात-पित्त-कफहर, तृप्तिघ्न, स्तन्यशोधन, तृषानिग्रहण, दाहप्रशमन, वयःस्थापन, रसायन और ज्वर, वमन, वातरक्त, प्रमेह, पाण्डुरोग, कामला, श्वेतप्रदर तथा भ्रमको दूर करनेवाली है ।

**नव्यमत**—"गिलोय कटुपौष्टिक, पित्तसारक, संग्राहक, त्वग्रोगहर, मूत्रजनन और ज्वरहर है । गिलोय उत्तम मूत्रजनन और मूत्रविरजनीय है । इस कार्यके लिये गिलोय बड़े प्रमाणमें देनी चाहियें । सर्व प्रकारके प्रमेहमें गिलोयका स्वरस या सत्त्व देते हैं । बस्तिशोथमें सत्त्व बहुत गुणकारक है । मूत्रेन्द्रियके अभिष्यन्दप्रधान रोगमें गिलोयके साथ पाठा देना चाहिये । नये सुजाकमें गिलोयका स्वरस देनेसे मूत्रका दाह कम होता है और प्रमाण बढ़ता है । सर्व प्रमेहमें गिलोयके दो से तीन ड्राम स्वरसमें पाषाणभेदका चूर्ण ( ५ से ८ रत्ती ) और शहद मिलाकर देते हैं । गिलोय त्वग्रोगों ( कुष्ठ )में प्रधान औषध है । इससे त्वचाकी कण्डू और दाह कम होता है। गिलोयसे भूख लगती है, अन्न पचता है, रक्त बढ़ता है और शक्तिमें वृद्धि होती है। ज्वर किंवा अन्य बीमारीके बाद जो दुर्बलता आती है उसमें गिलोय देते हैं। गिलोयसे पित्त अच्छी तरहसे बहने लगता है और यकृत्की पित्तवाहिनियोंका और आमाशयके अन्दरकी श्लेष्मल त्वचाका अभिष्यन्द कम होता है । इसलिये कुपचन, पेटका हलका दर्द और कामलामें गिलोयसे लाभ होता है । जीर्ण अतिसार तथा आंव और अम्लपित्तमें गिलोयका सत्त्व हितावह है । इससे पचननलिकाकी अधिक अम्लता कम होती है । गिलोयका मिश्रित फांट उत्तम रसायन है । इससे जीर्ण आमवात और फिरंगोपदंशकी द्वितीयावस्थामें अच्छा लाभ होता है ।

**गुडूचीका मिश्रित फांट**—१० तोले ताजी गिलोयको धो और पीसकर बनाया हुआ कल्क तथा १० तोले अनन्तमूलका चूर्ण दोनोंको १०० तोले उबलते हुए जलमें डाल, पात्रको बंद करके दो घंटे रख छोड़े । बाद हाथसे मसलकर कपड़ेसे निचोड़ ले । **मात्रा**—५ से १० तोला दिनमें ३ वार देवे । यह फांट उत्तम रसायन और मूत्रजनन है" ( **डॉ. वा. ग. देसाई** ) ।

**गुडूच्यादि चूर्ण**—गिलोय, अतीस, सोंठ, चिरायता, कालमेघ, नागरमोथा, पीपल, यवक्षार, कासीसभस्म और चंपाके वृक्षकी छाल—प्रत्येक समभाग; एकत्र मिलाकर चूर्ण बनावे । मात्रा १० रत्ती । इससे यकृत् और प्लीहाके रोग, पाण्डुरोग, अग्निमान्द्य, अरुचि, ज्वर आदि विविध रोगोंमें लाभ होता है ( **भा. भै. र.** ) ।

**गुडूचीप्रधानयोग—संशमनी वटी** ( सि. यो. सं., ज्वराधिकार ), **गुडूच्यादिमोदक** ( सि. यो. सं., राजयक्ष्माधिकार ), **गुडूचीसत्त्व** ( द्र. गु. वि., प. खं., पृ. ४८ ), **अमृताद्यरिष्ट** ( भै. र. ज्वराधिकार ) ।

**उपयुक्त अंग—काण्ड** । जहाँतक बने गिलोय ताजी काममें लेना चाहिये । सुखाकर रखना हो तो बाह्यत्वचा निकाल, छोटे छोटे टुकड़े कर, छायामें सुखाकर रखनी चाहिये ।

**मात्रा**—चूर्ण १॥ से ३ माशा; क्वाथ ४-८ तोला; सत्त्व ५-१५ रत्ती ।

**संग्रहणकाल**—ग्रीष्मऋतुमें वर्षाके पूर्व संग्रह करना चाहिये ।

---

## ( १५ ) पाठा ।

**नाम—( सं. )** पाठा, अम्बष्ठा, अम्बष्ठकी, वन( र )तिक्ता, अविद्धकर्णी, पीलुफला; **( हिं. )** पाढ; **( गु. )** काली पाठ, करंढियुं; **( म. )** पहाडवेल, वेल पाडली, पाडावल; **( बं. )** आकनादि; **( ते. )** पाडा; **( का. )** पाड़ावळि, **( मल. )** पाडक्किळंगु; **( ले. )** राजपाठा–साइक्लिआ पेल्टेटा–( Cyclea peltata ), लघुपाठा–सिसेम्पेलोझ् पॅरेरा ( Cissampelos Pareira ) ।

**वर्णन**—पाठाकी छोटी और बड़ी दो जातियाँ होती हैं । बड़ीको **राजपाठा** और छोटीको **लघुपाठा** कहते हैं । **चरक** चि. अ. १८ में **त्र्यूषणादिघृतमें 'द्वे पाठे'** ऐसा उल्लेख है । उसकी व्याख्यामें **चक्रपाणिदत्त** लिखते हैं कि **"द्वे पाठे** इत्यनेन स्वल्पपत्रां द्वितीयां पाठां ग्राहयन्ति" ।

पाठाकी आरोहिणी या प्रतानिनी लता होती है । पत्र हृदयाकृति, लोमश; पत्रका अपर पृष्ठ गहरे हरे रंगका और थोड़ा रोमश तथा अधर पृष्ठ फीके रंगका और अधिक रोमश होता है । इसमें नर और मादा पुष्प अलग अलग होते हैं । पुष्पका रंग पीलाई लिये हुए होता है । राजपाठाके फल उड़दकी दाल जैसे और रोमश होते हैं तथा लघुपाठाके फ़ल मटरके बराबर, लाल रंगके और पीलु जैसे होते हैं ।

**गुण-कर्म**—"पाठा × × शाकं × × । विद्याद्ग्राहि त्रिदोषघ्नं" ( च. सू. अ. २७ ) । **चरके** ( सू. अ. ४ ) सन्धानीये, स्तन्यशोधने, ज्वरहरे च गणे तथा **सुश्रुते** ( सू. अ. ३८ ) आरग्वधादौ, पिप्पल्यादौ, बृहत्यादौ, पटोलादौ, अम्बष्ठादौ, मुस्तादौ च गणे पाठा पठ्यते । "पाठा तिक्तरसा बल्या विषघ्नी कुष्ठकण्डुनुत् । छर्दिहृद्रोगज्वरजित्त्रिदोषशमनी परा ॥ पाठातिसारशूलघ्नी कफपित्तज्वरापहा ।" ( ध. नि. गुडूच्यादि वर्ग ) ।

पाठा रसमें तिक्त, विपाकमें लघु, उष्णवीर्य, ग्राहि, सन्धानीय, स्तन्यशोधन,

त्रिदोषशमन, बल्य तथा ज्वर, अतिसार, विष, कुष्ठ, कण्डू, वमन, शूल ( पेटका दर्द ) और हृद्रोगका नाश करनेवाली है।

**नव्यमत**—पाठा लघु, तिक्त, बल्य, ग्राही, मूत्रजनन और शोथहर है। अल्प प्रमाणमें देनेसे भूख लगती है, अन्न पचता है और अन्त्रकी श्लेष्मलत्वचा(कला)को शक्ति मिलती है। बड़े प्रमाणमें देनेसे दस्त साफ होता है। मूत्रेन्द्रियकी श्लेष्मकलापर इसकी संग्राहक, शामक और बलकारक क्रिया होती है। पाठा मूत्रेन्द्रियसे बाहर निकलती है इसलिये मूत्रेन्द्रियको उत्तेजित करके मूत्रका प्रमाण बढ़ाती है। नूतन और जीर्ण बस्तिशोथ, बस्तिका अभिष्यन्द, मूत्रकृच्छ्र, रक्तमूत्र और सान्द्रमेहमें पाठा बड़े प्रमाणमें दी जाती है। इन विकारोंमें पाठाके साथ गिलोय और मुलेठी भी देते हैं। कुपचन, पेटका दर्द, अतिसार, ज्वरातिसार तथा रक्तप्रवाहिकामें पाठा अल्प प्रमाणमें देते हैं। आँतोंकी बीमारीमें पाठाके साथ सुगन्धि द्रव्य देते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

**उपयुक्त अंग**—मूल। **मात्रा**—मूलका चूर्ण १०-३० रत्ती।

---

## ( १६ ) कलंबा।

**नाम—( म. )** कलमकाचरी; **( गु. )** कलुंबो; **( इं. )** केलुम्बा रूट Calu-ba root; **( ले. )** जेटीओराइझा पामेटा ( Jateorhisa palmata )।

**वर्णन**—बाजारमें कलंबाके चक्राकारमें काटे हुए मूल मिलते हैं। ये अफ्रीकाके **मोजाम्बिक** प्रदेशसे हिन्दुस्तानमें बिकनेके लिये आते हैं।

**गुण-कर्म**—कलंबा रसमें तिक्त, विपाकमें लघु, उष्णवीर्य, दीपन-पाचन और जीर्णज्वरनाशक है।

**नव्यमत**—इसमें दारुहारिद्रिक, कलंबीन और पिष्ट ये सत्त्व पाये जाते हैं। यह कटुपौष्टिक, दीपन और पित्तसारक है। इसका कटुपौष्टिक गुण उत्तम है। तिक्त ( कड़ुए ) पदार्थ मुँहमें डालने पर लाला उत्पन्न होती है। लालारस आमाशयमें जानेपर आमाशय उत्तेजित होता है और अम्लरस अधिक उत्पन्न होता है। इससे आमाशयकी पचनक्रिया अच्छी होती है और वह अच्छी होनेपर पक्वाशयकी पचनक्रिया भी अच्छी सुधरती है। इसप्रकार दोनों स्थानोंकी पचनक्रिया सुधरनेपर **वसा**[1] नामक रस बढ़ता है और उससे रक्त और रक्तके अन्दरके पोषक द्रव्य भी बढ़ते हैं। वसारस बढ़नेसे हृदय और नाडियोंको पुष्टि मिलती है और इससे सर्व शरीरको पुष्टि मिलकर शरीरकी सब क्रियाएँ उत्तम रूपसे चलती हैं। सब कड़वे ( तिक्त ) द्रव्योंकी क्रिया शरीर पर इस प्रकार होती है। इसलिये ऐसे पदार्थोंको **कटुपौष्टिक**[2] मानते हैं। कटुपौष्टिक

---

१ Chyle-काइल। २ Bitter Tonics-बिटर टॉनिक्स।

द्रव्योंकी आवश्यकता दो प्रकारके व्याधियोंमें होती है । एक आमाशय और आँतोंके रोग जिनमें भूख नहीं लगती, अन्न नहीं पचता और दस्त अधिक होते हैं, जैसे अतिसार और ग्रहणीरोग। दूसरा जब सर्व शरीरमें शिथिलता आती है तब इन द्रव्योंकी आवश्यकता होती है। पचनेन्द्रियोंके शैथिल्यप्रधान रोगोंमें कलंबा देते हैं।'' (डॉ. वा. ग. देसाई)।

कलंबा चूर्ण या हिमके रूपमें दिया जाता है। **मात्रा**-चूर्ण ५-२० ग्रेन । हिम २-४ तोला।

बंबई प्रान्तके वैद्य कलंबाका चिरकालसे प्रयोग करते हैं। अन्य प्रान्तोंके वैद्योंको भी इसका प्रयोग करना चाहिये।

---

# दारुहरिद्रादि वर्ग. ६

## N. O. Berberidæ (बर्बेरिडी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थबीजकोश; **पर्ण**—सादे किंवा संयुक्त; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल दो चक्रोंमें; बीजकोश एक; फल मांसल।

---

### (१७) दारुहरिद्रा।

**नाम**—(सं.) दारुहरिद्रा, कटङ्कटेरी, पचम्पचा, दार्वी; (क.) कावदच्छ-मूल, दांलिद्धर; (पं.) दारहल्दी, सिम्लू (पहाडी इलाका); (म.) दारुहळद; (गु.) दारुहळदर; (बं.) दारुहरिद्रा; (ग.) किनगोड़, तोतरा; (फा.) दारचोब; (ले.) बर्बेरिस ॲरिस्टेटा (Berberis Aristata)।

**प्राप्तिस्थान**—हिमालयमें ५-७ हजार फुटकी ऊँचाईपर होती है।

**वर्णन**—दारुहलदीका काँटेदार ६-८ फुट ऊंचा गुल्म होता है । पत्र कठोर, पत्रकी किनारी काँटेदार, फूल पीले रंगके और फल छोटी किशमिश जैसे ललाई लिये हुए काले रंगके होते हैं। छाल धूसरवर्ण और भीतरकी लकड़ी हलदी जैसे पीले रंगकी होती है। इसीलिये इसको **दारुहरिद्रा** कहते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) लेखनीये, अर्शोघ्ने, कण्डूघ्ने च गणे तथा **सुश्रुते** (सू. अ. ३८) हरिद्रादौ, मुस्तादौ, लाक्षादौ च गणे दारुहरिद्रा पठ्यते। "तिक्ता दारुहरिद्रा स्याद्रूक्षोष्णा व्रणमेहनुत् । कर्णनेत्रमुखोद्भूतां रुजं कण्डूं च नाशयेत् ॥" (ध. नि. गु. व.)। "कण्डूविसर्पत्वग्दोषविषकर्णाक्षिरोगहृत्।" (रा. नि. पि. व.)।

**कल्प-रसाञ्जन**—क्काथो दार्व्याः पुनः पाकाद्घनीभूतो रसाञ्जनम् । **रसाञ्जनगुणाः**-रसाञ्जनं हिमं तिक्तं रक्तपित्तव्रणापहम् । व्रणशोथहरं नेत्र्यं विषमज्वरनाशनम् ॥

दारुहलदी रसमें तिक्त, विपाकमें कटु, रूक्ष, उष्णवीर्य, लेखन तथा अर्श, कुष्ठ, कण्डू, व्रण, प्रमेह, मुख-नेत्र-कर्ण-रोग और विसर्पका नाश करनेवाली है ।

**रसाञ्जन**—वर्षाऋतुके अन्तमें दारुहलदीके मूल और लकड़ीका क्काथ कर, उस क्काथको फिर पक्का करके रसक्रिया बनाते हैं; उसको **रसाञ्जन**[1] कहते हैं ।

**नाम**—( सं. ) रसाञ्जन; ( हि ) रसौत, रसोंत; ( म. ) रसाञ्जन; ( गु.) रसवन्ती; ( सिंध ) रसवल ।

**गुण-कर्म**—रसाञ्जन तिक्त, शीतवीर्य; तथा रक्तपित्त, व्रण, व्रणशोथ, नेत्रके रोग और विषमज्वरको नाश करनेवाला है । दारुहलदी और रसाञ्जन दोनों व्रणशोधन और व्रणरोपण हैं ।

**नव्यमत**—दारुहलदी तिक्त, उष्ण, कटुपौष्टिक, सौम्य ग्राही, विषमज्वरघ्न, स्वेदजनन, ज्वरहर, श्लेष्मघ्न और त्वग्दोषहर है । रसौत शोथघ्न, कफघ्न, विषम-ज्वरप्रतिबन्धक और स्रंसन है । दारुहलदीके फल ( झरिष्क ) शीतल, अम्ल और रोचक हैं । थोड़ी मात्रामें दारुहलदी कटुपौष्टिक, दीपन और सौम्य ग्राही है। बड़ी मात्रामें जोरदार स्वेदन, ज्वरहर और मृदु रेचक है । बड़ी मात्रामें यह पालीके ज्वरको रोकती है । इसका यह गुण कुनैन जैसा है । परन्तु कुनैनसे जैसा रोगीको त्रास होता है ऐसा इससे नहीं होता । जीर्णज्वरमें जैसे कुनैनसे बढ़ी हुई प्लीहाका संकोचन होता है ऐसा इससे भी होता है । विषमज्वरमें पहले हलका जुलाब देकर पीछे १५ रत्ती रसौत जलमें मिलाकर देते हैं । ऐसी दिनमें ३ मात्रा देते हैं। रसौत देनेके बाद रोगीको खूब कपड़ा ओढ़ाकर सोने देना चाहिये । कुछ देरके बाद रोगीको प्यास लगेगी । परन्तु जल पीनेको नहीं देना चाहिये । एक घंटे बाद उसको पसीना आवेगा । पसीना पोंछ कर उसको पेया या गरम दूध पिलाना चाहिये । दारु-हलदीसे त्वचा और त्वचाके नीचेकी रसग्रन्थियोंकी विनिमयक्रिया सुधरती है। इसलिये फिरंगोपदंश, गंडमाला, अपची, नाड़ीव्रण, भगन्दर, व्रण और विसर्पमें दारुहलदीसे लाभ होता है । इन रोगोंमें रसौत खानेको देते हैं और इसका लेप कराया जाता है । श्वेतप्रदर और गर्भाशयकी शिथिलतासे उत्पन्न अत्यार्तवमें दारु-हलदीका क्काथ या रसौत दी जाती है । **( डॉ. वा. ग. देसाई )** ।

---

१ रसोत अपने घरपर बनाकर उपयोगमें लेना चाहिये । बाजारकी रसौतमें मिट्टी, पत्ती आदि अन्य द्रव्य मिले होते हैं । उसको चौगुने पानीमें घोल, १—२ घंटा रख, ऊपरका पानी निथार, कपड़ेसे छानकर मंदाग्निपर रसक्रिया जैसा गाढ़ा करले । बाजारकी रसौतको इस प्रकार शुद्ध करके ही काममें लेना चाहिये ।

रसौत, फिटकिरी और अफीमको नीबूके रसमें पीसकर आँखकी सूजनमें आँखपर लेप किया जाता है। अर्शमें रसौत और नीमके फलकी मजा समभाग ले, उसको मूलीके स्वरसकी सात भावनायें देकर बनाई हुई गोलियाँ खिलानेसे लाभ होता है। व्रणशोथपर रसौतका लेप किया जाता है। एक औंस उत्तम गुलाबके अर्कमें २ रत्ती रसौत और २ रत्ती फिटकिरी डालकर बनाये हुए द्रवके बिन्दु नेत्रमें डालनेसे नेत्राभिष्यन्दमें लाभ होता है। उबले हुए जलमें रसौत मिलाकर बनाये हुए द्रवसे व्रणको धोनेसे और सुजाकमें शिश्नमें तथा प्रदरमें योनिमें उत्तरबस्ति देनेसे लाभ होता है। रक्तार्श और रक्तप्रदरमें रसौत केवल या नागकेशर और खूनखराबा ( दम उल अखवेन ) के साथ मिलाकर खानेको देते हैं।

**यूनानी मत-दारुहलदी** शीत, रूक्ष, शोथविलयन, पीड़ाशामक और रक्तशोधन है। कामला, फोड़े-फुन्सी और कंडूमें इसका प्रयोग करते हैं। नेत्राभिष्यन्दके लिये यह उत्तम है। **रसौत** बाहर लगानेसे दोषके फैलावको रोकती है और संकोचक है। खिलानेसे गरमीको शान्त करती है और आँतोंपर ग्राही असर करती है। रसौतको गरम शोथोंपर सूजन और पीड़ा शान्त करनेके लिये लगाते हैं। कर्णस्रावमें इसका द्रव कानमें डालते हैं। गले और मसूड़ोंके गरम शोथमें इसके द्रवके कुल्ले कराते हैं। रसौत अर्शमें लाभप्रद है। मात्रा १-२ माशा।

**झरिष्क**—दारुहलदीके फलको झरिष्क कहते हैं। यह किशमिशसे छोटा, रंगमें कालाई लिये लाल और स्वादमें खटमीठा होता है। झरिष्क शीत, रूक्ष, पित्त और रक्तके प्रकोपको शांत करनेवाली, आमाशय तथा यकृत्की गरमीको शान्त करनेवाली और उनको शक्ति देनेवाली है। पैत्तिक ज्वरमें वमन, तृषा और मितलीको दूर करनेके लिये झरिष्कको पानीमें पीस, कपड़ेसे छानकर पिलाते हैं। पैत्तिक रोगोंमें और पित्तप्रकृति वालोंको अन्नके साथ खिलाते हैं।

**उपयुक्त अंग**—दारुहलदीके मूल और कांडके नीचेके भागकी पीले रंगकी लकड़ी काममें ली जाती है। हकीम लोग इसके फल( झरिष्क )का औषधार्थ प्रयोग करते हैं।

---

## ( १८ ) वनवृन्ताक।

**नाम**—( सं. ) वनवृन्ताक; ( पं. ) बनककडी ( क्री ); ( क. ) बनबांगुन; ( ले. ) पोडोफाइलम् इमोडी ( Podophyllum Emodi )।

**वर्णन**—वनककडी हिमालयके कश्मीर आदि प्रदेशोंमें होती है। इसमें ग्रीष्मऋतुमें टमाटर जैसे लाल रंगके परन्तु छोटे, मांसल और पुष्कल बीजवाले फल लगते हैं। फल खाये जाते हैं। मूल औषधके लिये काममें आते हैं। मूलमें एक प्रकारकी **राल** होती है।

**गुण-कर्म**—बनककडी पित्तसारक और विरेचन है । पित्तप्रकोपमें विरेचनके लिये मूलका चूर्ण २ से ५ रत्तीकी मात्रामें देते हैं । इससे पीले रंगके पतले दस्त होते हैं, यकृत्का शोथ उतरता है और उसकी क्रिया सुधरती है । इससे पेटमें मरोड़ा होता है, अतः इसको सुगन्धि द्रव्य या अजवायन खुरासानीके साथ मिलाकर देना चाहिये । आमवात, वातरक्त, त्वग्रोग आदिमें स्रोतोंको खोलनेके लिये इसका जुलाब देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## कमलादिवर्ग ७

### N. O. Nymphæaceæ. ( निम्फीएसी )

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपत्र; विभक्तदल; ऊर्ध्वस्थबीजकोश; पत्र-बड़े, गोल, पानीपर तैरते रहते हैं । पुष्प एकाकी; सफेद, लाल, पीले, आसमानी आदि अनेक रंगके होते हैं और पानीके ऊपर खिलते हैं । पुष्पवृन्त लंबा, मोटा और सच्छिद्र होता है । पुष्पबाह्यकोशके दल ३-६; पंखडियाँ ३ से ६ या उससे अधिक; पुंकेशर और स्त्रीकेशर बहुत होते हैं । परागकोश अन्तर्मुख होता है । बीजकोश ८ या अधिक और संयुक्त; पुष्पासन ( कर्णिका ) खूब बढ़ी हुई होती है । कमलकी दो जातियाँ होती हैं—( १ ) सूर्यविकाशी; और ( २ ) चन्द्रविकाशी ( रात्रिविकाशी ) ।

---

### ( १९ ) कमल ।

**नाम—( सं. )** कमल, पद्म; ( सूर्यविकाशी ) **( हिं. )** कमल, कंवल; **( म. गु. )** कमल; **( क. )** पम्पोश; **( बं. )** पद्म; **( ता. )** तामरै; **( ले. )** निलम्बिअम् स्पेसिओझम् ( Nelumbium speciosum ) ।

---

### ( २० ) कुमुद ।

**नाम—( सं )** कुमुद, उत्पल; **( हिं. )** कूई, कोंई; **( बं )** सुँदि, शालूक; **( गु, )** पोयणुं; **( क. )** बुम्पोश; **( म. )** कमोद; **( फा. )** नीलोफर; **( ले. )** निम्फीआ स्टेलेटा ( Nymphœa stellata ) ।

**रंगभेदसे कमलके संस्कृत नाम—( श्वेत )** पुण्डरीक; **( रक्त )** कोकनद, राजीव; **( नील )** इन्दीवर ।

**वर्णन**—सूर्यविकाशी कमलके पुष्प सूर्योदयके समयमें खिलते हैं और सन्ध्याको बंद हो जाते हैं । इसके बीजको **कमलगट्टा** कहते हैं । चन्द्रविकाशी या रात्रिविकाशी कुमुदके पुष्प सन्ध्या समयमें खिलते हैं और सूर्योदयके समय बन्द हो जाते हैं । रात्रिविकाशी कूईके बीज छोटे $\frac{1}{2}$ से $\frac{1}{3}$ लाईन व्यासके; कच्ची हालतमें लाल और पकनेपर काले होते हैं । बिहार और बंगालमें इनके बीजोंकी लाजा बनाकर उसके लड्डू बनाते हैं । उनको **रामदानेके लड्डू** कहते हैं ।

**कमलके भिन्न भिन्न अंगोंके नाम—**

**बीज—**( सं. ) पद्मबीज, कमलाक्ष, पद्मकर्कटी; ( हिं. ) कमलगट्टा; ( गु. ) पबडी, कमलकाकडी; ( म. ) कमलाक्ष, कमळकांकडी ।

**कमलनाल—**( सं. ) बिस, मृणाल; ( हिं. ) मुरार, भसींड़; ( म. ) भिसें ।

**कमलकन्द—**( सं. ) शालूक, करहाटक; ( गु. ) लोढ ।

**कमलबीजकोश—**( सं. ) वराटक, बीजकोश, कर्णिका; ( हिं. ) कमलका छता; ( म. ) धांगुड, ढांपणी; ( गु. ) घीतेलां, कुमडां ( रात्रिविकाशिका ) ।

**गुण-कर्म—**"उत्पलानि कषायाणि रक्तपित्तहराणि च । कुमुदोत्पलनालास्तु सपुष्पाः सफलाः स्मृताः ॥ शीताः स्वादुकषायाश्च कफमारुतकोपनाः । कषायमीषद्विष्टम्भि रक्तपित्तहरं स्मृतम् ॥ पौष्करं तु भवेद्बीजं मधुरं रसपाकयोः ।" ( च. सू. अ. २७ ) । "सतिक्तं मधुरं शीतं पद्मं पित्तकफापहम् । मधुरं पिच्छिलं स्निग्धं कुमुदं ह्लादि शीतलम् ॥ अविदाहि बिसं प्रोक्तं रक्तपित्तप्रसादनम् । विष्टम्भि दुर्जरं रूक्षं विरसं मारुतावहम् । कुमुदोत्पलपद्मानां कन्दा मारुतकोपनाः । कषायाः पित्तशमना विपाके मधुरा हिमाः ॥ विपाके मधुरं शीतं रक्तपित्तप्रसादनम् । पौष्करं स्वादु विष्टम्भि बल्यं कफकरं गुरु ॥" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "उत्पलकुमुदपद्मकिञ्जल्कः सांग्राहिकरक्तपित्तप्रशमनानाम्" ( च. सू. अ. २५ ) । चरके ( सू. अ. ४ ) मूत्रविरजनीये गणे पद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिकशतपत्राख्याः षट्कमलभेदाः, तथा सुश्रुते उत्पलादिगणे[१] उत्पलरक्तोत्पलकुमुदसौगन्धिककुबलयपुण्डरीकाख्याः षट् कमलभेदाः पठ्यन्ते ।

सब प्रकारके कमल और कूंईके पुष्प रसमें कषाय, मधुर और किञ्चित् तिक्त; शीतवीर्य, स्निग्ध, पिच्छिल, आह्लादकारक, मूत्रविरजनीय तथा रक्तपित्त, दाह, तृषा, हृद्रोग, वमन और मूर्च्छाका नाश करनेवाले हैं । बिस रक्त और पित्तको शान्त करनेवाला, विष्टम्भि, दुर्जर, रूक्ष, शीतवीर्य, अविदाहि और कफ तथा वायुको उत्पन्न करनेवाला है । कमल और कूंईके कन्द रसमें मधुर और कषाय, विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, पित्तका शमन करनेवाले और वायुका प्रकोप करनेवाले हैं । कमलगट्टा रसमें मधुर और किञ्चित् कषाय, विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, कुछ विष्टम्भि, बलकारक, गुरु, कफकारक और रक्तपित्तका शमन करनेवाला है । कमलकेशर ग्राही और रक्तपित्तप्रशमन है ।

**नव्य मत—**कमलकी पँखडियाँ शीतल, दाहप्रशमन, हृदयबल्य, हृदयसंरक्षक,

---

१ "उत्पलादिरयं दाहरक्तपित्तप्रसादनः । पिपासाविषहृद्रोगच्छर्दिमूर्च्छाहरो गणः ॥" ( सु. सू. अ. ३८ ) ।

रक्तसंग्राहक, मूत्रजनन, मूत्रविरजनीय और ग्राही हैं। इनकी क्रिया साधारणतः डिजिटेलीस जैसी खुद्द हृदय और छोटी रक्तवाहिनियोंपर होती है। इससे रक्तवाहिनियोंका संकोचन होता है और हृदयकी गति शान्त और कम होती है। इनमें मूत्रजनन और ग्राही गुण अल्प है। कमलकेशर दाहप्रशमन और रक्तसंग्राहक है। कमलगट्टा पौष्टिक, स्नेहन, ग्राही और रक्तसंग्राहक है। कमलकन्दका चूर्ण पौष्टिक, स्नेहन, ग्राही और रक्तसंग्राहक है। उष्णदेशमें होनेवाले कमलकी अपेक्षया ईरान, कश्मीर आदि ठंढे प्रदेशोंमें होनेवाले कमल विशेष गुणदायक हैं। रक्तार्श, अत्यार्तव और दाह कम होनेके लिये कमलकेशर मिश्री और मक्खनके साथ देते हैं। गर्भिणीको गर्भाशयसे रक्तस्राव होता हो तो वह कमलके फांटसे शीघ्र बंद होता है। रक्तार्श और रक्तप्रवाहिकामें कमलके कन्दके चूर्णकी पेया देते हैं। फूलोंके फांटसे हृदयकी धड़कन और नाडीकी तीव्र गति कम होती है। यह जीर्ण हृद्रोगमें उपयुक्त नहीं है। कमलका हृदयसंरक्षक धर्म ज्वरचिकित्सामें देखनेमें आता है। तीव्र संततज्वरमें उष्णतासे हृदयपेशी खराब और शिथिल होती है। ऐसे ज्वरमें प्रारम्भसे ही कमल देते रहनेसे ये दोनों घातक क्रियाएँ नहीं होतीं। कमल देनेसे हृदयकी धडकन दूर होती है और हृदय अशक्त नहीं होता। कमलके फूल, चंदन, रक्तचंदन, खस, मुलेठी, नागरमोथा और मिश्रीका मन्दाग्निपर बनाया हुआ क्वाथ ज्वरमें अति हितकारक है। इस क्वाथसे हृदयका संरक्षण होता है, पेशाब आता है, दाह कम होता है और दस्त पतले होते हों तो बन्द होते हैं। कमलगट्टेकी पेयासे वमन, हिचकी और प्रदर बन्द होता है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**यूनानीमत**—कँवल और नीलोफर दूसरे दर्जेमें सर्द और तर हैं। दोनों पैत्तिक ज्वर, कामला और तृषामें लाभकारी हैं। यूनानी वैद्यकमें इनका उपयोग अधिकतया अर्क और शर्वतके रूपमें किया जाता है।

**वक्तव्य**—प्राचीन निघण्टुओंमें कमलके भेद और उनके जो पर्याय दिये गये हैं उनमें इतनी खिचडी पकाई गई है कि उनका निर्णय करना कठिन है। कमल और कुमुदकी सब जातियाँ गुण-कर्ममें अधिकांशमें समान हैं। अतः योगोंमें जहां उनका उल्लेख हो वहाँ जो जाति प्राप्त हो सके उनसे काम चल सकता है।

---

## (२१) मखाना।

**नाम**—(सं.) मखान्न; (हिं) मखाना; (गु.) मखाणा; (म.) मका(खा)णे; (ले.) युरीएल फेरोक्स (Euryale ferox)।

**उत्पत्तिस्थान**—मखाने बिहारके मिथिला प्रदेशमें, विशेषतः दरभंगामें होते हैं।

**वर्णन**—मखाना भी कमलके समान जलमें होता है। उसके पत्र, नाल आदिपर

काँटे होते हैं । फूल कूंईके फूल (नीलोफर) जैसे होते हैं । इसके बीजोंको भूनकर बनाया हुआ लावा बाजारमें **मखाना**के नामसे विकता है ।

**गुण-धर्म**—"मखान्नं पद्मबीजस्य गुणैस्तुल्यं विनिर्दिशेत् ।"

मखाना गुणमें कमलगट्टे जैसे होता है ।

**यूनानीमत**—मखाना गरम और स्निग्ध है । ताजे मखाने बल्य और वाजीकर हैं । भुने हुए मखाने ग्राही हैं । प्रसवान्त दौर्बल्य, शुक्रस्राव और वीर्याल्पतामें मखानाका चूर्ण दूधमें पकाकर खिलाते हैं ।

**मात्रा**—आधासे एक तोला ।

---

## अहिफेनादिवर्ग ८.

### N. O. Papaveraceæ (पॅपेवेरेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थबीजकोश; पर्ण एकान्तर, सादे और दन्तुर होते हैं; पुष्प पत्रकोणोद्भूत; पुष्पबाह्यकोशके पत्र २-३ पूर्वपाति; पँखडियाँ ४ से ६ अथवा ८ से १२ दो चक्रोंमें लगती हैं; पुंकेशर पुष्कल और अनियत; स्त्रीकेशर १; फल लम्बगोल; बीज सूक्ष्म और अधिक होते हैं । इस वर्गमें प्रायः क्षुप होते हैं और उसमेंसे पीला या सफेद गाढ़ा क्षीर निकलता है ।

---

### (२१) अहिफेन (अफीम)।

**नाम**—(सं.) अहिफेन; (हिं.) अफीम; (क.) आफीन; (बं.) आफिम; (मा.) अफीम, अमल; (म.) अफू; (गु.) अफीण; (अ.) अफयून; (ले.) पॅपेवर सोम्निफेरम् (Papaver somniferum); (अं.) ओपिअम् (Opium)।

**वर्णन**—अफीमका ३-४ फुट ऊँचा क्षुप होता है । पौष या माघ मासमें इसमें फूल लगते हैं । फूल खिलनेके बाद एक मासमें उसमें छोटे दाडिम जैसे फल लगते हैं । फल लगनेपर किसान लोग सवेरमें ही कच्चे फलमें चाकूसे सीधा चीरा लगाते हैं । उसमेंसे दूध जैसा निर्यास निकलता है । उसको **अफीम** कहते हैं । फलके छिलकेको **पोस्त** और बीजको **पोस्तदाना** या **खशखाश** (खसखस) कहते हैं । लोग कच्चे फलोंका साग बनाकर खाते हैं और बीजोंका तैल निकालकर उसको भी खानेके काममें लेते हैं ।

**उपयुक्त अङ्ग**—फलनिर्यास (अफीम), फलत्वचा (पोस्त) और बीज ।

**गुण-कर्म**—अहिफेनं रसे तिक्तं विपाके कटुकं विषम्। स्तम्भनं सूक्ष्ममुष्णं च वेदनास्थापनं परम्॥ स्वेदनं स्वापजननं कफरोगविनाशनम्॥

अफीम रसमें तिक्त, विपाकमें कटु, सूक्ष्म, उष्णवीर्य, विष, स्तम्भन, वेदना-स्थापन, स्वेदजनन, निद्रा लानेवाला और कफके रोगोंका नाश करने वाला है।

**नव्यमत**—मुंहसे लेकर गुदापर्यन्त महास्रोतस (पचननलिका) पर अफीमकी प्रत्यक्ष क्रिया होती है। थूक और आमाशयका रस कम होता है, भूख कम होती है और मल गाढ़ा (शुष्क) होता है। नाड़ीकी गति सुधरती है। मनको आनन्द और उत्साह मालूम होता है, विचारशक्ति और कामशक्ति बढ़ती है तथा मन शान्त होकर नींद आती है। ये सब क्रियाएँ अफीम थोड़ी मात्रामें देने पर देखनेमें आती हैं। बड़ी मात्रामें देनेसे अफीमकी उत्तेजकता नष्ट होती है, पाचनशक्ति बिगड़ती है तथा स्पर्शज्ञान और सुख-दुःख समझनेकी शक्ति कम होती है। ये सब अफीमकी क्रियाएँ मस्तिष्कपर प्रथम और मुख्यतया होती हैं और बादमें ज्ञानवाहिनियोंपर होती हैं। अफीमसे शरीरके सब रस कम होते हैं; मात्र पसीना, मूत्र और दूध कम नहीं होता। अफीममें उत्तेजक, आह्लादकारक, वाजीकर, शामक, स्वापजनन, पीड़ाशामक, शूलघ्न, मादक, कफघ्न, ग्राही, रक्तस्तम्भन, स्वेदजनन, विषमज्वरप्रतिबन्धक, शोथघ्न, कासहर और संकोचविकासप्रतिबन्धक (आक्षेपहर) ये बहुमूल्य गुण हैं। अफीम थोड़ी-बहुत मात्रामें देनेसे ये सब गुण देखनेमें आते हैं। एक मात्रामें ऊपर लिखे सब गुण देखनेमें नहीं आते। **मात्रा**—धीरे धीरे गुणकी अपेक्षा हो तो पावसे आधी रत्ती गोलीके रूपमें देना चाहिये और त्वरित गुणकी अपेक्षा हो तो १ रत्ती मात्रामें आसव या मद्यमें मिलाकर देना चाहिये।

शस्त्रक्रिया करनेके बाद, चोट या मार लगनेके बाद और शरीर जलने पर रोगीको अफीम देते हैं। इससे पीड़ाका ज्ञान नहीं होता, रोगीको निद्रा आ जाती है और मनका आघात कम होता है। अफीम उत्कृष्ट वेदनास्थापन है। इससे कीसी भी प्रकारकी वेदना शांत होती है। इसी लिये मूत्राश्मरी, पित्ताश्मरी, मार, मानसिक आघात, अंग जलना, अस्थिभंग, पेटका दर्द, अर्बुद (केन्सर आदि), आमाशयका क्षत, तीव्र सन्धिवात आदिमें पूर्ण मात्रामें और वारंवार अफीम देते हैं। पीड़ासे निद्राभंग होता हो तो अफीमके समान दूसरा औषध नहीं है। अफीमका लेप शोथघ्न और पीड़ाशामक है। इसलिये सन्धिशोथ, कमरका दर्द, फुप्फुसावरण-शोथ, नेत्राभिष्यन्द आदि वेदनाधिक शोथोंमें अफीमका अकेले या उचित द्रव्योंके साथ मिलाकर लेप किया जाता है। अफीम फुप्फुसान्तर्गत श्वासनलिकाओंके संकोच-विकासको कम करता है। इसलिये सूखी खांसी और दमेमें अफीमसे लाभ होता है। कफवाली खांसीमें भी अफीमसे लाभ होता है। परन्तु श्वासोच्छ्वास ठीक चलता हो, त्वचा मृदु हो और कफ एकदम ढीला पड़ गया हो तब ही अफीम सूक्ष्म

प्रमाणमें कपूर, नोसादर, अर्कमूलत्वचा, लोबान, लोबानके फूल, जंगली प्याज जैसे उत्तेजक श्लेष्मनिःसारक औषधोंके साथ मिलाकर देना चाहिये । आमाशय या आँतोंमें क्षत होकर रक्तस्राव होता हो तब अफीम देते हैं । अफीमसे आमाशय और आंतोंकी चलन( गति ) कम होता है और रक्तस्राव बन्द होता है । क्षयरोगमें रात्रिमें बहुत पसीना आता है वह अफीमसे कम होता है । मधुमेहमें अफीम देनेसे शर्कराका प्रमाण कम होता है ( औषधीसंग्रहसे सारांश रूपमें उद्धृत ) ।

अतिसारमें मल पक्क लक्षणवाला होनेपर भी ग्रहणीकी दुर्बलताके कारण दस्त बन्द न होते हों तब अफीमयुक्त योग देने चाहिये ।

**मात्रा**—पावसे एक रत्तीतक ।

**शोधन**—बाजारमें जो अफीम मिलता है उसमें अन्य द्रव्य भी मिले हुए होते हैं । अतः अफीमको पानीमें घोल, कपड़ेसे छानकर मंदाग्निपर गाढ़ा कर लेना चाहिये । इस प्रकार साफ किये हुए अफीमको अदरकके स्वरसकी इक्कीस भावना देकर उसको खानेके काममें लेना चाहिये[1] ।

यद्यपि अफीममें ऊपर लिखे हुए उत्कृष्ट गुण हैं तथापि अफीम लगातार कई दिन लेनेसे उसका व्यसन पड़ जाता है, जो छुड़ाना कठिन होता है । अतः अफीमसे फायदा होते ही उसका प्रयोग बन्द कर देना चाहिये ।

**अफीमके विषलक्षण**—अधिक मात्रामें अफीम खानेसे शीघ्र ही उसकी मादक क्रिया देखनेमें आती है । थोड़ी देर बाद नींद आने लगती है और क्रमशः नींद गाढ़ होती जाती है । रोगी अचेत होकर पड़ा रहता है । श्वासकी गति मन्द होती है । श्वासके साथ गलेमें घरघराहट मालूम होती है । मुखमण्डल मलिन और भावरहित होता है । नेत्र लाल और मीचे हुए तथा कनीनिका संकुचित होती है । नाड़ी स्थूल, कोमल और मन्दगति होती है । उसके बाद अवसादके लक्षण प्रकट होते हैं । नाड़ी क्रमशः क्षीण होती है । श्वास देरीसे आता है । शरीर ठंडा और पसीनेसे तर होता है । कुछ समय यह हालत रहनेके बाद रोगीकी मृत्यु होती है । प्रायः ४ से ६ घंटेमें अवसादावस्था और ६ से १२ घंटेके भीतर मृत्यु होती है ।

**अफीमके विषकी चिकित्सा**—प्रथम रोगीको रीठेका पानी अथवा सरसों या राई मिलाया हुआ गरम जल देकर जबतक सब अफीम बाहर न आ जाय तबतक वमन कराना चाहिये । स्टमक पम्पसे वारंवार आमाशयको धोना चाहिये । रोगीको सोने नहीं देना चाहिये और वारंवार कॉफीका गरम क्वाथ पीलाना चाहिये । चन्द्रोदय, कस्तूरी, जुन्दबेदस्तर, हींग, जद्वार या जहरमोहरापिष्टी शहदमें मिलाकर वारंवार चटाना चाहिये ।

---

१ "अहिफेनं शृङ्गवेररसैर्भाव्यं त्रिसप्तधा । शुध्यत्युक्तेषु योगेषु योजयेत्तद्विधानतः ॥" ( योगरत्नाकर ) ।

**अफीमप्रधान योग**—अहिफेनासव ( भै. र. अतिसाराधिकार ), महावात-राजरस[1] ( सि. भै. मं. पृ. ३२ ), दुग्धवटी ( भै. र. शोथाधिकार ) आदि ।

---

## ( २२ ) स्वर्णक्षीरी ।

**नाम**—( सं. ) स्वर्णक्षीरी, काञ्चनक्षीरी; ( क. ) ददहत्तर, कंडीज; ( हिं. ) सत्यानाशी, भड़भांड; उजरकांटा; ( बि. ) कंटैया, धमोय; ( बं. ) शियालकाँटा; ( म. ) कांटेधोत्रा, पिंवळा धोत्रा; ( गु. ) दारुडी; ( सिं. ) खरकांढेरी; ( का. ) भरसिन उम्मत्त; ( ता. ) कुडियोट्टि; ( मल. ) पोन्नुम्मत्तम्; ( ले. ) आर्जिमोनस मेक्सिक़ाना ( Argemones mexicana ) ।

**वर्णन**—सत्यानाशीका २ से ४ फुट ऊँचा क्षुप होता है । क्षुपपर तीक्ष्ण काँटे होते हैं । क्षुपके किसी भी अवयवको तोड़नेसे सोने जैसा पीले रंगका क्षीर निकलता है । पुष्प पीले रंगके होते हैं । पुष्पबाह्यकोशके दल ३ और पँखडियाँ ६ होती हैं। बीज छोटे काले रंगके होते हैं ।

**गुण-कर्म—"स्वर्णक्षीरी हिमा तिक्ता कृमिपित्तकफापहा । मूत्रकृच्छ्राश्मरी-शोफदाहज्वरहरा परा ॥" ( रा. नि. ) । "हेमाह्वा रेचनी तिक्ता भेदन्युत्क्लेश-कारिणी । कृमिकण्डुविषानाहकफपित्तास्रकुष्ठनुत् ॥" ( भा. प्र. ) । चरके ( सू. अ. ४ ) भेदनीये, सुश्रुते ( सू. अ. ३८, ) श्यामादिगणे, व्रणशोधने ( चि. अ. ८ ), अधोभागहरे ( सू. अ. ३९ ) च गणे स्वर्णक्षीरी पठ्यते ।**

सत्यानाशी रसमें तिक्त, शीतवीर्य, भेदन, रेचन, व्रणशोधन तथा कृमि, पित्त, कफ, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, शोथ, दाह, ज्वर, कुष्ठ, विष, रक्तविकार और आनाहका नाश करनेवाली है ।

**नव्यमत**—सत्यानाशीके बीजोंका तेल मृदु रेचन है । एरंडतैलसे यह अच्छा है । इसमें दुर्गन्ध या खराब स्वाद नहीं होता है । मात्रा छोटी है और इससे पेटमें मरोड़ नहीं होता । ताजे तेलकी क्रिया निश्चित होती है । बीज रेचन और वेदना-स्थापन हैं । पंचाङ्गका घन रेचन है । मूल कृमिघ्न और कुष्ठघ्न है । पीला दूध मूत्र-जनन, कुष्ठघ्न, शोथहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण और विषमज्वरहर है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** ) ।

---

१ **महावातराजरस**—शुद्ध धतूरेके बीज, शुद्ध गन्धक, शुद्ध पारद और लोहभस्म प्रत्येक २–२ तोला; अभ्रकभस्म, दालचीनी, लौंग, जावित्री, जायफल, छोटी इलायची, कपूर, काली मिर्च और मकरध्वज प्रत्येक १–१ तोला; शुद्ध अफीम १२ तोला; तीन दिन धतूरेकी पत्तीके स्वरसमें मर्दन करके २–२ रत्तीकी गोलियाँ बना ले । कटिशूल, पार्श्वशूल, बहुमूत्र, हैजा आदिमें इसका प्रयोग करे ।

**उपयुक्त अंग**—मूल, बीज, क्षीर और तैल । **मात्रा**—मूल १० से ३० रत्ती; बीज ३ माशा; क्षीर ३–६ माशा; तैल ३ माशा ।

**वक्तव्य**—सुश्रुत चि. अ. ८ में भगन्दरव्रणशोधन वर्गमें **'काञ्चनक्षीर्यौ'** ऐसा द्विवचनान्त पाठ मिलता है । अर्थात् सुश्रुत दो प्रकारकी स्वर्णक्षीरी मानते थे । इनमेंसे एक **सत्यानाशी** और दूसरी **हिरवी** है । हिरवीका वर्णन एरण्डादिवर्गमें किया जायगा ।

---

# पर्पटादिवर्ग ९.

## N. O. Fumariaceæ ( फ्युमेरिएसी ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थबीजकोश; पुष्पबाह्यकोशके दल २; पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ४; उनमेंसे एक जोड़ी छोटी और एक बड़ी होती है; पुंकेशर ६ तीन तीनकी एक एक जोडीमें; स्त्रीकेशर १ । इस वर्गमें छोटे क्षुप होते हैं ।

---

### ( २३ ) पर्पट ( शाहतरा ) ।

**नाम**—( सं. ) पर्पट, वरतिक्त, रेणु, कवच; ( पं. ) शाहतरा; ( हिं. ) पित्तपापडा; ( फा. ) शाहतरा, शाहतरज; ( ले. ) **फ्युमेरिआ ओफिसिनेलिस्** ( Fumaria officinalis ); **फ्युमेरिआ पार्विफ्लोरा** ( Fumaria parviflora ) ।

**वर्णन**—शाहतराका क्षुप ½ से १ फुट ऊँचा होता है । यह खड़ा या जमीन पर फैला हुआ होता है । पत्ते गाजर जैसे होते हैं । फूल सफेद या गुलाबी रंगके और सिरे पर जामुनी रंगके होते है । पुष्प और फल माघ–फाल्गुनमें आते हैं ।

**गुण-धर्म**—**चरके** तृष्णानिग्रहणे वर्गे पर्पटः पठ्यते । "× × × पर्पटाः । तिक्ताः पित्तकफापहाः" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "× × × शाकं पार्पटकं च यत् । कफपित्तहरं तिक्तं शीतं कटु विपच्यते ।" ( च. सू. अ. २७ ) । "पर्पटः शीतलस्तिक्तः पित्तश्लेष्मज्वरापहः । रक्तदाहारुचिग्लानिमदभ्रमविनाशनः ॥" ( ध. नि. ) । "पर्पटो हन्ति पित्तास्रभ्रमतृष्णाकफज्वरान् । संग्राही शीतलस्तिक्तो दाहनुद्वातलो लघुः ॥" ( भा. प्र. ) ।

पित्तपापडा रसमें तिक्त, विपाकमें लघु, शीतवीर्य, ग्राही, तृषा कम करनेवाला, वातल तथा पित्त, कफ, ज्वर, रक्तविकार, भ्रम, अरुचि और दाहको दूर करनेवाला है ।

**नव्य मत**—शाहतरेमें एक प्रकारका क्षार होता है। इसपर इसके गुण-धर्म अवलम्बित हैं। यह क्षार त्वचा, यकृत् तथा गुर्दे द्वारा बाहर निकलता है और निकलते समय इन अवयवोंको उत्तेजित करता है। इसलिये शाहतरा स्वेदजनन, मूत्रजनन, स्रंसन और कटुपौष्टिक है। आँतोकी शिथिलतासे उत्पन्न कुपचन और त्वचाके रोगोंमें शाहतरा उपयोगी है। साधारण सर्दी-जुकाममें शाहतराका क्वाथ देनेसे पसीना और पेशाब आता है, दस्त साफ होता है और शरीरका दर्द कम होता है। पित्तज्वर और यकृत्के रोगोंमें शाहतरा उत्तम औषध है। त्वचाके रोगोंमें शाहतरा देते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**यूनानीमत**—शाहतरा रसमें तिक्त, समशीतोष्ण, दूसरे दर्जेमें रूक्ष, रक्तशोधक, मूत्रल, आमाशयको शक्ति देनेवाला, दीपन, सारक और ज्वरघ्न है। शाहतरा उपदंश, खाज-फोड़े-फुंसी आदि रक्तविकार, ज्वर आदिमें क्वाथ या हिमके रूपमें देते हैं।

**मात्रा**—चूर्ण-५-७ माशे; क्वाथ ५ तोला।

**वक्तव्य**—इस समय हिन्दुस्तानके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें 'पर्पट' शब्दसे तीन द्रव्योंका व्यवहार होता है। १ ऊपर वर्णन किया हुआ शाहतरा। पंजाब, सिंध, राज, पूताना, युक्त प्रान्त और बिहारके वैद्य प्रायः 'पर्पट' नामसे इसका व्यवहार करते हैं। २ मञ्जिष्ठादि( रुबिएसी—Rubiaceæ )वर्गका। इसको बंगालीमें **क्षेत्रपर्पट** मराठीमें **परिपाठ,** गुजरातीमें **परपट** और लेटिनमें Oldenlandia herbacea कहते हैं। इसका उपयोग विशेषतः बंगाल और महाराष्ट्रके वैद्य करते हैं। ३ अटरूषकादि ( Acanthaceæ-एकेन्थेसी ) वर्गका। इसको गुजरातमें **खडसलियो** और लेटिनमें Rungia repens कहते हैं। इसका प्रयोग प्रायः गुजरातके वैद्य करते हैं।

---

## राजिकादिवर्ग १०.

### N. O. Cruciferæ. ( क्रुसिफरी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थबीजकोश; पत्र प्रायः मूलोद्भूत और एकान्तर; पुष्पबाह्यकोशके दल ४; पँखडियाँ चार और उनकी रचना क्रॉस-जैसी; पुंकेशर ६, उनमेंसे चार लंबे और दो छोटे; फल दोनों पार्श्वोंपर खुलता है।

---

### ( २४ ) राजिका ( राई )।

**नाम—( सं. )** राजिका, आसुरी, तीक्ष्णगन्धा; **( क. )** आसुर; **( पं. )** ओहर; **( हि. गु. )** राई; **( म. )** मोहरी; **( का. )** सासिवे; **( ता. )** कडुगु;

(मल.) कडुघम्; (बं.) राई सरिषा; (सिंध.) अहुरि; (अ.) खरदल; (ले.) ब्रासिका जन्सिआ (Brassica juncea)।

**वर्णन**—राई भारतवर्षमें सर्वत्र प्रसिद्ध है।

**उपयुक्त अंग**—बीज और तैल।

**गुण-कर्म**—"आसुरी कटुतीक्ष्णोष्णा वातप्लीहार्तिशूलजित्। दाहपित्तप्रदा हन्ति कफगुल्मकृमिव्रणान् ॥" (रा. नि.)। **चरकके** शाकवर्ग (अ. २७ श्लो. १०१) आसुरी पठ्यते।

राई रसमें कटु और तिक्त; तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, दाहकर, पित्तकर तथा वात, कफ, प्लीहाके रोग, शूल, गुल्म, कृमि और व्रणका नाश करनेवाली है।

**नव्य मत**—राई अल्प प्रमाणमें दीपन-पाचन, उत्तेजक और स्वेदजनन है। बड़ी मात्रामें वामक है। राईसे शीघ्र वमन होता है और वमनके बाद थकावट नहीं मालूम होती। राईके लेपसे त्वचा लाल होती है, त्वचा और त्वचाके नीचेके रक्ताभिसरणको उत्तेजना मिलती है, पीछे उस स्थानमें सुन्नता आती है। लेप अधिक समय रखनेसे वहाँ फोड़ा हो जाता है। फुप्फुस, यकृत्, श्वासनलिका, मस्तिष्क आदिके शोफमें राईके लेपसे बड़ा लाभ होता है। ज्वरमें मनोभ्रम कम करनेके लिये सिरपर तथा हृदयकी अशक्तता और शरीरके किसी भागके ठंढीके दर्दमें राईका लेप करते हैं **(डॉ. वा. ग. देसाई)।**

राईको ठंढे जलमें महीन पीस, कपड़ेपर लगाकर लेप करना चाहिये। जलन मालूम होनेपर लेप उतार देना चाहिये। वमन करानेके लिये राई और थोड़ा सैंधव गरम जलमें मिलाकर जबतक ठीक वमन न हो जाय तबतक थोड़ी थोड़ी देरके बाद पिलाना चाहिये। राईका तैल वायुके दर्दमें लगाया जाता है।

**उपयुक्त अंग**—बीज और तैल।

**यूनानी मत-रस**—कटु और तिक्त; **वीर्य**—गरम और खुश्क। राई बाहर लगानेसे शोथविलयन, लेखन और स्फोटजनन है। खिलानेसे आमाशयको शक्ति देती है, दीपन-पाचन करती है और प्लीहाके शोथको दूर करती है। अधिक प्रमाणमें देनेसे वमन कराती है। **उपयोग**-राईको अनेक सर्द बीमारियोंमें जैसे-पक्षाघात, सन्धिवात, कमरका दर्द, फुप्फुसावरणशोथ, फुप्फुसशोथ, यकृच्छूल, आमाशयशूल, प्लीहाका दर्द आदिमें पीड़ाको शान्त करनेके लिये अकेले या अन्य उपयुक्त औषधोंके साथ मिलाकर लगाते हैं। सर्दीसे ऋतुस्राव बंद हुआ हो तो पीसी हुई राई गरम जलमें मिलाकर उसमें स्त्रीको कमरतक बैठाते हैं। जीभकी सूजन और दाँतोंके दर्दको दूर करनेके लिये राईको गरम जलमें मिलाकर कुल्ले कराते हैं।

---

## ( २५ ) सर्षप ( सरसों ) ।

**नाम**—सर्षप, सिद्धार्थ ( गौरसर्षप ), कटुस्नेह, भूतनाशन; ( हिं. ) सरसों; ( क. ) तिलगगुल; ( पं. ) सरेयां; ( सिंध ) सियांचिटी; ( म. ) शिरसी ( स. ); ( गु. ) सरसव; ( बं. ) सरिषा; ( मा. ) सरसुं; ( ले. ) ब्रासिका नाइग्रा ( Brassica Nigra ) ।

**वर्णन**—सरसों भारतवर्षमें सर्वत्र प्रसिद्ध है । इसका शाक बनाकर खाया जाता है । बीजोंका तैल खाने और लगानेके काममें लिया जाता है । सरसोंमें कालाई लिये लाल और पीली दो जातियाँ होती हैं ।

**गुण-धर्म**—**"विदाहि बद्धविण्मूत्रं रूक्षं तीक्ष्णोष्णमेव च । त्रिदोषं सार्षपं शाकं" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "कटुपाकमचक्षुष्यं स्निग्धोष्णं बहुपित्तलम् । क्रिमिघ्नं सार्षपं तैलं कण्डूकुष्ठापहं लघु ॥" ( सु. सू. अ. ४५ ) "कटूष्णं सार्षपं तैलं रक्तपित्तप्रदूषणम् । कफशुक्रानिलहरं कण्डूकोठविनाशनम्" ( च. सू. अ. २७ ) । "कटुतैलोपदेशं तु वक्ष्यामि प्लीहनाशनम् । नातः परतरं किञ्चिदौषधं प्लीहशान्तये ॥" ( काश्यपसंहिता पृ. १४६ ) । "सर्षपशाकं शाकानां ( अहिततमम् )" ( च. सू. अ. २५ ) ।**

सरसोंका शाक विदाही, मल और मूत्रका कब्ज करनेवाला, रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य और तीनों दोषोंका प्रकोप करनेवाला है । सरसोंका तैल रस और विपाकमें कटु, उष्णवीर्य, स्निग्ध, लघु, नेत्रको हानि करनेवाला, रक्त और पित्तको दूषित करनेवाला तथा कफ, वात, शुक्र, कण्डू, कुष्ठ, कृमि और कोठका नाश करनेवाला है । **काश्यपसंहितामें** सरसोंके तेलको प्लीहवृद्धिको दूर करनेके लिये उत्तम औषध बताया है ।

कुष्ठमें बाह्यप्रयोगके लिये जहां तैलका विधान हो वहां 'तैल'शब्दसे सरसोंका तैल लिया जाता है । सर्षपके बीजोंके गुण-धर्म राईके बीजोंके समान है और राईके बीजोंके समान ही उसका प्रयोग किया जाता है । सरसोंके तैलमें जरासा सैंधव मिलाकर दाँतोंपर मलनेसे या उसका कुल्ला करनेसे दन्तपूयमें लाभ होता है और दांत मजबूत होते हैं ।

**यूनानी मत**—सरसों तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है । सरसोंके बीज लगानेसे लेखन और शोणितोत्क्लेशक हैं । उसका तैल ( लगानेसे ) शरीरको शक्ति देनेवाला, गरमी और स्निग्धता पहुंचानेवाला तथा त्वचाके रोगोंको दूर करनेवाला है । सन्धिवात, कमरका दर्द और अन्य पीड़ाओंको शान्त करनेके लिये सरसोंके तैलकी मालिश करते हैं ।

---

## ( २६ ) चन्द्रशूर ।

**नाम**—( सं. ) चन्द्रशूर; ( हिं. ) चन्सुर, हालों, हालिम; ( पं. ) हालिया; ( मा. ) असालियो; ( गु. ) अशेळियो; ( सिंध ) आहियों; ( क. ) तरिवुद; ( म. ) अहाळींव; ( का. ) अळवि; ( अ. ) हब्बुररसाद, बजरुलजिरजिर; ( ले. ) लेपिडिअम् सेटाइवम् ( Lepidium sativum ) ।

**वर्णन**—चन्द्रशूरके लाल रंगके बीज बाजारमें मिलते हैं । इनको पानीमें भिगोनेसे उसमें लुआब ( पिच्छा ) उत्पन्न होता है ।

**गुण-कर्म**—"चन्द्रशूरं हितं हिक्कावातश्लेष्मातिसारिणाम् । असृग्वातगदद्वेषि बलपुष्टिविवर्धनम् ॥" ( भा. प्र. ) । "दरकृष्णो वातशूलगुल्मघ्नः स्तन्यपुष्टिकृत् । बल्यो वाजीकरः पानाल्लेपाच्छोणितशूलनुत् ॥" ( शो. नि. ) ।

चन्द्रशूर बल्य, वाजीकर, पौष्टिक, स्तन्यवर्धक तथा हिक्का, वातविकार, वातशूल, वातगुल्म, कफ और अतिसारका नाश करनेवाला है ।

**नव्य मत**—चन्द्रशूरका फांट हिक्कामें देते हैं । चंद्रशूरके बीजोंकी यवागू बनाकर प्रसूता स्त्रियोंको देते हैं । चंद्रशूरके बीजोंको दूधमें पकाकर पीनेसे कमरका दर्द अच्छा होता है । कमर और सन्धिस्थानके दर्दमें चंद्रशूरका लेप करते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** ) ।

---

## ( २७ ) मूलक ( मूली ) ।

**नाम**—( सं. ) मूलक; ( हिं. ) मूली; ( क. ) मुञ्ञ; मुज्जी ( म. ) मुळा; ( गु. ) मुळा; ( बि. ) मुरई; ( सिंध. ) मूरी; ( ले. ) रॅफेनस् सेटाइवस् ( Raphanus sativus ) ।

**वर्णन**—मूली हिन्दुस्तानमें सर्वत्र होती है । इसकी कोमल पत्ती, पुष्प, फली और कंदका शाक बनाकर खाते हैं । मूलीके स्वरस और बीजोंका औषधार्थ प्रयोग करते हैं ।

**गुण-कर्म**—"कटुतिक्तरसा हृद्या रोचनी वह्निदीपनी । सर्वदोषहरा लघ्वी कण्ठ्या मूलकपोतिका ॥ महत्तद्गुरु विष्टम्भि तीक्ष्णमामं त्रिदोषकृत् । तदेव स्नेहसिद्धं तु पित्तनुत् कफवातजित् । त्रिदोषशमनं शुष्कं विषदोषहरं लघु । विष्टम्भि वातलं शाकं शुष्कमन्यत्र मूलकात् । पुष्पं च पत्रं च फलं तथैव यथोत्तरं ते गुरवः प्रदिष्टाः । तेषां तु पुष्पं कफपित्तहन्तृ फलं निहन्यात् कफमारुतौ च ॥" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "बालं दोषहरं, वृद्धं त्रिदोषं, मारुतापहम् । स्नेहसिद्धं, विशुष्कं तु मूलकं कफवातजित् ॥" ( च. सू. अ. २७ ) ।

कच्ची ( कोमल ) मूली रसमें कटु और तिक्त, हृद्य, रोचन, दीपन, सर्वदोषहर, लघु और कण्ठ( स्वर )के लिये हितकर है। पकी मूली गुरु, विष्टम्भी और तीक्ष्ण है। पकी मूली बिना सिजाये खानेसे तीनों दोषोंको उत्पन्न करती है। पकी मूली स्नेह ( तेल आदि )के साथ पकाकर खानेसे तीनों दोषोंको दूर करती है। सूखी मूली त्रिदोषहर, विषहर और लघु है। मूलीको छोड़कर अन्य सूखे शाक विष्टम्भी और वातल होते हैं। मूलीके पुष्प, पत्र और फल उत्तरोत्तर गुरु हैं। मूलीके फूल कफ और पित्तका तथा फली ( सेम ) कफ और वायुका नाश करनेवाली है (सु.)। कोमल मूली त्रिदोषहर, वृद्ध ( पकी ) मूली त्रिदोषकर, स्नेहके साथ पकाई हुई मूली वातहर और सूखी मूली कफवातहर है ( च. )।

**नव्य मत**—मूलीके बीज और कन्दमें एक रंगरहित, जलसे भारी और मूलीके गन्धवाला तैल होता है। इस तैलमें गन्धक पाया जाता है। मूली उष्णवीर्य है। ताजी पत्तियोंका रस और बीज मूत्रजनन, अनुलोमन और अश्मरीघ्न है।

**मात्रा**—स्वरस १ से २ तोला, बीज ३ से ६ माशा। चिरकालकी कब्जियत मूलीका शाक रोज खानेसे दूर होती है। पत्तोंका स्वरस पेटका दर्द, अफारा और अर्शमें देते हैं। ३ माशा बीजका चूर्ण अनार्तवमें देते हैं **( डॉ. वा. ग. देसाई )**।

**यूनानी मत**—मूली गरम और रूक्ष है। मूली पाचन, वातानुलोमन, मूत्रल और प्लीहशोथनाशन है। भोजनके बाद मूली खानेसे अन्नका शीघ्र पाचन करती है और भूख लगाती है। मूली स्वयं देरीसे पचती है। खाना हजम होने पर भी देरतक उसकी डकार आती है और उसमें मूलीकी गन्ध आती है। मूलीके पंचांगका क्षार पाचन और मूत्रल है। मूलीका केवल सरकेमें बनाया हुआ अचार प्लीहाकी वृद्धिको दूर करनेके लिये खिलाते हैं। चतुर्गुण मूलकस्वरसमें पकाया हुआ तैल कर्णशूलमें कानमें डालते हैं। मूलीके स्वरसमें लाल खांड मिलाकर कामलामें देते हैं। मूलीका स्वरस मूत्रल होनेके कारण जलोदरमें दिया जाता है। उपयुक्त औषधोंके साथ मूलीका स्वरस या क्षार अश्मरीमें देते हैं। मूलीके बीज लगानेसे लेखन और खानेसे बल्य, मूत्रजनन, आर्तवजनन और कोष्ठवातप्रशमन है। त्वचाके रोगोंमें इसका लेप करते हैं। **मात्रा** १ से ३ माशे तक।

---

## ( २८ ) खूबकलाँ-खाकशी।

**नाम**—( क. ) चरिलछज; ( ले. ) सिसिम्ब्रिअम् आइरिओ ( Sisymbrium irio )।

**वर्णन**—खूबकलाँके ललाई लिये हुए पीले रंगके, लंबगोल बारीक दाने बाजारमें मिलते हैं। खाकशी रबीकी फसलमें गेहूँ, मेथी आदिके साथ उत्पन्न होती है। बीजोंका स्वाद तीक्ष्ण होता है। बीजोंको पानीमें भिगोनेसे लुआब उत्पन्न होता है।

**उपयुक्त अंग**—बीज । **मात्रा** ४ से ६ माशेतक ।

**गुण-कर्म**—स्निग्ध, उष्णवीर्य, ज्वरघ्न तथा श्लेष्मनिःसारक । खाकशीका पित्त और कफके ज्वरोंमें प्रयोग करते हैं । शीतला (चेचक) और रोमान्तिकामें इसका क्वाथ देते हैं या दाने पानीके साथ खिलाते हैं । इससे दाने शीघ्र बाहर आ जाते हैं । हैजेमें प्यास और वमन कम करनेके लिये अर्क गुलाबमें पकाकर पिलाते हैं । खांसीमें इसका अवलेह बनाकर चटानेसे कफ सरलतासे निकल जाता है । दूधके साथ पकाकर शरीरकी पुष्टिके लिये देते हैं । आँख, स्तन, वृषण आदिकी सूजन पर इसको जलमें पीस कर लेप करते हैं ।

यह उत्तम औषध है । हकीम लोग तथा पंजाबके वैद्य इसका पुष्कल उपयोग करते हैं । अन्य प्रान्तोंके वैद्योंको भी इसका प्रयोग करना चाहिये ।

---

## (२९) तोदरी ।

**नाम**—(ले.) लेपिडिअम् इबेरिस (Lepidium iberis) ।

**वर्णन**—तोदरीके बीज दवाके काममें आते हैं । तोदरी तीन प्रकारकी होती है (१) लाल, (२) पीली और (३) सफेद । यह यूनानी औषध विक्रेताओंके यहां 'तोदरी' नामसे मिलती है । बीजोंको पानीमें भिगोनेसे लुआब उत्पन्न होता है । तोदरीमें एक उड़नेवाला तैल और गन्धक होता है ।

**उत्पत्तिस्थान**—ईरान और पंजाब ।

**गुण-धर्म**—तोदरी पौष्टिक, मूत्रजनन, श्लेष्मनिःसारक और शोणितोत्क्लेशक है । तोदरीका फांट श्वासनलिकाके शोथमें कफको निकालने और कम करनेके लिये देते हैं । इससे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है । तोदरीके बीजोंको दबाकर निकाला हुआ तेल सन्धिवातमें मसलते हैं । इससे त्वचा जरा लाल होती है (**डॉ. वा. ग. देसाई**) ।

**यूनानी मत**—तोदरी दूसरे दर्जेमें गरम और पहले दर्जेमें स्निग्ध है । तोदरी वृष्य, वीर्यको गाढ़ा करनेवाली, स्तन्यवर्धक, श्लेष्मनिस्सारक और पौष्टिक है । इसका लेप शोथहर है ।

---

## वरुणादिवर्ग ११.

### No. Capparideæ (कॅपेरिडी) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थबीजकोश; पर्ण एकाकी किंवा संयुक्त; पर्णक्रम एकान्तर; पुष्पबाह्यकोशके दल ४; पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ४; स्त्रीकेशरनलिका बहुत छोटी ।

---

## ( ३० ) वरुण ।

**नाम**—( सं. ) वरुण; ( हिं. ) बरुना; ( पं. ) बरना; ( म. ) हाडवर्णा, वायवर्णा; ( गु. ) वरणो, वायवरणो, कागडाकेरी; ( ता.) माविलिंगम्; ( मल.) नीर्वाल; ( ले. ) क्रेटिवा रिलिजिओझा ( Crativa religiosa ) ।

**वर्णन**—बरुनाके २५ से ३० फुट ऊँचाईके वृक्ष होते हैं । पान बेलके जैसे त्रिदल लगते हैं । चैत्रमासमें भूरी और जामुनी छाया लिये हुए सफेद फूल लगते हैं । आषाढ़-श्रावणमें नीबूके आकारके फल लगते हैं । जो पकनेपर लाल हो जाते है । छाल सफेद रंगकी होती है । पान मसलनेसे उसमें उग्र गन्ध आती है ।

**गुण-कर्म**—"××× वरुण ××× प्रभृतीनि । उष्णानि स्वादुतिक्तानि वातप्रशमनानि च" ॥ ( सु. सू. अ. ४६ ) । सुश्रुते ( सु. अ. ३८ ) वरुणादिगणे, वाताश्मरीनाशने, कफाश्मरीनाशने च गणे ( चि. अ. ७ ) वरुणः पठ्यते । "वरुणः पित्तलो भेदी श्लेष्मकृच्छ्राश्ममारुतान् । निहन्ति गुल्मवातास्रकृमींश्चोष्णोऽग्निदीपनः ॥ कषायो मधुरस्तिक्तः कटुको रूक्षको लघुः" ( भा. प्र. ) । "माक्षिकाढ्योऽसकृत् पीतः क्वाथो वरुणमूलजः । गण्डमालां निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥" ××× मूलं वरुणकस्य च । जलेन क्वथितं पीतमपक्वं विद्रधिं जयेत् ॥" ( च. द. ) ।

बरुना रसमें मधुर, तिक्त, कटु और कषाय; रूक्ष, लघु, उष्णवीर्य, वात-कफप्रशमन, पित्तकारक, भेदन, दीपन तथा मूत्रकृच्छ्र ( वात-कफजन्य ), गुल्म, वातरक्त और कृमिका नाश करनेवाला है । बरुनाकी जड़का क्वाथ शहद मिलाकर पीनेसे गण्डमाला और अपक्व विद्रधिका नाश करता है ।

**नव्य मत**—बरुनाकी छालमें सेनेगाके अन्दरके सेपोनिन् ( Saponin ) जैसा सत्त्व पाया जाता है । छालके टिंचरसे तेलका अच्छा दुग्धीकरण( Emulsion ) होता है । बरुना कटु, दीपन, उष्ण, कोष्ठवातप्रशमन, पित्तसारक, अनुलोमन, वातहर, मूत्रजनन और शोथघ्न है । ताजी पत्ती पीसकर त्वचापर बाँधनेसे त्वचा लाल होती है और फोड़ा उठता है । यह क्रिया राई जैसी होती है । मूत्रेन्द्रियके रोगोंमें जैसे—अश्मरी, शर्करा, बस्तिशूल और मूत्रकृच्छ्रमें बरुनाकी छाल या मूलका उपयोग अच्छा होता है । इन रोगोंमें बरुनाके साथ अपामार्ग, पुनर्नवा, जौखार और मुलेठी भी मिलाते हैं । गण्डमालामें छालका क्वाथ शहद मिलाकर पिलाते हैं और छालको पीसकर उसका लेप लगाते हैं । व्रणशोथ और विद्रधिमें बरुनाकी छालके साथ पुनर्नवा भी देते हैं । पेटके अफारे और कुपचनमें बरुनाकी पत्तियोंका फांट देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## ( ३१ ) हुलहुल ।

**नाम**—( सं. ) अजगन्धा, उग्रगन्धा; ( हिं. ) हुलहुल, हुरहुर; ( पं. ) बुगरा; ( म. ) तिलवण; ( गु. ) तलवणी; ( मा. ) बगरो; ( ता. )नायवेळै; ( मल. ) आर्यवाळ्, कार्वेळ; ( ते. ) कुक्कवामिटम्, नेलवामिटम्; ( का. ) काडुसारिवे; ( सिंध. ) किनी बुटी; ( ले. ) **श्वेतपुष्पा**—जाइनेन्ड्रोप्सिस् पेन्टाफाइला ( Gynandropsis Pentaphylla ); **पीतपुष्पा**—क्लिओम विस्कोझा ( Cleome Viscosa ) ।

**वर्णन**—हुलहुल दो प्रकारकी होती है;—( १ ) सफेद फूलवाली और ( २ ) पीले फूलवाली । हुलहुलका १–१॥ हाथ ऊँचा क्षुप वर्षा ऋतुमें होता है । काण्ड और शाखा रोमश होते हैं । पान मसलनेसे उनमेंसे उग्र गन्ध आती है । पीले फूलवालीमें प्रायः नीचे पाँच दलवाले और ऊपर तीन दलवाले संयुक्त पर्ण आते हैं । सफेद फूलवालीमें पाँच दलवाले संयुक्त पर्ण लगते हैं ।

**गुण-धर्म**—“अजगन्धा कटूष्णा स्याद्वातगुल्मोदरापहा । कर्णव्रणार्तिशूलघ्नी कृमिघ्नी च ज्वरापहा ॥” ( रा. नि. ) ।

हुलहुल रसमें कटु, उष्णवीर्य तथा वात, गुल्म, उदर, कानका व्रण और पीड़ा, शूल, कृमि तथा ज्वरका नाश करनेवाली है ।

**नव्य मत**—हुलहुलके बीजकी क्रिया राईके समान होती है । हुलहुल स्वेदजनन, उत्तेजक, कोष्ठवातप्रशमन, दाहजनन, शोणितोत्क्लेशक, दीपन-पाचन और कृमिघ्न है । कर्णशूल और पूतिकर्णमें पत्रकल्क और स्वरससे पकाया हुआ तैल कानमें डालते हैं । १॥–३ माशा हुलहुलके बीजोंका चूर्ण खिलानेसे गोल ( गण्डूपद ) कृमि निकलते हैं **( डॉ. वा. ग. देसाई )** ।

---

## ( ३२ ) करीर ।

**नाम**—( सं. ) करीर, मरुरुह; ( हिं. ) करील; ( व्रज ) टेंट, टेंटी; ( पं. ) करीं, फल–डेले; ( गु. ) केर, केरडां; ( मा. ) कैर, झांसडी; ( म. ) नेबती; ( सिंध. ) किरिड; ( कच्छ ) डवरा; ( का. ) निप्पांड; ( ले. ) कॅपेरिस एफिला ( Capparis aphylla ) ।

**वर्णन**—करीरका काँटेदार गुल्म मारवाड़ आदि सूखे प्रदेशोंमें होता है । इसमें फाल्गुन–चैत्रमें गुलाबी रंगके छोटे फूल लगते हैं । चैत्र-वैशाखमें फल आते हैं । फल पकने पर लाल रंगके हो जाते हैं । फूल और कच्चे फलोंका शाक और अचार करते हैं ।

**गुण-कर्म**—“करीर-मधुशिग्रुकुसुमानि कटुविपाकानि, वातहराणि, सृष्टमूत्र-पुरीषाणि च” । “करीर × × × फलानि च । स्वादुतिक्तकटूष्णानि कफवातहराणि

च ॥" (सु. सू. अ. ४६)। "करीरः कटुकस्तिक्तो लघूष्णो भेदनो जयेत्। दुर्नामकफवातामगरशोफकृमिव्रणान् ॥" (कै. नि.)।

करीर रसमें तिक्त और कटु, लघु, उष्णवीर्य, भेदन तथा अर्श, कफ, वात, आम, शोथ, कृमि और व्रणका नाश करनेवाला है। करीरके फूल कटुविपाक, वातहर और मल-मूत्रको साफ लानेवाले हैं। करीरके फल मधुर (पक्वावस्थामें), कटु और तिक्त (आमावस्थामें) तथा कफ और वातका नाश करनेवाले हैं।

---

## बनफूशादिवर्ग १२।

## N. O. Violaceæ (वायोलेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; पर्णक्रम एकान्तर; पत्र ब्राह्मी जैसे; फूल रंगीन, सुगन्धि और अनियमित; पुष्पवाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ५ छोटे बड़े; नरकेशर ५।

---

### (३३) बनफूशाह।

**नाम**—(क.) गुल्नफचा, नूनपोश; (फा.) बनफूशाह; (ले.) वायोला ओडोरेटा (Viola Odorata)।

**उत्पत्तिस्थान**—ईरान तथा कश्मीर आदि हिमालयके प्रदेश।

**उपयुक्त अंग**—फूल और पंचांग। **मात्रा** ५ से ७ माशा।

**वर्णन**—बनफूशाहका पौधा ४-५ अंगुल ऊँचा होता है। पत्र गोल हृदयाकृति और रोमश; ब्राह्मीके पत्र जैसे दीखते हैं। फूल जामुनी रंगके होते हैं और उनमें सुगन्ध होती है। इसका पंचांग **बनफूशाह** और फूल **गुल बनफूशाके** नामसे बाजारमें मिलते हैं।

**यूनानी मत**—बनफूशा शीत, स्निग्ध, पित्तशामक, अनुलोमन, रक्तप्रसादन, ज्वरहर, श्लेष्मनिस्सारक और तृषाको कम करनेवाला है। प्रतिश्याय, फुप्फुसशोथ, खांसी, नेत्राभिष्यन्द तथा आमाशय और यकृत्के पैत्तिक शोथमें इसका हिम या फांट दिया जाता है। पैत्तिक शोथों और शिरोरोगमें इसका लेप करते हैं। कब्जको दूर करनेके लिये इसके फूलोंका गुलकन्द खिलाते हैं। बनफूशाके फूलोंका खमीरा (अवलेह) और शर्बत प्रतिश्याय और ज्वरमें देते हैं। इसके ताजे फूलोंके साथ तिल या मग्ज बादाम पीस और दबाकर तैल निकाला जाता है, जो मग्जको तरावट पहुंचाने और नींद लानेके लिये सिरपर लगाया जाता है।

**नव्यमत—रासायनिक विश्लेषण**—बनफ्शाके फूलोंमें रञ्जक द्रव्य, थोडा उडनेवाला तैल, अम्ल द्रव्य और एक वामक द्रव्य पाया जाता है । इस वामक द्रव्यका गुण इपिकाकुआनाके अंदरके वामक द्रव्य जैसा है। इस सत्त्वकी दो-तीन ग्रेनकी मात्रासे वमन होता है। गुलबनफ्शा शीतल, स्नेहन, कफघ्न और थोड़ासा स्रंसन है। मूल एक ड्रामकी मात्रामें वामक और थोड़ा विरेचन है । पंचांग स्वेदजनन, श्लेष्मनिस्सारक, वामक और जरा विरेचन है । पित्तप्रधानरोगोंमें बनफ्शा देते हैं। गरमीके दिनोंमें उष्णताकी बाधा न हो इसलिये बनफ्शाका गुलकंद खानेका ईरान और अफगानिस्तानमें बड़ा प्रचार है । अत्यार्तव, रक्तार्श आदिमें रक्तस्राव बंद होनेके लिये पंचांगका क्राथ उत्तम द्राक्षासवके साथ मिलाकर देते हैं । केन्सरमें बनफ्शाह खानेको देते हैं और इसका लेप लगाते हैं। इससे केन्सरमें पीडा और स्राव कम होता है। केन्सरको धोनेके लिये बनफ्शा और पतंगके क्राथका प्रयोग करते हैं । **मात्रा**—पंचांगचूर्ण ५-१० रत्ती स्वेदजनन और कफघ्न; १५-३० रत्ती रक्तस्राव बंद करनेके लिये ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## तुवरकादि वर्ग १३.

### N. O. Bixineæ ( बिक्सिनी )

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थबीजकोश; पर्णक्रम एकान्तर; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ४ से ५; नरकेशर ५ ।

---

### ( ३४ ) तुवरक ।

**नाम**—( सं. ) तुवरक, कटुकपित्थ; ( म. ) कडुकवीठ, कडुकवठी; ( का. ) गरुडफल; ( ता. ) मरवत्तायि, निरडिमुट्टु; ( ते. ) अडविबादामु; ( मल. ) कोडि, मरवेट्टि, नीरवेट्टि; ( ले. ) हिड्नोकार्पस वाइटिआना ( Hydnocarpus wightiana ) ।

**वर्णन**—तुवरकके बड़े सुन्दर वृक्ष दक्षिण कोंकणसे मलबारतकके प्रदेशमें जंगलोंमें होते हैं। पत्ते लंबे सीताफलके पत्ते जैसे, मसृण और चमकदार; फूल सफेद गुच्छोंमें, फल कैथ जितने बड़े; फलमें छोटी बादाम जैसे पुष्कल बीज होते हैं ।

**गुण-कर्म**—"पञ्चकर्मगुणातीतं श्रद्धावन्तं जिजीविषुम् । योगेनानेन मतिमान् साधयेदपि कुष्ठिनम् ॥ वृक्षास्तुवरका ये स्युः पश्चिमार्णवभूमिषु । × × × । तेषां फलानि गृह्णीयात् सुपक्वान्यम्बुदागमे । मज्जां तेभ्योऽपि संहृत्य शोषयित्वा विचूर्ण्य च ॥ तिलवत् पीडयेद्द्रोण्यां स्रावयेद्वा कुसुम्भवत् ।

तत्तैलं संहृतं भूयः पचेदातोयसंक्षयात् ॥ अवतार्य करीषे च पक्षमात्रं निधापयेत्। स्निग्धः स्विन्नो हृतमलः पक्षादूर्ध्वं प्रयत्नवान् ॥ चतुर्थभक्तान्तरितः पिबेन्मात्रां यथाबलम्। तेनास्योर्ध्वमधश्चापि दोषा यान्त्यसकृत्ततः। अस्नेहलवणां सायं यवागूं शीतलां पिबेत् ॥ पञ्चाहं प्रपिबेत्तैलमनेन विधिना नरः। पक्षं परिहरेच्चापि मुद्गयूषौदनाशनः ॥ × × × । तदेव खदिरक्वाथे त्रिगुणे साधु साधितम्। निहितं पूर्ववत् पक्षं पिबेन्मासमतन्द्रितः ॥ तेनाभ्यक्तशरीरश्च कुर्वीताहारमीरितम्। भिन्नस्वरं रक्तनेत्रं विशीर्णं कृमिभक्षितम् ॥ अनेनाशु प्रयोगेण साधयेत् कुष्ठिनं नरम्। शोधयन्ति नरं पीता मज्जानस्तस्य मात्रया ॥ महावीर्यस्तुवरकः कुष्ठमेहापहः परः। सान्तर्धूमस्तस्य मज्जा तु दग्धः क्षिप्तस्तैले सैन्धवं चाञ्जनं च। पैल्यं हन्यादर्मनक्तान्ध्यकाचान्नीलीरोगं तैमिरं चाञ्जनेन ॥" (सु. चि. अ. १४)।

तुवरकके वृक्ष पश्चिम समुद्रके समीपकी भूमिमें होते हैं। वर्षाऋतुके आरम्भमें उनके खूब पके हुए फल ले, उनके अन्दरका मग्ज़ निकाल, उनको सुखा और चूर्ण करके कोल्हूमें पीलकर तेल निकाले या उनको जलके साथ पकाकर ऊपर आया हुआ तैल ले ले। मग्जको जलके साथ पकाकरके निकाले हुए तेलमें जो पानीका अंश हो उसको गरम करके उड़ा दे। पीछे तेलको घड़ेमें बंद करके १५ दिन कंडोंके चूर्णमें रखे। बाद निकाल, कपड़ेसे छान कर शीशियोंमे भरकर रख छोड़े। इसप्रकार तैयार किये हुए तैलको तीन गुने खैरकी लकड़ीके बुरादेके क्वाथमें पकाकर तैयार करे तो विशेष गुणकारक होता है। पहले रोगीको स्नेहन, स्वेदन और संशोधन कराके पीछे योग्य मात्रामें (१ तोला) तुवरकका तेल पिलावे। इससे वमन और विरेचन द्वारा दोषोंका शोधन होगा। वमन-विरेचन होनेके वाद रोगीको शामको स्नेह और लवण-रहित यवागू पिलावे। तैलका प्रयोग बंद करनेके बाद १५ दिन तक रोगीको मूँगका यूष और भात खिलावे। इस तैलके प्रयोगसे मधुमेह और खराब हुए कुष्ठके रोगी अच्छे होते हैं। तुवरकके फलकी मज्जाको अन्तर्धूम जला, उसमें तिलका तेल, सैंधव और सुरमा मिलाकर बनाये हुए अञ्जनसे नेत्रके रोग अच्छे होते हैं।

**नव्यमत**—तुवरकतैल कृमिघ्न, व्रणशोधन, व्रणरोपण, कण्डूघ्न, वेदनास्थापन, त्वग्दोषहर और रक्तशोधन है। बड़ी मात्रामें देनेसे मितली आकर उलटी और जुलाब होते हैं। मात्रा ५ से १० बूंद; धीरे धीरे बढ़ाके ६० बूंद तककी मात्रा बढ़ानी चाहिये। यह तैल मक्खन, घी या मलाईमें मिलाकर देना चाहिये। यह तैल महाकुष्ठमें खानेको देते हैं और शरीरपर लगाते हैं। क्षयके जन्तुओंसे होनेवाले गण्डमाला, व्रण, नाड़ीव्रण, अस्थिव्रण आदिमें यह तैल खानेको और लगानेको दिया जाता है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

१ 'प्रातः पाणितलं पिबेत्' इत्यष्टाङ्गहृदये पाठान्तरम्।

**वक्तव्य**—रोगीको केवल दूध और मीठे फलोंके पथ्यपर रख कर इसका प्रयोग करनेसे विशेष लाभ होता है । महाकुष्ठ ( leprosy ) के लिये यह उत्तम औषध है । वैद्योंको इसका प्रयोग करना चाहिये ।

---

## ( ३५ ) चालमोगरा ।

**नाम**—( बं. ) चालमुगरा; ( ले. ) गायनोकार्डिआ ओडोरेटा ( Gynocardia Aodoreta ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—चालमोगराके वृक्ष सिक्किम, खासिया पर्वतमाला और पूर्वबंगालमें चितागांग( चटगांव )की ओर होते हैं ।

**उपयुक्त अंग**—तैल । **मात्रा**—प्रारंभमें ५ से १० बूंद देकर धीरे धीरे ६० बूंद तक दूधकी मलाई या गायके घीमें मिलाकर देना चाहिये ।

**गुण-कर्म**—चालमोगराका तैल कृमिघ्न, वेदनास्थापन, त्वग्दोषहर, रक्तशोधन और व्रणरोपण है । चालमोगराका तैल सब प्रकारके त्वचाके रोगोंमें और महाकुष्ठोंमें खानेको और लगानेको दिया जाता है । फिरंगोपदंशकी द्वितीयावस्थामें यह उपयोगी है । गण्डमाला, व्रण, नाड़ीव्रण और अस्थिव्रणमें इस तैलको खिलाने और लगानेसे अच्छा लाभ होता है । आमवात, गृध्रसी आदि वातरोगोंमें यह तैल खाया और लगाया जाता है **( डॉ. वा. ग. देसाई )** ।

---

# लोणिकादिवर्ग १४.

## N. O. Portulaceæ ( पोर्ट्युलेसी ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थबीजकोश; पत्र मांसल और अखण्ड; पुष्पबाह्यकोशके दल दो; पँखडियां ४–५; नरकेशर ४ या उससे अधिक; स्त्रीकेशर १ ।

---

## ( ३६ ) लोणिका ।

लोणिकामें दो जातियाँ होती हैं—**( १ ) बृहल्लोणिका, ( २ ) लघुलोणिका ।**

**नाम. ( सं. ) बृहल्लोणिका; ( क. ) नूनर; ( पं., हिं. ) कुल्फा; ( मा. ) मंमोली; ( बि. ) नोना; ( म. ) मोठी घोल; ( गु. ) म्होटी लुणी; ( फा. ) खुर्फा; ( ले. ) पोर्च्युलेका ओलिरेसिआ** ( Portulaca oleracea ) ।

**नाम—( सं. ) लघुलोणिका; ( पं. ) लूणक; ( हिं. ) नोनिया, लोनिया; ( बि. ) नोनी; ( म. ) घोल; ( गु. ) लुणी; ( का. ) जुजुगोलि; ( ता. ) पचिरि; ( ले. ) पोर्च्युलेका क्वोड्रीफिडा** ( Partulaca Quadrifida )

**वर्णन**—कुल्फेका क्षुप खड़ा या जमीनपर फैला हुआ होता है । वह ६ इंचसे १–२ फुट तक लंबा होता है । रंग फीका हरा या ललाई लिये हुए हरा होता है। पत्र मोटे और सिरेपर चौड़े होते हैं । लोनिया जमीनपर फैला हुआ होता है। शाखायें सूत जैसे पतली होती हैं । वे जैसे जैसे बढ़ती जाती हैं वैसे वैसे संधि-परसे जमीनमें जड़ें डालती जाती हैं । रंग हरापनलिये हुए लाल होता है । दोनोंकी भाजी बनाकर खाते हैं ।

**गुण-कर्म**—× × × लोणिका × × × शाकं गुरु च रूक्षं च प्रायो विष्टभ्य जीर्यति । मधुरं शीतवीर्यं च पुरीषस्य च भेदनम् ॥" (च. सू. अ. २७)। "लोणिका × × × प्रभृतयः । स्वादुपाकरसाः शीताः कफघ्ना नातिपित्तलाः । लवणानुरसा रूक्षाः सक्षारा वातलाः सराः ॥" (सु. सू. अ. ४६)।

कुल्फा और नोनियाका शाक गुरु, रूक्ष, पेटमें गड़बड़ाहट करके पाचन होनेवाला, शीतवीर्य, मधुर, लवानुरस, सक्षार और मलको पतला करनेवाला है ।

**यूनानी मत**—कुल्फा और लोनिया सर्द और तर है । कुल्फेका शाक पैत्तिक ज्वर, पेशाबकी जलन, रक्तकास तथा यकृत्, आमाशय और गर्भाशयकी उष्णतामें खिलाया जाता हैं । आग या गरम पानीसे जले हुए अंग, गरम शोथ, गरम सिरदर्द और हाथ-पाँवकी जलनपर इसका लेप करते हैं ।

**नव्यमत**—लोणिका शीतल, ग्राही, शोथहर और रक्तशोधक है । कुल्फा और लोनियाकी भाजी और बीज मूत्रपिंड (गुर्द) और मूत्राशयके शोथमें देते हैं। इसके फाण्टसे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है । इसका शाक अर्शवालेको देते हैं । दाँत, कफ, पेशाब आदिके रक्तस्रावमें लोणिकाका स्वरस देते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## झाबुकादि वर्ग १५.

### N. O. Tamariscineæ (टॅमेरिसिनी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थबीजकोश; पर्णक्रम एकान्तर; पत्र अवृन्त, अखण्ड और छोटे (बारीक); पुष्प छोटे और नियमित; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ४–५ या दशतक; पुंकेशर ५; स्त्रीकेशर १; गर्भाशय एककोशी; फल विदारी; बीज पुष्कल ।

---

### (३७) झाऊ ।

**नाम**—(सं.) झावुक; (हिं.) झाऊ, फरास; (बं.) झऊवा; (पं.) फरवां, ओकां; (सिं.) लई; (मा.) लवो; (गु.) प्रांस; (अ.) तुर्फाह; (फा.) गझ; (ले.) टॅमेरिक्स आर्टिक्युलेटा Tamarix articulata) (छोटी); टॅमेरिक्स गेलिका (Tamarix gallica) (बड़ी)।

**वर्णन**—झाऊका वृक्ष नदी और समुद्रके किनारे पर रेतीली जमीनमें होता है। वृक्ष देखनेमें सरो जैसा मालूम होता है। झाऊकी शाखाओंपर एक प्रकारकी मक्खी बैठकर शाखामें डंक मारती हैं। तब उसमेंसे रस निकलकर उस मक्खीके चारों ओर जमकर गाँठसा बन जाता है, उसको **मांई** कहते हैं।

**गुण-कर्म**—मांईमें बड़े प्रमाणमें कषायाम्ल (टेनिक् एसिड्) होता है। मांईका उपयोग माजूफलके समान होता है। मांई ग्राही, स्तम्भन और शोणितास्थापन है।

**मात्रा**—१५ से ३० रत्ती।

**यूनानी मत**—झाऊ शीत और रूक्ष है। झाऊ ग्राही, शोथघ्न, रक्तस्तम्भन और रक्तशोधन है। झाऊ प्लीहाकी वृद्धि और सख्तीको दूर करता है। प्लीहाकी वृद्धिमें झाऊकी पत्तियोंका क्काथ पिलाते हैं और झाऊकी लकड़ीके प्यालेमें १२ घंटा रखा हुआ जल पिलाते हैं। झाऊकी पत्तियोंके क्काथसे कुल्ला करनेसे मसूड़ोंसे खून तथा पीप आती हो तो वह बंद होती है और मसूड़े मजबूत होते हैं। पत्तीके क्काथसे व्रणको धोनेसे व्रणका शोधन और रोपण होता है। पत्तियोंकी राख छिड़कनेसे चेचक (शीतला)के तथा अन्य व्रण शीघ्र सूख जाते हैं। झाऊकी पत्तियोंकी धूनी देनेसे व्रण सूख जाता है और अर्शके मसे सूखकर सुकड़ जाते हैं। ताजी पत्तियोंका स्वरस और मांईका चूर्ण वाजीकर और शुक्रस्तम्भन है। पत्तियोंके क्काथकी उत्तरबस्ति (डूश) देनेसे श्वेतप्रदरमें लाभ होता है। पत्तियोंके क्काथमें बैठानेसे गुदभ्रंश अच्छा होता है।

---

## नागकेशरादि वर्ग १६.

### N. O. Guttiferæ (गटिफरी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण, विभक्तदल; अधःस्थबीजकोश; पर्णक्रम अभिमुख; पत्र सादे, अखण्ड, चर्मसदृश; पुष्प नियमित; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ४ से १२; नरकेशर अनियत; फल मांसल।

इस वर्गमें बड़े वृक्ष होते हैं। पुष्प सुन्दर और सुगन्धि होते हैं। इन वृक्षोंमेंसे पीले रंगका राल जैसा निर्यास निकलता है।

---

### (३८) नागकेशर।

**नाम**—(सं.) नागकेशर, चाम्पेय, नागपुष्प; (हिं.) पीला नागकेशर; (म.) नागचांफा (वृक्ष), नागकेशर; (बं.) नागेश्वर; (गु.) पीळुं नागकेशर; (ते.)

---

१ मांईको गुजरातीमें **'पड़वास'** कहते हैं।

नागचंपकमु, नागकेशरमु; (का.) नागसंपिगे; (ले.) मेसुआ फेरिआ (Mesua Ferrea)।

**उत्पत्तिस्थान**—कुमाऊं, नेपाल, दक्षिण कोंकण आदिमें पीले नागकेशरके वृक्ष होते हैं। वृक्षको **नागचंपा** भी कहते हैं।

**वर्णन**—नागकेशरका सुंदर वृक्ष होता है। इसके पुष्पमें पाँच पँखडियाँ होती हैं। नरकेशरका पीले रंगका गुच्छा होता है। उसको **नागकेशर** कहते हैं। औषधार्थ इन केशरोंका ही प्रयोग करना चाहिये। असली नागकेशर यही है।

**गुण-कर्म—सुश्रुते एलादिगणे, अञ्जनादिगणे, प्रियङ्ग्वादिगणे च नागपुष्पं पठ्यते। "नागपुष्पं कषायोष्णं रूक्षं लघ्वामपाचनम्। ज्वरकण्डूतृषास्वेदच्छर्दि-हृल्लासनाशनम्॥ दौर्गन्ध्यकुष्ठवीसर्पकफपित्तविषापहम्।" (भा. प्र.)। "नागकेशरमल्पोष्णं लघु तिक्तं कफापहम्। बस्तिवातामयघ्नं च कण्ठशीर्षरुजाप-हम्॥" (रा. नि.)। ××× केशरनवनीतशर्कराभ्यासात्। ××× अर्शांस्यप-यान्ति रक्तानि॥" (च. चि. अ. १४)।**

नागकेशर रसमें तिक्त और कषाय, लघु, रूक्ष, कुछ उष्णवीर्य, आमपाचन, तथा ज्वर, कण्डू, तृषा, स्वेदाधिक्य, वमन, मितली, दौर्गन्ध्य, कुष्ठ, विसर्प, बस्तिवात, विष, कंठ और सिरके रोग, कफ और पित्तका नाश करनेवाला है। नागकेशरको मक्खन और मिश्रीके साथ मिलाकर सेवन करनेसे अर्शमें रक्त आता हो तो वह बंद होता है।

रक्तार्श, रक्तातिसार, रक्तप्रदर, रक्तकास, रक्तपित्त आदि रोगोंमें नागकेशर उत्तम औषध है।

**नव्यमत**—नागकेशर शीतल, पीड़ाशामक, रक्तसंग्राहक और ग्राही है। गुदद्वारकी जलन, रक्तप्रवाहिका, रक्तार्श और हाथ-पाँवकी जलनमें नागकेशर उत्तम औषध है। पुष्कल कफयुक्त खांसीमें यह दिया जाता है। नागचंपाके बीजोंके तैलकी संधिवात और शरीरके दर्दमें मालिश की जाती है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**उपयुक्त अंग**—पुष्पोंके अंदरका पुंकेशर। **मात्रा** ४–८ रत्ती।

---

## (३९) सुरपुन्नाग।

**नाम—(सं.) सुरपुन्नाग, नमेरु, सुरपर्णिका; (म.) सुरंगी (वृक्ष), लाल नागकेशर; (गु.) रातुं नागकेशर; (हिं.) लाल नागकेशर; (ले.) ओक्रोकार्पस लोंगीफोलिअस** (Ochrocarpus longifolius)।

**वर्णन**—सुरपुन्नाग(सुरंगी)का वृक्ष दक्षिण कोंकणसे मलबारतक समुद्रतटके

प्रदेशमें होता है । वसंत ऋतुमें इसमें सुंदर सुगन्धि पुष्प लगते हैं । इसकी अविकसित पुष्पकलिका बाजारमें **लाल नागकेशर**के नामसे बिकती है ।

**गुण-कर्म**—सुश्रुते एलादिगणे पुन्नागकेशरं पठ्यते । "पुन्नागः सुरपर्णिका, सुगन्धिपुष्पयुक्ता दक्षिणापथे 'सुरपति' नाम्ना प्रतीता ( डल्हण )।

इसके गुण-कर्म पीले नागकेशर जैसे ही हैं, परंतु उससे कम दर्जेके हैं ।

---

## ( ४० ) पुन्नाग ।

**नाम**—( सं. ) पुन्नाग, तुङ्ग; ( म. ) उंडी, उंडल; ( का. ) होन्ने; ( हिं. ) सुलतान चंपा; ( ले. ) केलोफिलम् इनोफिलम् ( Calophyllum inophyllum )।

**वर्णन**—पुन्नागका बड़ा सुंदरवृक्ष दक्षिण भारतमें समुद्रतटके प्रदेशमें और बंगालमें होता है । पत्र वड़के पत्र जैसे, लंबगोल और नोकदार होते है । पुष्प सफेद रंगके और सुगन्धि होते हैं । इसके बीजोंका तैल निकाला जाता है ।

**गुण-कर्म**—"पुन्नागो मधुरः शीतः सुगन्धिः पित्तनाशकृत्" ( रा. नि. करवीरादिवर्ग )।

पुन्नाग रसमें मधुर, शीतवीर्य, सुगन्धि और पित्तका नाश करनेवाला है ।

पुन्नागके बीजोंका तैल सुजाकमें खिलाया जाता है। सन्धिवातमें इसकी मालिश करते हैं ।

---

## ( ४१ ) वृक्षाम्ल ।

**नाम**—( सं. ) वृक्षाम्ल, रक्तपूरक; ( म., हिं., गु. ) कोकम; ( कों. ) रतांबी; ( मल. ) पुनंपुळि; ( ले. ) गार्सिनिआ इन्डिका ( Garcinia indica )।

**वर्णन**—कोकमका वृक्ष कोंकण और मलबारमें होता है । फल लाल रंगके और मांसल होते हैं । बीज निकाले हुए फलको सुखाकर **कोकम**के नामसे बेचते हैं । बीजोंसे तेल निकलता है । वह मोम जैसा जम जाता है । उसको **कोकमका घी** या **तेल** कहते हैं ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) हृद्ये महाकषाये वृक्षाम्लं पठ्यते । "वृक्षाम्लं ग्राहि रूक्षोष्णं वातश्लेष्मणि शस्यते ।" ( च. सू. अ. २७ )। "वृक्षाम्लमाममम्लोष्णं वातघ्नं कफपित्तलम् । पक्वं तु गुरु संग्राहि मधुराम्लरसं तथा ॥ अल्पोष्णं रोचनं रूक्षं दीपनं वातनाशनम् । तृष्णार्शोग्रहणीगुल्मशूलहृद्रोगजन्तुजित् ॥" ( भा. प्र. )।

कोकम हृद्य, ग्राही, रूक्ष, उष्णवीर्य और वात तथा कफका नाश करनेवाला है (च.)। कच्चा कोकम अम्ल, उष्णवीर्य, वातघ्न तथा कफ और पित्तको बढ़ानेवाला है। पका हुआ कोकम गुरु, ग्राहि, रसमें कुछ मधुर और अम्ल, कुछ उष्ण वीर्य, रोचन, रूक्ष, दीपन तथा वात, तृषा, ग्रहणी, अर्श, गुल्म, हृद्रोग, शूल और कृमिका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—बीजमें १० प्रतिशत तैल होता है। ताजे फल हृद्य, रक्तपित्त-प्रशमन और ग्राही हैं। सुखाये हुए फल रोचक, दीपन-पाचन, ग्राही और रक्तपित्त-प्रशमन हैं। तैल स्तम्भन और रक्तपित्तप्रशमन है। अतिसार, संग्रहणी और रक्तप्रवाहिकामें कोकमका फांट देते हैं। ठंढीके दिनोंमें हाथ-पाँवके तलोंमें चमड़ी फटकर चीरे पड़ते हैं, उनपर कोकमका तैल लगाते हैं। पके हुए फलोंका शर्बत बनाते हैं। उसको पैत्तिक रोगोंमें देते हैं।

**वक्तव्य**—पूर्व-उत्तर बंगाल और सिलहटमें कोकमकी जातिका एक वृक्ष होता है, उसको वहाँ **थैकल** ( ले. गार्सिनिआ पेडन्क्युलेटा Garcinia pedunculata) कहते हैं। उसके गुण-कर्म भी कोकमके जैसे हैं। कोकमके अभावमें उसका प्रयोग कर सकते हैं। बंगालके वैद्य **अम्लवेतस**के नामसे इसका व्यवहार करते हैं, परन्तु अम्लवेतस इससे भिन्न नीबूकी जातिका **फल** है।

---

## शालादि वर्ग १७.

### N. O. Dipterocarpeæ ( डिप्टेरोकार्पी )

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थबीजकोश; पर्णक्रम एकान्तर; पत्र सादे; पत्रपर समानान्तर स्पष्ट सिरायें होती हैं; पुष्प गुच्छोंमें पत्रकोण या शाखाग्रसे निकलते हैं; पुष्पाबाह्यकोशके दल ५; स्थायी; पँखडियाँ ५। इस वर्गमें बड़े वृक्ष होते हैं। इन वृक्षोंसे राल और सारतैल निकलता है।

---

### ( ४२ ) शाल।

**नाम—( सं. )** शा(सा)ल; ( हिं. ) साल, साखु, सखुआ; ( ले. ) शोरिआ रोबस्टा ( Shorea robusta )।

**वर्णन**—शालके वृक्ष हिमालयकी तराइके कांगड़ासे आसामतकके प्रदेशमें होते हैं। इसके धड़में छेद करनेसे एक प्रकारका निर्यास निकलकर जम जाता है, उसको **राल** कहते हैं।

**रालके नाम—( सं. )** शालनिर्यास, सर्जरस, यक्षधूप; ( हिं., म., गु. ) राल; ( बं. ) धुना; ( अ. ) किकहर।

**गुण-कर्म—सुश्रुते** ( सू. अ. ३८ ) शालसारादिगणे, तथा रोध्रादिगणे; चरके वेदनास्थापने गणे आसवयोनिसारवृक्षेषु ( सू. अ. २५ ) तथा कषायस्कन्धे च शालः पठ्यते। "शालः कषायो ग्राह्युस्त्रग्दग्धरुक्कफजिद्धिमः। कर्णरोगहरो रूक्षो विषहा व्रणशोधनः॥" ( कै. नि. ) "रालः स्वादुः कषायश्च स्तम्भनो व्रणरोपणः। विपादीभूतहन्ता च भग्नसन्धानकृन्मतः॥" ( ध. नि. )।

**साल** रसमें कषाय, शीतवीर्य, रूक्ष, ग्राही, व्रणशोधन तथा रक्तविकार, अग्निदाह, कर्णरोग, विष, कुष्ठ, प्रमेह और पाण्डुरोगका नाश करनेवाला तथा कफ और मेदको सुखानेवाला है। **राल** रसमें मधुर और कषाय, स्तम्भन, व्रणरोपण, अस्थिभग्नका संधान करनेवाला तथा विपादिका ( पाँवके तलोंका फटना ) और भूत( जीवाणु? )का नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—राल उत्तम व्रणशोधन, व्रणरोपण, रक्तसंग्राहक और ग्राही है। रालका मरहम लगानेसे फोड़े-फुंसियोंकी पीड़ा शान्त होती है; वे फूट जाते हैं और व्रण जल्दी भर जाता है। यदि फोड़े-फुंसी नये हों तो बैठ जाते हैं। रालका मलहम जहां लगाया जावे वहां रक्ताभिसरण बढ़ता है और वह स्थान कृमिहीन होता है। कुपचन, सुजाक, रक्तप्रवाहिका और रक्तार्शमें राल देते हैं। इतर सुगन्धि द्रव्योंके साथ मिलाकर रालका धूप किया जाता है। यह धूप जन्तुघ्न है।

**रालका मरहम**—राल, मोम और तिलका तैल समभाग ले, आगपर पिघला, कपड़ेसे छानकर काचपात्रमें भर ले ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

**यूनानी मत**—राल दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है। राल लेखन ( शरीरको पतला करनेवाली ), व्रणशोधन, व्रणरोपण, अञ्जन करनेसे दर्शनशक्तिको बढ़ानेवाली, मंजनसे दाँतोंकी पीड़ाको शांत करनेवाली, लेप करनेसे दद्रुघ्न, तथा खांसी और दमेमें लाभ करनेवाली हैं। रालका मलहम फोड़े, पुराने जखम, नासूर और आगसे जलने पर लगानेसे लाभ करता है। रालका लेप खुजली और जखमके निशानोंको मिटाता है।

---

## ( ४३ ) सर्ज।

**नाम—( सं. )** सर्ज; **( ते. )** तेल्लदामरु, तेल्लगुग्गिलमु; **( ता. )** वेल्लै कुन्दिरिकम्, वेल्लैकुंदुरुक्कम्; **( मल. )**; पइन, पयनि; **( ले. )** वॅटेरिआ इन्डिका ( Vateria indica )

**वर्णन**—इसका बड़ा सुन्दर वृक्ष दक्षिण हिंदुस्थानमें होता है। इसके धड़से **राल** जैसा निर्यास निकलता है, उसको हिंदीमें **चंद्रस** ( चंदरस ), सफेद डामर,

---

१ "शालसारादिरित्येष गणः कुष्ठनिषूदनः। मेहपाण्ड्वामयहरः कफमेदोविशोषणः॥" ( सु. सू. अ. ३८ )।

पंजाबमें सुंदरस और यूनानी वैद्यकमें **संद्रस** (सुंद्रस) कहते हैं। चन्द्रस वार्निश और मरहम बनानेके काममें आता है। चन्द्रसके टुकड़े देखनेमें कहरुबा जैसे मालूम होते हैं। इसके बीजोंसे तैल निकाला जाता है। जो कोकमके तेल जैसा जमा हुआ, पीला और सुगन्धि होता है।

**गुण-कर्म—चरके** (सू. अ. ४) कषायस्कन्धे (वि. अ. ८) सर्जः पठ्यते। "सर्जः कषायो व्रणजित् कफस्वेदमलक्रिमीन्। ब्रध्नविद्रधिबाधिर्ययोनिकर्णगदाञ्जयेत्॥" (भा. प्र.)।

सर्ज रसमें कषाय, तथा व्रण, स्वेदाधिक्य, कफ, ब्रध्न (बद), विद्रधि, बहरापन, योनिरोग और कानके रोगोंका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—चन्द्रसके गुण यूरोपियन रेजिनके समान हैं। चन्द्रस व्रणशोधन और व्रणरोपण है। तैल वेदनास्थापन है। चंद्रस उत्तम व्रणरोपण होनेसे उसका मरहम सर्व प्रकारके व्रणोंमें उपयोगी है। तैल जीर्ण आमवातमें गुणकारी है। तैल इतर द्रव्योंके मरहम बनानेमें काममें आता है। **कल्प-मरहम**—चंद्रस ५ भाग, राल ५ भाग, मोम २ भाग, तिलका तेल ८ भाग। सबको एकत्र आगपर पिघला, कपड़ेसे छानकर मरहम बनावे (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**यूनानीमत**—चन्द्रस दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष है। चंद्रस आमाशय और आँतोंके कफको छाँटता है (लेखन), पेटके कीड़ोंको मारता है। चन्द्रसका मंजन दाँतों और मसूड़ोंको शक्ति देता है तथा उनके रक्तस्रावको रोकता है। इसकी धुनी अर्शमें लाभ पंहुचाती है और व्रणको सुखाती है। इसका अञ्जन नेत्रको शक्ति देता है। चन्द्रस मूत्र ओर आर्तवकी प्रवृत्ति करानेवाला है। इसका तेल कानमें डालनेसे कानकी पीड़ा शान्त होती है। चन्द्रसके सेवनसे शरीरकी स्थूलता नष्ट होती है। यह पसीना आनेको रोकता है। सर्जके तेलमें सफेदा (जस्तेका फूल) और चन्द्रस मिलाकर लगानेसे सिरके गंजमें लाभ होता है। गुण-कर्ममें यह कहरुबा और रालके समान है। **मात्रा** १–३ माशे तक।

**वक्तव्य**—सुश्रुतके सालसारादिगणमें **साल, अजकर्ण** और **अश्वकर्ण** ये तीन तथा चरकके कषायस्कन्धमें **साल, सर्ज, अश्वकर्ण** और **अजकर्ण** ये चार नाम मिलते हैं। सुश्रुतकी टीकामें उल्हणने 'अजकर्णः सर्जः सालभेद एव' यह व्याख्या दी है। परन्तु सुश्रुतने स्वयं आगे चि. अ. ९, श्लो. ११ में "निम्बः सर्जो वत्सकः साजकर्णः" **सर्ज** और **अजकर्ण** दो भिन्न लिखें हैं। इसलिये उल्हणका अजकर्णको ही सर्ज लिखना ठीक नहीं है। साल, सर्ज, अजकर्ण और अश्वकर्ण ये चारों सालके भेद या तत्सदृश वृक्ष हों ऐसा प्रतीत होता है। निघण्टुकारोंने दिये हुए पर्यायोंमें इतनी गड़बड़ है कि उनकी सहायतासे इनका ठीक निर्णय करना कठिन है। रालके लिये

चरक और सुश्रुतमें **सर्जरस** शब्द प्रयुक्त हुआ है। **शालनिर्यास** शब्द चरक-सुश्रुतमें देखनेमें नहीं आता। इस समय वैद्य लोग **सर्जरस (राल)** नामसे जिस द्रव्यका व्यवहार करते हैं वह सालका निर्यास है। इस समय यहां राल सिंगापुरसे आती है। जंगलात (फारेस्ट) विभागके नियन्त्रणके कारण यहाँ आजकल राल नहीं निकाली जाती। चंद्रस भी रालकी ही एक उत्तम जाती है और उसके गुण-कर्म भी रालके समान ही हैं। उसका व्यवहार वैद्योंकी अपेक्षया हकीम लोग अधिक करते हैं। संभव है कि प्राचीनोंने **राल** और **चंद्रस** दोनोंको **सर्जरस** नाम दिया हो। यदि ऐसा हो तो शोरिआ रोबस्टा(Shorece robecsta)को **शाल** और वॅटेरिआ इन्डिका(Vateria indica)को **सर्ज** नाम देना ठीक होगा। संभव है कि प्राचीनोंका **अजकर्ण** टर्मिनेलिआ टोमेन्टोझा (Terminalia tomentosa) और **अश्वकर्ण** गर्जन हो।

---

## (४४) गर्जन।

**नाम**—(हिं.) गर्जन; (ले.) डिप्टेरोकार्पस् ॲलेटस् (Dipterocarpus alatus)।

**वर्णन**—गर्जनके वृक्ष पूर्व बंगालमें चटगांव और ब्रह्मदेशमें होते हैं। इसके धड़से तेल निकलता है, उसको **गर्जनका तेल** कहते है।

**गुण-कर्म**—गर्जनके तेलकी क्रिया **कोपेबा** जैसी होती है। यह श्लेष्मल त्वचाके लिये विशेषतः मूत्रेन्द्रियकी श्लेष्मल त्वचाके लिये उत्तेजक है। इससे पेशाब बढ़ता है और मूत्रमें कोथप्रशमन धर्म उत्पन्न होता है। अतः मूत्रमें जीवाणु जीते नहीं और नये उत्पन्न होते नहीं। गर्जनका तेल पुराने सुजाक (पूयमेह-गनोरिया) में दिया जाता है। **मात्रा** ½ से २ ड्राम (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

गर्जनका तैल, कबाबचीनीका तैल और चंदनका तेल समभाग मिलाकर ३० बिन्दुकी मात्रामें चीनीमें मिलाकर खिलानेसे सुजाकमें अच्छा लाभ होता है।

---

## (४५) भीमसेनी कपूर।

**नाम**—(सं.) भीमसेनकर्पूर; (बंबई) बरासकपूर; (ले.) ड्रायोबेलेनोप्स ॲरोमेटिका (Dryobalanops aromatica); (इं.) सुमात्रा केम्फर (Sumatra camphor)।

**वर्णन**—भीमसेनी कपूरके बड़े वृक्ष सुमात्रा और बोर्निओमें होते हैं। वृक्षके धड़में जहां पोल हो अथवा चीरे पड़े हों वहां भीमसेनी कपूर मिलता है। इस वृक्षसे एक प्रकारका तैल निकलता है, उसको **कर्पूरतैल** कहते हैं। भीमसेनी

कपूर पानीमें डूब जाता है। भीमसेनी कपूर विना पकाये ही मिलता है, इसलिये इसको **अपक्व कर्पूर**[1] कहते हैं।

**गुण-कर्म**—भीमसेनी कपूरके गुण-कर्म चीनी और जापानी कपूरके समान हैं। विशेष विवरण चीनी कपूरके प्रकरणमें देखें।

---

## कार्पासादिवर्ग १८.

### N. O. Malvaceæ. (माल्वेसी)

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; पान बहुधा नरम, रोमश, एकान्तर; फूल सुन्दर, नियमित और शाखाग्रोद्भूत; पुष्पबाह्यकोशके दल ५, नीचेके भागमें संयुक्त; कई एकमें पुष्पच्छद होते हैं; पँखडियाँ ५; पुंकेशर पुष्फल, परन्तु नीचेके भागमें मिलकर नलिकाकृति बने हुए; बीजकोश एककोशी। इस वर्गके उद्भिज्ज प्रायः मजबूत रेशेदार होते हैं।

---

### (४५) कार्पासी।

**नाम**—(सं.) कार्पासी; तुण्डिकेरी; (हिं.) कपास; (म.) कापसी; (गु.) वोंण, वोण, कपास; (क.) कपस; (पं.) कपा, फुट्टी; (बं.) कापास; (ते.) बदरि, कार्पासमु; (ता.) रामुत्तिरदम्, कार्बाशम्; (मल.) परुत्ति; (का.) हत्ति; (ले.) गोसिपिअम् हर्बेसिअम् (Gossypium herbaceum)।

**रूईके नाम**—(सं.) तूल, पिचु; (हिं.) रूई; (म.) कापूस; (गु.) रू, कापूस; (फा.) पुंबह; (इं.) कोटन् (Cotton)।

**बीजके नाम**—(हिं.) बिनौला; (म.) सरकी; (गु.) कपासिया; (मा.) कांकडा।

**वर्णन**—कपास जगत्प्रसिद्ध क्षुप है। सारे भारतवर्षमें रूईके लिये कपासकी खेती की जाती है। कपास स्वयंजात भी होता है। उसको **भारद्वाजी**[2] और **अरण्यकार्पासी** (जंगली कपास) कहते हैं। कपासका एक भेद, जिसको हिंदीमें **नर्मा**, गुजरातीमें **हिरवणी**, मराठीमें **देवकापसीण** और संस्कृतमें **उद्यानकर्पास**[3] कहते हैं, बागोंमें लगाया जाता है। इसके पुष्प लाल रंगके होते हैं।

---

१ "कर्पूरं द्विविधं प्राहुः पक्वापक्वप्रभेदतः। पक्वात् कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम्॥" (भा. प्र.)। २ थेस्पेसिआ लेम्पस् (Thespasia lampas)। ३ गोसिपिअम् आर्बोरिअम् (Gossypium arboreum)।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) बृंहणीये महाकषाये भारद्वाजी तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३९ ) वातसंशमने वर्गे कार्पासी पठ्यते। "कार्पासी मधुरा शीता स्तन्या पित्तकफापहा। तृष्णादाहश्रमभ्रान्तिमूर्च्छाहृद् बलकारिणी॥ भारद्वाजी हिमा रुच्या व्रणशस्त्रक्षतापहा।" (रा. नि.)। कार्पासको लघुः कोष्णो मधुरो वातनाशनः। तत्पलाशं समीरघ्नं रक्तकृन्मूत्रवर्धनम्॥ तत् कर्णपिडकानादपूयास्रावविनाशनम्। तद्बीजं स्तन्यदं वृष्यं स्निग्धं कफकरं गुरु॥" (भा. प्र.)।

कार्पासी मधुर, लघु, शीतवीर्य, बृंहणीय, बल्य, वातसंशमन, स्तन्यजनन तथा तृषा, दाह, श्रम, भ्रम और मूर्च्छाको दूर करनेवाली है। अरण्यकार्पासी शीतवीर्य, रुचिकर तथा व्रण और शस्त्रक्षतका नाश करनेवाली है। कपासके पत्ते वातनाशक, रक्त और मूत्रको बढ़ानेवाले तथा कानकी आवाज, फुंसी और पीपको दूर करनेवाले हैं। बिनौले स्तन्यवर्धक, वाजीकर, स्निग्ध, गुरु और कफकर हैं।

**नव्यमत**—बिनौले स्तन्यजनन, स्नेहन, मूत्रजनन, स्रंसन, श्लेष्मनिःसारक, बल्य और नाडीसंस्थानके लिये पौष्टिक हैं। रूई उपशोषण और रक्षण है। पुष्प उत्तेजक और सौमनस्यजनन हैं। कोमल पत्ती स्नेहन और मूत्रजनन है। मूलकी छाल गर्भाशयोत्तेजक, आर्तवजनन और स्नेहन है। इससे गर्भाशयका अच्छा संकोचन होकर रक्तस्राव बंद होता है। मूलकी छालकी क्रिया गर्भाशयपर **अर्गट**के समान होती है। कपासके मूलकी छालका क्वाथ प्रसव होनेके बाद देते हैं। इससे गर्भाशयका अच्छी तरह संकोचन होता है, रक्तस्राव नहीं होता और गर्भाशय शिथिल रहनेसे होनेवाले ज्वर, शूल आदि उपद्रव नहीं होते। आँवल ( अपरा ) पड़नेके बाद तुर्त ही क्वाथ देना चाहिये। इसका पूरा असर होनेमें १ घंटा लगता है। एक घंटेमें गर्भाशय गेंदके समान संकुचित न हो और नाड़ी तेज चलती हो तो दूसरीबार क्वाथ देना चाहिये। कपासके मूलकी छाल बड़े प्रमाणमें देनेसे गर्भपात होता है। पीडितार्तव और ठंढीसे उत्पन्न अनार्तवमें कपासके मूलकी छालके क्वाथसे लाभ होता है। प्रसूता स्त्रीको बिनौलेके मगजकी पेया देते हैं। इससे दूध बढ़ता है। रूई जलाकर जखम( सद्योव्रण )में भरते हैं। इससे रक्तस्राव बंद होता है और जखम शीघ्र भर जाता है। कपासके फूलोंका शर्बत उदासीनताप्रधान मानसिक रोगोंमें देते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

रूईका उपयोग स्थानविशेषमें सर्दीसे बचाने, उष्णता पंहुचाने और व्रणसंरक्षणार्थ किया जाता है।

---

## ( ४६ ) जपा ( गुड़हल )।

**नाम**—( सं. ) जपा, ओड्रपुष्पा; ( हिं. ) गुड़हर, गुड़हल, अडहुल, जवा; ( पं. ) गुड़हल; ( म. ) जास्वंद; ( गु. ) जासुस, जासुद; ( बं. ) जबा; ( ते. ) दासनमु; ( ता. ) शपात्तुपू; ( मल. ) अयंबरुत्ति, शेपरुत्ति; ( का. )

दासवाल; ( ले. ) हिबिस्कस रोझासाइनेन्सिस ( Hibiscus rosa-sinensis ) ( इं. ) शो-फ्लावर ( Sho-flower ) ।

**वर्णन**—जपाके वृक्ष बागोंमे लगाये जाते हैं । पान शहतूतके पानके जैसे होते हैं । फूल प्रायः लाल रंगके होते हैं । सफेद और पीले फूलवाली गुड़हल भी होती है ।

**उपयुक्त अंग**—पुष्पकलिका और पुष्प । **मात्रा** ३ से ६ माशेतक ।

**गुण-कर्म**—**"जपा संग्राहिणी केश्या रक्तप्रदरनाशिनी"** । **"कृष्णगवीमूत्रयुतैः पिष्टैरालेपितैर्जपाकुसुमैः । शतमखलुप्तं नश्यति भवन्ति केशाश्च तत्र घनाः ॥" ( रा. मा. ) । "कलिकाः क्षीरसंपिष्टाः जपाविटपजाः पिबेत् ॥ दश द्वादश वा नारी प्रदरार्ता पयोऽशिनी ॥" ( ग. नि. )** ।

गुड़हल ग्राही, केशके लिये हितकर और रक्तप्रदरका नाश करनेवाली है । गुड़हलके फूलोंको काली गायके मूत्रमें पीसकर लगानेसे सिरका गंज अच्छा होता है और बाल बढ़ते हैं । जपाके फूलोंकी १०–१२ कलियाँ दूधमें पीसकर खाने तथा केवल दूध पीकर रहनेसे प्रदर अच्छा होता है ।

**नव्यमत**—गुड़हलके फूलकी कलिका रक्तसंग्राहक, वेदनास्थापन और मूत्रजनन है । प्रमेह और प्रदरमें इसका प्रयोग करते हैं **( डॉ. वा. ग. देसाई )** ।

**यूनानी मत**—गुड़हल समशीतोष्ण है । गुड़हलके फूल सौमनस्यजनन, हृदय और मस्तिष्कको बलप्रद, उन्मादहर, वाजीकर, रक्तशोधक तथा सुजाक( पूयमेह )का नाश करनेवाले हैं । गुड़हलके फूलोंका शर्बत या गुलकंद बनाकर प्रयोग किया जाता है ।

**शर्बत गुड़हल**—गुड़हलके एक सौ फूलोंको काँच या चीनीमिट्टीके पात्रमें रख, उसमें २० कागजी नीबूका रस डाल, पात्रको ढांक कर रातभर रहने दे । सवेरमें उनको हाथोंसे मसल, कपडे छानकर उसमें १ सेर ( ८० तोला ) मिश्री, तथा गुले गावझवानका अर्क, मीठे अनारका रस और संतरेका रस प्रत्येक २०–२० तोला मिलाकर मंदी आँचपर पकावे । जब शर्बत जैसी चाशनी हो जाय तब उसमें कस्तूरी २ रत्ती, अंबर ३ माशा, केशर १ माशा अर्क गुलाबमें पीसकर मिला दे । **मात्रा**—२ तोला किसी योग्य अर्कमें मिलाकर देवे । यह शर्बत दिल और दिमागको शक्ति देता है, तथा उन्माद और पैत्तिक ज्वरको दूर करता है ।

---

## ( ४७ ) लताकस्तूरिका ।

**नाम**—( सं. ) लताकस्तूरिका, कटुक; ( म. ) कस्तूरभेंड; ( ता. ) वेत्तिलैक्कस्तूरि; ( मल. ) काट्टुकस्तूरी; ( का. ) काडकस्तूरि; ( फा.) मुश्कदाना; ( ले.) हिबिस्कस एबेल्मोस्कस ( Hibiscus abelmoschus ) ।

**वर्णन**—लताकस्तूरीका क्षुप जंगली भिण्डीं जैसा होता है। उसमें पीले रंगके पुष्प होते हैं। फल भिण्डी जैसे, ४ अंगुल लंबे होते हैं। फलोंमें वृक्काकृति काले रंगके बीज होते हैं। बीजोंमें कस्तूरीके समान सुगन्ध होती है। बीजोंको **मुश्कदाना** कहते हैं।

**गुण-कर्म**—"धार्याण्यास्येन वैशद्यरुचिसौगन्ध्यमिच्छता। जातीकटुकपूगानां लवङ्गस्य फलानि च॥" (च. सू. अ. ५)। 'कटुकं लताकस्तूरी' इति चक्रः[1]। "लताकस्तूरिका तिक्ता स्वाद्वी वृष्या हिमा लघुः। चक्षुष्या दीपनी श्लेष्मतृष्णा-बस्त्यास्यरोगनुत्॥" (भा. प्र.)। ××× जातीकटुकटुकयोः फलम्। ××× तिक्तं कटु कफापहम्॥ लघु तृष्णापहं वक्त्रक्लेददौर्गन्ध्यनाशनम्॥ लताकस्तू-रिका तद्वच्छीता बस्तिविशोधिनी।" (सु. सू. अ. ४६)।

लताकस्तूरी रसमें तिक्त और मधुर, शीतवीर्य, लघु, नेत्र्य, दीपन, वाजीकर तथा कफ, तृषा, बस्तिके रोग और मुखके रोगोंका नाश करनेवाली है। मुश्कदानेको मुँहमें रखकर चबानेसे मुँह स्वच्छ और सुगन्धि होता है तथा खानेपर रुचि उत्पन्न होती है।

---

## (४८) शाल्मलि (ली)।

**नाम**—(सं.) शाल्मलि (ली.), चिरजीवी, मोच, रक्तपुष्प, तूलफल; (हिं.) सेमल, सेमर, सेंभल; (बं.) शिमुल; (म.) सांवर; (गु.) शेमळो, सीमळो; (ते.) बूरुग; (ता.) शलवघु, शल्लघि; (मल.) इलवम्, मुल्लिलवु; (ले.) बॉम्बेक्स मॅलेबेरिकम् (Bombax malabaricum)।

**वर्णन**—सेमलके काँटेदार बड़े वृक्ष होते हैं। ठंढीके दिनोंमें जब पत्ते गिर जाते हैं तब वृक्ष लाल फूलोंसे भरा हुआ होता है। इसके फलोंमें पुष्कल मुलायम रूई और काले बीज होते हैं। छालमें कीड़ोंके डंकसे छिद्र होने पर निर्यास निकलता है, उसको **मोचरस** कहते हैं। मोचरस भंगुर, पोला और हलका होता है। पानीमें डालनेसे फूलता है। स्वाद कषाय होता है। सेमलके १-१॥ वर्षके छोटे वृक्षके मूल निकालकर सुखा लेते हैं, उसको **सेमल मूसली** कहते हैं।

**उपयुक्त अंग**—मोचरस, फूल और मूल (सेमलमूसली)। **मात्रा**—मोचरस-१॥ से ३ माशा; सेमलमुसली ३-६ माशा।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) पुरीषविरजनीये महाकषाये शाल्मलिः, शोणितास्थापने, वेदनास्थापने गणे, कषायस्कन्धे (वि. अ. ८) च मोचरसः

---

[1] "कटुकाफलं लताकस्तूरिकेति पञ्जिकाकारौ; श्रीब्रह्मदेवस्तु लघुकोल (छोटी कबावचीनी)-माह, कक्कोलकं बृहत्कक्कोलं (बड़ी कबावचीनी)।" इति डल्हणः।

पठ्यते। सुश्रुते प्रियङ्ग्वादिगणे मोचरसः पठ्यते। "शाल्मली पिच्छिला वृष्या बल्या मधुरसा तथा। कषायस्तद्रसो ग्राही पुष्पं तद्वत्तथा फलम्॥" (ध. नि.)। "शाल्मलिः पिच्छिलो वृष्यो बल्यो मधुरशीतलः। कषायश्च लघुः स्निग्धः शुक्रश्लेष्मविवर्धनः (रा. नि.)। शाल्मली शीतला स्वाद्वी रसे पाके रसायनी। श्लेष्मला पित्तवातास्रहारिणी रक्तपित्तजित्॥ मोचास्रावो हिमो ग्राही स्निग्धो वृष्यः कषायकः। प्रवाहिकातिसारामकफपित्तास्रदाहनुत्॥" (भा. प्र.)।

**सेमल**—रसमें मधुर तथा कषाय, विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, लघु, स्निग्ध, पिच्छिल, पुरीषविरजनीय, वृष्य, बल्य, शुक्रवर्धक, कफवर्धक तथा पित्त, वात, रक्तविकार और रक्तपित्तका नाश करनेवाला है। सेमलके पुष्प और फल भी पूर्वोक्त गुणवाले हैं। **मोचरस** कषाय, शीतवीर्य, ग्राही, स्निग्ध, वृष्य, शोणितास्थापन, वेदनास्थापन तथा प्रवाहिका, अतिसार, आम, कफ, पित्त, रक्तस्राव और दाहका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—मोचरस जोरदार संग्राहक परन्तु स्नेहन है। सेमलमुसली संग्राहक, पौष्टिक और वयःस्थापन है। इसकी जननेन्द्रियपर थोड़ी उत्तेजक क्रिया होती है। कच्चे फल उत्तेजक, मूत्रजनन और कासहर हैं। इसकी मूत्रेन्द्रियपर पाठाके समान शामक क्रिया होती है। मोचरस जीर्ण अतिसार, संग्रहणी, आँव और अत्यार्तवमें उपयोगी है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**यूनानी मत**—सेमलमूसली उत्तम पौष्टिक और वाजीकर है। सेमल मुसलीका चूर्ण १ तोला, सफेद चीनी १ तोला, दोनोंको १० तोला गरम जलमें डालकर चम्मचसे हिलाता रहे। जब लुआब निकल आवे तब उसको पी ले। खटाईसे परहेज करे और ब्रह्मचर्यका पालन करे। चालीस दिनके प्रयोगसे अच्छी वाजीकरण शक्ति आती है।

**वक्तव्य**—श्वेत पुष्पवाला सेमला भी होता है। लालफूलवाले सेमलकी अपेक्षया इसमें बहुत कम काँटे होते हैं। उसको संस्कृतमें **कूटशाल्मली** और लेटिनमें **एरिओडेन्ड्रोन् एन्फ्रेक्च्युओझम्** (Eriodendron anfractuosum) कहते हैं। इसके गुण-कर्म भी रक्तशाल्मलीके समान हैं।

---

## (४९) गोरखइमली।

**नाम**—(सं.) गोरक्षी, गोरक्षचिञ्चा, पञ्चपर्णी, शीतफल[१], रावणाम्लिका; (हिं.) गोरखइमली; (म.) गोरखचिंच; (गु.) रुखडो, गोरखआमली, चोर-आमली, फल-संपुडी; (ते.) मगिमावु; (ता.) आनैप्पुलि, पप्परपुलि; (ले.) एडेन्सोनिआ डिजिटेटा (Adansonia digitata)।

---

१ "शीतफलं 'रावणाम्लिका' इति प्रसिद्धम्॥" इति डल्हणः।

**वर्णन**—गोरखइमलीका शङ्खाकार ( नीचेसे चौड़ा और ऊपर संकड़ा होता हुआ ) बड़ा वृक्ष होता है । इसका धड़ सब वृक्षोंसे चौड़ाईमें मोटा होता है । इसमें लौकीके आकारके ॥॰ से १ फुट लंबे, कठिन कवचवाले फल आते हैं । फलपर मखमल जैसे नरम रोंयें होते हैं । फलके अन्दरका गर्भ खट्टा होता है ।

**गुण-कर्म**—"गोरक्षी मधुराऽम्ला च शिशिरा दाहपित्तनुत् । विस्फोटवान्त्यतीसारविषमज्वरनाशिनी ॥" (रा. नि.)।

गोरखइमली रसमें मधुर और अम्ल, शीतवीर्य तथा दाह, पित्त, विस्फोटक, वमन, अतिसार और विषमज्वरका नाश करनेवाली है ।

**नव्य मत**—गोरखइमलीके फलका गर्भ स्नेहन, रोचन, हृद्य और शीतल है । पत्र स्नेहन और संग्राहक हैं । छाल स्नेहन, शीतल, दीपन और संग्राहक है । फलकी त्वचाका चूर्ण १॥–३ माशा विषमज्वरमें देते हैं । फलका गर्भ, चीनी और जल मिलाकर बनाया हुआ पानक ज्वरमें उष्णता और तृषा कम करनेके लिये देते हैं । वृक्षकी छालका क्वाथ ज्वरमें नाडीकी गति कम होनेके लिये देते हैं । ज्वरमें अत्यन्त पसीना आता हो तो पत्तोंका चूर्ण ५–१० रत्ती प्रमाणमें देते हैं । छाल २ तोला, जल ४० तोला, पकाकर चतुर्थांश रखा हुआ क्वाथ ३ भाग करके ४–४ घंटेसे देते हैं । इससे विषमज्वरमें कुनैनकी अपेक्षया अधिक लाभ होता है । फलका गर्भ ३–६ माशा प्रवाहिका और अतिसारमें छाछके साथ देते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** ) ।

---

## ( ५० ) खत्मी ।

**नाम**—( क. ) सजपोश; ( फा. ) खत्मी; ( ले. ) **ॲल्थिआ ओफिसिनेलिस** ( Althoea officinalis ) ।

खत्मीका क्षुप ईरान और कश्मीरमें होता है । **उपयुक्त अंग**—मूल, फूल और फल । बाजारमें फल **तुख्म खत्मी**, पुष्प **गुल खेरू** और मूल **रेशा खत्मीके** नामसे मिलते हैं ।

**यूनानी मत**—खत्मीके बीज और पत्ते शोथ, फोड़े और पीड़ायुक्त स्थानपर लगानेसे दोषके फैलावको रोकते हैं, शोथका विलयन करते हैं और पीड़ाको शांत करते हैं । रेशाखत्मीका क्वाथ प्रतिश्याय और गरम खाँसीमें देते हैं । पेशाबकी जलन, पेचिश ( प्रवाहिका ), अन्त्रशोथ और पित्तातिसारमें रेशाखत्मीको जलमें पका, उसका लुआब निकालकर पिलाते हैं । **मात्रा**—मूल ५–७ माशा ।

**नव्यमत-विश्लेषण**—सूखे मूलमें २५ प्रतिशत लुआब, ५० प्रतिशत पिष्ट ( स्टार्च ) और थोडी शकर होती है । जलानेसे ४॥ प्रतिशत राख मिलती है । इतर भागकी अपेक्षया मूलमें लुआब अधिक होता है । **गुण**—शीतल, स्नेहन,

कासहर और वेदनास्थापन । उपयोग—मूलका शर्बत खाँसी और मूत्राशय तथा आँतोंके अभिष्यन्दमें देते हैं। प्रवाहिकामें मूलके क्वाथकी बस्ति देते हैं। गलेके दर्दमें मूलके क्वाथसे कुल्ला कराते हैं । व्रणशोथपर पत्तोंका कल्क बांधते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (५१) बला।

**नाम—**(सं.) बला, वाट्यायनी, वाट्या, खरयष्टिका; (हिं.) बरियारा, खिरैंटी, खरैटी; (पं.) खरयटी; (जम्मू) धमनी; (बं.) वेडेला; (म.) चिकणा; (गु.) बल, बला, खरेटी; (ले.) सिडा कोर्डिफोलिआ (Sida cordifolia)।

**वर्णन—**बलाका क्षुप १॥ से ३ फुट ऊँचा होता है। पर्ण एकान्तर, हृदयाकृति, १–२ इंच लंबे; पत्रके दोनों पृष्ठ मृदुरोमयुक्त; पुष्प पत्रकोणोद्भूत, पीले रंगके; पुष्पबाह्य और पुष्पाभ्यन्तर कोशके दल ५–५; फल मूँग जितने बड़े; फलमें पाँच खाने होते हैं। बीज गहरे भूरे या काले रंगके होते हैं । बलाके बीजोंको बीजबंद (गु. बलदाणा) कहते हैं।

**उपयुक्त अङ्ग—**मूल, पत्र और बीज।

**गुण-कर्म—**चरके (सू. अ. ४) बृंहणीये ('वाट्यायनी'नाम्ना), प्रजास्थापने ('वाट्यपुष्पी' नाम्ना), बल्ये च महाकषाये तथा मधुरस्कन्धे (वि. अ. ८) बला पठ्यते । "बला सांग्राहिक-बल्य-वातपित्तहराणां (श्रेष्ठा)" (च. सू. अ. २५) । "बला × × × शाकं वातपित्तहरं स्मृतम्" (च. सू. अ. २७)। सुश्रुते (सू. अ. ३९) वातसंशमने वर्गे बला पठ्यते । "बला स्निग्धा हिमा स्वादुर्वृष्या बल्या त्रिदोषनुत् । रक्तपित्तं क्षयं हन्ति बलौजो वर्धयत्यपि॥" (ध. नि.)।

बला मधुर, स्निग्ध, शीतवीर्य, बृंहणीय, बल्य, प्रजास्थापन, ग्राही, वृष्य, ओजको बढ़ानेवाली तथा वात, पित्त, रक्तपित्त और क्षयका नाश करनेवाली है।

---

## (५२) अतिबला।

**नाम—**(सं.) अतिबला, कङ्कतिका; (हिं.) कंघी, कंगही, ककही; (गु.) खपाट, डाबली, कांसकी; (बं.) पेटारि; (बि.) ककहिया; (म.) मुद्रा; (सिं.) पटतिर; (अ.) मश्तुल गोल; (फा.) दरख्त शान; (ले.) एब्युटिलोन् इन्डिकम् (Abutilon indæcum)।

**वर्णन—**अतिबलाके ४ से ८ फुट ऊँचे क्षुप होते हैं। पत्र सहतूतके जैसे आरेदार

और मृदुरोमश होते हैं । पुष्प पीले रंगके होते हैं । फल कंघीकी तरह सीधी रेखावाले होते हैं । बीज कालापन लिये भूरे रंगके होते हैं । अतिबलाके बीजोंको भी **बीजबंद** कहते हैं ।

**गुण-कर्म—चरके ( सू. अ. ४ ) बृंहणीये ( 'भद्रौदनी'नाम्ना ), बल्ये च महाकषाये तथा मधुरस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) अतिबला पठ्यते । सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) वातसंशमने ( सू. अ. ३९ ) मधुरे च वर्गे ( सू. अ. ४२ ) अतिबला पठ्यते ।**

**गुण-कर्म**—निघंटुओंमें अतिबलाके गुण बलाके समान लिखे हैं ।

**नव्य मत**—छाल मूत्रजनन; पत्र स्नेहन; बीज स्नेहन, बल्य और स्रंसन; मूल मूत्रजनन और कासहर । सुजाक, मूत्रकृच्छ्र, रक्तमूत्र और बस्तिशोथमें पत्र किंवा मूलका क्वाथ देते हैं । नपुंसकत्वमें बीज देते हैं **( डॉ. वा. ग. देसाई )** ।

---

## ( ५३ ) नागबला ।

**नाम—( सं. ) नागबला, विश्वदेवा, भूमिबला; ( गु. ) भोंयबल; ( म. ) भुईबळ, भुईचिकणा; ( हिं. ) फरीदबूटी; ( ले. ) सिडा ह्युमिलिस्** ( Sida humilis ) ।

**वर्णन**—नागबला प्रसर याने जमीनपर फैलनेवाली वनस्पति है । इसकी उत्पत्ति होते ही भूमिपर सर्पकी तरह टेढ़ी-मेढ़ी बेल चलती है, इसलिये इसको **नागबला** कहते हैं । नागबलाकी शाखायें दो तीन फुटतक जमीन पर फैलती हैं । पत्र कँगूरेदार, कंघीके समान और रोमश होते हैं । फूल पीले रंगके होते हैं । पुष्पबाह्यकोशके दल और पंखडियाँ ५–५ होती हैं ।

**गुण-कर्म—"रसोनयोगं विधिवत् क्षयार्तः क्षीरेण वा नागबलाप्रयोगम् ।" ( सु. उ. तं. अ. ४१ ) । "× × × अबालान्यजीर्णान्यधिगतवीर्याणि शीर्णपुराणपर्णान्यसंजातान्यपर्णानि तपसि तपस्ये वा मासे × × × नागबलामूलान्युद्धरेत् । तेषां सुप्रक्षालितानां त्वक्पिण्डमाम्रमात्रमक्षमात्रं वा श्लक्ष्णपिष्टमालोड्य पयसा प्रातः प्रयोजयेत्, चूर्णीकृतानि वा पिबेत् पयसा, मधुसर्पिर्भ्यां वा संयोज्य भक्षयेत्; जीर्णे च क्षीरसर्पिर्भ्यां शालि-षष्टिकमश्नीयात् । संवत्सरप्रयोगादस्य वर्षशतमजरं वयस्तिष्ठति ।" ( च. चि. अ. १. पा. २ ) । "पिबेन्नागबलामूलमर्धकर्षविवर्धितम् । पलं क्षीरयुतं मासं क्षीरवृत्तिरनन्नभुक् ॥ एष प्रयोगः पुष्ट्यायुर्बलारोग्यकरः परः ।" ( च. चि. अ. ११ ) ।**

माघ या फाल्गुन मासमें जब नागबलाके पुराने पत्ते सब झड़ गये हों और नये पत्ते न आये हों उस समयमें कच्चे नहीं और जीर्ण ( अतिपक्व ) भी नहीं ऐसे मूल निकाल,

उनको जलसे धो, उनकी छाल अलग कर, छायामें सुखा, अच्छे पात्रमें भरकर रख छोड़े। पीछे उनमेंसे आधेसे एक तोला छाल ले, उनको दूधमें महीन पीस और दूधमें मिलाकर पीवे; अथवा चूर्ण बनाकर दूधके साथ पीवे, अथवा शहद और घीके साथ मिलाकर खावे। औषध पचनेपर घी और दूधके साथ रक्तशालि या साठी चावलका भात खावे और रसायनप्रयोगोक्त विधिसे रहे। इस प्रकार एक सालका प्रयोग करनेसे मनुष्य एक सौ वर्षकी आयुतक जरावस्थारहित होकर जीता है। राजयक्ष्मावाले रोगीको दूधके साथ नागबलाका प्रयोग करानेसे वह राजयक्ष्मासे मुक्त होता है। प्रति दिन आधे आधे तोले मात्रा बढ़ाकर चार तोले तककी मात्रामें नागबलाका चूर्ण दूधके साथ खावे और केवल दूधके पथ्यपर रहे तो क्षतक्षीण रोगी रोगमुक्त होकर पुष्टि, आयु, बल और आरोग्यको प्राप्त होता है।

**वक्तव्य**—'नाग इव वलते संचलति' इति नागवला ( बवयोरैक्यात् **नागबला** ), इस व्युत्पत्तिके अनुसार जमीनपर फैलनेवाली भूमिबलाको **नागबला** मानना चाहिये यह जो **आयुर्वेदाचार्य पं. भागीरथजी स्वामी**ने निर्णय किया है वह ठीक मालूम होता है[1]। चरक-सुश्रुतमें बला, अतिबला और नागबला ये तीन 'बला' शब्दवाले नाम मिलते हैं। चरक वि. अ. ८ में मधुरस्कन्धमें बलाभेदवाचक **बला, अतिबला, सहदेवा, विश्वदेवा, शीतपाकी** और **ओदनपाकी** ये सब नाम एक वर्गमें पाये जाते हैं[2]। सुश्रुत सू. अ. ४२ में मधुर वर्गमें बला, **अतिबला** तथा काकोल्यादि गणोक्त **सहदेवा** और **विश्वदेवा** ये बलाभेदवाचक शब्द पाये जाते हैं। **महाबला** शब्द चरक और सुश्रुतमें देखनेमें नहीं आता है। पीछेके निघण्टुओंमें और भावप्रकाशमें **महाबला** नामसे बलाका एक भेद लिखा है और उसका पर्याय **सहदेवा** लिखा है। संभव है कि महाबला चरक-सुश्रुतोक्त **सहदेवा** हो। महाबलाके पर्यायोंमें मुद्रित पुस्तकोंमें कहीं कहीं **सहदेवी** छपा है, वह ठीक नहीं है। सहदेवी इससे भिन्न **भृङ्गराजादि** ( कंपोझिटी Compositæ ) वर्गकी वनस्पति है। महाबलाको गुजरातीमें **खेतराऊ बल ( क्षेत्रबला )** कहते हैं, क्योंकि यह प्रायः खेतोंके घेरे ( सीमा ) पर होती है। इसका लेटिन नाम **सिडा रोम्बिफोलिया** ( Sida rhombifolia ) है। कई वैद्य **'नागबला'** शब्दसे **गुलशकरी** लेते हैं। गुलशकरीका लेटिन नाम **सिडा स्पाईनोझा** ( Sida spinosa ) है। इसमें काँटे होते हैं, इसलिये इसको **कण्टकिनी बला** नाम दे सकते हैं। गुजरातीमें इसको **कांटाळो बल** कहते हैं। **बला, अतिबला और नागबला**

१ संदिग्धनिर्णय बनौषधशास्त्र पृ. ४७६-४८८। २ एकही वर्गमें ये सब नाम भिन्न भिन्न लिखनेसे यह मालूम होता है कि—चरक बलाके बला, अतिबला, सहदेवा, विश्वदेवा, शीतपाकी और ओदनपाकी ये छः भेद मानते थे।

इन तीन नामोंको छोड़कर सहदेवा, विश्वदेवा, भद्रौंदनी, शीतपाकी और ओदनपाकी ये-संहिता ग्रन्थोंमें आये हुए शब्द बलाके अमुक भेदके ही नाम हैं यह निश्चय करना कठिन है । क्योंकि–टीकाकारोंने इन शब्दोंकी भिन्न भिन्न स्थानपर भिन्न भिन्न व्याख्या की है और निघण्टुकारोंने भी इन शब्दोंका निश्चित अर्थमें प्रयोग नहीं किया है । बलाके भेदोंके गुण-कर्म समानसे हैं, अतः एकके अभावमें दूसरेसे काम चला सकते हैं । बलाकी सब जातियोंसे मजबूत रेशे निकलते हैं । **अमरकोश**में बलाके **बला** और **वाट्यालक** दो पर्याय लिखे हैं । इसकी व्युत्पत्ति बताते हुए टीकाकार **क्षीरस्वामी** लिखते हैं कि—'वलन्ते ( 'वल' संवरणे' ) अनया' इति वला ( बवयोरैक्याद् बला ); 'वटन्ति ( 'वट' वेष्टने ) अनया' इति वाट्यालकः; अर्थात् लोग इससे ( इसके रेशोंसे ) किसी भी वस्तुको बांधते है या वेष्टन करते हैं इस लिये इसको **वला और वाट्यालक** कहते हैं ।

---

# पिशाचकार्पासादिवर्ग १९.

## N. O. Sterculiaceæ ( स्टर्क्युलिएसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; पर्णक्रम एकान्तर; पर्ण एकाकी या संयुक्त; बीजकोश ऊर्ध्वस्थ तथा संयुक्त, २ से ५ खानोंवाला; पुष्प प्रायः नियताकार; पुष्पबाह्यकोशके दल ५, न्यूनाधिक संयुक्त; पँखडियाँ ५ संयुक्त; पुंकेशर ५–२० तक; परागकोश दो थैलीका; स्त्रीकेशर २–५; फल विदारी ।

---

### ( ५४ ) पिशाचकार्पास ।

**नाम—( सं. )** पिशाचकार्पास; **( बं. )** ओलोटकंबल; **( हिं. )** उलटकंबल; **( ले. )** ॲब्रोमा ओगस्टा ( Abroma Augusta ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—बंगाल, आसाम और उत्तर भारत ।

**वर्णन**—उलटकंबलके छोटे वृक्ष होते हैं । पत्ते चौड़े, किनारी खण्डित, पत्रपृष्ठ रोमश; फूल गहरे बेंगनी रंगके, नीचेकी और झुके हुए; पँखडियाँ ५; फल पाँच खानोंवाला; बीज मूलीके बीज जैसे और काले रंगके होते हैं ।

**उपयुक्त अंग**—मूलकी छाल । मूलकी छालके छोटे टुकड़े बना, सुखा, शीशीमें भर, अंदर हवा न जाने पावे इस प्रकार बंद करके रखना चाहिये ।

**मात्रा**—मूलकी छालका चूर्ण १०–१५ रत्ती । ताजा मूल ४–८ माशा । मूल–स्वरस ३ माशा ।

**गुण-कर्म**—उलटकंबल गर्भाशयोत्तेजक, आर्तवजनन और गर्भाशयकी पीड़ाको शांत करनेवाला है । ऋतुस्राव अनियमित होता हो और आर्तव स्रावके समय पीड़ा

होती हो तब मासिकके ३ दिन पूर्व, स्रावके समयमें तथा २ दिन पीछे इसका प्रयोग करना चाहिये। बंगालके वैद्य इसका पुष्कल उपयोग करते हैं। अन्य प्रान्तोंके वैद्योंको भी इसका प्रयोग करना चाहिये। यह हिंदुस्तानमें सब जगह हो सकता है और अत्युपयोगी औषध है, अतः सब प्रान्तके वैद्योंको इसको अपने यहाँ लगाना चाहिये।

---

## (५५) मरोड़फली।

**नाम—**(सं.) आवर्तफला, आवर्तनी; (हिं.) मरोड़-र-फली; (गु.) मरडासिंग, मरडासिंगी; (म.) मुरुडशेंग; (ते.) आडशामंति; (ता.) वलबुरि; (मल.) ईश्वरमुरि; (का.) भूतकरुळु; (ले.) हेलिक्टेरस आईसोरा (Helicteres isora)।

**वर्णन—**मरोड़फलीका २–४ फुट ऊँचा गुल्म होता है। इसमें लाल रंगके पुष्प लगते हैं। इसकी फली मुड़ी हुई आँटेदार १॥–२ इंच लंबी होती हैं।

**गुण-कर्म—**आवर्तनी कषाया च शीतला ह्यतिसारहा। त्रिदोषोदरशूलघ्नी कृमिजालविनाशिनी॥

मरोड़फली कषाय, शीतवीर्य तथा अतिसार, उदरशूल और कृमिको नाश करनेवाली है।

अतिसार और प्रवाहिका(पेचिश)में मरोड़फलीका चूर्ण १॥–३ मासेकी मात्रामें देनेसे अच्छा लाभ होता है।

**नव्यमत—**मरोड़फलीके मूलकी छालका क्वाथ मधुमेहमें देते हैं।

---

## परूषकादि वर्ग २०.

### N. O. Tiliaceæ (टिलिएसी)।

**वर्गलक्षण—**सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; बीजकोश उपरिस्थ, २–५ खानोंवाला; पत्र प्रायः सादे, एकान्तर और उपपत्रयुक्त; पुष्प नियमित; पुष्पवाह्यकोशके दल तथा पँखडियाँ ४ या ५; पुंकेशर पुष्कल और असंयुक्त; परागकोश दो थैलीवाला; फल विदारी या अष्ठिल।

---

## (५६) परूषक (फालसा)।

**नाम—**(सं.) परूषक; (हिं., म., गु.) फालसा; (बं.) फल्सा; (ते.) नल्लजान; (ता.) पलिशम्; (का.) बुत्तिमुड्डिप्पे; (सिं.) फारवां; (फा.) फाल्सः; (ले.) ग्रिविआ एशिआटिका (Grewia asiatica)।

**वर्णन**—फालसेके छोटे वृक्ष होते हैं । पत्ते गोल, पत्रधारा तीक्ष्ण दन्तुर; फल गोल, पकनेपर बेंगनी रंगके और खटमीठे होते हैं ।

**गुण-कर्म—चरके** (सू. अ. ४) विरेचनोपगे, ज्वरहरे, श्रमहरे च महाकषाये, तथा आसवयोनिफलेषु, (सू. अ. २५) मधुरस्कन्धे च परूषकं पठ्यते । **सुश्रुते** (सू. अ. ३८) परूषकादिगणे परूषकं पठ्यते । "परूषकं × वातपित्ते च शस्यते" (च. सू. अ. २७) "अत्यम्लमीषन्मधुरं कषायानुरसं लघु । वातघ्नं पित्तजननमामं विद्यात् परूषकम् ॥ तदेव पक्वं मधुरं वातपित्तनिबर्हणम् ।" (सु. सू. अ. ४६)। "× परूषकं चार्द्रमम्लं पित्तकफप्रदम् ।" (वा. सू. अ. ६)। "परूषकं कषायाम्लं लघूष्णं ग्राहि पित्तलम् । रूक्षं मारुतजित् पक्वं स्वाद्वम्लं शुक्रलं हिमम् ॥ रोचनं मधुरं पाके हृद्यं विष्टम्भि बृंहणम् । हन्ति मारुतपित्तास्रदाहतृष्णाक्षतक्षयान् ॥" (कै. नि.)।

कच्चा फालसा अम्ल, कुछ मधुर, लवणानुरस, लघु, वातघ्न, ग्राही तथा पित्त-कफप्रकोपक है । पका हुआ फालसा रस और विपाकमें मधुर, वात-पित्तहर, शीतवीर्य, वीर्यवर्धक, रोचन, हृद्य, विष्टम्भि, बृंहण, विरेचनोपग, ज्वरहर, श्रमहर तथा दाह तृषा और क्षतक्षयका नाश करनेवाला है ।

**नव्यमत**—फालसा पित्तघ्न और हृद्य है । हृद्रोग, पित्तप्रकोप और ज्वरमें फालसेका शर्बत देते हैं । **(डॉ. वा. ग. देसाई)** ।

**यूनानी मत**—फालसा दूसरे दर्जेमें शीत और पहले दर्जेमें तर (स्निग्ध) है । फालसा हृदय, आमाशय और उष्ण यकृत्को बल देता है । यह पैत्तिक अतिसार, वमन, तृषा, हिक्का, ज्वरकी उष्णता, पेशाबकी जलन, शरीरका दाह और क्षयको दूर करता है । फालसेके वृक्षकी अन्तर्छाल ४-५ तोला जौकुट कर, रातको १० तोला जलमें भिगोदे । सवेरमें उसको हाथसे मसल, कपड़ेसे छान, उसमें १ तोला शहद मिलाकर पीनेसे मधुमेहमें लाभ होता है ।

---

## (५७) धन्वन ।

**नाम**—(सं.) धन्वन, धनुर्वृक्ष; (हिं.) धामन, धामिन; (गु.) ध्रामण, धामण; (म.) धामण; (ले.) ग्रिविआ टिलिफोलिआ (Grewia teliæfolia)।

**वर्णन**—वृक्ष २५-४० फुट ऊँचा; पत्र एकांतर, २-५ इंच लंबे और १॥ इंच चौड़े तथा रोमश; पुष्प पीले रंगके; फल कृष्णवर्ण और मांसल; त्वचा अंदरसे सफेद और बाहर फीकी हरी ।

**गुण-कर्म—चरके** आसवयोनिफलेषु (सू. अ. २५), अम्लस्कन्धे (वि. अ. ८) च धन्वनं पठ्यते । **सुश्रुते** (चि. अ. ३८) पिच्छाबस्तौ धन्वनाङ्कुरप्रयोगो

दृश्यते । "सकषायं हिमं स्वादु धान्वनं कफवातजित् ॥" ( सु. सू. अ. ४६ )। "××× धन्वनम् । मधुरं सकषायं च शीतं पित्तकफापहम् ॥" ( च. सू. अ. २७ )। "धन्वनः स्वादुतुवरो रूक्षः पित्तास्रजिल्लघुः । बृंहणो व्रणसन्धानरोपणो बलवर्धनः ॥ फलं तस्य हिमं स्वादु कषायं कफवातजित् ।" ( कै. नि. )।

धामन मधुर, कषाय, रूक्ष, लघु, बृंहण, बल्य, व्रणसन्धान, व्रणरोपण तथा पित्त और रक्तविकारको दूर करनेवाला है । धामनके फल मधुर, कुछ कषाय, शीतवीर्य और त्रिदोषहर है ।

**नव्यमत**—धामन स्नेहन और रक्तसांग्राहिक है। धामनकी अन्तर्छालका रस १ से २ तोला रक्तमिश्रित आँवमें देते हैं। कवाँचकी फली शरीरको लगी हो तो इसकी छाल शरीरपर मसलते हैं। इससे शीघ्र आराम होता है। इसकी लकड़ीका कोलसा अफीमके विषमें वमन करानेको देते हैं । धामनकी छालको जलमें भिगोकर मसलनेसे पिच्छिलरस ( लुआव ) प्राप्त होता है वह रक्तमिश्रित आँवकी पेचिशमें लाभकारी है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

---

## ( ५८ ) गाङ्गेरुकी ।

**नाम**—( सं. ) गाङ्गेरुकी ( वृक्ष ), गाङ्गेरुक ( फल ); ( हिं. ) गंगेरन; ( गु. ) गंगेटी; ( ले. ) ग्रिविआ पोप्युलीफोलिआ Grewia populifolia )।

**वर्णन**—गंगेरनका ५-१० फुट ऊँचा छोटा वृक्ष होता है। पत्ते ०॥० से १॥ इंच लंबे; पुष्प श्वेतवर्ण, जरा सुगन्धित, ज्येष्ठ आषाढ़में आते हैं। शीतकालके आरम्भमें फल पक जाते हैं। पके फल कुछ कसैलापनलिये हुए खटमीठे होते हैं।

चरक-सुश्रुतोक्त गाङ्गेरुकी (वृक्ष) और गाङ्गेरुक (फल) यही है। पीछेके निघण्टुकारोंने गाङ्गेरुकी और नागबलाको एक लिख दिया है, वह ठीक नहीं है।

**गुण-कर्म**—"गाङ्गेरुकं ××××। मधुरं सकषायं[1] च शीतं पित्तकफापहम्।" ( च. सू. अ. २७ )। "सकषायं हिमं स्वादु धान्वनं कफ-वातजित् । तद्वद्गाङ्गेरुकं विद्यात्" ( सू. अ. ४६ )। "खड्गादिच्छिन्नगात्रस्य तत्कालं पूरितो व्रणः । गाङ्गेरुकीमूलरसैर्जायते गतवेदनः ॥" ( शा. ध. म. खं. अ. )।

गंगेरनका फल मधुर, कुछ कषाय, शीतवीर्य तथा पित्त और कफका नाश करनेवाला है। तलवार आदिसे जख्म हुआ हो तो तत्काल उसमें गंगेरनके मूलका स्वरस भरकर बाँध दे तो जख्म शीघ्र अच्छा होता है।

---

१ 'मधुराम्लकषायं' इति पाठश्चेत् साधुः ।

# अतस्यादिवर्ग २१.

## N. O. Linaceæ ( लिनेसी ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; पर्णक्रम एकान्तर; पत्र एकाकी, छोटे और अखण्ड; पुष्प नियताकार, शाखाग्रोद्भूत; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ५–५, परस्पर आच्छादित; गर्भाशय ३–५ खानोंवाला; प्रत्येक खानेमें १ या २ बीज; परागवाहिनियां ३–५; फल विदारी या अष्ठिल; त्वक् रेशेदार ।

---

### ( ५९ ) अतसी ।

**नाम**—( सं. ) अतसी, क्षुमा; ( हिं. ) अलसी, तीसी; ( बं. ) मशिना; ( म. ) जवस; ( गु. ) अळसी; ( क. ) अलिश; ( फा. ) तुख्मे कत्तान; ( ले. ) लिनम् युसिटेटिस्सिमम् ( Linum usitatissimum ) ।

**वर्णन**—अलसीका २–४ फुट ऊँचा क्षुप होता है । उसमें आसमानी रंगके फूल आते हैं । बीजोंसे तेल निकाला जाता है । अलसीके क्षुपसे मजबूत रेशे निकलते है । इन रेशोंसे बनाये हुए कपड़ेको **क्षौम** कहते हैं ।

**गुण-कर्म**—"उष्णाऽतसी स्वादुरसाऽतिलघ्वी पित्तोल्बणा स्यात् कटुका विपाके ।" । "वातघ्नं मधुरं तेषु क्षौमं तैलं बलापहम् । कटुपाकमचक्षुष्यं स्निग्धोष्णं गुरु पित्तलम् ॥" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "आतस्यं मधुराम्लं तु विपाके कटुकं तथा । उष्णवीर्यं हितं वाते रक्तपित्तप्रकोपणम् ॥" ( च. सू. अ. २७ ) । "अतसी मधुरा तिक्ता स्निग्धा पाके कटुर्गुरुः । उष्णा दृक्शुक्रवातघ्नी कफपित्तविनाशिनी ॥" ( भा. प्र. ) ।

अलसी मधुर, तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, स्निग्ध, वातनाशक, पित्तप्रकोपक तथा दृष्टि और वीर्यको हानिकर है । अलसीका तेल मधुर, अम्ल, कटुविपाक, स्निग्ध, गुरु, उष्णवीर्य, वातविकारमें हितकर तथा पित्त और रक्तका प्रकोप करनेवाला है ।

**नव्य मत**—अलसीके बीज स्नेहन, मार्दवकर, बल्य, वेदनास्थापन, मूत्रजनन और कासहर हैं । तेल विरेचन और व्रणरोपण है । अलसी गरम किये विना ही निकाला हुआ तेल ४-८ माशेकी मात्रामें पिलानेसे दस्त साफ होता है । मलकी गांठें ( सुद्दे ) निकलती हैं । आँतोंकी कमज़ोरीसे उत्पन्न कब्ज और अर्शमें तेल लाभ करता है । अलसीका तेल और चूनेके निथरे हुए जल( सुधामण्ड )को खूब मिलानेसे दूध जैसा मिश्रण तैयार होता है, उसको आगसे जले हुए भागपर लगाते हैं । कूटी हुइ अलसीको पानीके साथ हलवे जैसा पकाकर व्रणशोथपर उपनाह ( पोल्टिस ) बाँधनेसे सूजन और पीड़ा कम होती है । प्रारम्भमें ही बाँधनेसे सूजन बढ़ती नहीं और देरीसे

बाँधनेसे शोथ जल्द पककर फूट जाता है । अलसीका उपनाह सबसे उत्तम माना जाता है । अलसीका फ़ाण्ट खाँसीमें देते हैं । इससे गले और श्वासनलियोंके अंदरका कफ पककर शीघ्र निकलता है । अलसीके फांटसे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है, परन्तु उसमें वेदनास्थापन गुण कम है । ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## गोक्षुरादिवर्ग २२.

### N. O. Zygophyllaceæ ( झाईगोफिलेसी ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; पर्णक्रम अभिमुख; पर्ण संयुक्त और सपुंखपत्र; पुष्प उभयलिङ्ग; पुष्पवाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोशके दल ४ या ५, असंयुक्त और आच्छादित; पुंकेशर ८–१० या अधिक; गर्भाशय ४–५ विच्छेदवाला ।

---

### ( ६० ) गोक्षुर ।

**नाम**—गोक्षुर, क्षुद्रगोक्षुर, श्वदंष्ट्रा, स्वादुकण्टक, त्रिकण्टक, षडङ्ग; ( हिं. ) गोखरू, छोटा गोखरू; ( बं. ) गोखरी; ( म. ) सराटे, कांटेगोखरू; ( गु. ) न्हाना गोखरु, बेठा गोखरु; ( क. ) मिचिरकुन्ड; ( पं. ) भखड़ा; ( फा. ) खारखसक; ( ले. ) ट्रिब्युलस टेरेस्ट्रिस ( Tribulus terrestris ) ।

**वर्णन**—छोटा गोखरू कंटकारी जैसा प्रसर ( जमीनपर फैलनेवाला ) है । यह जमीनपर ४–६ फुटतक फैलता है । पत्ते चनेके पत्ते जैसे होते हैं । फूल पीले रंगके पत्रकोणमें लगते हैं । औषधमें फल और मूल काममें आते हैं । प्रायः चूर्णके लिये फल और क्वाथके लिये मूल काममें लेते हैं ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) कृमिघ्ने, अनुवासनोपगे, मूत्रविरेचनीये, शोथहरे च महाकषाये तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) विदारिगन्धादौ, वीरतर्वादौ, लघुपञ्चमूले, कण्टकपञ्चमूले, वाताश्मरीभेदने ( चि. अ. ७ ) च गणे गोक्षुरकः पठ्यते । "गोक्षुरको मूत्रकृच्छ्रानिलहराणां" ( च. सू. अ. २५ ) ॥ "गोक्षुरो मूत्रकृच्छ्रघ्नो वृष्यः स्वादुः समीरजित् । शूलहृद्रोगशमनो बृंहणो मेहनाशनः ॥" ( ध. नि. ) । "गोक्षुरः शीतलः स्वादुर्बलकृद्बस्तिशोधनः । विपाके मधुरो वृष्यः पुष्टिदश्चाश्मरीहरः ॥ प्रमेहश्वासकासार्शःकृच्छ्रहृद्रोगवातनुत् ॥" ( भा. प्र. ) ॥

गोखरू मधुर, मधुरविपाक, शीतवीर्य, मूत्रविरेचनीय, शोथहर, वाजीकर, बृंहण, बल्य तथा मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, प्रमेह, श्वास, कास, अर्श, हृद्रोग, शूल और वातरोगोंका नाश करनेवाला है ।

**नव्य मत-विश्लेषण**—फलमें १५ प्रतिशत क्षार, स्नेह और सुगन्धि राल पाई जाती है। गोखरू स्नेहन, वेदनास्थापन, मूत्रजनन, संग्राहक, बल्य, शीत और मूत्रपिंड( गुर्दे )के लिये उत्तेजक है। बड़ी मात्रामें देनेसे दस्त साफ होता है। प्रमेह, सुजाक और बस्तिशोथमें गोखरू देते हैं। इसमें वेदनास्थापन गुण कम होनेसे इसके साथ खुरासानी अजवायन मिलाते हैं। मूत्र अत्यम्ल स्वभाववाला हो तब गोखरूके क्वाथमें यवक्षार मिलाकर देते हैं। वृक्कशोथमें मूत्र क्षारस्वभाव, दुर्गन्धयुक्त और गदला हो तब क्वाथमें शिलाजीत मिलाकर देते हैं। समभाग गोखरू और तिलका चूर्ण शहद और बकरीके दूधके साथ हस्तमैथुनोद्भूत नपुंसकत्वमें देते हैं। गर्भाशय शुद्ध होकर वन्ध्यत्व नष्ट होनेके लिये गोखरू देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

**उपयुक्त अंग**—फल और मूल। **मात्रा**—३-६ माशा।

**गोक्षुरप्रधान योग**—गोक्षुरादिगुग्गुलु ( सि. यो. सं. प्रमेहाधिकार )

---

## ( ६१ ) धन्वयास।

**नाम**—( सं. ) धन्वयास, दुरालभा; ( हिं. ) धमासा; ( पं. ) धमांह, धम्या; ( गु. ) धमासो; ( म. ) धमासा; ( कच्छ ) धामाऊ; ( बं. ) दुरालभा; ( ते. ) चित्तिगार; ( का. ) नेलडुगल; ( ले. ) फेगोनिआ अरेबिका ( Fagonia arabica )।

**वर्णन**—धमासेका १-२ फुट ऊँचा छोटा क्षुप होता है। शाखा और पत्र फीके हरे रंगके होते हैं। पत्ते १-१॥ इंच लंबे सनायकी पत्ती जैसे होते हैं। प्रत्येक पत्रके पास दो तीक्ष्णाग्र काँटे होते हैं। आश्विन कार्तिकमें गुलाबी रंगके पाँच पँखडीवाले फूल लगते हैं। फल पाँच पँखवाले और ऊपर तीक्ष्णाग्र लंबा काँटा होता है। जवासा ( यास ) भी धमासा जैसा दिखता है, परंतु उसमें फलियाँ ( शिम्बी ) लगती हैं और इसमें फल लगते हैं। यह फर्क ध्यानमें रखनेसे दोनोंमें भ्रम नहीं होता। धमासेमें दो पत्तियां, चार कांटे और एक फूल चक्राकारमें होते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) अर्शोघ्ने, तृष्णानिग्रहणे च महाकषाये धन्वयासः पठ्यते। "दुरालभा स्वादुशीता तिक्ता दाहविनाशिनी। विषमज्वरतृड्-छर्दिमेहभ्रमविनाशिनी ॥" ( ध. नि. )।

धमासा मधुर, तिक्त, प्यास कम करनेवाला तथा अर्श, दाह, विषमज्वर, वमन, प्रमेह और भ्रम ( चक्कर आना )का नाश करनेवाला है।

**नव्य मत**—धमासा शीतल, ज्वरहर, दाहप्रशमन, तृष्णानिग्रहण, मूत्रजनन, कोथप्रशमन और व्रणरोपण है। ·॥· से १ तोले चूर्णका हिम बनाकर देना। धमासेका फांट ज्वरमें पिलाते हैं और उसमें कपड़ा भिगोकर उससे शरीर पोंछते

हैं। इससे प्यास, शरीरका दाह और कंडू कम होती है। सर्दीका ज्वर तथा गले और फुप्फुसकी सूजनमें धमासेका अच्छा उपयोग होता है। इससे गलेका सूखना कम होता और कफ निकलने लगता है। धमासेके काढ़ेसे जख्मको धोनेसे पीप नहीं पड़ती और जख्म शीघ्र भर जाता है। मुँहमें छाले पड़े हों तो धमासेके क्वाथसे कुल्ले कराते हैं। धमासेको गन्नेके रसमें पका, छानकर उसका अवलेह बनाते हैं। इस अवलेहको गले और फुप्फुसके रोगोंमें इतर औषधोंके अनुपानरूपमें देते हैं। धमासेका धूम्रपान करानेसे दमा बैठता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

## चाङ्गेर्यादिवर्ग २३.

## N. O. Geraniaceæ ( जिरेनिएसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपत्र; विभक्तदल; पर्णक्रम एकान्तर अथवा अभिमुख; पत्र एकाकी अथवा संयुक्त; पुष्प उभयलिङ्ग; पुष्पबाह्यकोशके दल तथा पँखडियाँ ५-५; पुंकेशर ५-१०; गर्भाशय ५ खनोंवाला।

---

### ( ६२ ) चाङ्गेरी।

**नाम**—( सं. ) चाङ्गेरी, अम्लपत्रिका; ( हिं. ) खट्टीतिपत्ती; ( पं. ) खट्टी बूटी, खटकल; ( क. ) सिबर्गी, चोकचिन; ( बं. ) आमरूल; ( म. ) अंबुटी; ( ते. ) पुलिचित, पुल्लचेंचलि; ( ता. ) पुळियारै, अडाशनि; ( मल. ) पुळियारल; ( ले. ) ऑग्झेलिस् कोर्निक्युलेटा ( Oxalis corniculata )।

**वर्णन**—चाङ्गेरी जमीनपर फैलनेवाली बहुत छोटी लता है। इसके एक डंठलमें दो दो मिले हुए, रोमश और हृदयाकृति तीन पत्र होते हैं। पुष्प पीले रंगके होते हैं। पंचांगका स्वाद खट्टा होता है।

**गुण-कर्म**—"दीपनी चोष्णवीर्या च ग्राहिणी कफमारुते। प्रशस्यतेऽम्लचाङ्गेरी ग्रहण्यर्शोहिता च सा॥" ( च. सू. अ. २७ )। "ग्रहण्यर्शोविकारघ्नी साम्ला वातकफे हिता। उष्णा किंचित्कषाया च चाङ्गेरी चाग्निदीपनी॥" ( सु. सू. अ. ४६ )।

चाङ्गेरी रसमें अम्ल, कुछ कषाय, उष्णवीर्य, अग्निदीपन, ग्राही, वात और कफके लिये हितकर तथा ग्रहणी और अर्शका नाश करनेवाली है।

**नव्य मत**—चाङ्गेरीमें यवक्षार मिश्रित चाङ्गेर्यम्ल ( ऑग्झेलिक् एसिड् ) होता है। चाङ्गेरी शीतल, रोचक, दीपन, हृद्य, पित्तशामक, दाहप्रशमन, रक्तसंग्राहक, शोथघ्न और स्रंसन है। इसके स्वरससे सूक्ष्म रक्तवाहिनियोंका संकोच होकर रक्तस्राव बंद होता है। रक्तमिश्रित आँव और गुदभ्रंशमें चांगेरीका अच्छा उपयोग होता है।

चांगेरीका कल्क व्रणशोथपर बाँधनेसे पीड़ा और दाह कम होकर सूजन उतरती है। धतूरेके विषके निवारणके लिये चांगेरीका स्वरस देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

### (६३) कर्मरङ्ग (कमरख)।

**नाम**—(सं.) कर्मरङ्ग, पीतफल, धाराफल; (हिं.) कमरख, कमरक; (बं.) कामरांगा; (गु.) कमरख; (म.) कर्मर, करमळ; (ते.) करमणूग; (मल.) चतुरपुळि; (का.) धारेहुळी; (ले.) एवेर्होआ कॅरेम्बोला (Averrhoa carambola)।

**वर्णन**—कमरखके पत्र हरफारेवडीके पत्र जैसे होते हैं। फल ४–५ धारवाले, कच्चे होनेपर हरे और पकनेपर पीले रंगके होते हैं। फलका स्वाद खट्टा होता है।

**उपयुक्त अंग**—पक्व फल। इसका साग, चटनी, अचार और शर्बत बनाया जाता है।

**गुण-कर्म**—"कर्मरङ्गं हिमं ग्राहि स्वाद्वम्लं कफवातहृत्।" (भा. प्र.)। "पक्वं तु मधुराम्लं स्याद्बलपुष्टिरुचिप्रदम्।" (रा. नि.)॥

पका हुआ कमरख मधुर, अम्ल, शीतवीर्य, बल्य, पुष्टिकारक, रोचक और कफ तथा वातको दूर करनेवाला है।

**नव्य मत**—कमरखमें एसिड पोटॅशियम् ऑग्झेलेट होता है। पक्व फल या उनका शर्बत शीतल, रोचक और रक्तशुद्धिकर है। ज्वर और रक्तपित्तमें इनका प्रयोग करते है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

कमरख स्कर्वी रोगमें और रक्तार्शमें लाभकर है।

---

## हरमल आदिवर्ग २४.

## N. O. Rutaceæ (रुटेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; उपरिस्थ बीजकोश; पर्ण एकान्तर; पुष्प नियमित, शाखाग्रोद्भूत; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ४–५; पुंकेशर ८–१०, मूलमें संयुक्त।

---

### (६४) हरमल[1]।

**नाम**—(फा., अ., क.) इस्पंद, इस्बंद; (म.) हरमळ; (गु.) हरमल, हरमर; (ले.) पिगेनम् हरमल (Peganum harmala)।

---

१ हरमलके लिये डॉ. वा. ग. देसाईने संस्कृत 'कटभी' दिया है।

**वर्णन**—हरमलका ३ फूट ऊँचा क्षुप होता है । पत्र एकान्तर, किनार बारीक कटी हुई; पत्रकोणसे १-१ सफेद रंगका फूल आता है । पंखडियाँ ४-५; पुंकेशर १२-१५; फल सुदाबके फल जैसे, तीन खानोंवाले; प्रत्येक खानेमें १-१ त्रिकोण बीज होता है । बीजका स्वाद कडुआ होता है ।

**उपयुक्त अंग**—बीज । **मात्रा**—१-३ माशा ।

**गुण-कर्म**—हरमल संकोच-विकास-प्रतिबन्धक ( आक्षेपहर ), मादक, स्वापजनन, वेदनास्थापन, आर्तवजनन और स्तन्यजनन है । यह स्त्री और पुरुषके लिये थोड़ासा कामोत्तेजक है । हरमल वात और कफप्रधान रोगोंमें देते हैं । अनार्तव, कष्टार्तव और मूत्रावरोधमें हरमलके क्वाथमें तिलका तैल और शहद मिलाकर देते हैं । इससे आर्तव और दूध बढ़ता है । आमवातमें इससे सोडा सॅलिसिलस् की अपेक्षया शीघ्र वेदना कम होती है । ज्वर, गृध्रसी, अपतन्त्रक, अपस्मार और आक्षेपकमें इसका पोटॅशिअम् ब्रोमाइडकी अपेक्षया अच्छा उपयोग होता है । दमा, सूखी खाँसी, पित्ताश्मरी, मूत्राश्मरी उदरशूल और हिक्कामें हरमलसे लाभ होता है **( डॉ. वा. ग. देसाई )** ।

**यूनानी मत**—हरमल वाजीकर, कोष्ठवातप्रशमन, कृमिघ्न, मूत्रजनन, आर्तवजनन और क्षीरजनन है । हरमल दमे और खाँसीमें कफ निकालनेके लिये देते हैं । यह अर्दित, पक्षाघात, अपस्मार, गृध्रसी आदि वातरोगोंमें लाभप्रद है । कानके दर्दको दूर करनेके लिये हरमलके कल्कके साथ तिलतेल पकाकर उसकी बूंद कानमें डालते हैं । दांतोंकी पीड़ा दूर करनेके लिये तथा दुष्ट व्रणके शोधनके लिये हरमलकी धूनी देते हैं । हरमलको सरसोंके तेलमें पीसकर बालोंमें लगानेसे जूँएँ मर जाती हैं ।

---

## ( ६५ ) सुद्दाब ।

**नाम**—( फा. अ. ) सुदाब, सुद्दाब; ( हिं. ) सिताब; ( म. ) सताप; ( गु. ) सताब; ( ता. ) अरूवदाण्, ( पां. ) बुधोळिळ; ( मल ) अरूदम, सोमरायम्; ( का. ) हावुनजु, नागदाळि; ( पं. ) सुदाब, तितली; ( ले. ) रूटा ग्रेविओलन्स ( Ruta graveolens ) ।

**गुण-कर्म**—सुदाब दीपन, वायुनाशक, उत्तेजक, कृमिघ्न, आक्षेपहर, स्वेदजनन, नाडियोंको उत्तेजक, मूत्रजनन और आर्तवजनन है । सुदाबकी उत्तेजक क्रिया विशेषकर त्वचा, नाडीव्यूह ( नर्वस् सिस्टम् ) और गर्भाशयपर होती है । स्त्रियों और बालकोंके रोगोंमें सुदाबका विशेष उपयोग करते हैं । ज्वरमें देनेसे पेशाब और पसीना आता है तथा नाड़ीकी गति कम होती है । बच्चोंके आक्षेपकमें गोरोचनके साथ सुदाब देते हैं । भ्रम और अपतन्त्रकमें सुदाबका फांट देते हैं । अनार्तव और कष्टार्तवमें फांट देते हैं । इससे ऋतु साफ होकर पीड़ा कम होती है ।

बच्चोंकी सर्दी, जुकाम और खाँसीमें इसका स्वरस देते हैं । कानके दर्दमें इसका स्वरस कानमें डालते हैं । उदरशूल, आध्मान और कुपचनमें फांट देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (६६) बीजपूर-मातुलुङ्ग।

**नाम**—(सं) बीजपूर, मातुलुङ्ग; (हिं.) विजौरा; (बं.) छोलङ्गनेबु, टावा ने-ले-बु; (म.) महाळुंग; (गु.) वि(बी)जोरु; (मा.) बीजोरो; (ता.) पेरियिलमिचै, मादळम्; (सिंध) तुणिज; (अ.) उत्रुज; (फा.) तुरेज; (ले.) साइट्रस् मेडिका (Citrus medica)।

**वर्णन**—विजौरा भारतवर्षमें सर्वत्र प्रसिद्ध है । इसके वृक्ष बागोंमें लगाये जाते हैं ।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) हृद्ये, छर्दिनिग्रहणे च महाकषाये मातुलुङ्गं पठ्यते । "शूलेऽरुचौ विबन्धे च मन्देऽग्नौ मद्यविप्लवे । हिक्काश्वासे च कासे च वम्यां वर्चोगदेषु च ॥ वातश्लेष्मसमुत्थेषु सर्वेष्वेवोपदिश्यते । केशरं मातुलुङ्गस्य लघु, शेषमतोऽन्यथा ॥" (च. सू. अ. २७)। "लघ्वम्लं दीपनं हृद्यं मातुलुङ्गमुदाहृतम् । त्वक् तिक्ता दुर्जरा तस्य वातक्रिमिकफापहा ॥ स्वादु शीतं गुरु स्निग्धं मांसं मारुतपित्तजित् । मेध्यं शूलानिलच्छर्दिकफारोचकनाशनम् ॥ दीपनं लघु संग्राहि गुल्मार्शोघ्नं तु केशरम् । शूलाजीर्णविबन्धेषु मन्देऽग्नौ कफमारुते ॥ अरुचौ च विशेषेण रसस्तस्योपदिश्यते ।" (सु. सू. अ. ४६)।

बिजौरा अम्ल, लघु, दीपन, हृद्य और वमनको बंद करनेवाला है । शूल, अरुचि, विबन्ध, मंदाग्नि, मदात्यय, हिक्का, श्वास, खाँसी, वमन, गुल्म, अर्श, तथा पुरीष (मल) वात और कफके रोगोंमें बिजौरेका केशर दिया जाता है । बिजौरेका केशर मेध्य दीपन, लघु और ग्राही है । बिजौरेकी छाल तिक्त, दुर्जर तथा वात, कृमि और कफका नाश करनेवाली है । बिजौरेका मांस मधुर, शीतवीर्य, गुरु, स्निग्ध तथा वात और पित्तका नाश करनेवाला है । शूल, अजीर्ण, विबन्ध, मंदाग्नि, अरुचि तथा कफ और वातके विकारोंमें बिजौरेका रस दिया जाता है ।

**नव्य मत**—बिजौरेका रस शोणितास्थापन और दीपन-पाचन है । छाल सुगन्धि और कटुपौष्टिक है । पत्र स्वेदजनन और वेदनास्थापन हैं । फूल मृदु स्वप्नजनन (निद्राकारक) हैं । मूल ग्राही और थोड़ा वेदनास्थापन है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

[1] कई वैद्य बिजोरेको **बीजपूरक** और चकोतरेको **मातुलुङ्ग** मानते हैं ।

## ( ६७ ) जम्बीर ।

**नाम**—( सं. ) जम्बीर, दन्तशठ; ( हिं. ) जँबीरी ( जम्भीरी ) नीबू; ( पं. ) जंबीरी, गलगल; ( बं. ) जामीरले(ने)बु; ( म. ) इडलिंबु; ( गु. ) गोदडिया लिंबु, दोडिंगा; ( ले. ) साइट्रस लाइमोनम् ( Citrus limonum )।

**वर्णन**—जँबीरी नीबूकी छाल मोटी होती है और फल लंबगोल तथा स्वादमें खट्टा होता है।

**गुण-कर्म**—"तृष्णाशूलकफोत्क्लेशच्छर्दिश्वासनिवारणम् । वातश्लेष्मविबन्धघ्नं जम्बीरं गुरु पित्तलम् ॥" ( सु. सू. अ. ४६ )। "× × दन्तशठमम्लं × × । × × रक्तपित्तकरं × × ॥" ( च. सू. अ. २७ )।

जम्भीरी नीबू अम्ल, गुरु पित्तकारक तथा तृष्णा, शूल, कफ, मितली, वमन, श्वास, वात, कफ और विबन्ध ( कब्ज ) को दूर करनेवाला है।

---

## ( ६८ ) निम्बूक ।

**नाम**—( सं. ) निम्बूक; ( हिं. ) कागजी नीबू नींबू; ( पं. ) खट्टा; ( सिंध ) लिमो; ( बं. ) नेबु, कागजी ने( ले )बु; ( म. ) लिंबू; ( गु. ) लींबु, कागदी लींबु; ( ते. ) निम्म; ( ता. ) एलुमिच्चै; ( मल ) चेरु नारघम् , ( फा. ) लीमूं, लीमूने तुर्श ( ले. ) साइट्रस एसिडा ( Citrus acida )।

**वर्णन**—कागजी नीबूका फल जँबीरी नीबूके फलसे छोटा और गोल होता है। इसकी छाल जँबीरीकी अपेक्षया पतली होती है इसलिये इसको **कागजी नीबू** कहते हैं। चरक और सुश्रुतमें **निम्बूक** शब्द देखनेमें नहीं आता। संभव है कि उस समयमें यहां जँबीरी नीबू ही प्रचलित हो और पीछेसे उसकी सुधारी हुई जात कागजी नीबू बना हो। या उन्होंने कागजी नीबुको **ऐरावत** नाम दिया हो। **सुश्रुतने** दोनोंके गुण समान लिखे हैं "ऐरावतं दन्तशठमम्लं शोणितपित्तकृत्।" ( सू. अ. ४६ )। निघण्टुओंमें नारंगी( संत्रे )को ऐरावत बताया है वह ठीक नहीं है, क्योंकी नारंगीके गुण **चरक—सुश्रुत** दोनोंने स्वतन्त्र लिखे हैं।

**गुण-कर्म**—निम्बूफलं प्रथितमम्लरसं कदुष्णं गुल्मामवातहरमग्निविवृद्धिकारि। चक्षुष्यमेतदथ कासकफार्तिकण्ठविच्छर्दिहारि परिपक्कमतीव रुच्यम् ॥" ( रा. नि. )।

कागजी नीबू अम्ल, किंचित् उष्णवीर्य, अग्निदीपन, चक्षुष्य, रोचन तथा गुल्म, आमवात, खाँसी, कफ, कण्ठकी पीडा और वमनका नाश करने वाला है।

**नव्य मत**—जँबीरी और कागजी दोनों नीबूमें जम्बीराम्ल[१] ( साइट्रिक् एसिड् )

---

१ जम्बीराम्ल ( निम्बूकाम्ल ) बनानेकी विधि **रसतरङ्गिणी** ६ तरङ्ग, ९०–९५ श्लोकोंमें लिखी है।

होता है, परंतु कागजी नीबूमें अधिक होता है । नीबूका रस दीपन, पाचन, तृष्णानिग्रहण, रक्तपित्तप्रशमन, विषमज्वरघ्न, ज्वरहर और मूत्रजनन है। नीबूकी छाल दीपन और कोष्ठवातप्रशमन है । नीबूके रसमें जौखार मिलाकर देनेसे पसीना आता है, पेशाबकी अम्लता कम होती है और उसका प्रमाण बढ़ता है। नवीन आमवात, रक्तपित्त और वातरक्तमें नीबूका रस उपयोगी है। पित्तसे आँखें दुखने आई हों, पित्तकी अधिकतासे वमन होता हो उसमें तथा अतिसार और आँवमें नीबूको गरम कर, रस निकाल, उसमें सैंधव और शक्कर मिलाकर देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (६९) मिष्टनिम्बू।

**नाम—(सं.) मिष्टनिम्बू, मधुजम्बीर; (हिं.) शर्बती नीबू, मीठा नीबू; (पं.) मीठा; (म.) साखरलिंबु; (गु.) मीठा लिंबु; (बं.) मिठा लेबू; (ले) साइट्रस लाइमेटा (Citrus limetta)।**

**वर्णन**—मीठे नीबूके फल कागजी नीबूसे बड़े, गोल, पतले छिलकेवाले और मीठे होते हैं।

**गुण-कर्म—"मिष्टनिम्बूफलं स्वादु गुरु मारुतपित्तनुत् । गलरोगविषध्वंसि कफोत्क्लेशि च रक्तहृत् ॥ शोषारुचितृषाच्छर्दिहरं बल्यं च बृंहणम् ।" (भा. प्र.) "मधुरो मधुजम्बीरः शिशिरो वातपित्तजित् । शोषघ्नस्तर्पणो वृष्यः श्रमघ्नः पुष्टिकारकः ॥" (ध. नि.)।**

मीठा नीबू मधुर, गुरु, शीतवीर्य, बल्य, बृंहण, वृष्य, तर्पण, कफको बढ़ानेवाला, रक्तशोधक तथा गलेके रोग, विष, शोष, अरुचि, तृष्णा, थकावट, वात और पित्तको दूर करनेवाला है।

---

## (७०) अम्लवेतस।

**नाम—(सं.) अम्लवेतस; (हिं.) अमलबेत; (ने.) चुकत्रो।**

**वर्णन**—अम्लबेत नीबूकी जातिका फल है। देखनेमें जँबीरी नीबू जैसा परंतु उससे बड़ा और अत्यन्त खट्टा होता है। इस समय बाजारमें अमलबेतके नामसे जो चोटीसी गुँथी हुई वस्तु मिलती है वह रेवंदचीनीकी सुखाई हुई शाखें हैं।

**गुण-कर्म—"अम्लवेतसो भेदनीयदीपनीयानुलोमिकवातश्लेष्महराणाम्" (च. सू. अ. २५)। चरके—(सू. अ. ४) दीपनीये, हृद्ये, श्वासहरे च महाकषाये अम्लवेतसः पठ्यते। "अम्लवेतसमत्यम्लं भेदनं लघु दीपनम् । हृद्रोगशूलगुल्मघ्नं पित्तलं लोमहर्षणम् ॥ रूक्षं विण्मूत्रदोषघ्नं प्लीहोदावर्तनाशनम् । हिक्कानाहा-**

द्र० उ० ९

रुचिश्वासकासाजीर्णवमिप्रणुत्॥ कफवातामयध्वंसी छागमांसद्रवत्वकृत्। चणकाम्ल-गुणं ज्ञेयं लोहसूचीद्रवत्वकृत्॥" (भा. प्र.)।

अमलबेत अत्यन्त खट्टा, लघु, रूक्ष, भेदन, दीपन, अनुलोमन, वात-कफहर, पित्त-वर्धक, लोमहर्षण तथा हृद्रोग, शूल, गुल्म, विण्मूत्रदोष, प्लीहा, उदावर्त, हिचकी, आनाह, अरुचि, श्वास, खाँसी और अजीर्णका नाश करनेवाला है। अमलबेतके फलमें सूई डालकर रख दे तो वह उसमें गल जाती है।

---

## (७१) नारङ्ग (नागरङ्ग)।

**नाम**—(सं.) नारङ्ग, नागरङ्ग; (बं.) कमला नेबु, कमला; (हिं. म. गु.) नारंगी, संत्रा, संतरा; (अ.) नारंज; (ले.) साइट्रस ओरेन्शिअम् (Citrus aurantium)।

**वर्णन**—संतरे-नारंगी-के फल हिंदुस्तानमें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं।

**गुण-कर्म**—"अम्लं समधुरं हृद्यं विशदं भक्तरोचनम्। वातघ्नं दुर्जरं प्रोक्तं नारङ्गस्य फलं गुरु॥" (सु. सू. अ. ४६)। "मधुरं किंचिदम्लं च हृद्यं भक्तप्रोचनम्। दुर्जरं वातशमनं नागरङ्गफलं गुरु॥" (च. सू. अ. २७)।

नारंगी मधुर, अम्ल, हृद्य, विशद, गुरु, दुर्जर (देरहजम), अन्नपर रुचि उत्पन्न करनेवाली और वातघ्न है।

---

## (७२) बिल्व।

**नाम**—(सं.) बिल्व, श्रीफल; मज्जा-बिल्वपेशिका; (हिं.) बेल, मज्जा-बेलगिरी; (पं.) बिल, मज्जा-बिलकत्त; (म.) बेल; (गु.) बीली; (ते.) बिल्वमु, मालूरमु; (ता.) अलुविघम्, कुविळम्; (मल.) कुवळम्; (सिंध) कठोरी; (अ.) सफरजले हिंदी; (ले.) इगल मार्मेलॉस् (Aegle marmelos)।

**वर्णन**—बेलका १५-२५ फुट ऊँचा वृक्ष होता है। शाखाओंपर काँटे होते हैं। पर्ण त्रिदल और एकान्तर होते हैं। पुष्प कुछ हरापन लिये श्वेत वर्णके होते हैं। फलका कवच कठिन होता है। बेलके वृक्ष दो प्रकारके होते हैं—जंगली और लगाये हुए। जंगलीमें काँटे अधिक और फल छोटे होते हैं। लगाये हुएमें काँटे कम और फल बड़े होते हैं।

**उपयुक्त अंग**—मूल, त्वचा, पत्र और फलका गूदा। चूर्णादिके लिये कच्चे फलका, मुरब्बेके लिये अधपके फलका और पानकके लिये परिपक्व फलका गूदा लेना चाहिये। दशमूल आदि कषायोंमें मूल या वृक्षकी त्वचा ली जाती है।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) अर्शोघ्ने, आस्थापनोपगे, अनुवासनोपगे, शोथघ्ने च महाकषाये बिल्वः पठ्यते। "बिल्वं सांग्राहिकदीपनीयवातकफप्रशमनानाम्" ( च. सू. अ. २५ )। "बिल्वं तु दुर्जरं पक्वं दोषलं पूतिमारुतम्। स्निग्धोष्णतीक्ष्णं तद्बालं दीपनं कफवातजित्॥" "×××। बिल्वपत्रं तु वातनुत्।" ( च. सू. अ. २७ )। सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) वरुणादिगणे, अम्बष्ठादिगणे, महापञ्चमूले च गणे बिल्वः पठ्यते। "कफानिलहरं तीक्ष्णं स्निग्धं संग्राहि दीपनम्। कटुतिक्तकषायोष्णं बालं बिल्वमुदाहृतम्॥ विद्यात्तदेव संपक्वं मधुरानुरसं गुरु। विदाहि विष्टम्भकरं दोषकृत् पूतिमारुतम्॥" ( सु. सू. अ. ४६ )। "बिल्वस्तु मधुरो हृद्यः कषायः पित्तजिद्गुरुः। कफज्वरातिसारघ्नो रुचिकृद्दीपनः परः॥ बिल्वमूलं तु छर्दिघ्नं मधुरं लघु वातनुत्। फलं तु कोमलं स्निग्धं गुरु संग्राहि दीपनम्॥ तदेव पक्वं विज्ञेयं मधुरानुरसं गुरु।" ( रा. नि. )।

बेल मधुर, कषाय, हृद्य, गुरु, रुचिकर, दीपन, आस्थापनोपग, अनुवासनोपग तथा अर्श, शोथ, पित्त, कफ, ज्वर और अतिसारका नाश करनेवाला है। बेलका मूल मधुर, लघु, छर्दिघ्न और वातहर है। पत्र वातहर है। कच्चा ( कोमल ) फल, कटु, तिक्त, कषाय, स्निग्ध, उष्ण, तीक्ष्ण, दीपन, ग्राही तथा कफ और वायुका नाश करनेवाला है। पका हुआ फल मधुर, गुरु, विदाहि, विष्टम्भि, दुर्जर, दोषकर और दुर्गन्धयुक्त अधोवायु उत्पन्न करनेवाला है।

**नव्य मत**—बेलका मूल ज्ञानतन्तुओंके लिये शामक है। यह वातरोगोंमें उपयोगी है। हृदयका अधिक स्पन्दन, उदासीनता, निद्रानाश और उन्मादमें मूल दिया जाता है। इससे कैफ–नशा आता है। विषमज्वरमें मूलकी छालका क्वाथ देते हैं। जिसमें कब्ज और पेटका अफारा हो ऐसे कुपचनमें और जिसमें कभी जुलाब और कभी कब्ज हो ऐसे आँतोंके रोगमें पके हुए फलका शर्बत ( पानक ) सवेरमें देनेसे बड़ा लाभ होता है। कच्चे फलको भून कर उसका गूदा रक्तमिश्रित आँवमें और जीर्ण अतिसारमें देते हैं। कच्चे बेलफल, सौंफ और बचका क्वाथ जीर्ण आँवमें विशेष हितकर है। कच्चे फलका गूदा और तबखीर( आरारूट )की पेया अतिसारमें देते हैं। ताजे फलका गूदा और कबाबचीनी पीसकर दूधके साथ सुजाकमें देते हैं। ताजे पत्तोंका स्वरस ज्वर, अभिष्यन्द, शोथ और कफरोगमें देते हैं। इससे दस्त साफ होकर ज्वर और अभिष्यन्द कम होता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

बिल्वपत्रका स्वरस १–२ तोला मधुमेहमें देते हैं।

---

## ( ७२ ) कपित्थ।

**नाम**—( सं. ) कपित्थ, दधित्थ; ( हिं. ) कैथ; ( बं. ) कयेद्, कयेत्बेल; ( म. ) क( कं )वठ; ( गु. ) कोठ; ( ता. ) करुविळा; ( मल. ) विळावु; ( लॅ. ) फेरोनिया एलिफन्टम् ( Feronia elephantum )।

**वर्णन**—कैथका बड़ा वृक्ष होता है। पर्णक्रम एकान्तर, पर्ण संयुक्त; पत्तोंको मसलनेसे सौंफ जैसी सुगंध आती है। शाखाओंपर काँटे होते हैं। पुष्प फीके लाल रंगके ग्रीष्म ऋतुके आरंभमें लगते हैं। फल गोल। फलका कवच कठिन होता है। पके फलका गूदा खटमीठा होता है। वर्षाके अन्तमें फल पक जाते हैं और चिरकालतक वृक्षपर रहते हैं।

**गुण-कर्म**—"कपित्थमामं कण्ठघ्नं विषघ्नं ग्राहि वातलम्। मधुराम्लकषायत्वात् सौगन्ध्याच्च रुचिप्रदम्॥ परिपक्वं तु दोषघ्नं विषघ्नं ग्राहि गुर्वपि।" (च. सू. अ. २७)। "आमं कपित्थमकण्ठ्यानाम्" (च. सू. अ. २५)। "आमं कपित्थमस्वर्यं कफघ्नं ग्राहि वातलम्। कफानिलहरं पक्वं मधुराम्लरसं गुरु॥ श्वासकासारुचिहरं तृष्णाघ्नं कण्ठशोधनम्।" (सु. सू. अ. ४६)। "कपित्थो मधुराम्लश्च कषायस्तिक्तशीतलः। वृष्यः पित्तानिलं हन्ति संग्राही व्रणनाशनः॥" (रा. नि.)।

कपित्थ मधुर, अम्ल, कषाय, तिक्त, शीतवीर्य, वृष्य, ग्राही तथा पित्त, वात और व्रणका नाश करनेवाला है। कैथका कच्चा फल कण्ठ(स्वर)के लिये अहितकर, ग्राही, कफ तथा विषका नाश करनेवाला और वायु करनेवाला है। परिपक्व कैथ मधुर-अम्ल-कषाय तथा सुगन्धि होनेसे रुचिकर, दोषघ्न, विषघ्न, ग्राही, गुरु, कण्ठको साफ करनेवाला तथा कफ, वायु, श्वास, खाँसी, अरुचि और तृषाको दूर करनेवाला है।

**नव्य मत**—पत्तेमें थोड़ासा स्थायी तैल है। फलके गूदेमें जम्बीराम्ल (साइट्रिक् एसिड्) और पिच्छिल द्रव्य है। सुखाये हुए गूदे (कैथगिरी) में १५ प्रतिशत जम्बीराम्ल होता है। इसकी राखमें जवखार, चूना और लोहके क्षार होते हैं। कैथके गुण-कर्म बेलफलके समान हैं। परंतु रक्तपित्तप्रशमन धर्म बेलमें विशेष है। पत्र वातनाशक हैं। इसके गोंदसे आँतोंकी पेचिश कम होती है। **(डॉ. वा. ग. देसाई)।**

---

## (७४) तेजबल और तुम्बरु।

**वृक्षका नाम**—(सं.) तेजस्विनी, तेजोवती; (हिं.) तेजबल; (ले.) झेन्थोक्सायलम् एलेटम् (Xanthoxylum alatum)।

**फलका नाम**—(सं.) तुम्बरु; (हिं.) नेपाली धनिया, तुमरु, तोमर, (म.) तिरफल, चिरफल; (अ.) फागिरा कबाबा खंदाँ (फा.) कबाबा दहन कुशादा; (पं.) तिंबर।

**वर्णन**—तेजबलके वृक्ष हिमालयमें २ से ५ हजार फुटकी ऊँचाई पर होते हैं। इसपर दृढ स्थूल काँटे होते हैं। इसकी पतली कोमल शाखाओंकी दातुन करते हैं। **तेजबल** वृक्षके फलको **तुम्बरु** कहते हैं। फल बड़े धनिये बराबर, प्रायः

बीचसे खुले (फटे) हुए और खाली होते हैं। कभी कभी इसमें काले रंगके चमकीले बीज होते हैं। औषधमें बीजरहित फलोंका उपयोग करना चाहिये। फलके ऊपर तैलयुक्त रालसे भरी हुई सूक्ष्म ग्रन्थियाँ और अंदर कागज जैसा पड़दा होता है। दक्षिण भारतमें तुम्बरुका एक भेद (झेन्थोक्सायलम् रेट्सा Z. Rhetsa) होता है। उसको मराठीमें **तिरफल** या **चिरफल** कहते हैं। तिरफलके फल तुंबरुसे बड़े होते हैं।

**उपयुक्त अंग**—फल, छाल और मूल। **मात्रा**—फल ५–१० रत्ती। त्वचा और मूल १–३ माशा।

**गुण-कर्म**—"तेजोवती कटुस्तिक्ता रुच्या दीपनपाचनी। उष्णा वातकफश्वासकासहिध्मास्यरोगनुत्॥" (कै. नि.)। "तुम्बरुः कटुतीक्ष्णोष्णः कफमारुतशूलजित्। अपतन्त्रोदराध्मानकृमिघ्नो वह्निदीपनः॥" (ध. नि.)। **चरके** (सू. अ. २; वि. अ. ८) शिरोविरेचनद्रव्येषु, तिक्तस्कन्धे (वि. अ. ८) च तुम्बरुः पठ्यते।

तेजबल कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रुचिकारक तथा वात, कफ, श्वास, कास, हिक्का और मुखके रोगोंका नाश करनेवाली है। तुम्बरु कटु, तिक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, शिरोविरेचन, कृमिघ्न, दीपन तथा कफ, वात, शूल, अपतन्त्रक और पेटके अफारेका नाश करनेवाला है।

**नव्य मत**—छालमें उड़नेवाला तेल, राल तथा दारुहारिद्रिक (बर्बेरीन) सत्त्व मिलता है। फलोंमें न उड़नेवाला सुगन्धि तेल होता है। इस तैलकी और बिरोजेकी घटना समान है। तैलमें रंग नहीं होता, परन्तु मनोहर सुगन्ध होती है। तुम्बरु सुगन्धि, उष्ण, दीपन, पाचन, ग्राही, वातहर और उत्तेजक है। इसकी क्रिया युकेलिप्टस तैल और गन्धाबिरौजेके समान होती है। कुपचन और अतिसारमें तुम्बरु देते हैं। ज्वरमें मूलकी छालका फाण्ट देनेसे उत्तेजना आती है और ज्वर कम होता है। व्रणवालेको फलोंका चूर्ण खानेको देते हैं और व्रणपर भुरकाते हैं। मूलके क्वाथसे दुष्ट व्रणको धोनेसे व्रणका शोधन होता है। तुम्बरुके अन्दरका उत्तेजक द्रव्य त्वचाके रास्तेसे बाहर निकलता है, इसलिये श्लेष्मत्वचा (कला) तथा व्रणकी शुद्धि होती है और ज्वरमें पसीना आता है।

तिरफलके मूलकी छाल सुगन्धि, मूत्रजनन और कटुपौष्टिक है। तिरफलके मूलकी छाल आँतोंके शैथिल्यसे होनेवाले कुपचनमें देते हैं। दाँतोंकी पीड़ामें और लकवेमें जीभका हलन-चलन ठीक न होता हो तब तिरफलकी छाल चबानेको देते हैं। आमवातमें तिरफल देते हैं। इससे शरीरका दर्द कम होता है। पेटका दर्द और अफारा, अजीर्ण, कुपचन तथा अतिसारमें तिरफल देते हैं। तिरफल और अजवायनका बाष्पके साथ निकाला हुआ तेल हैजेमें देते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

तेजबलकी छाल और तुम्बरु दाँतोंके मंजनोंमें डालते हैं । चरकने अपतन्त्रके लिये तुम्बर्वादि चूर्ण लिखा है । **योग**—तुम्बरु, हड़, हिंग, पुष्करमूल, सैंधव, कालानमक और सामुद्र लवण समभागका चूर्ण करके यवमंडके साथ हृद्ग्रह और अपतन्त्रकमें देना ( च. सि. अ. ९ ) । तुंबरु और तिरफलके गुण कर्म समान हैं । जहां जो मिले उससे काम चला सकते हैं ।

---

## इङ्गुद्यादि वर्ग २५.

### N. O. Simaroubaceæ ( सिमेरुबेसी ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; पर्णक्रम एकान्तर; पर्ण प्रायः संयुक्तदल, क्वचित् एकाकी, उपपत्ररहित; पत्तोंमें तैलग्रन्थियाँ नहीं होती; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ३–५; एकके ऊपर एक आये हुए; पुंकेशर ५ अथवा पँखडियोंसे दूने; फल मांसल और अविदारी । यह वर्ग उष्ण प्रदेशमें होता है ।

---

### ( ७५ ) इङ्गुदी ।

**नाम**—( सं. ) इङ्गुदी, तापसद्रुम; ( हिं. ) हिंगोट; ( म. ) हिंगण; ( गु. ) इंगोरियो; ( मा. ) हिंगोरिया; ( ता. ) नन्जुडन्, तोरुवट्टु; ( मल. ) नंजुडं; ( का. ) इंगळार, इंगळके; ( ले. ) बेलेनाइटिस एजिप्टिका ( Balanites Aegyptiaca ) ।

**वर्णन**—इङ्गुदीका काँटेदार वृक्ष जाङ्गल देशमें होता है । ऊंचाई १०–२० फुट; छाल भूरे रंगकी; पर्ण संयुक्त; पुष्पबाह्यकोशके दल तथा पँखडियाँ ५–५; पुंकेशर १०; फल अण्डाकार, २ इंच लंबा और १॥ इंच चौड़ा; फलत्वचा भंगुर; गूदा ललाईलिये हरा; बीज सख्त; फलकी मज्जाका तैल निकालते हैं ।

**गुण-कर्म**—**सुश्रुते ( अ. ३९ ) शिरोविरेचनद्रव्येषु इङ्गुदी पठ्यते—"इङ्गुदीमेषशृङ्ग्योस्त्वचः"** । "क्रिमिघ्नमिङ्गुदीतैलमीषत्तिक्तं तथा लघु । कुष्ठामयक्रिमिहरं दृष्टिशुक्रबलापहम् ॥" ( सु. सू. अ. ४५ ) । "ऐङ्गुदं तिक्तमधुरं स्निग्धोष्णं कफवातजित् ।" ( च. सू. अ. २७ ) । "इङ्गुदी मदगन्धा स्यात् कटूष्णा फेनिला लघुः । रसायनी हन्ति जन्तुवातामयकफव्रणान् ॥" ( रा. नि. ) । "इङ्गुदस्तिक्तकः सोष्णः कटुपाको नियच्छति । क्रिमिकुष्ठविषश्वित्रशूलभूतग्रहव्रणान् ।" ( कै. नि. ) ।

इङ्गुदी मद उत्पन्न करनेवाले गन्धवाली, रसमें तिक्त और कटु, विपाकमें कटु, उष्णवीर्य, लघु, फेन उत्पन्न करनेवाली, रसायन तथा क्रमि, वातरोग, कफरोग, व्रण, कुष्ठ, विष, श्वित्र, शूल और भूतों( जीवाणुओं )का नाश करनेवाली है। इङ्गुदीकी त्वचा शिरोविरेचन है । इङ्गुदीका फल तिक्त, मधुर, स्निग्ध, उष्णवीर्य

तथा कफ और वायुका नाश करनेवाला है। इङ्गुदीका तैल कुछ तिक्त, लघु, कुष्ठ और कृमिको दूर करनेवाला तथा दृष्टि, शुक्र और बलको हानि करनेवाला है।

**नव्य मत**—"फलके गूदेमें १$\frac{1}{3}$ प्रतिशत सावुन, १ प्रतिशत अम्ल द्रव्य, शर्कर और पुष्कल पिच्छिल द्रव्य होता है। छालमें सावुन जैसा (फेनिल) पदार्थ है। इसके फलके मद्यासव (टिंक्चर) से तेलका दुग्धीकरण (इमल्शन) होता है। इङ्गुदीकी छाल और फलके गूदेके गुण **सेनेगा** जैसे हैं। इनमें स्रंसन, कृमिघ्न, कफघ्न और कुष्ठघ्न गुण हैं। जीर्ण कफरोगोंमें फलके गूदेसे अच्छा लाभ होता है। इसको बादामके तेल और मिश्रीके पानीके साथ घोटकर देना अच्छा है। इससे कफ पतला होकर शीघ्र गिरने लगता है और पेशाब तथा दस्त साफ होता है। बीजोंका तेल जख्म और अग्निदग्धव्रणपर लगाते हैं" **(डॉ. वा. ग. देसाई)।**

---

# गुग्गुल्वादि वर्ग २६.

## N. O. Burseraceæ (बर्सेरेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; उपरिस्थगर्भाशय; पर्णक्रम एकान्तर; पर्ण संयुक्त; पुष्पाभ्यन्तरकोश और पुष्पबाह्यकोशके दल ३–५, स्थायी; पुंकेशर पँखडियोंके जितने या उससे द्विगुण; स्त्रीकेशर १; फल सख्त, विकासी या अविकासी। इस वर्गके उद्भिज्जोंसे सुगन्धि निर्यास निकलता है, जो औषध और धूपके लिये काममें आता है।

---

### (७६) गुग्गुलु।

**नाम—(सं.)** गुग्गुलु, कौशिक, पुर, पलङ्कष; **(क.)** काण्ठगण; **(हिं.)** गूगल; **(गु.)** गुगळ; **(सिंध.)** गुगरु; **(अ.)** मुक्लुल यहूद; **(फा.)** बूए जहूदान; **(ले.)** बाल्सेमोडेन्ड्रोन् मुकुल अथवा कोमिफोरा मुकुल (Balsamodendron mukul or commiphora mukul)।

**उत्पत्तिस्थान**—सिंध, मारवाड़, कच्छ, काठियावाड़ आदि जांगल प्रदेश।

**वर्णन**—गूगलका वृक्ष ४–१२ फुट ऊँचा होता है। पुष्प छोटे लाल रंगके होते हैं। फल मांसल, लंबगोल और लाल रंगके होते हैं। बाजारमें गूगलकी दो जातियाँ मिलती हैं (१) **कणगूगल** और (२) **भैंसा (महिषाक्ष) गूगल।** कणगूगल मारवाड़में होता है और उसके ललाई लिये हुए पीले रंगके गोल दाने होते हैं। यह भैंसा गूगलसे नरम होता है। भैंसा गूगलका रंग हरापनलिये पीला होता है। यह सिंध, कच्छ आदिमें होता है।

**गुण-कर्म—सुश्रुते** ( सू. अ. ३८ ) एलादिगणे गुग्गुलुः पठ्यते । "सुगन्धिः सुलघुः सूक्ष्मस्तीक्ष्णोष्णः कटुको रसे । कटुपाकः सरो हृद्यो गुग्गुलुः स्निग्ध-पिच्छिलः ॥ स नवो बृंहणो वृष्यः पुराणस्त्वपकर्षणः । तैक्ष्ण्यौष्ण्यात् कफवातघ्नः सरत्वान्मलपित्तनुत् ॥ सौगन्ध्यात् पूतिकोष्ठघ्नः सौक्ष्म्याच्चानलदीपनः ।" ( सु. चि. अ. ५ ) । "गुग्गुलुः कटुतिक्तोष्णः कफमारुतकासजित् । कृमिवातोदरप्लीहशोथा-र्शोघ्नो रसायनः ॥" ( रा. नि. ) । भग्नसन्धानकृन्मेहमेदःकुष्ठाममारुतान् । विद्रधिं ग्रन्थिमपचीं गण्डमालां च नाशयेत् ॥

गूगल रस और विपाकमें कटु, उष्णवीर्य, सुगन्धि, लघु, सूक्ष्म, तीक्ष्ण, स्निग्ध, पिच्छिल, रसायन, हृद्य, सर, त्रिदोषहर, भग्नसंधानकर, अग्निदीपन, व्रण्य तथा कफरोग, वातरोग, कास, कृमि, उदर, प्लीहाके रोग, शोथ, अर्श, प्रमेह, मेदो-वृद्धि, कुष्ठ, आमवात, विद्रधि, ग्रन्थि, अपची और गण्डमालाका नाश करनेवाला है। नया गूगल बृंहण और वृष्य है तथा पुराना गूगल कर्षण ( लेखन ) है ।

**उपयुक्त अंग**—निर्यास । **मात्रा**—२–१५ रत्ती ।

**नव्य मत**—"गूगल रसायन, दीपन, स्नेहन, स्रंसन, वातहर, कफहर, कोष्ठवात-प्रशमन, आर्तवजनन, रक्तके श्वेत कणोंको बढ़ानेवाला, रक्तवर्धक, श्लेष्मलत्वचाके लिए उत्तेजक, त्वग्दोषहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण और शोथघ्न है । गूगल उत्तेजक, रोगजन्तुघ्न, दुर्गन्धहर और कफघ्न है, इसलिये जब पुरानी खाँसीमें अतिशय गाढ़ा और दुर्गन्धयुक्त कफ पड़ता हो तब पीपल, वासा, शहद और घीके साथ मिलाकर देते हैं। गूगल अशक्त और फीके मध्यम अवस्थाके मनुष्यको लोहभस्मके साथ देते हैं। गूगल दीपन और आनुलोमिक है, इसलिये कुपचन और मलावष्टम्भमें विशेष करके जब आमाशय और आँतोंमें शिथिलता हो तब सुगन्धि द्रव्य, इन्द्रजव, एलुवा और गुड़के साथ मिलाकर देते हैं। गूगल रक्तशोधक है तथा उससे सर्व शरीरको उत्तेजन और बल मिलता है इसलिये उपदंश, सुजाक और जीर्ण आमवातमें गूगलका उपयोग करते हैं। गण्डमालामें गूगलसे बहुत लाभ होता है । इन रोगोंमें गूगल रक्तके श्वेतकणोंको बढ़ाता है और श्वेतकण बढ़नेसे लाभ होता है । गण्डमालामें पारा ( रससिन्दूर ), सोमल और बायविडङ्गके साथ गूगल देते हैं । उपदंशमें सारिवा ( अनंतमूल )के साथ इसे देते हैं । जीर्ण आमवातमें अथवा सुजाकसे जो सन्धिशोथ होता है उसमें शिलाजीतके साथ गूगल खिलाते हैं और उसका लेप करते हैं । पुराने सुजाक और बस्तिशोथमें गिलोयके क्वाथके साथ गूगल देते हैं । गूगल खानेको देनेपर त्वचाद्वारा शरीरसे बाहर निकलता है और बाहर निकलते समय त्वचाकी विनिमयक्रिया सुधारता है, इसलिये सब प्रकारके जीर्ण त्वग्रोगोंमें गूगल देते हैं और उससे लाभ होता है। इससे त्वचाकी कण्डू कम होती है। नीरोग मनुष्य इसका सेवन करे तो त्वचाका रंग सुधरता है । गूगल

गर्भाशयके संकोचविकासको कम करता है। जवान स्त्रियोंके अनार्तवमें गूगल, एलुवा और कसीसकी गोलियाँ बनाकर देते हैं। गर्भाशयसे कभी कभी चिकने पदार्थका स्राव होता है और इससे स्त्रीको वन्ध्यात्व आता है। ऐसी स्थितिमें गूगल रसौतके साथ मिलाकर देते हैं। रक्तमें जैसे जैसे श्वेतकण बढ़ते हैं वैसे वैसे रक्तकण भी सुधरते हैं। श्वेतकण बढ़नेसे जैसे रोगोत्पादक जन्तुओंका नाश होता है वैसे ही रोगीकी तेल-घृत आदि स्निग्ध पदार्थ हजम करनेकी और उनको रक्तमें शोषण करनेकी शक्ति भी बढ़ती है। इस लिये गूगल पांडुरोगमें लोह और सुगन्धि द्रव्योंके साथ देते हैं। गूगलको कूट और घीमें मिलाकर बनाये हुए मरहमसे व्रणका अच्छा शोधन और रोपण होता है। गूगलको गरम पानीमें पीस कर दिनमें २-४ वार लेप करनेसे क्षयरोगके जन्तुओंसे होनेवाली ग्रन्थियाँ जिनको **गण्डमाला** (अपची) कहते हैं उनमें अच्छा लाभ होता है। दिल्लीसोर्स्में गूगल, गन्धक, सुहागा और कत्थेका मरहम लगानेसे लाभ होता है( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

---

## (७७) बोल।

**नाम**—( सं. ) बोल, गन्धरस, बर्बर; ( हिं., पं. ) बोल, मुरमकी; ( बं. ) गन्धबोल; ( गु. ) हिराबोल; ( मा. ) बीजाबोल; ( अ. ) मर्ह मकी; ( ले. ) बाल्सेमोडेन्ड्रोन् मर्ह ( Balsamodendron marrha )।

**उत्पत्तिस्थान**—एबिसिनिया और अरबस्तान।

**वर्णन**—बोलके ललाई लिये हुये पीले रंगके छोटे टुकड़े या गोल दाने बाजारमें मिलते हैं। यह भंगुर, सुगन्धि और स्वादमें कड़ुआ होता है।

**उपयुक्त अंग**—निर्यास। **मात्रा**-५-१० रत्ती।

**गुण-कर्म**—"बोलं तु कटु तिक्तोष्णं कषायं रक्तदोषनुत्। कफपित्तामयान् हन्ति प्रदरादिरुजापहम्॥" ( रा. नि. )।

बोल कटु, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य तथा रक्तदोष, कफरोग, वातरोग और स्त्रियोंके प्रदरादि रोगोंको दूर करनेवाला है।

**नव्य मत**—बोलमें ६० प्रतिशत गोंद, २ प्रतिशत उड़नेवाला तेल, और ३५ प्रतिशत राल है। असली बोलको तेजाब लगानेसे जामुनी छाया लिया हुआ किरमजी रंग उत्पन्न होता है। बोल वातहर, उत्तेजक, व्रणशोधन, व्रणरोपण, श्लेष्मल त्वचाको उत्तेजक, संग्राहक, श्लेष्मनिःसारक, रक्तके श्वेत कणोंको बढ़ानेवाला, दीपन, कोष्ठवातप्रशमन, स्वेदजनन, मूत्रजनन और आर्तवजनन है। बोलका लेप उत्तेजक और मृदुकोथप्रशमन है। इसलिये व्रणपर इसका लेप करते हैं। मुखपाक और मसूड़ोंकी सूजनमें मुँहमें धारण कराते हैं। दन्तमंजनमें बोल डालते हैं। कण्ठरोहिणी ( डिप्थीरिया ) में इसके

टिंचरको पानीमें मिलाकर कुल्ले करानेसे लाभ होता है। बोल दीपन, वातहर, उत्तेजक और कोथप्रशमन है, इसलिये कुपचन, मलावष्टम्भ और पाण्डुरोगमें देते हैं। बोल रक्तमें मिलनेपर रक्तान्तर्गत श्वेतकण बढ़ते हैं, इसलिये स्त्रियोंके पाण्डुरोगमें देते हैं। यह त्वचा, मूत्रेन्द्रिय, जननेंद्रिय, श्वासमार्ग, फुप्फुस और श्लेष्मल त्वचा द्वारा शरीरसे बाहर निकलता है और निकलते समय उन उन अवयवोंकी विनिमय-क्रिया सुधारता है तथा उनको उत्तेजित करता है; इससे श्लेष्मल त्वचाकी अशक्ति कम होती है। त्वचासे बाहर निकलता है इसलिये स्वेदजनन; मूत्रपिण्डों (गुर्दों) से बाहर निकलता है, इसलिये मूत्रजनन; तथा फुप्फुस और श्वासमार्गसे बाहर निकलते समय कफकी दुर्गन्धि नष्ट करके उसको पतला करता है इसलिये उत्तेजक श्लेष्मनिःसारक तथा रोगजन्तुघ्न है। इसलिये जीर्ण कास-श्वासमें उसका उपयोग करते हैं। यह गर्भाशयका संकोचन करनेवाला, उत्तेजक और आर्तवजनन है। इसलिये एलुवा और लोहके साथ अनार्तवमें इसका बहुत उपयोग करते हैं। गर्भाशयके शैथिल्यमें यह विशेष उपयोगी है। इससे जीर्ण बस्तिशोथ और श्वेतप्रदर कम होता है **(डॉ. वा. ग. देसाई)।**

---

## (७८) शल्लकी और कुन्दरु।

**नाम—**( सं. ) श(स)ल्लकी, सुस्रवा, गजभक्ष्या; ( हिं. ) सालई; ( म. ) सालई; ( गु. ) शालेडो, धूपडो; ( ले. ) बोस्वेलिआ सेरेटा ( Boswellia serrata )।

**वर्णन—**सालईका बड़ा वृक्ष होता है। शाखायें नीचेकी ओर झुकी हुई होती हैं। पत्ते और फूल शाखाके अग्रपर लगते हैं। पत्ते नीमके जैसे होते हैं। पुष्प छोटे सफेद रंगके होते हैं। पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ५–५; पुंकेशर ५ बड़े और ५ छोटे। फल मांसल और तीन धारवाला होता है। छालमें चीरा लगानेसे गोंद-निर्यास निकलता है उसको **शल्लकीनिर्यास** या **कुंदुर** कहते हैं। आजकल बाजारमें जो कुंदुर मिलता है वह प्रायः अफ्रीका और अरबस्तानसे आता है। दवाके लिये फीके पीले रंगका और गोल गोंद लेना चाहिये। इसको जलमें घोटकर मिलानेसे पानी दूध जैसा होता है। इसमें सुगन्ध और कड़ुआ स्वाद होता है।

**गुण-कर्म—चरके** ( सू. अ. ४ ) पुरीषविरजनीये महाकषाये, कषायस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) शल्लकी, शिरोविरेचनद्रव्येषु शल्लकीनिर्यासश्च पठ्यते। **सुश्रुते** ( सू. अ. ३८ ) रोध्रादिगणे, कषायस्कन्धे ( सू. अ. ४२ ) शल्लकी, एलादिगणे ( सू. अ. ३८ ) कुन्दुरुकश्च पठ्यते। **"शल्लकी तिक्तमधुरा कषाया ग्राहिणी परा।**

कुष्ठास्रकफवातार्शोव्रणदोषार्तिनाशिनी ॥" (रा. नि.) "तत्पुष्पं कफवातार्शःकुष्ठा-रोचकनाशनम्।" (कै. नि.)। "कुन्दुरुः कटुकस्तिक्तो वातश्लेष्मामयापहः। पाने लेपे च शिशिरः प्रदरामयशान्तिकृत्॥" (ध. नि.)। "कुन्दुरुर्मधुरस्तिक्त-स्तीक्ष्णस्त्वच्यः कटुर्हरेत्। ज्वरस्वेदग्रहालक्ष्मीमुखरोगकफानिलान्॥" (भा. प्र.)।

शल्लकी कषाय तिक्त, मधुर, शीतवीर्य, पुरीषविरजनीय, ग्राही तथा कुष्ठ, रक्त-विकार, कफ, वात, अर्श और व्रणदोषका नाश करनेवाली है। शल्लकीके पुष्प कफ, वात, अर्श, कुष्ठ और अरुचिका नाश करते हैं। कुंदुर (शल्लकीनिर्यास) शिरो-विरेचन, मधुर, कटु, तिक्त, तीक्ष्ण, शीतवीर्य, त्वचाको हितकर तथा वातरोग, कफरोग, प्रदर, ज्वर, स्वेद, ग्रह, मलिनता और मुखरोगका नाश करनेवाला है।

**नव्य मत**—सलईका गोंद स्नेहन, स्रंसन और रक्तशोधक है। यह गुणमें बहुत अंशमें हिराबोल और गूगलके समान है अर्थात् उत्तेजक श्लेष्मनिःसारक, मूत्रजनन और आर्तवजनन है। यह सुगन्धि द्रव्योंके साथ गोली या चूर्णके रूपमें दिया जाता है। यह व्रणशोधन और व्रणरोपण है। सलईका गोंद गूगल, सुहागा, गन्धक और कत्था इनके मरहमकी पट्टी पुराने खड्डेवाले व्रणोंपर लगाते हैं। गण्डमाला, ग्रन्थि और बदपर इसको गरम जलमें पीसकर लगाते हैं। सन्धिवात और अस्थि-शोथमें इसका लेप करते हैं और खानेको भी देते हैं।

कुन्दुर सुगन्धि और उत्तेजक है। इसकी यह क्रिया श्लेष्मल त्वचापर, विशेषतः श्वासमार्गकी श्लेष्मल त्वचापर होती है। श्वासनलिकाका जीर्णशोथ, पुष्कल चिकना कफ गिरना और उसमें दुर्गन्ध आना, इसमें कुन्दुर खानेको देते हैं और इसका धूम्रपान कराते हैं। कुन्दुरका मरहम ग्रन्थिशोथको कम करता है और व्रणरोपण है। प्रमेहपीडका-(कार्बंकल)के व्रणपर कुंदुरका मलहम उत्तम औषध है। कुंदुरको कपड़ेपर रख कर गरम पानीकी बाफपर सिजानेसे चिकट गोंद जैसा होता है। उसमें अफीम, धतूरा, खुरासानी अजवायन, बेलाडोना जैसे पीड़ाशामक द्रव्य मिला, उसकी मोटे कपड़ेपर पट्टी तैयार करके पार्श्वशूल आदिमें पीड़ायुक्त भागपर लगानेसे रक्तवाहिनियोंका आकर्षण और हलन-चलन कम होकर पीड़ा शांत होती है।

मात्रा १०–३० रत्ती। इसे जीर्ण कास और सुजाकमें बादाम, शक्कर और पानीके साथ घोट कर पिलाते हैं।

**मलहम**—कुंदुर १ भाग, खशखशका तेल १ भाग और सफेद मोम १ भाग, सबको मंदाग्निपर गला, कपड़ेसे छानकर काचपात्रमें भर लेना (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**वक्तव्य**—इस समय बाजारमें जो कुन्दुरु मिलता है वह एबिसिनिया और अरबस्तानसे आता है। इसके वृक्षका डॉ. देसाईने लेटिन नाम **बोस्वेलिआ कोरिवन्डा** लिखा है। प्राचीनोंने **शल्लकीनिर्यास**को ही **कुंदुरु** माना है "कुन्दुरुकः शल्लकीचोपः" **डल्हण**।

## निम्बादिवर्ग २७.

## N. O. Meliaceæ ( मेलिएसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; पर्णक्रम एकान्तर; पर्ण संयुक्तदल, उपपत्ररहित; पर्णदलकी धारा प्रायः दन्तुर; पुष्पवाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ३ से ६; पुंकेशर प्रायः ८-१०; केशरसूत्र नीचेसे जुड़कर नलिकाकार बने हुए; परागकोश दो खानेवाला, गर्भाशय ऊर्ध्वस्थ; फल प्रायः मांसल, १-५ खानेवाला; बीज फलके प्रमाणमें बड़े होते हैं।

### ( ७९ ) निम्ब।

**नाम**—( सं. ) निम्ब, पिचुमन्द, पिचुमर्द, प्रभद्र, पारिभद्र; ( हिं. ) नीम; ( बं ) निम; (म.) कडूनिंब, बाळंतनिंब; ( गुं. ) लींबडो, लीमडो; ( ता. ) वेंबु, वेंपु; ( पं. ) निंब; (मल.) वेप्पु, आर्यवेप्पु; ( सिं. ) निमु; ( अ. ) आजादरख्तुल हिंद; ( ले. ) एझाडिरेक्टा इन्डिका ( Azadirachta Indica )।

**वर्णन**—नीमका वृक्ष भारतवर्षमें सर्वत्र होता है। इसके काष्ठको छोड़कर सब अंग औषधके काममें आते हैं।

**गुण-कर्म**—**चरके** (सू. अ. ४) कण्डूघ्ने महाकषाये, वमनद्रव्येषु (सू. अ. २), तिक्तस्कन्धे (वि. अ. ८) च; तथा **सुश्रुते** (सू. अ. ३८) आरग्वधादौ, गुडूच्यादौ, लाक्षादौ च गणे निम्बः पठ्यते। "××× निम्बपर्पटाः। ××× तिक्ताः पित्तकफापहाः॥" ( सु. सू. अ. ४६ )। "×× नैम्बं शाकं ×××। कफपित्तहरं तिक्तं शीतं कटु विपच्यते॥" ( च. सू. अ. २७ ) "निम्बस्तिक्तरसः शीतो लघुः श्लेष्मास्रपित्तनुत्। कण्डूकुष्ठव्रणान् हन्ति लेपाहारादिशीलितः। अपक्वं पाचयेच्छोथं व्रणं पक्वं विशोधयेत्॥" ( ध. नि. )। "निम्ब ××× फलतैलानि तीक्ष्णानि लघून्युष्णवीर्याणि कटूनि कटुविपाकानि सराण्यनिलकफक्रिमिकुष्ठशिरोरोगापहराणि चेति ( सु. सू. अ. ४५ )।

नीम रसमें तिक्त, विपाकमें कटु, शीतवीर्य, लघु, वमनकारक तथा पित्त, कफ, कण्डू, कुष्ठ, रक्तविकार और व्रणका नाश करनेवाला है। नीम अपक्व व्रणका पाचन और पक्व ( पक कर फूटे हुए ) व्रणका शोधन करनेवाला है। नीमका तेल कटु, कटुविपाक, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, लघु, सारक तथा वात, पित्त, कफ, कृमि, कुष्ठ और शिरोरोगका नाश करनेवाला है।

**नव्य मत**—नीमकी छालमें उड़नेवाला तेल, तिक्त रालमय द्रव्य, गोंद, पिष्ट ( स्टार्च ), शर्करा, कषायद्रव्य ( टेनिन् ) और तिक्त रवादार द्रव्य, ये पदार्थ होते हैं। तिक्त रवादार द्रव्यसे अन्तर्छाल भरी हुई होती है। बाहरी छालमें कषायद्रव्य अधिक होता है। केवल अन्तरछालका क्वाथ करनेसे उसमें तिक्त

रालमय द्रव्य और तिक्त स्वादार द्रव्य उतरते हैं। समग्र छालका काथ करनेसे ये तिक्त द्रव्य काढ़ेमें उतरते नहीं, केवल कषाय द्रव्य उतरते हैं। तिक्त द्रव्य मद्यमें ६० प्रतिशत उतरता है। यह जलमें अच्छी तरह घुलता नहीं, परन्तु क्षारस्वभावी द्रव्योंके साथ छालको पकानेसे उनके साथ मिलकर पानीमें अच्छी तरह उतरता है। छालके अंदरका तिक्त द्रव्य अम्लस्वभावी है। पत्तोंमें तिक्त द्रव्य थोड़ा है, परन्तु वह छालकी अंदरके तिक्त द्रव्यकी अपेक्षया जलमें शीघ्र और अधिक मिल जाता है। बीजोंमें ४० प्रतिशत तेल है। तेलमें गंधक है। तेल क्षारस्वभावी द्रव्यसे मिलता है। तेलका साबुन बनता है। **नीमकी अन्तरछाल** शीत, विषमज्वरप्रतिषेधक, ग्राहीपौष्टिक, कटुपौष्टिक, त्वग्दोषहर, शोथघ्न, कृमिघ्न और रसायन है। नीमकी छालका ज्वरप्रतिबन्धक गुण सिंकोनाकी छालके समान है। इसके अंदरका तिक्त स्वादार अम्लस्वभावी द्रव्य त्वचाके मार्गसे बाहर निकलता है। यह त्वचाके लिये उत्तेजक और दाहशामक है। समग्र त्वचामें ग्राहीपन अधिक है, इसलिये इसकी ग्राहीपौष्टिक क्रिया अधिक होती है। समग्र त्वचामें ज्वरप्रतिबन्धक गुण अल्प है। नीमकी त्वचापर सोमल जैसी क्रिया होती है।

**पत्तियाँ** शोथघ्न, त्वचाके लिये उत्तेजक, त्वग्दोषहर, उत्तम व्रणशोधन, व्रणरोपण, कोथप्रशमन, कृमिघ्न, विषमज्वरप्रतिबन्धक, यकृत्‌के लिए उत्तेजक और बड़ी मात्रामें वामक है। **तैल** वातहर, पूतिहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण, उत्तेजक, कोथप्रशमन, शोधन, उत्तम कुष्ठघ्न और रसायन है। तैलकी क्रिया उसके अंदरके गन्धकसे होती है। नीमके सब भागोंकी अपेक्षया तैल विशेष जोरदार कार्य करनेवाला है।

**मात्रा**—अन्तरछालका चूर्ण ३० रत्तीके प्रमाणमें दिनमें चार बार देना चाहिये। इसके साथ सुगन्धि द्रव्य देनेसे इसकी क्रिया शीघ्र होती है। पत्तियोंका स्वरस २ से ५ तोला; तैल ४–१० बूँद।

शीतज्वरमें टिंचर किंवा काथकी अपेक्षया अन्तरछालका चूर्ण देना अच्छा है। जीर्ण विषमज्वरमें तैल बहुत गुणकारी है। प्रसूता स्त्रीको पहले दिनसे ही पत्रस्वरस देनेसे गर्भाशयका संकोचन होता है, रक्तस्राव ठीक होता है, गर्भाशय और उसके समीपके स्थानोंकी सूजन उतर जाती है, भूख लगती है, दस्त साफ होता है, ज्वर आता नहीं और आया भी तो उसका जोर बढ़ता नहीं। नीमका थोड़ासा अंश बच्चेको मिलते रहनेसे उसकी प्रकृति ठीक रहती है। त्वग्रोगोंमें पत्तियोंका रस पीनेको देते हैं और उसका लेप कराते हैं। नवीन रोगकी अपेक्षया जीर्णरोगमें इससे विशेष लाभ होता है। फिरङ्गोपदंश और कुष्ठमें पत्तियोंका स्वरस या तैल देते हैं। बद, ग्रन्थि, व्रणशोथ और व्रण कम करनेके लिये पत्तियोंका कल्क गरम करके बाँधते हैं। तैल उत्तम कृमिघ्न और पूतिहर है। इससे पेटके और बाहरके कृमि मर जाते हैं। गण्डमाला पक कर जो व्रण होता है

उसपर और नाड़ीव्रणपर तैलमें बत्ती भिगोकर रखते हैं। जीर्णज्वर, जीर्ण विषमज्वर, त्वग्रोग, फिरङ्गोपदंश, कुष्ठ आदिमें ५-१० बूँद तैल दिनमें दो बार खानेको देते हैं। सुजाकमें शिश्न सूजकर पेशाब बंद हो जाता है, तब रोगीको पत्तोंके क्वाथमें बैठाते हैं। इससे पेशाब छुटता है और सूजन कम होती है। अर्शकी सूजनपर पत्रकल्क बाँधते हैं। संधिशोथ और आमवातमें तेलकी मालिश करते हैं। आमवातमें तेल खानेको भी देते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## (८०) महानिम्ब।

**नाम—(सं.) महानिम्ब, पर्वतनिम्ब, रम्यक, द्रेक (क्का); (क.) द्रेंक; (पं.)** ध्रेख, धरेक, बकायन; (हिं.) बकायन, बकाइन; (म.) बकाणा निंब; (गु.) बकानलिंबडो; (सिंध.) बकाईण निमु; (बं.) घोडानिम; (ता.) चिचरि-निंबम्; (मल.) मलवेप्पु; (का.) हुच्चुबेवु, तुरुकबेवु; (अ.) हर्बीत, शज्रतुल हर्र; (फा.) आजादरख्त; (ले.) मेलिया ॲझेडेरेक् (Melia azedarach)

**वर्णन**—बकायनके वृक्ष प्रायः पहाड़ी स्थानोंमें होते हैं। वृक्ष देखनेमें नीमके जैसा होता है। फूल सफेद और सुगन्धि होते हैं।

**उपयुक्त अंग**—अन्तस्त्वचा, पत्र और फलमज्जा। **मात्रा**—छाल ३-६ माशा; फलकी गिरी ४-८ रत्ती।

**गुण-कर्म—सुश्रुते (अ. ३८) पिप्पल्यादिगणे महानिम्बफलं तथा अधोभागहरे वर्गे (सू. ३९) 'रम्यक'[१]नाम्ना महानिम्बः पठ्यते। "महानिम्बस्तु शिशिरः कषायः कटुतिक्तकः। अस्रदाहबलासघ्नो विषमज्वरनाशनः॥" (रा. नि.)। "××× । "कफपित्तभ्रमच्छर्दिकुष्ठहृल्लासरक्तजित्॥ प्रमेहश्वासगुल्मार्शोमूषिकाविषनाशनः।" (भा. प्र.)।**

बकायन रसमें कषाय—कटु और तिक्त, शीतवीर्य, रूक्ष तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, दाह, विषमज्वर, भ्रम, वमन, कुष्ठ, मितली, प्रमेह, श्वास, गुल्म, अर्श और चूहेके विषका नाश करनेवाला है।

**यूनानी मत**—बकायन दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, रक्तशोधक, पीड़ाशामक, व्रणशोधन, व्रणरोपण, अर्शोघ्न और कृमिघ्न है। अर्शमें बकायनके फलकी मज्जाका प्रयोग किया जाता है।

**नव्य मत**—बकायनके गुण साधारणतः नीमके समान हैं। यह कृमिघ्न, त्वग्दोषहर, गर्भाशयसंकोचक, वेदनास्थापन और शोधन है। इससे गोल कृमि मरते हैं।

(**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

१ "रम्यको द्रेक्का, 'बकाइणि' इति लोके" **डल्हणः**।

**वक्तव्य**—कई आधुनिक लेखकोंने अरलु (ले. एइलेन्टस् एक्सेल्सा) को महानिम्ब माना है। परन्तु यह ठीक नहीं मालूम होता। निघण्टुओंमें महानिम्बका पर्याय द्रेक(का) लिखा है। बकायनको कश्मीरमें द्रेंक और पंजाबमें धरेक कहते हैं। जो द्रेकका अपभ्रंश है। वाग्भटने अर्शमें महानिम्बका प्रयोग लिखा है। "लवणोत्तमहिङ्गुकलिङ्गयवांश्चिरबिल्वमहापिचुमन्दयुतान्। पिब सप्तदिनं मथितालुडितान् यदि मर्दितुमिच्छसि पायुरुहान्॥" (चि. अ. ८)। अर्शमें बकायनके फलोंका प्रयोग हकीम और वैद्य करते हैं अरलुका नहीं। इन दो प्रमाणोंसे प्राचीनोंका महानिम्ब बकायन ही प्रतीत होता है।

---

## (८१) रोहीतक।

**नाम**—(सं.) रोहीतक, प्लीहारि, दाडिमपुष्प; (पं.) रोहिड़ा, लहुड़ा; (हि.) रोहेड़ा; (गु.,) रोहि-ही-ड़ो; (ले.) एमूरा रोहीतका (Amoora Rohitaka)।

**वर्णन**—रोहीड़ेके वृक्ष राजपूताना और पंजाबके राजपूतानेसे संलग्न भागोंमें अधिक होते हैं। फूल अनारके फूलोंके समान लाल रंगके होते हैं।

**उपयुक्त अंग**—छाल। **मात्रा** १॥-३ माशा।

**गुण-कर्म**—"रोहीतको यकृत्प्लीहगुल्मोदरहरः सरः।"

रोहेड़ा यकृत्, प्लीहा, गुल्म और उदररोगको दूर करनेवाला और सारक है।

**रोहीतकप्रधान योग**—रोहीतकलोह (सि. यो. सं. उदराधिकार), रोहीतकारिष्ट (भै. र. प्लीहयकृदधिकार)।

---

## (८२) मांसरोहिणी।

**नाम**—(सं.) मांसरोहिणी, रोहिणी; (हिं.) रोहण; (गु.) रोण, रोहणी; (ता.) शेम्भरम्, शूमि; (ले.) सॉयमीडा फेब्रिफ्युजा (Soymida Febrifuga)।

**वर्णन**—रोहणके ऊँचे वृक्ष पर्वतोंपर जंगलोंमें होते हैं। पर्ण संयुक्त; पुष्प हरापनलिये हुए श्वेत; फल मृदङ्गाकार, छोटेसे सेव जितने बड़े, भूरे लाल रंगके; छाल लाल रंगकी और स्वादमें कड़वी होती हैं। छालमें क्षत करनेसे रक्तके जैसा लाल रंगका स्राव बहता है।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ३४) बल्ये महाकषाये, सुश्रुते (सू. अ. ३८) न्यग्रोधादिगणे च रोहिणी पठ्यते। "मांसरोहा रसे पाके मधुरा तुवरा हिमा। भग्नसंधानकृत् प्रोक्ता तथैव व्रणरोपणी॥"

रोहण रस और विपाकमें मधुर, कषाय, शीतवीर्य, सन्धानीय और व्रण-रोपण है।

**नव्य मत**—जीर्णज्वरमें शरीर और आँतोंमें शिथिलता आती है तब रोहणकी छालका चूर्ण देते हैं। आँव और अतिसारमें इससे अच्छा लाभ होता है। छालके क्राथसे व्रण धोते हैं, वस्ति देते हैं और कुल्ले कराते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## ज्योतिष्मत्यादि वर्ग २८.

## N. O. Celastraceæ (सिलेस्ट्रेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; पर्णक्रम एकान्तर, क्वचित् अभिमुख; पर्ण एकाकी; उपपत्र प्रायः होते नहीं और हों तो शीघ्र गिरनेवाले; पुष्प-बाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोशके दल ४–५; पुंकेशर ३–५, दो थैलीवाला; फल अण्डाकार या गोलाईलिये हुए होते है।

---

### (८३) ज्योतिष्मती।

**नाम—(सं.)** ज्योतिष्मती; **(पं; हिं)** मालकँगनी; **(म.)** मालकांगोणी; **(गु.)** मालकांग(क)णी; **(ता.)** वालुळवै; **(मल.)** पालुरु(ळ)वम्; **(अ.)** तैलान, तैलाफयून; **(ले.)** सिलेस्ट्रस पॅनिक्युलेटा (Celastrus Paniculata)।

**वर्णन**—मालकँगनीकी बड़ी वृक्षोंपर चढ़ने वाली लता पहाड़ी प्रदेशोंमें होती है। पत्र अंडाकार, नोकदार और पत्रकी किनार आरे जैसी कटी हुई होती है। पुष्प पीले रंगके वैशाख ज्येष्ठमें लगते हैं। आषाढ़-श्रावणमें फल पक जाते हैं। प्रत्येक फलमें केशरी रंगके ३–३ बीज होते हैं।

**उपयुक्त अंग**—बीज और तैल। **मात्रा**-बीज ५–१५ रत्ती; तैल २–१० बिन्दु।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. २) शिरोविरेचनद्रव्येषु, सुश्रुते (सू. अ. ३९) अधोभागहरे, शिरोविरेचने च वर्गे ज्योतिष्मती पठ्यते। "ज्योतिष्मती कटुस्तिक्ता सरा कफसमीरजित्। अत्युष्णा वामनी तीक्ष्णा वह्निबुद्धिस्मृति-प्रदा॥" (ध. नि.)। "कटु ज्योतिष्मतीतैलं तिक्तोष्णं वातनाशनम्। पित्तसंतापनं मेधाप्रज्ञाबुद्धिविवर्धनम्॥" (रा. नि.)

मालकँगनी कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, शिरोविरेचन, सारक, जठराग्नि-बुद्धि और स्मरणशक्तिको बढ़ानेवाली तथा कफ और वायुके रोगोंका नाश करनेवाली है। मालकँगनीका तेल कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, बुद्धि और स्मरणशक्ति बढ़ानेवाला, पित्तका प्रकोप करनेवाला तथा वायुका नाश करनेवाला है।

**नव्य मत**—बीजोंमें ३० प्रतिशत गाढ़ा, रक्तवर्ण, कड़ुवा और गन्धयुक्त तैल तथा तिक्त राल होती है। बीजोंको जलाकर निकाले हुए तेलमें **क्रियोसोट** नामक अतिमहत्त्वका औषध होता है। मालकँगनी तिक्त, उष्ण, उत्तेजक, स्वेदजनन, मूत्रजनन, वातहर और त्वग्दोषहर है। इसकी क्रिया मस्तिष्क और नाडियोंपर होती है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**यूनानी मत**—मालकँगनी दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, बुद्धि और स्मृतिको बढ़ानेवाली, ठंढीसे होनेवाले रोगोंको दूर करनेवाली, पाचनशक्तिको बढ़ानेवाली, कोष्ठवातहर, वाजीकर, रक्तशोधक और कफको निकालनेवाली है। सन्धिवात, पक्षाघात, गृध्रसी, कमरका दर्द आदिमें इसके तेलकी मालिश करते हैं। कफप्रधान कास-श्वासमें इसे खिलाते हैं। जिसकी स्मरणशक्ति कम हो उसको मालकँगनीका तैल गायके घृतमें मिलाकर खिलाते हैं।

---

## बदरादिवर्ग २९.

### N. O. Rhamnaceæ (र्‍हॅम्नेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; पर्णक्रम एकान्तर अथवा अभिमुख; पर्ण सादे; उपपत्र बारीक, जल्द झड़नेवाले किंवा काँटोंमें रूपान्तरित; पुष्पवाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ४–५; स्त्रीकेशर १; गर्भाशय १–४ खानेवाला। फल मांसल और अविदारी।

---

### (८४) बदर।

**नाम**—(सं.) राजबदर[२], राजकोल, सौवीर; (क.) ब्रिय; (अ.) उन्नाब, उनाब; (फा.) सेलान, जेलान; (पं., हिं., गु., म.) उन्नाब; (ले.) झिझीफस वल्गेरिस (Zizyphus vulgaris), झिझीफस सेटीवा (Zizyphus Sativa)।

---

१ मालकँगनीके बीजोंसे दो प्रकारसे तेल निकाला जाता है। १–कोल्हूमें दवाकर; इस प्रकार निकाला हुआ तेल ऊपर लिखे हुए लक्षणोंवाला होता है। २–लोबान, लवंग, जायफल और जावित्री समभाग, मालकँगनीके बीज सबके समान; सबको एकत्र कूटकर पातालयन्त्रसे तैल निकालते हैं। यह तैल काले रंगका होता है। इसे बेरीबेरीमें १०–१५ बूँद मात्रामें देनेसे अच्छा लाभ होता है। इस तैलके खानेसे २–३ घंटेमें जोरसे पसीना आता है, परन्तु थकावट नहीं मालूम होती। २ "राजबदरो नृपेष्टो नृपबदरो राजवल्लभश्चैव। **पृथुलफलस्तनुबीजो मधुरफलो** राजकोलश्च॥" (रा. नि. आ. व.)। "सौवीरं बदरं महत्।" (भा. प्र.)।

(सं.) कोल, बदर (मध्यम प्रमाण), (हिं., पं., सिंध) बेर; (म., गु.) बोर; (ले.) झिझीफस् जुजुब (Zizyphus jujuba)।

(सं.) कर्कन्धु, क्षुद्रबदर; (हिं.) झड़बेर; (पं.) कोकनबेर; (गु.) चणीआं बोर, चणी बोर; (ले.) झिझीफस् न्युमुलेरिआ (Zazyphus nummularia)।

**वर्णन**—बेरका काँटेदार वृक्ष भारत वर्षमें सर्वत्र होता है। उन्नाब बेरकी जातियोंमें सबसे उत्तम है। औषधमें इसका ही प्रयोग करना चाहिये। उन्नाब हिन्दुस्तानमें कश्मीर तथा उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्तमें होते हैं। ईरान, अफगानिस्तान और चीनसे भी आते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) हृद्ये महाकषाये कुवल-बदरे; हिक्कानिग्रहणे बदरबीजम्; उदर्दप्रशमने, श्रमहरे, स्वेदोपगे च बदरं; विरेचनोपगे कुवल-बदर-कर्कन्धूनि पठ्यन्ते। सुश्रुते (सू. ३८) आरग्वधादिगणे गोपघोण्टा (क्षुद्रबदरी), वातसंशमने वर्गे (सू. अ. ३९) बदर-कोले पठ्येते। "बदरं मधुरं स्निग्धं भेदनं वातपित्तजित्। तच्छुष्कं कफवातघ्नं पित्ते न च विरुध्यते॥" अम्लं × × × बदराणि×। पित्तश्लेष्मप्रकोपीणि कर्कन्धु × ×। (च. सू. अ. २७)। "कर्कन्धु-कोल-बदरमामं पित्तकफावहम्। पक्वं पित्तानिलहरं स्निग्धं समधुरं सरम्॥ पुरातनं तृट्शमनं श्रमघ्नं दीपनं लघु।" (सु. सू. अ. ३९)। राजबदरः सुमधुरः शिशिरो दाहार्तिपित्तहरः। वृष्यश्च वीर्यवृद्धिं कुरुते शोषश्रमं हरते॥" (रा. नि.)। सौवीरं बदरं शीतं भेदनं गुरु शुक्रलम्। बृंहणं पित्तदाहास्रक्षयतृष्णानिवारणम्॥ कोलं तु बदरं साम्लं रुच्यमुष्णं च वातहृत्। कफपित्तकरं चापि गुरु सारकमीरितम्॥ अम्लं स्यात् क्षुद्रबदरं कषायं मधुरं मनाक्। स्निग्धं गुरु च तिक्तं च वातपित्तापहं स्मृतम्॥ शुष्कं भेद्यग्निकृत् सर्वं लघु तृष्णाक्लमास्रजित्।" (भा. प्र.)। "तस्य मज्जा तु तुवरो मधुरो वीर्यवर्धनः। श्वासकासतृषादाहच्छर्दिमारुतपित्तजित्॥" (कै. नि.)। "बदरस्य पत्रलेपो ज्वरदाहविनाशनः। त्वचा विस्फोटशमनी, बीजं नेत्रामयापहम्॥" (रा. नि.)।

बड़े बेर (उन्नाब) मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, भेदन, हृद्य, हिक्कानिग्रहण, श्रमप्रशमन, उदर्दप्रशमन, स्वेदोपग, विरेचनोपग, वाजीकर, बृंहण तथा दाह, पित्त, वात, रक्तविकार, शोष और तृषाको दूर करनेवाले हैं। कोल (मध्यम प्रमाणके बेर) कुछ अम्ल, रुचिकारक, वातहर, गुरु, सारक तथा कफ और पित्तको उत्पन्न करनेवाले हैं। छोटे बेर अम्ल, कषाय, कुछ मधुर, स्निग्ध, गुरु और वातपित्तहर हैं। सब प्रकारके सूखे बेर भेदन, दीपन, लघु तथा तृषा, थकावट और रक्तविकारको दूर करनेवाले हैं। बेरकी मज्जा (मग्ज-मिंगी) कषाय, मधुर, वीर्यवर्धक तथा श्वास, कास, तृषा, दाह, वमन, वात और पित्तका नाश करनेवाली है। बेरकी ताजी पत्तियोंका शरीरपर लेप करनेसे ज्वरका दाह कम होता है। बेरकी छाल विस्फोटका शमन करती है।

**नव्य मत**—उन्नावके फलमें शक्कर और पिच्छिल द्रव्य होता है। छाल और पत्तियोंमें कषाय द्रव्य होता है। उन्नाव मधुर, स्नेहन और कफशामक है। छाल ग्राही, व्रणशोधन और व्रणरोपण है। पत्ती चबानेसे जीभकी स्वादग्रहणशक्ति नष्ट होती है। कुनैनका स्वाद मालूम नहीं होता। छालके क्काथसे व्रण धोते हैं। उन्नाव, कतीरा, शक्कर और गुलाबपुष्पके घनकी गोलियाँ मुँहमें रखनेसे खाँसी कम होती है। खाँसीमें उन्नावका शर्वत देते हैं।

**यूनानी मत**—उन्नाव समशीतोष्ण, स्निग्ध, सारक, रक्तशोधक, कफनिस्सारक, कोष्ठको नरम करनेवाला, तृषा तथा ज्वरकी उष्णताको कम करनेवाला और शुष्ककासमें लाभ करता है। उन्नावका शर्वतके रूपमें प्रयोग करते हैं।

उन्नावकी पत्तियोंका चूर्ण ३-३ माशा दिनमें दो बार जलके साथ देनेसे इक्षुमेहमें लाभ होता है।

---

# द्राक्षादि वर्ग ३०.

## N. O. Vitaceæ (विटेसी)।

**वर्गलक्षण**—इस वर्गमें प्रायः लतायें और क्वचित् क्षुप होते हैं। पर्णक्रम एकान्तर; शाखा और डंडियोंमें पानी जैसा रस होता है। पत्र एकाकी, कोनयुक्त और क्वचित् संयुक्त (सदल) होते हैं। पुष्प हरे रंगके, छोटे और झुमकोंमें लगते हैं। पुष्पबाह्यकोशके दल और पँखडियाँ ४-५; पुंकेशर ४-५ तथा फल मांसल होते हैं।

---

### (८५) द्राक्षा।

**नाम**—(सं.) द्राक्षा, गोस्तनी, मृद्वीका, हारहूरा, कपिशा; (क.) दच्छ; (पं.) दाख, अंगूर; (हिं.) मुनक्का, अंगूर, दाख; (म.) द्राक्ष; (गु.) दराख, धराख; (सिंध.) ड्राख; (मा.) दाख, मिनका; (फा.) अंगूर (हरा), मवेझ (सूखा), मवेझमुनक्की (सूखा और बीज निकाला हुवा); (ले.) विटिस विनिफेरा (Vitis vinifera)।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) स्नेहोपगे, विरेचनोपगे, कासहरे, ज्वरहरे च गणे द्राक्षा पठ्यते। सुश्रुते (सू. अ. ३८) काकोल्यादिगणे, परूषकादिगणे, च द्राक्षा पठ्यते। "तृष्णादाहज्वरश्वासरक्तपित्तक्षतक्षयान्। वातपित्तमुदावर्तं स्वरभेदं मदात्ययम्॥ तिक्तास्यतामास्यशोषं कासं चाशु व्यपोहति। मृद्वीका बृंहणी वृष्या मधुरा स्निग्धशीतला॥" (च. सू. अ. २७)। "तेषां द्राक्षा सरा स्वर्या मधुरा स्निग्धशीतला। रक्तपित्तज्वरश्वासतृष्णादाहक्षयापहा॥" (सु. सू. अ. ४६)।

**"द्राक्षा तु मधुराऽम्ला च शीता पित्तार्तिदाहजित् । मूत्रदोषहरा रुच्या वृष्या संतर्पणी परा ॥" ( रा. नि. ) ।**

द्राक्ष मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, बृंहण, वृष्य, सर, कण्ठ्य, स्नेहोपग, विरेचनोपग, रुचिकारक, संतर्पण तथा तृषा, दाह, ज्वर, श्वास, रक्तपित्त, उरःक्षत, क्षय, वात, पित्त, उदावर्त, स्वरभेद, मदात्यय, मुँहका कडुआपन, मुँह सूखना, खाँसी और मूत्रदोषको दूर करनेवाली है । ये सब गुण पके हुए मीठे अंगूरके जानने चाहिये ।

**नव्यमत**—द्राक्षके रससे आसव, सिरका और मद्य बनाते हैं । द्राक्ष सड़ते समय यवक्षारमिश्रित चिञ्चाम्ल ( एसिड् टार्टरेट्र ऑफ् पॉटॅश् ) अलग होता है । उससे चिञ्चाम्ल ( टार्टरिक् एसिड् ) निकाला जा सकता है । द्राक्षमें द्राक्षाशर्करा ( ग्रेप शुगर् ), द्राक्षाक्षार, गोंद और सेवाम्ल ( मॅलिक् एसिड् ) होते हैं । बीजोंमें १६ प्रतिशत तैल होता है । कोमल शाखाओं और प्रतानोंमें टङ्कणाम्ल ( बोरिक् एसिड् ) होता है । आसवोंमें सुहागा या टङ्कणाम्ल डालनेसे आसव बिगड़ते नहीं । ताजी पकी हुई द्राक्ष पाचन, स्रंसन, बल्य, रक्तपित्तप्रशमन और रक्तशोधक है । सूखी हुई द्राक्ष शीतल, स्नेहन, कफशामक और स्रंसन है **( डॉ. वा. ग. देसाई )** ।

---

## ( ८६ ) अस्थिशृङ्खला ।

**नाम**—( सं. ) अस्थिशृङ्खला, वज्रवल्ली; ( हिं. ) हड़जोड़; ( म. ) कांडवेल; ( गु. ) हाडसाँकल; ( बं. ) हाडजोडा, हाडभांगा; ( ले. ) विटिस् कॉड्रेन्गुलेरिस ( Vitis quadrangularis )

**वर्णन**—हड़जोड़की लंबी लता होती है । काण्ड हरे रंगका चतुष्कोण; काण्डमें बीच बीचमें संधियाँ होती हैं । संधिस्थानपर काण्ड थोड़ा संकुचित होता है । पत्र एकान्तर, उपपत्रयुक्त, मोटे और धारदार किनारीवाले होते हैं । पुष्प छोटे, श्वेतवर्ण; फल गोल, रक्तवर्ण, रसाल और मटर जितने बड़े होते हैं ।

**गुण-कर्म—"वज्रवल्ली सरा रूक्षा कृमिदुर्नामनाशिनी । दीपन्युष्णा विपाकेऽम्ला स्वाद्वी वृष्या बलप्रदा ॥ अस्थिसन्धानजननी वातश्लेष्महरा लघुः ।" ( कै. नि. ) ।**

हड़जोड़ रसमें मधुर, विपाकमें अम्ल, रूक्ष, लघु, उष्णवीर्य, सारक, दीपन, वृष्य, बल्य, संधानीय तथा वात, कफ, कृमि और अर्शका नाश करनेवाली है ।

**नव्यमत**—हड़जोड़ रक्तसंग्राहक और शोधन है । फिरंगोपदंशमें हड़जोड़के रसमें वाकेरीका चूर्ण मिलाकर देते हैं । जिन स्त्रियोंको महीनेमें दोबार मासिक आता हो और अधिक समय चलता हो उनको इसका स्वरस, गोपीचन्दन ( या गेरू ), घी और शहद मिलाकर देते हैं । नकसीर फूटनेपर इसके रसका नस्य देते हैं । पूतिकर्णमें कानमें रस डालते हैं **( डॉ. वा. ग. देसाई )** ।

---

# अरिष्टकादि वर्ग ३१.

## N. O. Sapindaceæ ( सॅपिन्डेसी )।

**वर्गलक्षण—**सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; पर्णक्रम एकान्तर, क्वचित् अभिमुख; पर्ण एकाकी अथवा संयुक्त, पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ४-५; पुंकेशर ५-१०; फल मांसल ।

---

### ( ८७ ) अरिष्टक ( रीठा )।

**नाम—( सं. )** अरिष्टक, फेनिल; **( हिं. )** रीठा; **( गु. )** अरीठा; **( क. )** रेंट; **( पं. )** रेठा; **( म. )** रिठा; **( अ. )** बुन्दुक हिंदि; **( फा. )** फुंदुक फारसी; **( ले. )** सेपिन्डस ट्राइफोलिएटा ( Sapindus trifoliata )।

**वर्णन—**रीठेका बड़ा २०-३० फुट ऊँचा वृक्ष होता है। पर्ण संयुक्त और समदल होते हैं । पुष्प सफेद रंगके आश्विन-कार्तिकमें आते हैं। पौष-माघमें फल पक जाते हैं। फलमें तीन धार होती हैं ।

**गुण-कर्म—**"रीठाकरञ्जस्तिक्तोष्णः कटुः स्निग्धश्च वातजित् । कफघ्नः कुष्ठकण्डूतिविषविस्फोटनाशनः ॥" ( रा. नि. ) "अरिष्टः कटुकः पाके तीक्ष्णोष्णो लेखनोऽगुरुः । दोषत्रयहरो गर्भपातनो ग्रहशान्तिकृत् ॥ तज्जलं वामकं पानान्नस्याच्छीर्षरुजापहम् । अर्धशीर्षव्यथां हन्ति वमनाद्विषनाशनः ॥ ( नि. सं. ) ॥

रीठा तिक्त, कटु, स्निग्ध, लघु, तीक्ष्ण, कटुविपाक, उष्णवीर्य, लेखन, गर्भपातकरनेवाला तथा वात, कफ, कुष्ठ, कण्डू, विष और विस्फोटकका नाश करनेवाला है। रीठेके पानीका नस्य देनेसे सिरका दर्द मिटता है। रीठेका जल पिलानेसे वमन होता है और वमनके द्वारा विष निकल जाता है ।

**नव्य मत—**रीठेके फलमें ११॥ प्रतिशत साबुन, १० प्रतिशत शर्करा और लुआब जैसा कफघ्न पदार्थ होता है। बीजोंमें ३० प्रतिशत तैल होता है। रीठेका गूदा उष्ण, तिक्त, स्निग्ध, कफघ्न, वामक और वातहर है। बड़ी मात्रामें रेचन और वामक है। इसकी क्रिया इपिकाक्युआना और सेनेगा जैसी होती है। इससे शीघ्र वमन होता है और त्रास नहीं होता। इसका लेप वेदनास्थापन और शोथघ्न है। दमेमें कफ निकालनेके लिये इसका वमन देते हैं । इससे कफ पतला होकर गिरता है और हृदयको शक्ति मिलती है । कफरोगमें इसको अल्पमात्रामें ही देना चाहिये। दमेमें और आधासीसीमें इसके नस्यसे बड़ा लाभ होता है। अफीमके विषमें रीठेका पानी वमन करानेके लिये देते हैं । कुष्ठ, कंडू, संधिशोथ, विस्फोटक और गण्डमालामें तथा बीछु, कनखजूरा ( गोजर ) और जहरीली मक्खीके दंशमें रीठेका लेप किया जाता है **( डॉ. वा. ग. देसाई )**।

**यूनानी मत**—रीठा दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है । अर्दित (लकवा), अपस्मार, आधासीसी और शीतजन्य शिरोरोगमें रीठेको पीसकर उसका नस्य देते हैं । रीठेको जलमें पीस, कपड़ेपर लगा और वत्ती बनाकर योनिमें रखनेसे रजःस्राव रुका हो तो जारी होता है । रीठेके फलकी मींगी वाजीकर है ।

---

## आम्रादि वर्ग ३२.

### N. O. Anacardiaceæ ( ॲनेकार्डिएसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; उपरिस्थ बीजकोश; पर्णक्रम एकान्तर या अभिमुख; पर्ण एकाकी या संयुक्त, उपपत्ररहित; पुष्पबाह्यकोश, पुष्पाभ्यन्तरकोश और पुंकेशर ४–५; फल अष्ठील और मांसल ।

---

### (८८) आम्र।

**नाम**—( सं. ) आम्र, सहकार, चूत, रसाल; ( क. ) अंब, अंभ; ( पं. ) अंब; ( हिं. बं. ) आम; ( म. ) आंबा; ( गु. ) आंबो; ( सिं. ) अम्ब; ( अ. ) अंबज, ( फा. ) अंबः; ( ले. ) मेन्गिफेरा इन्डिका ( Mangifera indica )।

**वर्णन**—आम हिन्दुस्तानमें सर्वत्र प्रसिद्ध है ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) हृद्ये, छर्दिनिग्रहणे ( आम्रपल्लवं ), पुरीषसंग्रहणीये, मूत्रसंग्रहणीये महाकषाये तथा कषायस्कन्धे, अम्लस्कन्धे च आम्रः पठ्यते । "रक्तपित्तकरं बालमापूर्णं पित्तवर्धनम् । पक्वमाम्रं जयेद्वायुं मांसशुक्रबलप्रदम् ॥" ( च. सू. अ. २७ ) । "पित्तानिलकरं बालं, पित्तलं बद्धकेशरम् । हृद्यं वर्णकरं रुच्यं रक्तमांसबलप्रदम् ॥ कषायानुरसं स्वादु वातघ्नं बृंहणं गुरु । पित्ताविरोधि संपक्वमाम्रं शुक्रविवर्धनम् ।" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "त्वङ्मूलपल्लवं ग्राहि कषायं कफपित्तजित् ।" ( ध. नि. ) । "आम्रत्वचा कषाया च, मूलं सौगन्धि तादृशम् । रुच्यं संग्राहि शिशिरं, पुष्पं रोचनदीपनम् ॥" ( रा. नि. ) ।

आम हृद्य, छर्दिनिग्रहण ( कोमल पत्ती ), पुरीषसंग्रहणीय और मूत्रसंग्रहणीय है । कच्चा–कोमल आम पित्त, वायु और रक्तपित्त करनेवाला है । जिसमें केशर ( रसकोश ) बने हों ऐसा आम पित्तको बढ़ानेवाला है । पका हुआ कषायानुरस, मधुर, हृद्य, शरीरके वर्णको अच्छा करनेवाला, रुचिकर, बृंहण, गुरु, पित्तको अविरोधि, वातघ्न तथा रक्त–मांस–बल और वीर्यको बढ़ानेवाला है । आमके मूल, त्वचा और कोमल पत्ती कषाय, ग्राहि और कफ तथा पित्तको दूर करने वाले हैं । फूल रोचन और दीपन है ।

**उपयुक्त अंग**—त्वचा, फल, मग्ज और पत्ते ।

**नव्य मत**—त्वचा उत्तम रक्तसंग्राहक है। मज्जा कृमिघ्न और रक्तसंग्राहक है। इससे गोल कृमि मरते हैं। पके फलका रस पौष्टिक, स्रंसन और रक्तपित्तप्रशमन है। छालका क्वाथ फुप्फुस, आँतों और गर्भाशयसे रक्तस्राव होता हो तो उसको बंद करनेके लिये देते हैं। रक्तार्श और अत्यार्तवमें मग्ज १०-१५ रत्ती प्रमाणमें देते हैं। जूने सुजाकमें जब पुष्कल पीप आती हो तब कोमल पत्तियोंका स्वरस देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

कच्चे फलका पानक लू लगनेपर पिलाते हैं। गुठलीके भीतरका मग्ज अतिसार और पेचिशमें देते हैं।

---

## (८९) भल्लातक।

**नाम**—(सं.) भल्लातक, अरुष्कर; (हिं.) भिलावा; (क.) बिलावा; (पं.) भिलांवा; (म.) बिब्बा; (गु., मा.) भिलामो; (बं.) भेला; (अ.) बलाज़ुर, हब्बुल कल्ब; (फा.) बिलादुर; (ले.) सेमीकार्पस ॲनेकार्डिअम् (Semecarpus anacardium)।

**वर्णन**—भिलावेका बड़ा वृक्ष होता है। पर्ण शाखाग्रोद्भूत, लंबे, चौड़े, पत्राग्र गोल, पत्रपृष्ठ श्वेताभ; पुष्प पीताभ; फल हृदयाकृति, काले रंगके; कच्चे फलोंमें दूध जैसा श्वेतवर्णका रस होता है जो पकने पर काला हो जाता है। फलके नीचेका वृन्त फूला हुआ, मांसल होता है, जो फलवत् खाया जाता है।

**वक्तव्य**—प्राचीनोंने इसी फूले हुए वृन्तको फल (फलाभास फल) माना है और सच्चे फलको अस्थि या बीज माना है। प्राचीन निघण्टुकारोंने भल्लातकका पर्याय **पृथग्बीज** दिया है।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) दीपनीये, कुष्ठघ्ने, मूत्रसंग्रहणीये च महाकषाये तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) न्यग्रोधादौ, मुस्तादौ च गणे भल्लातकं पठ्यते। "भल्लातकास्थ्यग्निसमं तन्मांसं[1] स्वादु शीतलम्।" (च. सू. अ. २७)। "भल्लातकानि तीक्ष्णानि पाकीन्यग्निसमानि च। भवन्त्यमृतकल्पानि प्रयुक्तानि यथाविधि॥ कफजो न स रोगोऽस्ति न विबन्धोऽस्ति कश्चन। यं न भल्लातकं हन्याच्छीघ्रं मेधाग्निवर्धनम्॥" (च. चि. अ. १ पा. ३)। "आरुष्करं तौवरकं कषायं कटुकं रसे। उष्णं कृमिज्वरानाहमेहोदावर्तनाशनम्॥ कुष्ठगुल्मोदरार्शोघ्नं कटुपाकि तथैव च।" (सु. सू. अ. ४६)। "भल्लातकः कषायोष्णः शुक्रलो मधुरो लघुः। वातश्लेष्मोदरानाहकुष्ठार्शोग्रहणीगदान्॥ हन्ति गुल्मज्वरश्वित्रं वह्निमान्द्यकृमिव्रणान्। वृन्तमारुष्करं स्वादु पित्तघ्नं केश्यमग्निकृत्॥ तन्मज्जा मधुरो वृष्यो बृंहणो वातपित्तहा।"

---

१ 'त्वङ्मांसं' इति पाठान्तरम्।

(भा. प्र.)। "भल्लातवृन्तं मधुरं कषायं वातकोपनम् । विष्टम्भि दुर्जरं शीतं रक्तपित्तप्रदूषणम् ॥" (राजवल्लभः)।

भिलावेके फल( फलाभास वृन्ताग्र )का गूदा मधुर कषाय, शीतल, विष्टम्भि, दुर्जर, वातकोपन और रक्तपित्तप्रकोपक है । भिलावा रसमें मधुर-कषाय और कटु, लघु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, शुक्रल ( वीर्यवर्धक ), पाक करनेवाला ( फोड़ा उत्पन्न करनेवाला ) तथा कृमि, ज्वर, आनाह, प्रमेह, उदावर्त, कुष्ठ, अर्श, ग्रहणीरोग, गुल्म, श्वित्र, अग्निमान्द्य तथा वात और कफके रोगोंका नाश करनेवाला है । कोई भी ऐसा कफज रोग या विबन्ध ( कब्ज और स्रोतोंका अवरोध ) नहीं है कि जिसको भिलावा दूर न करता हो । भिलावेका मग्ज वृष्य, बृंहण तथा वात और पित्तको दूर करनेवाला है ।

**नव्य मत**-भिलावेका रस ( तेल ) शरीरपर लगनेपर त्वचा काली हो कर जलन होने लगती है, फोड़ा उठता है और उसमेंकी लसीका जहाँ जहाँ लगती है वहाँ वहाँ भी फोड़े उठते हैं । पुष्कल लोगोंको भिलावाँ लगता है याने पेशाब करनेमें त्रास होता है, ज्वर आता है और फोड़े फटकर व्रण होते हैं । भिलावेकी यह क्रिया लक्षमें आनेपर मनमें स्वाभाविक ख्याल आता है कि जैसे भिलावाँ बाहर लगनेसे त्रास होता है वैसा ही किंबहुना उससे भी अधिक त्रास खानेको देनेपर होगा। परंतु ऐसा कुछ होता नहीं । योग्य प्रमाणमें और योग्य आहार-विहारके साथ भिलावाँ खिलानेसे कुछ भी हानि नहीं होती । भिलावाँ तीक्ष्ण, उष्ण, लघुपाक, कटु, दीपन, पाचन, स्वेदजनन, अनुलोमन, यकृदुत्तेजक, मूत्रजनन, कुष्ठघ्न, अर्शोघ्न, वाजीकर, नाड़ीसंस्थानके लिये उत्तेजक, रक्ताभिसरणके लिये उत्तेजक, कासहर, उत्तेजक, श्लेष्मनिःसारक, शोथघ्न, रसग्रन्थियोंके लिये उत्तेजक, आमनाशन, रक्तान्तर्गत श्वेतकणवर्धक और रसायन है । भिलावाँ रक्तमें शीघ्र मिल जाता है परंतु धीरे धीरे शरीरसे बाहर निकलता है । पचननलिकाके आमाशय और उत्तरगुद इन भागोंपर इसकी क्रिया विशेष होती है । यकृत्पर इसकी जोरदार उत्तेजक क्रिया होती है और इससे पित्तस्राव ठीक होता है । इससे यकृत्का रक्ताभिसरण और विनिमय-क्रिया ठीक और अच्छी तरह होती है । इसलिये उत्तरगुदपरका रक्तका दबाव कम होता है । गुदाकी फूली हुई सिरायें ( अर्श ) संकुचित होती हैं और गुदवलीको शक्ति मिलनेसे मलसंचय होने नहीं पाता । भिलावेसे भूख खूब लगती है और दस्त पीले रंगका साफ होता है । त्वचापर भिलावेकी जोरदार क्रिया होती है और त्वचाके रास्तेसे बाहर निकलता है इसलिये पसीना खूब आता है, त्वचा गरम मालूम होती है, खाज आती है और त्वचा लाल होती है । मूत्रपिण्ड ( वृक्कों-गुर्दों ) पर अति तीव्र और उत्तेजक क्रिया होती है । प्रारम्भमें मूत्रका प्रमाण बढ़ता है परंतु तुर्त गुर्दे थक जानेसे मूत्रकी उत्पत्ति कम हो जाती है । यह क्रिया इतनी तीव्र होती है

कि कभी कभी मूत्र रक्तसे भरा हुआ होता है। गुर्दोंके समान मूत्रनलिकाके लिये भी भिलावाँ उत्तेजक है। इसलिये भिलावाँ खानेके बाद शिश्नेन्द्रियमें पीड़ा होती है और शिश्नको दबावें ऐसी इच्छा होती है। इसके सिवाय ज्ञानतन्तुओंके द्वारा भी भिलावाँ शिश्न और वृषणके लिये उत्तेजक है। इस प्रकार भिलावाँ प्रत्यक्ष और परोक्षरीत्या वाजीकर है। भिलावेसे नाड़ीका प्रमाण बढ़ता है और हृदयका स्पन्दन स्पष्ट मालूम होता है। रक्तान्तर्गत श्वेतकण बढ़ते हैं और इससे शोथ कम होता है। श्वेतकण बढ़नेसे और रसग्रन्थियोंको उत्तेजन मिलनेसे ग्रन्थियोंकी वृद्धि कम होती है। सारांश भिलावां शरीरके सब अवयवोंके लिये उत्तेजक है और थोड़ी मात्रामें लेते रहनेसे विनिमयक्रिया सुधरती है; इसलिये भिलावां रसायन है।

कफज और वातज रोगोंमें भिलावेका प्रयोग किया जाता है। यह उष्णवीर्य है इसलिये शीतकालमें ही इसका प्रयोग करना चाहिये, गरमीके समयमें इसका प्रयोग न करना चाहिये। छोटे बालक, सगर्भा स्त्री और वृद्धों (तथा पित्तप्रकृतिवालों )को भिलावाँ नहीं देना चाहिये। इसका प्रयोग चलता हो तब रोगीको दूध, घी, शक्कर और भात देना चाहिये; नमक (और उष्ण पदार्थ) नहीं देना चाहिये। भिलावेका प्रयोग चलता हो तब रोगीका पेशाब देखते रहना चाहिये। यदि पेशाबका प्रमाण घट जाय और पेशाब धूम्र( या रक्त )वर्णका आने लगे तो प्रयोग बन्द करना चाहिये। भिलावेकी मात्रा अधिक हो (या भिलावा सहन न हो) तो प्रथम शरीरपर खाज आने लगती है, खूब पसीना आता है, जलन होती है, तृषा अधिक लगती है और पीछे पेशाब लाल होता है। ऐसे लक्षण देखते ही तुर्त निवारण औषध देना चाहिये (डॉ. वा. ग. देसाई)।

भिलावेकी हानिकर क्रिया सबसे पहले गुदा और शिश्नेन्द्रियके मुखपर मालूम होती है। वहाँ खाज आने लगे या जलन मालूम होने लगे तो तुर्त प्रयोग बंद करके नारियलका तैल, घी या रालका मरहम[1] लगाना चाहिये। तिल और नारियल खानेको देना चाहिये।

**भल्लातकप्रधान योग**—अमृतभल्लातक (भै. र. वातरोगाधिकार)। चरक चि. अ. १, पाद २ में भिलावेंके १० योग तथा सु. चि. अ. ६ में भिलावेंके ३ योग लिखे हैं।

---

## (९०) कर्कटशृङ्गी।

**नाम**—शृङ्गी, कर्कटशृङ्गी; (हिं.) काकड़ासींगी; (क.) काकड़सिंगी; (पं.) ककड़सिंगी; काकड़ासिंगी; (म.) काकडशिंगी; (गु.) काकडासिंगी; (ब.) काँकडाशृङ्गी; (ले.) ह्रस सुकिडेनिआ (Rhus Succedanea)।

१ रालके मरहमका योग सिद्धयोगसंग्रहके व्रणाधिकारमें देखें।

**वर्णन**—हिमालयकी नीचेकी पहाड़ियोंमें काकड़ासिंगीके वृक्ष होते हैं । वृक्षको पंजाबीमें **कक्कर** कहते हैं । इस वृक्षपर पत्रवृन्त या पत्रपर कीटविशेषद्वारा बनाये हुए शृङ्गाकार कोशको 'काकड़ासिंगी' कहते हैं । काकड़ासिंगी १–३ इंच लंबी, ·॥·–१ इंच चौड़ी, रक्ताभ भूरे रंगकी, भीतरसे पोली और भंगुर होती है । तोड़नेसे भीतरसे सफेद जाले जैसा पदार्थ निकलता है जो इसके बनानेवाले कीटका अवशेष होता है। काकड़ासिंगी स्वादमें कषाय और कुछ कड़ुवी होती है । वंबईके बाजारमें एक प्रकारकी नकली काकड़ासिंगी बिकती है । यह हरीतकीके वृक्षपर कीटद्वारा बना हुआ एक प्रकारका कोश है ।

**गुण-कर्म—चरके—( सू. अ. ४ ) हिक्कानिग्रहणे, कासहरे च महाकषाये तथा सुश्रुते काकोल्यादिगणे कर्कटशृङ्गी पठ्यते । "शृङ्गी कषाया तिक्तोष्णा कफवातक्षयज्वरान् । श्वासोर्ध्ववाततृट्कासहिक्कारुचिवमीन् हरेत् ॥" ( भा. प्र. ) ।**

काकड़ासिंगी कषाय, तिक्त, उष्णवीर्य तथा वात, कफ, क्षय, ज्वर, श्वास, ऊर्ध्ववात, तृषा, खांसी, हिक्का, अरुचि और वमनका नाश करनेवाली है ।

**नव्य मत**—काकड़ासिंगी कषाय, तिक्त, उष्ण, कफघ्न और संग्राहक है । कफरोगोंमें काकड़ासिंगी विशेष उपयोगी है । नये और पुराने श्वासनलिकाशोथमें इससे जमा हुआ कफ गिरता है और नया कफ उत्पन्न नहीं होता । श्वासनलिकाओंकी श्लेष्मल त्वचाको इससे शक्ति मिलती है । श्वासनलिकाशोथमें गलेमें शिथिलता उत्पन्न होती है और कागलिया ( कौआ ) बढ़ता है, जिससे विना कारण ( विना कफके ) ज्यादा खाँसी आती है, वह इससे बंद होती है । बड़े मनुष्योंकी अपेक्षया यह बच्चोंको विशेष अनुकूल पड़ती है । काकड़ासिंगी, अतिविष, बच और नागरमोथाका चूर्ण बच्चोंको देते हैं । कफरोगोंमें कभी कभी उलटी और जुलाब होते हैं, तब काकड़ासिंगीसे विशेष लाभ होता है । आमाशयके प्रदाहसे उत्पन्न वमन, हिक्का, जीर्ण अतिसार और जीर्ण आँवमें काकड़ासिंगी देते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** ) ।

---

## ( ९१ ) तिन्तिडीक ।

**नाम**—( सं. ) तिन्तिडीक; ( क. ) चोक्रमुरुर; ( हिं. ) समाकदाना; ( पं. ) खट्टे मसर; ( मा. ) डांसरिया; ( अ. ) सुमाक; ( ले. ) ह्रस पार्विफ्लोरा ( Rhus parviflora ) ।

**वर्णन**—मसूरके जैसे लाल रंगके दाने ( फल ) **समाकदाने**के नामसे बाजारमें मिलते हैं । इसके छिलकोंको यूनानी वैद्य **गिर्द सुमाक** या **पोस्त सुमाक** कहते हैं । फलके छिलके दवाके काममें लिये जाते हैं । इनका स्वाद खट्टा होता है । यूनानी हकीम इनका विशेष प्रयोग करते हैं ।

**गुण-कर्म**—"वातापहं तिन्तिडीकमामं पित्तबलासकृत्।" (सु. सू. अ. ४६)।

पके समाकदाने वातहर और कच्चे पित्त तथा कफ करनेवाले हैं।

**यूनानी मत**—सुमाकदाने शीत, रूक्ष, ग्राही, आमाशयको शक्तिप्रद (दीपन), पित्तशामक और रक्तस्राव तथा मूत्राधिक्यको रोकनेवाले हैं। पोस्तसुमाकको पैत्तिक अतिसार, हृल्लास (मितली), वमन और तृषाको रोकनेके लिये देते हैं।

**नव्य मत**—सुमाक हृद्य, दीपन, ग्राही, रक्तपित्तप्रशमन और रक्तसंग्राहक है। इसको गर्भिणी स्त्रियोंके जुलाबमें, अशक्त मनुष्योंके रक्तयुक्त आँवमें, पित्तप्रकोपसे उत्पन्न वमनमें तथा ज्वरमें शरीरका दाह और तृषा कम होनेके लिये देते हैं।

---

## (९२) मुकूलक (पिस्ता)।

**नाम**—(सं.) मुकूलक; (पं., हिं., गु.) पिस्ता; (म.) पिस्ते; (अ.) फुस्तुक, बस्तज; (फा.) पिस्ता; (ले.) पिस्टेसिआ वेरा (Pistacia vera)।

**उत्पत्तिस्थान**—सिरिया, ईरान और अफगानिस्तान।

**वर्णन**—पिस्ता भारतवर्षमें सर्वत्र प्रसिद्ध है। पिस्तेका मग्ज सूखे मेवेके तौर पर खाया जाता है। पिस्तेके वृक्षोंके पत्तोंपर एक प्रकारका कीड़ोंका घर (कीटकोश) बनता है, उसको हिंदीमें **पिस्तेके फूल** और फारसीमें **गुलपिस्ता, बुजगुंज** और **बुजगुंद** कहते हैं। पिस्तेके बाहरके छिलकेको यूनानी वैद्यकमें **पोस्त बेरून पिस्ता** कहते हैं और हकीमलोग इसका दवाओंमें प्रयोग करते हैं। पिस्तेके फूल एक बाजू गुलाबी और दूसरी बाजू कुछ पीले रंगके होते हैं। इसका स्वाद कुछ अम्लता लिये हुए कषाय होता है।

**गुण-कर्म**—"× × × मुकूल ×। गुरूष्णस्निग्धमधुराः × बलप्रदाः। वातघ्ना बृंहणा वृष्याः कफपित्ताभिवर्धनाः॥" (च. सू. अ. २७)। × × × मुकूल × प्रभृतीनि। पित्तश्लेष्मकराण्याहुः स्निग्धोष्णानि गुरूणि च॥ बृंहणान्यनिलघ्नानि बल्यानि मधुराणि च॥" (सु. सू. अ. ४६)।

पिस्ते मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्णवीर्य, बल्य, बृंहण, वृष्य, वातहर और कफ तथा पित्तको बढ़ाने वाले हैं।

**नव्य मत**—पिस्तेके फूलका चूर्ण पानीमें ६५ प्रतिशत और मद्यमें ७५ प्रतिशत विलीन होता है। इसमें ४५ प्रतिशत कषाय द्रव्य होता है और ७ प्रतिशत सुगन्धि तैलयुक्त राल होती है। **धर्म**—संग्राहक। गलेकी शिथिलतामें और कौआ बढ़नेपर इसकी गोलियां बनाकर मुँहमें रखते हैं। पुराने अतिसारमें इसका चूर्ण खानेको देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**यूनानी मत**—पिस्तेका मग्ज गरम, तर, हृदय और मस्तिष्कको बल देनेवाला, पौष्टिक, मेध्य तथा वाजीकर है । पिस्तेके फूल खाँसीमें लाभ पहुँचाते हैं ।

---

## ( ९३ ) प्रियाल ( चिरौंजी ) ।

**नाम**—( सं. ) प्रियाल, चार; ( हिं. ) पियाल. पियार ( वृक्ष ); चिरौंजी ( फलमज्जा ); ( पं. ) चिरोंजी; ( म., गु. ) चारोळी; ( ले. ) बुकनेनिआ लेटिफोलिआ ( Buchanania latifolia ) ।

**वर्णन**—प्रियालका वृक्ष पर्वतोंके नीचेके भागोंमें होता है । पत्र ८–१० इंच लंबे, ५–६ इंच चौड़े; पत्र नोकदार, पत्रकी किनारी अखंड; पुष्प शाखाग्रपर छोटे श्वेत-पीताभ; फल पकनेपर श्यामवर्ण, मांसल, खटमीठा; फल और फलकी गिरी खाई जाती है ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) श्रमहरे, उदर्दप्रशमने च महाकषाये तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) न्यग्रोधादिगणे प्रियालः पठ्यते । "गुरूष्णस्निग्धमधुरा × बलप्रदाः । वातघ्ना बृंहणा वृष्याः कफपित्ताभिवर्धनाः ॥ प्रियालमेषां सदृशं विद्यादौष्ण्यं विना गुणैः । प्रियालतैलं मधुरं गुरु श्लेष्माभिवर्धनम् । हितमिच्छन्ति नात्यौष्ण्यात् संयोगे कफपित्तयोः ॥" ( च. सू. अ. २७ ) । "वातपित्तहरं वृष्यं प्रियालं गुरु शीतलम् । प्रियालमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः ॥" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "प्रियालः कफपित्तघ्नः कषायोऽस्य फलं गुरु । स्वाद्वम्लं मधुरं पाके सुस्निग्धं शीतलं सरम् ॥ विष्टम्भि बृंहणं वृष्यं बल्यं श्लेष्माभिवर्धनम् । जयेन्मारुतपित्तास्रतृष्णादाहक्षतक्षयान् ।" ( कै. नि. ) ।

चिरौंजीका फल मधुर, अम्ल, कषाय, मधुरविपाक, गुरु, स्निग्ध, शीतवीर्य, श्रमहर, उदर्दप्रशमन, सारक, विष्टम्भि, बलकारक, बृंहण, वृष्य, कफ और पित्तको बढ़ानेवाला तथा वात, रक्तविकार, तृषा, दाह, क्षत, और क्षयका नाश करनेवाला है । चिरौंजीका मग्ज मधुर, वृष्य, तथा पित्त और वायुका नाश करनेवाला है । चिरौंजीके मग्जका तैल मधुर, गुरु और कफको बढ़ानेवाला है ।

**नव्य मत**—चिरौंजीमें मांसवर्धक द्रव्य ३०, स्टार्च २॥ तथा तेल ५८ प्रतिशत होता है । चिरौंजी उत्तम पौष्टिक द्रव्य है । इसको बादामके स्थानमें काममें ले सकते हैं । खाँसीमें चिरौंजीकी पेया देते हैं । बाल काला करनेके लिये चिरौंजीका तेल सिरमें लगाते हैं । लग्रोगमें चिरौंजी पीसकर उबटन ( उद्वर्तन ) करते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## (९४) रूमी मस्तगी।

**नाम—**( हिं. ) मस्तगी, रूमी मस्तगी; ( म. ) रुमा मस्तकी; ( अ. ) मस्तकी, अलकरूमी; ( फा. ) कुंदर रूमी; ( मा. ) रूमी मस्तंगी; ( ले. ) पिस्टेसिआ लेन्टिस्कस ( Pistacia lentiscus )

**वर्णन—**यह एक प्रकारका गोंद है जो तुर्कस्तानमें पिस्तेकी जातिके वृक्षसे निकलता है। इसके उत्तम कुंदरु जैसे पीलाईलिये हुए सफेद रंगके, सुगन्धि, गोल टुकड़े बाजारमें मिलते हैं। स्वाद कुछ मीठा होता है। रूमी मस्तगीको खरलमें दस्तेसे कूटनेसे चिपक जाती है। इसलिये पहले इसकी कपड़ेमें पोटली बांध, पानीमें डुबा, पानीसे बाहर निकाल, कोरे कपड़ेसे पोंछकर तुर्त पीसते हैं तो इसका चूर्ण आसानीसे हो जाता है। मस्तगीका हकीम लोग विशेष व्यवहार करते हैं।

**गुण-कर्म—यूनानी मत—**मस्तगी दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क; आमाशय और यकृत्को बलप्रद, कोष्ठवातहर, कफनिस्सारक, शोथहर, ग्राही, लेखन, रक्तस्तम्भन और दोषप्रशमन है।

**मात्रा—**१०-२० रत्ती।

**नव्य मत—**रूमी मस्तगी सुगन्धि, उत्तेजक, कफघ्न, मूत्रजनन और ग्राही है। फुप्फुसके रोगोंमें कफ अधिक गिरता हो तब रूमी मस्तगी देते हैं। इससे श्वासमार्गकी श्लेष्मलत्वचाको शक्ति मिलती है। मुखकी दुर्गन्ध दूर करने, दान्तोंको मजबूत बनाने और आमाशयरस बढ़ानेके लिये इसे मूँहमें रखकर चबाते हैं।

---

# शोभाञ्जनादि वर्ग ३३.

## N. O. Moringaceæ ( मोरिंगेसी )।

**वर्गलक्षण—**सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; पर्ण एकान्तर और सदल ( संयुक्त दल ); पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ५; पुंकेशर अनियत; स्त्रीकेशर १; फल लंबी सेम; सेम तीन स्थानसे खुलती है। बीजोंसे पुष्कल तेल निकलता है।

---

## (९५) शोभाञ्जन।

**नाम—**( सं. ) शोभाञ्जन, शिग्रु अक्षीव, कृष्णगन्धा; ( हिं. ) सहिंजना; ( बं. ) शजिना; ( पं. ) सु( सो )हांजना; ( म. ) शेवगा, शेगटा; ( गु. ) सरगवो, सेकटो; ( सिं. ) सुहांजिड़ो; ( मा. ) सहजणो; ( ले. ) Moringa pterygosperma मोरिंगा टेरिगोस्पर्मा ( मधुशिग्रु ); मोरिंगा कोन्केनेन्सिस Moringa concanensis ( कटुशिग्रु )।

**वर्णन**—सहिंजनेके वृक्ष भारतवर्षमें सर्वत्र प्रसिद्ध हैं। इसकी कच्ची सेमोंका अचार और साग बनाते हैं।

**उपयुक्त अंग**—वृक्ष तथा मूलकी छाल, बीज और तैल।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) कृमिघ्ने, स्वेदोपगे, शिरोविरेचनोपगे च महाकषाये, हरितकवर्गे (सू. अ. गे. २७), कटुकस्कन्धे (शिग्रुक-मधुशिग्रुकौ वि. अ. ८) तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) वरुणादिगणे शिग्रु-मधुशिग्रुकौ, शिरोविरेचनवर्गे च शिग्रुः पठ्यते। "कटुः सक्षारमधुरः शिग्रुस्तिक्तोऽथ पिच्छिलः। मधुशिग्रुः सरस्तिक्तः शोथघ्नो दीपनः कटुः॥" (सु. सू. अ. ४६)। "शिग्रुः सरः कटुः पाके तीक्ष्णोष्णो मधुरो लघुः। दीपनो रोचनो रूक्षः क्षारस्तिक्तो विदाहकृत्॥ संग्राह्यशुक्रलो हृद्यः पित्तरक्तप्रकोपणः। चक्षुष्यः कफवातघ्नो विद्रधिश्वयथुकृमीन्॥ मेदोपचीविषप्लीहगुल्मगण्डव्रणान् हरेत्। शिग्रुवल्कलपत्राणां स्वरसः परमार्तिहृत्॥ चक्षुष्यं शिग्रुजं बीजं तीक्ष्णोष्णं विषनाशनम्। अवृष्यं कफवातघ्नं तन्नस्येन शिरोऽर्तिहृत्॥" (भा. प्र.)। "××× शिग्रु × × × तैलानि तीक्ष्णानि लघून्युष्णवीर्याणि कटूनि कटुविपाकानि सराण्यनिलकफकृमिकुष्ठप्रमेहशिरोरोगापहराणि चेति।" (सु. सू. अ. ४५)।

सहिंजना मधुर, कटु, तिक्त, किञ्चित् क्षारयुक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, पिच्छिल, सारक, दीपन, तीक्ष्ण, लघु, कृमिघ्न, स्वेदोपग, शिरोविरेचन, रोचन, विदाही, हृद्य, चक्षुष्य, वीर्यको हानिकर तथा कफ, वात, विद्रधि, शोथ, मेद, अपची, विष, प्लीहाके रोग, गुल्म, गण्ड और व्रणका नाश करनेवाला है। सहिंजनेकी छाल और पत्तीका स्वरस पीड़ाशामक है। सहिंजनेके बीज तीक्ष्ण, उष्णवीर्य तथा विष, शुक्र, कफ और वातका नाश करनेवाले हैं। सहिंजनेके बीजके चूर्णका नस्य सिरके दर्दको मिटाता है। सहिंजनेके बीजोंका तैल तीक्ष्ण, लघु, उष्णवीर्य, कटु, कटुविपाक, सारक तथा वायु, कफ, कृमि, कुष्ठ, प्रमेह और शिरोरोगका नाश करनेवाला है।

**नव्य मत**—सहिंजनेके मूलकी ताजी छाल कटु, तीक्ष्ण, उष्ण, रुचिकर, दीपन, पाचन, उत्तेजक, कोष्ठवातप्रशमन, वातहर, स्वेदजनन, मूत्रजनन, कफहर, शोथहर और व्रणदोषनाशक है। इससे आमाशयका रक्ताभिसरण बढ़ता है, इसलिये अधिक पाचनरस उत्पन्न होते हैं और अन्न पचता है। अन्न पचकर उसका आँतोको उत्तेजक ऐसा मल बनता है और खुद आँतोंको भी उत्तेजन मिलता है इसलिये दस्त साफ होता है। इसकी स्वेदजननक्रिया नाड़ियों द्वारा, रक्तवाहियों द्वारा और स्वेदग्रन्थियोंपर होती है और इससे शरीरका दाह होता है। अडूसेसे जैसा प्रत्यक्ष कफ छुटता है ऐसा इससे छुटता नहीं परंतु नाड़ियों और हृदयको उत्तेजन मिलनेसे रोगीकी खाँसनेकी शक्ति बढ़कर कफ छुटता है। सहिंजना हृदय और नाड़ियोंके लिये उत्तेजक है। इसकी वृक्कोंपर प्रत्यक्ष क्रिया होती है इसलिये मूत्रका प्रमाण बढ़ता है और मूत्रके

अंदरके क्षार भी बढ़ते हैं। इसकी छालका कल्क त्वचापर बाँधनेसे त्वचा लाल होती है। बाँधे हुए भागकी रक्तवाहिनियाँ विकसित होती हैं और वहाँ रक्तान्तर्गत श्वेतकण जमा होते हैं। इसलिये व्रणशोथ उतरता है। सिवाय इसके पसीना आकर और मूत्र बढ़कर व्रणकारक दोष निकल जाते हैं। अग्निमान्द्य, कुपचन, आध्मान, आनाह और पेटके दर्दमें छालका कल्क देते हैं। हृदयोदर, यकृद्दाल्युदर और प्लीहोदरमें इतर मूत्रजनन और विरेचन द्रव्योंके साथ छालका फांट देते हैं। ×××। सहिंजना वृक्कशोथ होकर जो उदर होता है उसमें नहीं देना चाहिये, क्योंकि इससे वृक्कका शोथ बढ़ता है। व्रणशोथपर त्वचाके कल्कका लेप करते हैं और उसका फांट पीनेको देते हैं। विद्रधिमें इसके फांटमें हींग और सैंधव मिलाकर देते हैं। बीजोंके तेलकी सन्धिवात और आमवातमें मालिश करते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**युनानी मत**—सहिंजना गरम, खुश्क, दीपन और कोष्ठवातप्रशमन है। सहिंजनेके फूल, पत्तियाँ, फली और गोंदका शीत-कफज रोगोंमें उपयोग किया जाता है। पेटके कृमि और दर्द, खाँसी, दमा, प्लीहाका शोथ, संधिवात, कमरका दर्द तथा कफ और वातज रोगोंमें इसका प्रयोग करते हैं। शोथको बैठाने और उसकी पीड़ा कम करनेके लिये पत्तियोंका लेप करते हैं। इसके बीज कामोत्तेजक हैं।

---

# शिम्बी वर्ग ३४.

## N. O. Leguminoseæ (लेग्युमिनोसी)।

इस वर्गके फल शिम्बी (सेम)के आकारमें होते हैं इसलिये इसको **शिम्बीवर्ग** कहते हैं। पुष्पकी रचनाविशेषसे इस वर्गके तीन उपवर्ग किये गये हैं–१ **अपराजितादि उपवर्ग, २ पूतिकरञ्जादि उपवर्ग** तथा ३ **बब्बूलादि उपवर्ग**।

### १ अपराजितादि उपवर्ग Papilionaceæ (पेपिलिओनेसी)।

**वर्गलक्षण**—पर्णक्रम एकान्तर; पर्ण करतलाकार या पक्षाकार, एकाकी या संयुक्त; पुष्प अनियमित, बहुधा उभयलिङ्ग; पुष्पबाह्यकोशके दल ५, थोड़े-बहुत नीचेसे जुड़े हुए; पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ५, छोटे-बड़े, एकके ऊपर एक आए हुए; मुख्य दल सबसे ऊपर, सबसे बड़ा और बाहर आया हुआ तथा दूसरे चार दल सामने-सामने दो जोड़ोंमें होते हैं; पाँच दलोंमेंसे ऊपरके बड़े दलको **पताका** (Standard), अंदरके दोनों बाजूओंके दलोंको **पँख** (Winys) और सबसे भीतरके नीचेके दो दलोंको जो जुड़कर किस्ती जैसे बने हुए होते हैं उनको **किस्ति** (Reel) कहते हैं। पुंकेशर प्रायः १० और स्त्रीकेशर १ होता है। फल सेम। सेम आगे और पीछेकी दोनों सेवनियोंपरसे फटकर खुलती है।

---

## ( ९६ ) गिरिकर्णिका।

**नाम**—( सं. ) गिरिकर्णिका, अपराजिता, विष्णुक्रान्ता; ( हिं. ) कोयल; ( म. ) गोकर्णी; ( गु. ) गरणी; ( ले. ) क्लिटोरिया टर्नेटिआ ( Clitoria ternatea )।

**वर्णन**—कोयलकी आरोहिणी लता होती है। पर्ण संयुक्त और विषमभग्न होते हैं। सेम १-२ इंच लंबी और चपटी होती है। बीज काले रंगके चपटे और चिकने होते हैं। इसकी श्वेतपुष्पा ( सफेद फूलवाली ) और नीलपुष्पा ( आसमानी फूलवाली ) ये दो जातियां होती हैं।

**उपयुक्त अंग**—मूल और बीज। **मात्रा**—बीजचूर्ण १०-२० रत्ती। मूलचूर्ण १॥-३ माशा।

**गुणकर्म-चरके—( सू. अ. २; वि. अ. ८ )श्वेतानाम्ना, सुश्रुते ( सू. अ. ३९ ) गिरिकर्णीनाम्ना शिरोविरेचनद्रव्येषु अपराजिता पठ्यते। "अपराजिते कटू मेध्ये शीते कण्ठ्ये सुदृष्टिदे। कुष्ठमूत्रत्रिदोषामशोथव्रणविषापहे॥ कषाये कटुके पाके तिक्ते च स्मृतिबुद्धिदे।" ( भा. प्र. )।**

कोयल रसमें कषाय और तिक्त, कटुविपाक, शीतवीर्य, शिरोविरेचन, कण्ठ्य, चक्षुष्य, स्मृति और बुद्धि बढ़ानेवाली तथा कुष्ठ, मूत्ररोग, त्रिदोष, आम, शोथ, व्रण और विषका नाश करनेवाली है।

**नव्यमत**—बीजोंमें फीके कड़ुए रसकी, लोबानी रंगकी और अम्लस्वभावी राल होती है। उसमें जालप जैसी गंध आती है। बीज मृदु भेदन हैं। बीज बड़ी मात्रामें देनेसे पेटमें मरोड़ा आकर पतले दस्त होते हैं। बीजोंकी क्रिया जालप जैसी होती है। जालप केवल भेदन है परंतु कोयलके बीजोंमें थोड़ा मूत्रजनन धर्म भी है। पेटमें मरोड़ा न हो इसलिये इसमें सोंठ जैसे सुगन्धि द्रव्य मिलाने चाहिये। मूल भेदन, वेदनास्थापन और मूत्रजनन हैं। मूलसे वमन भी होता है। परन्तु वामकगणमें इसकी गणना नहीं कर सकते। क्योंकि इससे उलटीके साथ पेटमें दर्द होकर जुलाब होते हैं और कभी उलटी भी नहीं होती। कोयलके बीज और मूल उदर, कफविकार और आमवातमें देते हैं। लग्नरोगमें पत्तियोंका फांट देते हैं। कर्णशोथमें पत्तियाँ सैन्धवके साथ पीसकर उसका कानके चारों ओर लेप करते हैं। अधकपारीमें मूलके स्वरसका नस्य देते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

बालकोंके कास-श्वासमें कोयलके बीजोंको थोड़ा सेंक, पीस, उसमें थोड़ा गुड़ और सैंधव मिलाकर पिलानेसे दस्तके साथ कफ निकलकर आराम होता है।

---

## (९७) पलाश।

**नाम**—(सं.) पलाश, किंशुक, ब्रह्मवृक्ष; (हिं.) ढाक, टेसू; (म.) पळस; (गु.) खाखरो(वृक्ष), केसुडा(पुष्प), पलाशपापडा (बीज); (बं.) पलाश; (ते.) मोदुग; (ता.) मुरुक्कु; (मल.) मुरुक्कप्पूयम्; (ले.) ब्युटिआ फ्रोन्डोसा (Butea frondosa), ब्युटिआ मोनोस्पर्मा (Butea moncsperma)।

**वर्णन**—पलाश भारतवर्षमें सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसके १५-२५ फूट उँचे वृक्ष होते हैं। शीतकालमें पत्तियाँ झड़ जाती हैं। फाल्गुनमें नई पत्तियाँ आती हैं। वसंतमें नारंगी रंगके पुष्प आते है। इसकी त्वचासे रक्तवर्णका गोंद निकलता है, जो सूखने पर कालाई लिये हुए लाल रंगका, भंगुर और चमकदार होता है।

**गुण-कर्म-सुश्रुते**—(सू. अ. ३८) रोध्रादौ, मुष्ककादौ, अम्बष्ठादौ, न्यग्रोधादौ च गणे पलाशः पठ्यते। "किंशुकं कफपित्तघ्नं" (सु. सू. अ. ४६)। "×× पलाशतैलानि कफपित्तप्रशमनानि" (सु. सू. अ. ४५)। "क्षारश्रेष्ठः कृमिघ्नश्च संग्राही दीपनः परः। प्लीहगुल्मग्रहण्यर्शोवातश्लेष्मविनाशनः॥ किंशुकस्यापि कुसुमं सुगन्धि मधुरं च तत्। बीजं तु कटुकं स्निग्धमुष्णं कृमिबलाशजित्॥" (ध. नि.)। "पलाशो दीपनो वृष्यः सरोष्णो व्रणगुल्मजित्। भग्नसन्धानकृच्छोथग्रहण्यर्शःकृमीन् हरेत्॥ कषायः कटुकस्तिक्तः स्निग्धो गुदजरोगजित्। तत्पुष्पं स्वादु पाके तु कटु तिक्तं कषायकम्॥ वातलं कफपित्तास्रकृच्छ्रजिद्ग्राहि शीतलम्। तृड्दाहशमनं वातरक्तकुष्ठहरं परम्॥ फलं लघूष्णं मेहार्शःकृमिवातकफापहम्। विपाके कटुकं रूक्षं कुष्ठगुल्मोदरप्रणुत्॥" (भा. प्र.)।

पलाश कषाय, कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, क्षारद्रव्योंमें श्रेष्ठ, कृमिघ्न, संग्राही, दीपन, वृष्य तथा प्लीहाकी वृद्धी, गुल्म, ग्रहणीरोग, अर्श, व्रण और शोष(राजयक्ष्मा)का नाश करनेवाला है। पलाशका पुष्प मधुर, कटु, तिक्त, कषाय, मधुरविपाक, शीतवीर्य, ग्राही, भग्नसंधानकर, वातल तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र, तृषा, दाह, वातरक्त और कुष्ठका नाश करनेवाला है। पलाशके फल (बीज) लघु, उष्णवीर्य, कटुविपाक, रूक्ष तथा प्रमेह, कृमि, वात, कफ, कुष्ठ, गुल्म और उदररोगको दूर करनेवाले हैं। पलाशके बीजोंका तेल कफ-पित्तप्रशमन है।

**नव्य मत**—पलाशके बीज कृमिघ्न, भेदन और कुष्ठघ्न है। पुष्प वेदनास्थापन और मूत्रजनन है। गोंद ग्राही है। पलाशके गोंदकी क्रिया विशेष करके आमाशयपर होती है। खानेके बाद गलेमें खट्टा पानी आता हो उसपर पलाशका गोंद उत्तम औषध है। जीर्ण अतिसार और आँवमें गोंद देते हैं। मूत्रावरोधमें फूलोंके फांटमें सोरा मिलाकर देते हैं और फूलोंको पानीके साथ गरम करके पेडू और कमरपर बाँधते हैं। पलाशके बीज कृमिपर उत्तम औषध है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

## ( ९८ ) मधुक-यष्टीमधुक ।

**नाम—** ( सं. ) मधुक, यष्टीमधुक, मधुयष्टी, क्लीतक; ( क. ) शङ्गर; ( हिं. ) मुलेठी, मुलहटी; ( बं. ) यष्टिमधु; ( म. ) जेष्ठीमध; ( गु. ) जेठीमध; ( सिं. ) मिठी काठी; ( ते. ) यष्टीमधुकमु; ( ता. ) अतिमतुरम्; ( मल. ) इरट्टिमधुरम्; ( अ. ) अस्लुलसूस; ( फा. ) बेखमहक; ( ले. ) ग्लिसीह्राइझा ग्लाब्रा ( Glycyrrhiza glabra ) ।

**उत्पत्तिस्थान—** ईरान, अफगानिस्तान, गिलगित आदि ।

**गुण-कर्म—** चरके (सू. अ. ४) जीवनीये, सन्धानीये, वर्ण्ये, कण्ठ्ये, कण्डूघ्ने, स्नेहोपगे, वमनोपगे, आस्थापनोपगे, छर्दिनिग्रहणे, मूत्रविरजनीये, शोणितास्थापने च महाकषाये तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) काकोल्यादौ, सारिवादौ, अञ्जनादौ च गणे मधुकं पठ्यते । "यष्टी हिमा गुरुः स्वाद्वी चक्षुष्या बलवर्णकृत् । सुस्निग्धा शुक्रला केश्या स्वर्या पित्तानिलास्रजित् ॥ व्रणशोथविषच्छर्दितृष्णाग्लानिक्षयापहा ।" ( भा. प्र. ) । रसायनार्थं "क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम्" ( च. चि. अ. १ ) । वाजीकरणार्थं "कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम् । पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः स ना भवेत् ॥" ( च. चि. अ. २ ) ।

मुलेठी मधुर, गुरु, स्निग्ध, शीतवीर्य, जीवनीय, सन्धानीय, वर्ण्य, कण्ठ्य, कण्डूघ्न, स्नेहोपग, वमनोपग, आस्थापनोपग, छर्दिनिग्रहण, मूत्रविरजनीय, शोणितास्थापन, रसायन, वाजीकरण, चक्षुष्य, बलकारक, केश्य तथा पित्त, वात, रक्तविकार, व्रणशोथ, विष, तृषा, ग्लानि और क्षयको दूर करनेवाली है ।

**नव्यमत—** मुलेठी मधुर, शीतल, स्नेहन, कफशामक, मूत्रजनन और व्रणरोपण है । स्वरभंग, खाँसी और पेशाबकी जलनमें मुलेठी देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

**यूनानी मत—** मुलेठी दूसरे दर्जेमें गरम और तर, गाढ़े दोषोंको पकानेवाली, नाडियोंको बल देनेवाली, कफको विलीन करके निकालनेवाली, मूत्रजनन और आर्तवजनन है । श्वास, खाँसी आदि श्वासनलिका और फुप्फुसके रोगोंमें तथा मूत्रकृच्छ्र और मूत्राशयके क्षतमें इसका प्रयोग करते हैं ।

---

## ( ९९ ) गुञ्जा ।

**नाम—** ( सं. ) गुञ्जा, रक्तिका, काकणन्तिका, काम्बोजी; ( क. ) रचफोल; ( हिं. ) घुँघची; ( म. ) गुंज; ( गु. ) चणोठी; ( मा. ) चिरमी, चिर्मिटी; ( बं. ) कुँच; ( सिं. ) रत्युं; ( पं. ) रत्ती, लालड़ी; ( ते. ) गुरिगिंज; ( का. ) गुलगंजि;

(मल.) कुन्नि, कुन्नी; (फा.) सुर्ख, चश्मखरोस; (ले.) एब्रस प्रिकेटोरिअस (Abrus precatorius)।

**वर्णन**—घुँघचीकी लता होती है। पत्र इमलीके जैसे होते हैं। भाद्रपद-आश्विनमें सफेद, गुलाबीछायालिये हुए या जामुनी रंगके पुष्प आते हैं। शीतकालमें शेम पक जाती है। घुँघची लाल, श्वेत और काली तीन प्रकारकी होती है।

**उपयुक्त अंग**—मूल, पत्र और बीज। मूल और पत्र तीनों प्रकारकी घुँघचीके और बीज श्वेत घुँघचीके औषधार्थ लिये जाते हैं।

**गुण-कर्म**—सुश्रुते(क. अ. २) मूलविषेषु गुञ्जा पठ्यते। "गुञ्जा सोष्णा रसे तिक्ता कषाया कफपित्तहा। चक्षुष्या शुक्रला केश्या त्वच्या रुच्या बलप्रदा॥ इन्द्रलुप्तहरा तीव्रा सविषा मदमोहकृत्। हन्ति रक्षोग्रहविषं कण्डूकुष्ठव्रणक्रिमीन्॥" (कै. नि.)। "मूलं तु मधुरं तिक्तं मुखशोषहरं परम्। मुखपाकहरं पत्रं, सर्वं श्वेताभवं शुभम्॥" (नि. सं.)।

घुँघची रसमें तिक्त और कषाय, उष्णवीर्य, चक्षुष्य, वाजीकर, केश्य, त्वच्य, रुचिकारक, बलप्रद, तीव्र, उपविष, मदकारक, मोहकारक तथा कफ, पित्त, इन्द्रलुप्त, कण्डू, कुष्ठ, व्रण और कृमिका नाश करनेवाली है। घुँघचीके मूल मधुर, तिक्त तथा मुखशोषहर हैं। पत्र मुखपाकको दूर करनेवाले हैं। बीज, पत्र और मूल श्वेत गुञ्जाके प्रशस्त हैं।

**नव्यमत**—गुञ्जाके मूलकी क्रिया मुलेठी जैसी होती है। पत्तियोंका गुण-कर्म मूलके समान हैं। मूल और पत्र मधुर, स्नेहन, कफशामक, मूत्रजनन और व्रणरोपण हैं। खाँसी और मूत्ररोगोंमें इतर सहकारी औषधोंके साथ मूल देते हैं। पत्तियाँ पीसकर व्रणशोथ और व्रणपर बाँधते हैं। इससे ठंढापन आकर शोथ उतरता है और व्रण भर जाता है। स्वरभंगमें पत्तियोंकी गोलियाँ बनाकर मुँहमें रखते हैं। (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**बीजशुद्धि**—श्वेत गुञ्जाके बीजोंको गायके दूधमें एक प्रहर पका, छिलके निकाला गरम जलसे धोकर पीछे औषधार्थ प्रयोग करना चाहिये।

---

## (१००) अगस्त्य।

**नाम**—(सं.) अगस्त्य, मुनिद्रुम, वक्रपुष्प; (हिं.) अगस्तिया, अगथिया, हथिया; (म.) अगस्ता, हदगा; (गु.) अगथियो; (मा.) अगस्तियो; (ले.) सेस्बेनिआ ग्रान्डिफ्लोरा (Sesbania grandiflora)।

**वर्णन**—अगस्त्यका १०–२५ फूट ऊँचा वृक्ष होता है। पर्ण सदल शिरीषके

पर्ण जैसे; पुष्प प्रायः श्वेतवर्णके, क्वचित् रक्तवर्णके पलाशपुष्प जैसे, २-४ इंच लंबे; सेम (फली) १२-१५ इंच लंबी, कोमल और चार धारवाली। अगस्त्य ताराके उदयकाल( प्रायः सितंबर )में पुष्प लगते हैं और पौषमें फलियाँ पक्व जाती हैं। पुष्पोंका शाक तथा कोमल फलियोंका शाक और अचार बनाते हैं।

**गुण-कर्म**—"वृषागस्त्ययोः पुष्पाणि तिक्तानि कटुविपाकानि क्षयकासहराणि।" "आगस्त्यं नातिशीतोष्णं नक्तान्धानां प्रशस्यते।" (सु. सू. अ. ४६)। "अगस्त्यः शीतलो रूक्षस्तिक्तो वातप्रकोपनः। कफपित्तप्रतिश्यायचातुर्थकविनाशनः॥ अगस्त्यपत्रं कटुकं सतिक्तं गुरु क्रिमिघ्नं विशदं कफघ्नम्। कण्डूहरं शोणितपित्तहारि स्यात् सूक्ष्ममुष्णं मधुरं विषघ्नम्॥ तत्पुष्पं नातिशीतोष्णं कटुपाकं सतिक्तकम्। कषायं वातलं पित्तकफनक्तान्ध्यनाशनम्॥" (कै. नि.)।

अगथिया तिक्त, रूक्ष, शीतवीर्य, वायुका प्रकोप करनेवाला तथा कफ, पित्त, प्रतिश्याय और चातुर्थक ज्वरको दूर करनेवाला है। अगथियाकी पत्तियाँ कटु, तिक्त मधुर, गुरु, विशद, सूक्ष्म, उष्णवीर्य तथा कफ, कण्डू, रक्तपित्त और विषका नाश करनेवाली हैं। अगथियेके पुष्प तिक्त, कषाय, कटुविपाक, नातिशीतोष्ण, वातकर तथा क्षय, खाँसी, पित्त, कफ और रतौंधीका नाश करनेवाले हैं।

**नव्य मत**—फूल दीपन और आनुलोमिक; मूल उष्णवीर्य, वातहर, कासघ्न और शोथघ्न; त्वचा ग्राही, तथा पत्र आनुलोमिक और शिरोविरेचन हैं। अनार्तवमें फूलोंका साग देते हैं। फुप्फुसमें शोथ होकर ज्वर, कफ और खाँसी ये लक्षण होते हैं तब छाल नागरपानके साथ अथवा उसका स्वरस १ तोला शहदके साथ देते हैं। इससे पसीना आता है और कफ छुटने लगता है। पत्तियाँ पीसकर व्रणपर बाँधनेसे व्रणका शोधन और रोपण होता है। दृष्टिमान्द्यमें फूलोंका स्वरस आँखोंमें डालते हैं। सन्धिशोथमें मूलका लेप करते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## (१०१) नीलिनी।

**नाम**—(**सं.**) नीलिनी, नीली; (**हिं.**) नील, लील; (**बं.**) नील; (**म.**) नीळ, गुळी; (**गु.**) गळी; (**मा.**) लील; (**सिं.**) नीर; (**ते.**) अविरि; (**ता.**) अवुरि; (**मल.**) अमरि; (**फा.**) नीलज, हिना मज्नुन; (**अ.**) वस्मा; (**ले.**) इन्डिगोफेरा टिन्क्टोरिआ (Indigofera tinctoria)

**वर्णन**—नीलिका २-६ फूट ऊँचा क्षुप होता है। काण्डकी चारों और पतली, लंबी, फैली हुई शाखायें निकलती हैं। कांड और शाखाएँ श्वेतरोमाकीर्ण; पत्र रेह या कालापनलिये हुए हरे रंगके, १-२ अंगुल लंबे शरपुंखके पत्र जैसे; पुष्प नीलाभ

गुलाबी रंगके; सेम २ अंगुल लंबी और अग्रभागमें जरा वक्र होती हैं। एक सेममें ८-१० बीज होते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. २ ) विरेचनद्रव्येषु तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३९ ) अधोभागहरद्रव्येषु नीलिनी पठ्यते। "नीलिनी रेचनी तिक्ता केश्या मोहभ्रमापहा। उष्णा हन्त्युदरप्लीहवातरक्तकफानिलान्॥ आमवातमुदावर्तं मदं च विषमुद्धतम्।" ( भा. प्र. )।

नील तिक्त, उष्णवीर्य, रेचन, केश्य तथा मोह, भ्रम, उदर, प्लीहाकी वृद्धि, वातरक्त, कफ, वात, आमवात, उदावर्त, मद और विषका नाश करनेवाली है।

**नव्य मत**—नीलका लेप दाहशामक, व्रणरोपण, त्वग्दोषहर, केशवर्धक और केशरञ्जन है। इससे प्रथम व्रणका संकोचन और पीछे उत्तेजन होता है। व्रणके ऊपर इसका संग्राहक धर्म उत्तम है। नील विषमज्वरप्रतिबन्धक, यकृदुत्तेजक, नाड़ीसंस्थानके लिये शामक, भेदन, मूत्रजनन और कासहर है। जो गुण नील-(रंग)में है वे ही मूलमें कम प्रमाणमें और पत्तियोंमें उससे भी कम प्रमाणमें हैं। यकृत् और प्लीहाकी वृद्धि तथा जलोदरमें मूलका घन देते हैं। इससे दस्त और पेशाब होकर उदरका जल कम होता है। जीर्ण मलावरोधमें मूलका घन थोड़ी मात्रामें देते हैं। अर्शमें मूलका घन खानेको देते हैं और नील जलमें पीसकर उसका अर्शपर लेप करते हैं। इससे मसे संकुचित होते हैं और पीड़ा शांत होती है। कुक्कुर खाँसी और फुप्फुसके शोथमें मूलका घन देते हैं। शीतज्वरमें नील काली मिर्चके साथ देते हैं। त्वचाके रोगोंमें नील देते हैं। अंग जलनेपर नील पानीमें पीसकर लेप करते हैं। इससे जलन और पीड़ा शांत होती है और जखम जल्द भर आता है। बीजोंको मद्यमें ७ दिन भिगो, कपड़ेसे छान कर वह मद्य जू मारनेके लिये लगाते हैं। त्वग्रोग, अर्श और व्रणमें पत्तियोंका लेप करते हैं। पागल कुत्ता काटनेपर पत्रस्वरस ५ तोलाकी मात्रामें नित्य सवेरमें देते हैं और दंश स्थान पर पत्तियोंका लेप करते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

विसर्पका फैलाव रोकनेके लिये चारों ओर नीलका लेप करते हैं।

---

## ( १०२ ) शण।

**नाम**—( सं. ) शण; ( हिं. ) सन; ( म. ) ताग; ( गु. ) शण, सण; ( बं. ) शण; ( ता. ) च( श )णल, कुत्तिरम्; ( मल. ) चणा, वक्कु; ( सिंध ) सिणी; ( ले. ) क्रोटेलेरिया जन्सिआ( Crotalaria Juncea )।

**वर्णन**—सन बंगालमें अधिक उत्पन्न होता है। सनके रेशोंसे बोरी, कपड़ा, रस्सी आदि बनाये जाते हैं।

**गुण-कर्म**—"शणस्त्वम्लः कषायश्च मलगर्भास्रपातनः । वान्तिकृद्वातकफनुत् ज्ञेयस्तीव्राङ्गमर्दनुत् ॥" ( रा. नि. ) ।

सन अम्ल, कषाय, मल-गर्भ और रक्तका पातन करनेवाला, वमनकारक तथा वात, कफ और तीव्र अंगमर्दको दूर करनेवाला है ।

**नव्य मत**—सनकी पत्ती शीतल, स्नेहन, त्वग्दोषहर और रक्तशोधक है । बीज पाचन, अनुलोमन और आर्तवजनन है । जब शरीरमें गरमी बढ़कर त्वचाके रोग होते हैं तब रक्त ठंढा और शुद्ध होनेके लिये पत्तियोंका फांट पिलाते हैं और पत्तियाँ पीस कर उसका लेप करते हैं । मेदोवृद्धि और अनार्तवमें बीजोंका चूर्ण देते हैं । यह स्थूल स्त्रियोंको विशेष अनुकूल आता है । **मात्रा**-बीजचूर्ण ·।·—·॥· तोला **( डॉ. वा. ग. देसाई )** ।

---

## ( १०३ ) शणपुष्पी ।

**नाम**—( सं. ) शणपुष्पी, घण्टारवा; ( हिं. ) झनझनिया, घुघरिया सन; ( म. )खुळखुळ, घागरी; ( गु. ) घुघरो; ( ता. ) वेलैक्किलुकिलुप्पै; ( मल. ) किलुकिलुप्पा; ( ले. ) क्रोटेलेरिया वेरुकोसा ( Crotalaria verrucosa )

**वर्णन**—शणपुष्पीका क्षुप २-४ फुट ऊँचा होता है । कांड और शाखा धारदार; पत्र अण्डाकृति, एकान्तर; पुष्प पीलापन लिये हुए जामुनी रंगके; सेम ½ से १¼ इंच लंबी, अविदारी; बीज १०-१५; सूखी सेमको हिलानेसे घुघरे जैसा आवाज होता है ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. १ ) षोडशमूलिनीषु ( "शणपुष्पी च बिम्बी च छर्दने" इति ), वमनोपगे च महाकषाये तथा सुश्रुते ऊर्ध्वभागहरे गणे शणपुष्पी पठ्यते । "शणपुष्पी रसे तिक्ता वमनी कफपित्तजित् । कषाया कण्ठहृद्रोगमुखरोगविनाशिनी ॥" ( ध. नि. ) ।

शणपुष्पी तिक्त, कषाय, वमन करानेवाली तथा कफ, पित्त, कण्ठके रोग, हृद्रोग और मुखरोगका नाश करनेवाली है ।

**नव्यमत**—शणपुष्पी तिक्त, पित्तघ्न, कफघ्न और स्नेहन है । पत्तोंका लेप शीतल और त्वग्दोषहर है । त्वग्रोगमें लेप करते हैं और खानेको देते हैं । पत्तियोंके रससे मुँहसे लाल गिरती हो तो बंद होती हैं **( डॉ. वा. ग. देसाई )** ।

---

## ( १०४ ) शालपर्णी ।

**नाम**—( सं. ) शालपर्णी, स्थिरा, अतिगुहा, विदारिगन्धा, अंशुमती, त्रिपर्णी; ( हिं. ) सरिवन; ( बं. ) शालपानी; ( म. ) साळवण; रानभाल; ( गु. )

सालवण, समेरवो, पांदडियो; (ले.) डेस्मोडिअम् गेञ्जेटिकम् ( Desmodium gangeticum )।

**वर्णन**—शालपर्णीका २–५ फुट ऊँचा क्षुप होता है । पत्ते शालके पत्र जैसे होते हैं इसलिये इसको शालपर्णी कहते हैं । पर्ण एकान्तर, ३–६ इंच लंबे, १॥–३ इंच चौड़े; पत्रका अपरपृष्ठ मसृण, हरे रंगका और अधरपृष्ठ फीके हरे रंगका और रोमश होता है । पुष्प जामुनी या गुलाबी रंगके श्रावणमासमें लगते हैं । भाद्रपद–आश्विनमें पतली–चिपटी सेम लगती है ।

**चरके**—(सू. अ. ४) बल्ये ('स्थिरा'नाम्ना), स्नेहोपगे, श्वयथुहरे, अङ्गमर्दप्रशमने ('विदारीगन्धा'नाम्ना) च महाकषाये, मधुरस्कन्धे तथा **सुश्रुते** (सू. अ. ३८) विदारिगन्धादौ, कनीयसि पञ्चमूले च शालपर्णी पठ्यते । "विदारिगन्धा वृष्यसर्वदोषहराणाम्" (च. सू. अ. २५) । "शालपर्णी रसे तिक्ता गुरूष्णा वातदोषजित् । विषमज्वरमेहार्शःशोथसंतापनाशनी ॥" (रा. नि.) । "शालपर्णी गुरुश्छर्दिज्वरश्वासातिसारजित् । शोषदोषत्रयहरी बृंहण्युक्ता रसायनी ॥ तिक्ता विषहरी स्वादुः क्षतकासकृमिप्रणुत् ।" (भा. प्र.) ।

शालपर्णी मधुर, तिक्त, गुरु, उष्णवीर्य, बृंहण, बल्य, स्नेहोपग, अङ्गमर्दप्रशमन, वृष्य, सर्वदोषहर, रसायन तथा वातरोग, ज्वर, प्रमेह, अर्श, शोथ, संताप, वमन, अतिसार, राजयक्ष्मा, क्षतकास तथा कृमिका नाश करनेवाली है ।

**नव्यमत**—शालपर्णी ज्वरघ्न, शोथघ्न और मूत्रजनन है । श्लेष्मल त्वचाका शोथ होकर जो ज्वर आता है उसमें इससे विशेष लाभ होता है । इससे पेशाबकी जलन कम होती है ।

**उपयुक्त अंग**—पंचांग । **मात्रा**—॥–१ तोला ।

---

## (१०५) पृश्निपर्णी ।

**नाम**—(सं.) पृश्निपर्णी, पृथक्पर्णी, धावनी, कलशी, गुहा, शृगालविन्ना, चित्रपर्णी, क्रोष्टुकपुच्छिका; (हिं.) पिठवन; (बं) चाकुले; (म.) पिठवण; (गु.) पीठवण, पीळो समेरवो; (ले.) युरेरिआ पिक्टा ( Uraria picta )

**वर्णन**—पिठवनके २–६ फुट ऊँचा क्षुप होता है । पर्ण संयुक्त । पत्तोंपर पीलापनलिये हुए भूरे या फीके सफेद रंगके पट्टे होते हैं । शाखाओंके अग्रभाग पर ॥–१॥ इंच लंबी शृगालके पुच्छ जैसी पुष्पमञ्जरी आती है । पुष्प फीके या घेरे जामुनी रंगके होते हैं । सेममें ३–६ संन्धियाँ होती हैं ।

**गुण-कर्म-चरके**—(सू. अ. ४) सन्धानीये, श्वयथुहरे, अङ्गमर्दप्रशमने महाकषाये, मधुरस्कन्धे च पृश्निपर्णी पठ्यते । **सुश्रुते** (सु. अ. ३८) विदारि-

गन्धादौ ( 'पृथक्पर्णी' नाम्ना ), हरिद्रादौ ( 'कलशी'नाम्ना ), कनीयसी पञ्चमूले च पृश्निपर्णी पठ्यते । "पृश्निपर्णी सांग्राहिक-वातहर-दीपनीय-वृष्याणाम् ।" ( च. सू. अ. २५ ) । "पृश्निपर्णी रसे स्वादुर्लघूष्णाऽस्त्रत्रिदोषजित् । कासश्वासप्रशमनी ज्वरतृड्दाहनाशनी ॥" ( ध. नि. ) । "पृश्निपर्णी त्रिदोषघ्नी वृष्योष्णा मधुराऽसरा । हन्ति दाहज्वरश्वासरक्तातीसारतृड्वमीः ॥" ( भा. प्र. )

पृश्निपर्णी रसमें मधुर, लघु, उष्णवीर्य, त्रिदोषहर, दीपन, वृष्य, सांग्राहिक, सन्धानीय, शोथहर, अङ्गमर्दप्रशमन, तथा रक्तदोष, खाँसी, श्वास, ज्वर, तृषा, दाह और रक्तातिसारका नाश करनेवाली है ।

**उपयुक्त अंग**—मूल और पंचांग । **मात्रा** ·॥–१ तोला ।

---

## ( १०६ ) यवासक ।

**नाम—( सं. )** यास, यवासक, **( हिं., म. )** जवासा; **( गु. )** जवासो; **( ले. )** अल्हागी केमेलोरम् ( Alhagi camelorum )

**वर्णन**—जवासाका १–३ फुट ऊँचा क्षुप होता है । क्षुपमें पतली-लंबी बहुत शाखाएँ निकलती हैं । क्षुप पीलापनलिये हुए हरे रंगका होता है । पत्र छोटे, कांटोंके मूलसे १–१ निकलते हैं । पुष्प खुले लाल रंगके माघ–फाल्गुनमें आते हैं । ग्रीष्मऋतुमें सेम पक जाती है । ग्रीष्मके प्रखर तापमें जब और वनस्पतियाँ सूख जाती हैं तब यह हरा रहता है ।

**गुण-कर्म**—"यवासकः स्वादुतिक्तो ज्वरतृड्रक्तपित्तनुत् ।" ( ध. नि. ) । "यासः स्वादुः सरस्तिक्तस्तुवरः शीतलो लघुः । कफमेदोमदभ्रान्तिपित्तासृक्कुष्ठकासजित् ॥ तृष्णाविसर्पवातास्रवमिज्वरहरः स्मृतः ।" ( भा. प्र. )

जवासा मधुर, तिक्त, कषाय, लघु, शीतवीर्य, सारक तथा कफ, पित्त, रक्तदोष, मेद, मद, भ्रम, कुष्ठ, खाँसी, तृषा, विसर्प, वातरक्त, वमन, ज्वर और रक्तपित्तका नाश करनेवाला है ।

**नव्यमत**—जवासा कफघ्न, स्वेदजनन, मूत्रजनन, और आनुलोमिक है । इसमें आनुलोमिक और मूत्रजनन धर्म अल्प है, परन्तु कफघ्न धर्म उत्तम है । खाँसीकी प्रथमावस्थामें इससे गला और श्वासनलिका तर होकर खाँसनेका त्रास कम होता है और कफ पड़ने लगता है । प्रतिश्याय और गलेका शोथ, श्वासनलिकाशोथ आदि श्वासमार्गके रोगोंमें जवासेका क्वाथ पीनेसे और उसका भाफ गलेमें लेनेसे अच्छा लाभ होता है । दमेमें जवासेका धूमपान करनेसे लाभ होता है । अर्शको जवासेके क्वाथसे धोनेसे लाभ होता है ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

**यासशर्करा**—जवासेके क्षुपसे एक प्रकारका द्रव रसकर जम जाता है उसको आयुर्वेदमें **यासशर्करा** और यूनानी वैद्यकमें **तुरंजबीन** कहते है । यह देखनेमें कुछ ललाई और भूरापन लिये हुए सफेद रंगके छोटे छोटे दानोंके रूपमें होती है। यह ईरान और अरबस्तानसे आती है । इसका स्वाद मीठा होता है । यूनानी वैद्य इसका विशेष प्रयोग करते हैं ।

**गुण-कर्म**—कषायमधुरा शीता सतिक्ता यासशर्करा।" (च. सू. अ. २७)। "यवासशर्करा मधुरकषाया तिक्तानुरसा श्लेष्महरी सरा च ।" (सु. सू. अ. ४५)।

यासशर्करा मधुर, कषाय, तिक्तानुरस, कफहर और सारक है ।

**यूनानीमत**—तुरंजबीन सारक, पित्तरेचक, कफशामक, वृष्य और बृंहण है। यह बच्चों और मृदु प्रकृतिवालोंके लिये उत्तम सारक औषध है । यह पित्तको सरलतासे निकालती है । इसे विरेचक औषधोंकी शक्ति बढ़ानेके लिये उनमें मिलाते हैं ।

---

## (१०७) मेथिका ।

**नाम**—(सं.) मेथिका; (क.) मीथ; (पं.) मेथरी, मेथरे; (हिं., म., बं., गु.) मेथी; (ते.) मेंति; (ता.) वेंदयम्; (मल.) उलुव, वेंदयम्; (अ.) हुलबा; (फा.) शम्‌ लीज, शम्‌ लीज; (ले.) ट्राइगोनेला फिनम् ग्रेइकम् (Trigonella foenum-graecum)।

**वर्णन**—मेथी भारतवर्षमें सर्वत्र होती है और प्रसिद्ध है । इसकी कोमल पत्तीका साग बनाते हैं । बीजोंको मसालेमें डालते हैं और दवाके काममें लेते हैं ।

**गुण-कर्म**—"मेथिका कटुरुष्णा च रक्तपित्तप्रकोपनी । अरोचकहरा दीप्तिकरी वातप्रणाशिनी ॥" (ध. नि) । "मेथिका वातशमनी श्लेष्मघ्नी ज्वरनाशिनी ।" (भा. प्र.)।

मेथी कडुई, उष्णवीर्य, अरुचिहर, दीपन, रक्तपित्तका प्रकोप करनेवाली तथा कफ, वात और ज्वरका नाश करनेवाली है । (मेथी बल्य, स्निग्ध और वातनाशक है)।

**नव्यमत**—बीजोंके कवचमें कषायद्रव्य होता है । बीजोंको जलानेसे ७ प्रतिशत राख मिलती है । उसमें ⅓ फोस्फोरिक एसिड् होता है । बीजोंमें ६ प्रतिशत तैल होता है । मेथीकी पत्ती शीतल, पित्तशामक, पाचन, आनुलोमिक और शोथघ्न है। बीज वातनाशक, वातहर पौष्टिक, शोथघ्न, रक्तसंग्राहक और गर्भाशयसंकोचक हैं। पित्तप्रकृतिके लोगोंके कब्जमें मेथीका साग खिलानेसे दस्त साफ होता है । व्रणशोथमें पत्तीके लेपसे दाह और सूजन कम होती है । पित्तज्वरमें पत्तीका रस देते हैं। रक्तमिश्रित आँवमें मेथीके बीजोंको सेंक, कूटकर उसका फांट देते हैं । इससे मलकी

दुर्गन्ध और आँव कम होती है तथा मलका रंग पीला होता है। शरीरकी पीड़ामें बीजोंका चूर्ण ·॥· तोलेकी मात्रामें खानेसे लाभ होता है । प्रसूता स्त्रियोंको मेथीके बीजके साथ सुगन्धि द्रव्य मिला, उसके लड्डू बनाकर खिलाते हैं। इससे भूख लगती है तथा दस्त और आर्तव साफ होता है । व्रणशोथमें बीजोंका लेप करते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**यूनानी मत**—मेथी शोथविलयन, शरीर और नाड़ियोंको बलप्रद, वृष्य, दीपन, वातहर, कफनिस्सारक, आर्तवजनन और आर्तवशूलको दूर करनेवाली है । खाँसी, दमा और कष्टार्तवमें इसके क्काथमें शहद मिलाकर पिलाते हैं।

---

## (१०८) रक्तचन्दन ।

**नाम**—(सं.) रक्तचन्दन, कुचन्दन; (क.) रक्तचन्दुन; (पं. हिं.) लालचंदन; (गु.) रतांजळी, लालचंदन; (ते.) एर्र चंदनमु; (ता.) चेञ् चन्तनम्, शेञ् शंदनम्; (अ.) संदल अहमर; (फा.) संदल सुर्ख; (ले.) टिरोकार्पस सॅन्टेलिनस (Pterocarpus santalinus)।

**वर्णन**—रक्तचन्दनके वृक्ष मलबारमें होते हैं। इसकी फीके लाल रंगकी लकड़ी बाजारमें मिलती है। लकड़ीमें गन्ध नहीं होती। स्वाद कषाय और तिक्त होता है।

**गुण-कर्म**—"रक्तचन्दनमतीव शीतलं तिक्तमीक्षणनगदास्रदोषनुत् । भूतपित्तकफकासज्वरभ्रान्तिजन्तुवमिजित्तृषापहम् ॥" (रा. नि.)। "रक्तं शीतं गुरु स्वादु छर्दितृष्णास्रपित्तहृत् । तिक्तं नेत्रहितं वृष्यं ज्वरव्रणविषापहम् ॥" (भा. प्र.)। सुश्रुते (सू. अ. ३८) पटोलादौ, सारिवादौ, प्रियङ्ग्वादौ च गणे कुचन्दनं पठ्यते। 'कुचन्दनं रक्तचन्दनम्' इति डल्हणः।

लालचन्दन तिक्त, मधुर, गुरु, शीतवीर्य, वृष्य, चक्षुष्य तथा नेत्ररोग, रक्तविकार, पित्त, कफ, खाँसी, ज्वर, भ्रम, कृमि, वमन, तृषा, व्रण तथा विषका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—रक्तचंदनका लेप शीतल, शोथघ्न और व्रणरोपण है। रक्तचंदनका लेप फोड़े-फुंसी आदि त्वग्रोगोंमें विशेषतः रक्तकी उष्णतासे उत्पन्न रोगोंमें बहुत गुणकारक है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (१०९) बीजक ।

**नाम**—(सं.) बीजक, असन; (हिं., पं.) वि(बि)जयसार; (म.) बिवळा; (गु.) बीयो; (मा.) बिजैसार; (बं.) पियासाल; (ले.) टिरोकार्पस मर्सुपिअम् (Pterocarhus marsupium)।

**वर्णन**—विजयसारके बड़े वृक्ष जंगलोंमें होते हैं । पर्ण संयुक्तदल, पुष्प श्वेताभ पीले रंगके, शीतकालके आरंभमें आते हैं; सेम पौष-माघमें पक्क जाती है । इसकी लकड़ीको पानीमें डालनेसे पानी पहले पीला और पीछे काले रंगका हो जाता है ।

**गुण-कर्म-चरके**—( सू. अ. ४ ) उदर्दप्रशमने महाकषाये तथा सुश्रुते ( सू. अ. ४ ) सालसारादिगणे असनः पठ्यते । "बीजकः सकषायश्च कफ-पित्तास्रनाशनः ।" ( ध. नि. ) । "बीजकः कुष्ठवीसर्पश्वित्रमेहव्रणक्रिमीन् । हन्ति श्लेष्मास्रपित्तं च त्वच्यः केश्यो रसायनः ॥" ( भा. प्र. ) । "यथा सर्वाणि कुष्ठानि हतः खदिरबीजकौ ।" ( सु. चि. अ. ६ ) ।

विजयसार कषाय, तिक्त, त्वच्य, केश्य, रसायन तथा उदर्द, कुष्ठ, विसर्प, श्वित्र, प्रमेह, व्रण, कृमी, वातरोग, कफ, रक्तपित्त और रक्तविकारका नाश करनेवाला है ।

**उपयुक्त अंग**—त्वचा, सार और गोंद । **मात्रा**—गोंदकी–२–५ रत्ती ।

**नव्यमत**—विजयसारका गोंद संग्राहक है । पुराने अतिसार और आँवमें गोंद खानेको देते हैं । शोथ और त्वग्रोगोंमें पत्तोंका लेप करते हैं । दाँतोंके दर्दमें गोंद दाँतोंमें रखकर चबाते हैं । विजयसारका गोंद लाल रंगका होता है । उसको मलबार कायनो ( Malabar kino ) कहते हैं । इसके गोंदके गुण-कर्म पलाश( ढाक )के गोंद जैसे हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

विजयसारके गोंदको खूनखराबा( दम्मुल्अखवेन )के प्रतिनिधिरूपमें काममें ले सकते हैं । इसकी लकड़ीको पानीमें घीसकर लेप करनेसे चोटकी पीड़ा मिटती है । इसकी लकड़ीके चूर्ण( १ तोले ) का क्वाथ समभाग दूध और थोड़ी चीनी मिलाकर पीनेसे आघातज पीड़ा मिटती है ।

---

## ( ११० ) करञ्ज ।

**नाम**—( सं. ) करञ्ज, नक्तमाल, उदकीर्य; ( हिं., म. ) करंज; ( बं. ) डहरकञ्ज; ( गु. ) करंज, कणझी; ( ते. ) कानगु; ( ता. ) पुग्गुम्; ( म. ) पोन्नम्; ( का. ) होंगे; ( ले. ) पोन्गेमिआ ग्लाब्रा ( Pongamia glabra )

**वर्णन**—करंजके २५–५० फुट ऊँचे वृक्ष होते हैं । पत्ते कोमल, चमकीले गहरे हरे रंगके होते हैं । पुष्प जरा गुलाबी और आसमानी छाया लिये हुए श्वेत वर्णके होते हैं । फल चिपटी सेम होती है ।

**उपयुक्त अंग**—पत्र, त्वचा और तैल ।

**गुण-कर्म—चरके** विरेचनद्रव्येषु ( सू. अ. २ ), कण्डूघ्ने महाकषाये ( सू. अ. ४ ), कटुकस्कन्धे, तिक्तस्कन्धे च ( वि. अ. ८ ), तथा सुश्रुते—

आरग्वधादिगणे, वरुणादिगणे, अर्कादिगणे, श्यामादिगणे, शिरोविरेचने तथा श्लेष्मसंशमने वर्गे (सू. अ. ३९) च करञ्जः पठ्यते। "करञ्जश्चोष्णतिक्तः स्यात् कफपित्तास्रदोषजित्। व्रणप्लीहकृमीन् हन्ति भूतघ्नो योनिरोगहा॥" (ध. नि.)। "करञ्जः कटुकस्तीक्ष्णो वीर्योष्णो योनिदोषहृत्। कुष्ठोदावर्तगुल्माशों व्रणक्रिमिकफापहः॥ तत्पत्रं कफवातार्शःकृमिशोफहरं परम्। भेदनं कटुकं पाके वीर्योष्णं पित्तलं लघु॥ तत्फलं कफवातघ्नं मेहार्शःकृमिकुष्ठनुत्।" (भा. प्र.)। "××× करञ्ज ××× तैलानि तीक्ष्णानि लघून्युष्णवीर्याणि कटूनि कटुविपाकानि सराण्यनिलकफकृमिकुष्ठप्रमेहशिरोरोगापहराणि च।" (सु. सू. अ. ४५)। "करञ्ज ×× फलं जन्तुप्रमेहजित्। रूक्षोष्णं कटुकं पाके लघु वातकफापहम्॥" (सु. सू. अ. ४६)।

करंज तिक्त, कटु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, जीवाणुनाशक, विरेचन, शिरोविरेचन, तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, व्रण, प्लीहरोग, कृमि, योनिरोग, उदावर्त, गुल्म और अर्शका नाश करनेवाला है। करंजके पत्र कटुविपाक, उष्णवीर्य, लघु, भेदन, पित्तकारक तथा कफ, वात, अर्श, कृमि और शोफका नाश करनेवाले हैं। करंजका फल रूक्ष, उष्णवीर्य, कटुविपाक, लघु तथा कफ, वात, प्रमेह, अर्श, कृमि और कुष्ठका नाश करनेवाले हैं। करंजका तैल तीक्ष्ण, लघु, उष्णवीर्य, कटु, कटुविपाक, सारक तथा वात, कफ, कृमि, कुष्ठ, प्रमेह और शिरोरोगको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—बीजमें २७ प्रतिशत तैल होता है। छालमें कटुप्रधान सत्त्व (Alkaloid) और एक अम्लस्वभावी हरे उदी रंगकी राल होती है। करंज कुष्ठघ्न, आमवातघ्न, कृमिघ्न, व्रणशोथहर, व्रणरोपण, कासहर और पाचन है। बीजतैल उत्तम कृमिघ्न और व्रणरोपण है। यह दाद आदि सब प्रकारके त्वग्रोगोंमें अच्छा काम देता है। खाजके जन्तु इससे शीघ्र मरते हैं। वात, शरीरका दर्द और सन्धिशोथमें सर्वत्र तेलकी मालिश करते हैं और पत्तोंको गरम करके उससे सेंकते हैं। व्रण और नाड़ीव्रणमें मूलका स्वरस लगाते हैं। कूकर खाँसीमें बीज पानीमें घीस कर देते हैं। व्रणशोथमें करंज और संभालूकी पत्ती पीसकर बाँधते हैं, इससे सूजन उतर जाती है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (१११) कपिकच्छु।

**नाम**—(सं.) कपिकच्छु, ऋषभी, शूकशिम्बी, ऋष्यप्रोक्ता, आत्मगुप्ता, मर्कटी, वानरी, कच्छुरा, कण्डूला; (हिं.) कौंच, केवाँच; (बं.) आलकुशी; (मा.) किवांच; (म.) खाजकुहिली; (गु.) कौचा, कवच; (ले.) मेक्युना प्रुरिएन्स (Mucuna pruriens)।

**वर्णन**—केंवाचकी लता होती है। पुष्प जामुनी रंगके होते हैं। सेम २–३ इंच लंबी होती है। सेम पर रोम होते हैं। ये रोम कहीं शरीर पर लग जायँ तो वहाँ बड़ी खाज और जलन होती है। पंजाबमें सफेद रंगके कौंचके बीज पन्सारी बेचते हैं। ये चरकने लिखी हुई **काकाण्डोला** नामकी सेमकी जातिके बीज हैं।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) बल्ये ('ऋषभी'नाम्ना), मधुरस्कन्धे (वि. अ. ८) 'ऋष्यप्रोक्ता'नाम्ना तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) विदारिगन्धादौ गणे, वातसंशमने (सू. अ. ३९) च वर्गे ('कच्छुरा'नाम्ना) कपिकच्छुः पठ्यते। "कपिकच्छुर्भृशं वृष्या मधुरा बृंहणी गुरुः। तिक्ता वातहरी बल्या वातपित्तास्रनाशिनी॥" (भा. प्र.)।

केवाँच मधुर, तिक्त, गुरु, वातशमन, बृंहण, बल्य, वाजीकर तथा वात, पित्त और रक्तविकारका नाश करनेवाली है।

**नव्यमत**—बीज पौष्टिक हैं। सेमके ऊपरके रोम उत्तम कृमिघ्न हैं। मूल नाडियोंके लिये उत्तेजक और मूत्रजनन है। गोल कृमि मारनेके लिये एक सेमके ऊपरके रोम गुड़में गोली बनाकर खिलाते हैं। दूसरे दिन विरेचन देते हैं। मूलके क्वाथसे मूत्रका प्रमाण बहुत बढ़ता है, इसलिये वृक्क(गुर्दे)के रोगोंमें देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**उपयुक्त अंग**—बीज और मूल। **मात्रा**—३–६ माशा।

---

## (११२) पारिभद्र।

**नाम**—(सं.) पारिभद्र; (हिं.) फरहद; (बं.) पाल्ते मादार; (म.) पांगारा; (गु.) पांडेरवो, पनरवो; (ले.) एरिथ्रिना इन्डिका (Erythrina indica)।

**वर्णन**—फरहदके १५–४० फूट ऊँचे वृक्ष होते हैं। पत्ते ढाकके जैसे ३ होते हैं। शीतकालके अन्त सब पत्ते झड़ जाते हैं। वसंतमें रक्तवर्णके शुकचञ्चु जैसे पुष्प आते हैं। सेम ·॥· से १ फुट लंबी और उसमें ६–८ बीज होते हैं।

**गुण-कर्म**—"पारिभद्रोऽनिलश्लेष्मशोथमेदःकृमिप्रणुत्। तत्पत्रं पित्तरोगघ्नं कर्णव्याधिविनाशनम्॥" (भा. प्र.)। "पारिभद्रः कटूष्णः स्यात् कफवातनिकृन्तनः। अरोचकहरः पथ्यो दीपनश्चापि कीर्तितः॥" (रा. नि.)।

पारिभद्र कटु, उष्णवीर्य, अरोचकहर, दीपन तथा कफ, वात, शोथ, मेदके रोग और कृमिका नाश करनेवाला है। पारिभद्रके पत्र पित्तरोग और कानके रोगोंको दूर करनेवाले हैं।

**नव्य मत**—छालमें एक प्रकारका क्षारप्रधान वीर्य (Erytherine) मिलता है जो कुचलेके वीर्यका अगद-निवारक माना गया है। छाल ज्वरहर, शोथहर,

श्लेष्मनिस्सारक, कृमिघ्न और स्वप्नजनन है। मस्तिष्क और उसके नीचेके केन्द्रस्थानोंपर छालकी शामक क्रिया होती है अर्थात् उनकी क्रिया मंद होती है या बंद पड़ती है। कुचलेकी क्रियासे इसकी विरुद्ध क्रिया होती है। हृदय पर भी शामक क्रिया होती है। पत्ते शोथहर, व्रणशोधन, आनुलोमिक, मूत्रजनन, स्तन्यजनन और आर्तवजनन हैं। छाल रक्तमिश्रित आँवमें देते हैं। नेत्राभिष्यंदमें छालका आँखकी पलकोंपर लेप करते हैं। ज्वरमें और निद्रा लानेके लिये छाल देते हैं। शोथ, वद, संधिशोथ और व्रणपर पत्तोंका लेप करते हैं। फिरंगोपदंशमें पत्रस्वरस देते हैं। नारियलके पानीके साथ पत्ते उबाल कर बनाया हुआ क्वाथ प्रसूता स्त्रीको रक्त साफ गिरने और दूध बढ़नेके लिये देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

## ( ११३ ) शरपुङ्खा।

**नाम**—( सं. ) शरपुङ्ख, प्लीहशत्रु; ( हिं. ) सरफोंका; ( म. ) उन्हाळी, ( बं. ) बननील; ( पं. ) सरपंख; ( ते. ) वेंपळि; ( ता. ) काट्टकीळुजि, कोळ्ळु क्काय्वेळ्ळै; ( मल. ) कोळिञ्जिल; ( मा. ) बिसूनी, मासो, झोजरू, बांसा; (गु.) शरपंखो; ( क. ) सर्पान ( ख. ); ( ले. ) टेफ्रोसिआ पर्पुरिआ ( Tephrosia purpurea )।

**वर्णन**—शरपुंखाके १॥–३ फुट ऊँचा क्षुप होता है। इसकी पत्तीको दोनों हाथोंकी अंगुलियोंमें पकड़कर तोड़नेसे बीचमें दोनों बाजू बाणके पुंखका आकार होकर टुटती है इसलिये इसको शरपुंख कहते हैं। इसके कांडका अच्छा दतवन बनता है। श्वेत और लाल फुलके भेदसे इसके दो भेद हैं।

**गुण-कर्म**—"शरपुङ्खो यकृत्प्लीह-गुल्म-व्रण-विषापहः। तिक्तः कषायः कासास्रश्वासज्वरहरो लघुः॥" ( भा. प्र. )।

सरफोंका तिक्त, कषाय लघु तथा यकृत्के रोग, प्लीहाके रोग, गुल्म, व्रण, विष, खाँसी, रक्तविकार, श्वास और ज्वरको दूर करता है।

**नव्यमत**—शरपुंखा तिक्त, आनुलोमिक, पित्तसारक, मूत्रजनन, कफघ्न और विषहर है। यकृत् और प्लीहाकी वृद्धिमें इससे अच्छा लाभ होता है। गंडमालामें मूलका लेप करते हैं। खाजमें बीजोंका लेप करते हैं किंवा बीजोंका तेल लगाते हैं। अर्शमें मूलका कल्क छाछके अनुपानसे देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

**उपयुक्त अंग**—मूल अथवा पंचांग। **मात्रा**—३–६ माशा।

---

## ( ११४ ) बाकुची।

**नाम**—( सं. ) बाकुची, सोमराजी, अवल्गुजा; ( हिं. ) बावची, बकुची; ( पं. म., गु. ) बावची; ( बं. ) हाकुच; ( ते. ) भावजि; ( मल. ) कार्कोकिल; ( ले. ) सोरेलिआ कोरिलीफोलिया ( Psoralea corylifolia )।

**वर्णन**—बावचीके २-४ फुट ऊँचे क्षुप होते हैं। पुष्प फीके या जामुनी रंगके होते हैं। बाजारमें काले रंगके सुगन्धि बीज मिलते हैं।

**उपयुक्त अंग**—बीज और तैल।

**गुण-कर्म**—"बाकुची कटुतिक्तोष्णा कृमिकुष्ठकफापहा। त्वग्दोषविषकण्डू-तिश्वित्रप्रशमनी परा॥" (रा. नि.)।

बावची कटु, तिक्त, उष्णवीर्य तथा कृमि, कुष्ठ, कफ, त्वचाके रोग, विष, कण्डू और श्वित्रका नाश करनेवाली है।

**नव्यमत**—बीजोंको जलानेसे ७॥ प्रतिशत राख मिलती है। उसमें मँगेनीझ् (Manganese) होता है। बीजोंमें पुष्कल तैल होता है। बाकुची मृदु उत्तेजक, वातनाडियोंको बलप्रद, कृमिजन्यत्वग्दोषहर, व्रणशोधन और व्रणरोपण है। सफेद कोढ़पर बीजोंका लेप किया जाता है और तेल लगाते हैं। रोग नया हो तो इससे अच्छा लाभ होता है, परन्तु समय अधिक लगता है।

---

## (११५) मुद्गपर्णी।

**नाम**—(सं.) मुद्गपर्णी, क्षुद्रसहा, शूर्पपर्णी; (हिं.) मुगवन; (बं.) मुगानी; (म.) रानमुग; (गु.) अडबाऊ मग, जंगली मग; (ले.) फेझिओलस् ट्राईलोबस् (Phaseolus trilobus)।

**वर्णन**—मुद्गपर्णीकी मूँग जैसी स्वयंजात लता होती है। सेम मूँगकी सेमसे छोटी होती है।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) जीवनीये, शुक्रजनने च महाकषाये, मधुरस्कन्धे, तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) विदारिगन्धादौ, काकोल्यादौ च गणे मुद्गपर्णी पठ्यते। "मुद्गपर्णी हिमा स्वादुर्वातरक्तक्षयापहा। पित्तदाहज्वरान् हन्ति चक्षुष्या कफशुक्रला॥" (रा. नि.)।

मुद्गपर्णी मधुर, शीतवीर्य, जीवनीय, शुक्रजनन, चक्षुष्य, कफकारक तथा वातरक्त, क्षय, पित्त, दाह और ज्वरका नाश करनेवाली है।

**उपयुक्त अंग**—पंचांग, मूल और बीज।

---

## (११६) माषपर्णी।

**नाम**—(सं.) माषपर्णी, महासहा; (हिं.) मषवन, बन उड़द; (बं.) माषानी; (म.) रान उड़द; (गु.) जंगली अड़द; (ले.) टेरॅम्नस् लेबिएलिस (Teramnus labialis)।

**वर्णन**—माषपर्णीकी जंगलोंमें उड़दके जैसी लता होती है। सेम उड़दसे छोटी होती है।

**गुण-कर्म—चरके** ( सू. अ. ४ ) जीवनीये, शुक्रजनने च महाकषाये, मधुरस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) तथा सुश्रुते—( सू. अ. ३८ ) विदारिगन्धादौ, काकोल्यादौ च गणे माषपर्णी पठ्यते । "माषपर्णी रसे तिक्ता वृष्या दाहज्वरापहा । शुक्रवृद्धिकरी बल्या शीतला पुष्टिवर्धिनी ॥" ( रा. नि. ) । "माषपर्णी हिमा तिक्ता स्निग्धा शुक्रबलासकृत् । मधुरा ग्राहिणी शोथवातपित्तज्वरास्रजित् ॥" ( भा. प्र. ) । सहाद्वयं × × × ज्ञेया विपाके मधुरा रसे च बलप्रदा पित्तनिबर्हणाश्च ॥" ( सु. सू. अ. ४६ ) ।

माषपर्णी तिक्त, मधुर, मधुरविपाक, स्निग्ध, शीतवीर्य, वृष्य, बल्य, पुष्टिकारक, कफ और वीर्यको बढ़ानेवाली तथा दाह, ज्वर, शोथ, वात, पित्त और रक्तविकारका नाश करनेवाली है ।

---

## ( ११७ ) शिंशपा ।

**नाम—**( सं. ) शिंशपा, कृष्णसारा; ( हिं. ) शीशम; ( पं. ) शरई ( म. ) शिसव; ( गु. ) सीसम; ( ले. ) डालबर्जिआ लेटिफोलिआ ( Dalbergia latifolia ) ।

**वर्णन—**शीशमका बड़ा वृक्ष होता है । लकड़ी श्यामवर्णकी और बड़ी मजबूत होती है । लकड़ीको कीड़े नहीं लगते इसलिये इससे कुर्सी–टेबल आदि फर्निचर बनाया जाता है ।

**गुण-कर्म—चरके** आसवयोनिसारवृक्षेषु ( सू. अ. २५ ) कषायस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) च तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३ ) सालसारादौ, मुष्ककादौ च गणे शिंशपा पठ्यते । "कटूष्णं कण्डूदोषघ्नं बस्तिरोगविनाशनम् । शिंशपायुगलं वर्ण्यं हिक्काशोथविसर्पजित् ॥" ( ध. नि. ) । "शिंशपा कटुका तिक्ता कषाया दोषहारिणी । उष्णवीर्या हरेन्मेदःकुष्ठश्वित्रवमिकृमीन् ॥ बस्तिरुग्व्रणदाहास्रबलासान् गर्भपातिनी ।" ( भा. अ. ) । × × × शिंशपा × सारस्नेहास्तिक्तकटुकषाया दुष्टव्रणशोधनाः कृमिकफकुष्ठानिलहराश्च ।" ( सु. सू. अ. ४५ ) ।

शीशम कषाय, कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, वर्ण्य, गर्भपात करनेवाली तथा कण्डू, मूत्राशयके रोग, हिक्का, शोथ, विसर्प, मेदके रोग, कुष्ठ, श्वित्र, वमन, कृमि, दाह, रक्तविकार और कफका नाश करनेवाली है । शीशमकी लकड़ीका तैल तिक्त, कटु, कषाय, दुष्टव्रणशोधन तथा कृमि, कुष्ठ और वातविकारका नाश करनेवाला है ।

**यूनानी मत—**शीशम पहले दर्जेमें उष्ण, रूक्ष, रक्तशोधक और पेटके कीड़ोंको मारनेवाला है । इसकी लकड़ीका बुरादा रक्तको शुद्ध करनेके लिये फिरंगोपदंश, कुष्ठ, श्वित्र, खाज, फोड़े-फुंसी और दूसरे त्वचाके रोगोंमें क्वाथ या शर्बत बनाकर देते हैं । इसकी लकड़ीको एक बाजू जलानेसे दूसरी बाजूपर जो स्नेह आता है उसको दादपर लगानेसे लाभ होता है ।

उपयुक्त अंग—सार-लकड़ी। मात्रा ५-७ माशा।

## शिम्बी वर्ग ३४.

## N. O. Leguminosæ

## पूतिकरञ्जादि उपवर्ग २।

## N. O. Cæsalpiniaceæ ( सिसेल्पिनिएसी )

**उपवर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; ऊर्ध्वस्थ गर्भाशय; पर्ण संयुक्त-दल, पक्षाकार; पर्णक्रम एकान्तर; उपपत्र प्रायः होते नहीं; पुष्परचना कलगी या मंजरी जैसी; पुष्पबाह्यकोशके दल ५, बहुधा अलग अलग, एक-एकके ऊपर आये हुए; पुष्पाभ्यन्तर कोशके दल ५; पुंकेशर १०; फल सेम।

---

### (११८) पूतिकरञ्ज।

**नाम**—( सं. ) पूतिकरञ्ज, प्रकीर्य, कण्टकिकरञ्ज, विटपकरंज, कुबेराक्ष; ( हिं. ) करंजुवा, कंजा, काँटाकरंज; ( म. ) सागरगोटा; ( गु. ) कांकच, कांचका; ( बं. ) नाटाकरंज; ( ले. ) सिसेल्पिनिआ क्रिस्टा ( Caesalpinia crista )।

**वर्णन**—करंजुवाकी कांटेदार लता या गुल्म होता है। पुष्प पीले रंगके होते हैं। फल ( सेम ) पर कांटे होते हैं। सेममें दो बीज होते हैं। बीजका कवच सख्त होता है। बीजोंको वे फूलें इतना सेंक, फोड़कर अंदरका मग्ज निकालकर काममें लिया जाता है।

**गुण-कर्म**—"स्रंसनं कटुकं पाके लघु वातकफापहम्। शोथघ्नमुष्णवीर्यं च पत्रं पूतिकरञ्जजम्॥" ( सु. सू. अ. ४६ )। "विरेचने प्रयोक्तव्यः पूतीकः" ( च. सू. अ. १ )। सुश्रुते ( सू. अ. ३९ ) अधोभागहरद्रव्येषु पूतीकपत्रं पठ्यते। "कुबेराक्षं यकृत्प्लीहवातघ्नं व्रणरोपणम्।" ( शो. नि. )।

करंजुवाके पत्र विपाकमें कटु, लघु, उष्णवीर्य, विरेचक तथा वात, कफ और शोथका नाश करनेवाले हैं। करंजुवाकी छाल रेचन है। करंजुवाका फल यकृत् और प्लीहाके रोग तथा वायुका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—बीजोंमें तैल २५, तिक्तद्रव्य २, क्षार ३$\frac{3}{4}$, मांसल द्रव्य ( प्रोटीन ) २० और पिष्ट ( स्टार्च ) ३५$\frac{1}{2}$ प्रतिशत है। तिक्तद्रव्य श्वेतवर्ण है। वह मद्य और तैलमें घुल जाता ( विलेय ) है, जलमें घुलता नहीं। करञ्जुवा उत्तम ज्वरघ्न है। शीतज्वरमें पत्रस्वरस हींगके साथ या बीजोंका चूर्ण काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर

देते हैं । सूतिकाज्वरमें करंजुवा अनेक प्रकारसे लाभ पहुँचाता है । इससे ज्वर कम होता है, गर्भाशयका संकोचन होता है, पेटकी पीड़ा बंद होती है, रक्त अच्छीतरह गिरता है और जख्म पड़ा हो तो वह शीघ्र भर आता है। सूतिकावस्थामें ज्वर न हो तो भी करंजुवा देना अच्छा है । ज्वरांत दौर्बल्यको दूर करनेके लिये देते हैं । यह उत्तम कटुपौष्टिक औषध है। इसमेंका तिक्त द्रव्य कुनैन जैसा विषमज्वरप्रतिबन्धक है। बीजोंको दबाकर निकाला हुआ तैल आमवातमें लगाया जाता है । अंडशोथमें इसे खिलाते हैं और इसका लेप करते हैं। पत्रस्वरस यकृत्के रोग, कुष्ठ और उपदंशकी द्वितीयावस्थामें देते हैं। पेटके दर्दमें बीज और लवंगका चूर्ण देते हैं । कुपचनमें बीज और काली मिर्चका चूर्ण देते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**उपयुक्त अंग**—बीजोंका मग्ज, पत्रस्वरस और मूल ।

**मात्रा**—मग्ज १०-२० रत्ती, मूलचूर्ण १०-१५ रत्ती; पत्रस्वरस १-२ तोला।

---

## (११९) पतङ्ग।

**नाम**—(सं.) पतङ्ग; (हिं., बं.) बकम; (गु., म.) पतंग; (ते.) बुक्कपुचेट्टु; (ता.) शप्पंगु, वरत्तंगि; (मल.) चप्पङ्ङम्, पत्तङ्ङम्; (ले.) सिसेलिपनिआ सापन् (caesalpinia sappan)।

**वर्णन**—पतंगके बड़े वृक्ष मलबारकी ओर होते हैं । लकड़ी लाल चंदन जैसी, फीके लाल रंगकी ओर निर्गन्ध होती है ।

**गुण-कर्म**—"पतङ्गं मधुरं वर्ण्यं तिक्तं पित्तकफापहम् ।" (ध. नि.)।

पतंग मधुर, तिक्त, वर्ण्य तथा पित्त और कफका नाश करनेवाला है ।

**नव्य मत**—पतंग ग्राही, रक्तसंग्राहक, गर्भाशयका उत्तेजक और संकोचक, श्लेष्मघ्न और व्रणरोपण है । रक्तस्राव बंद करनेके लिये पतंगका क्वाथ पिलाते हैं और क्वाथमें कपड़ा भिगोकर उस व्रणपर बाँधते हैं। फुप्फुस, आँत, गर्भाशय आदिके रक्तस्रावपर पतंगसे अच्छा लाभ होता है । रक्त और श्वेत प्रदरमें पतंगके क्वाथकी बस्ति देते हैं । अतिसारमें पतंग उपयोगी है । पतंग और बनफ्शाके क्वाथसे मांसार्बुद( केन्सर )के व्रणको धोनेसे पीड़ा और दुर्गन्ध कम होती है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## (१२०) अम्लिका।

**नाम**—(सं.) अम्लिका, चिञ्चा; (हिं.) इमली; (बं.) तेतुल; (क.) तम्बर (म.) चिंच; (गु.) आंबली; (ते.) चिन्त; (ता.) आंबिळम्, शिञ्जम्, पुळि; (मल.) कोलपुळि; (फा.) तमरेहिंदी; (ले.) टॅमेरिन्डस इन्डिका (Tamarindus indica)।

**वर्णन**—इमली भारतवर्षमें सर्वत्र होती है और प्रसिद्ध है।

**गुण-कर्म**—"अम्लिकायाः फलं पक्वं तस्मादल्पान्तरं गुणैः।" (च. सू. अ. २७)। "अम्लिकायाः फलं त्वाममत्यम्लं लघु पित्तकृत्। पक्वं तु मधुराम्लं स्याद्भेदि विष्टम्भवातजित्॥ चिञ्चापत्रं तु शोथघ्नं रक्तदोषव्यथापहम्। तस्य शुष्कत्वचाक्षारः शूलमन्दाग्निनाशनः॥" (भा. प्र.)। "पूर्वं तोये वासरं वासितानां चिञ्चास्थीनां दुग्धकल्कीकृतानाम्। पीत्वा कर्षं सुन्दरीपूरुषौ द्रागस्थिस्रावात् सोमरोगाच्च मुक्तौ॥" (वै. म.)।

इमलीका फल कोकमके फलसे कुछ न्यून गुणवाला है। इमलीका कच्चा फल अत्यन्त खट्टा, लघु और पित्तकर है। पका हुआ फल मधुर, अम्ल, भेदन तथा विष्टम्भ और वायुको दूर करनेवाला है। इमलीकी पत्तियोंका लेप शोथ, रक्तविकार और पीड़ाको शांत करनेवाला है। इमलीकी फलकी शुष्क त्वचाका क्षार पेटके दर्द और मन्दाग्निको दूर करनेवाला है। एक तोले इमलीके बीजोंको रातभर जलमें भिगो, सवेरमें उनके छिलके निकाल, दूधमें पीसकर दूधके अनुपानसे खानेसे अस्थिस्राव और सोमरोग नष्ट होता है।

**नव्यमत**—इमलीमें चिञ्चाम्ल (टार्टरिक् एसिड्) ९, जम्बीराम्ल (सायट्रिक् एसिड्) ९ और यवक्षारमिश्रित चिञ्चाम्ल (पॉटेशियम् बाईटार्टरेट्) ७ प्रतिशत होता है। इमलीका गूदा पिपासाघ्न, रोचक, दाहशामक, आनुलोमिक और रक्तपित्त-प्रशमन है। फलत्वचाकी राख क्षारस्वभावी, मूत्रजनन और आनुलोमिक है। फूल शोथघ्न और रक्तसंग्राहक हैं। पित्तज्वरमें कब्ज और दाह दूर करनेके लिये इमलीका पानक देते हैं। इसके साथ अमलतासका गूदा मिलाया जाय तो अच्छा है। बीज प्रमेहवालोंको देते हैं। व्रणशोथपर पत्रकल्क बाँधते हैं। नेत्राभिष्यन्दमें पुष्पकल्क आँखपर बाँधते हैं **(डॉ. वा. ग. देसाई)**।

---

## (१२१) काञ्चनार-कोविदार।

**नाम**—(सं.) काञ्चनार, कोविदार, उद्दाल, युग्मपत्र; (हिं.) कचनार; (पं.) कचनाल, कुलाड़; (म.) कोरळ, कांचन; (गु.) चंपाकाटी; (बं.) काञ्चन; (ते.) देवकाञ्चनमु; (ता.) मंदारै; (मल.) शु(चु)वन्नमन्दारम्; (ले.) बोहिनिआ वेरिएगेटा (Bauhinia Variegata)।

**वर्णन**—कचनार भारतवर्षमें सर्वत्र होता है। पुष्पके वर्णभेदसे इसके रक्त (लाल फूलवाला) काञ्चनार और श्वेत (सफेद फूल वाला) काञ्चनार ये दो भेद हैं। पत्रका अग्रभाग मध्यमें दबा हुआ (नताग्र) होता है, मानो दो पत्र जुड़े हुए हों ऐसा मालूम होता है, इसलिये इसको **युग्मपत्र** कहते हैं। कचनारकी अविकसित पुष्पकलिकाका शाक बनाया जाता है।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) वमनोपगे महाकषाये तथा सुश्रुते—( सू. अ. ३९ ) ऊर्ध्वभागहरे गणे, कषायवर्गे च कोविदारः पठ्यते । "कोविदार- × × पुष्पाणि मधुराणि मधुरविपाकानि रक्तपित्तहराणि च ।" ( सु. सू. अ. ४६ )। " × कोविदारस्य × × × । पुष्पं ग्राहि प्रशस्तं च रक्तपित्ते विशेषतः ।" ( च. सू. अ. २७ )। "काञ्चनारो हिमो ग्राही तुवरः श्लेष्मपित्तहृत् । कृमिकुष्ठगुदभ्रंशगण्ड-मालाव्रणापहः ॥ कोविदारोऽपि तद्वत् स्यात्तयोः पुष्पं लघु स्मृतम् । रूक्षं संग्राहि पित्तास्रप्रदरक्षयकासनुत् ॥" ( भा. प्र. )।

कचनार कषाय, शीतवीर्य, ग्राही, ऊर्ध्वभागहर तथा कफ, पित्त, कृमि, कुष्ठ, गुदभ्रंश, गण्डमाला और व्रणका नाश करनेवाला है । कचनारके फूल मधुर, मधुरविपाक, रूक्ष, ग्राहि तथा रक्तपित्त, पित्त, रक्तविकार, प्रदर, क्षय और खाँसीका नाश करनेवाले हैं ।

**नव्यमत**—कचनारकी क्रिया त्वचा और रसग्रन्थियोंपर होती है । कचनार ग्राही, व्रणशोधन और व्रणरोपण है । बड़ी मात्रामें देनेसे वमन होता है । गण्डमाला और अपचीमें छालका क्वाथ गूगलके साथ देते हैं । इससे व्रण धोते हैं । रोग नया हो तो इससे लाभ होता है ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

**उपयुक्त अंग**—पुष्प और छाल । **मात्रा**—६ माशा ।

**काञ्चनारप्रधानयोग**—काञ्चनारगुग्गुलु ( शा. म. खं. अ. ७ ) ।

---

## ( १२२ ) अशोक ।

**नाम**—( सं. ) अशोक; ( हिं., म., गु. ) अशोक; ( ते. ) अशोकमु, ( ता. ) अशोघम्, अचोकम्; ( मल. ) अशोकम्; ( ले. ) सराका इन्डिका ( Saraca indica ) ।

**वर्णन**—अशोकका बड़ा आमके सदृश वृक्ष होता है । पत्ते आमके जैसे होते हैं । कोमल पत्ते अरुणवर्ण और मृदु, बड़े होने पर हरे रंगके हो जाते हैं । पुष्प गुच्छोंमें लगते हैं । पुष्प आरंभमें पीलापनलिये हुए लाल और पीछे गहरे लाल रंगके हो जाते हैं । सेम चिपटी और चौड़ी होती है । सेममें ८-१० बीज होते हैं ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) वेदनास्थापने महाकषाये, कषायस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) च तथा सुश्रुते—( सू. अ. ३८ ) रोध्रादिगणे अशोकः पठ्यते । "अशोकः शीतलस्तिक्तो ग्राही वर्ण्यः कषायकः । शोषापचीतृषादाहकृमिशोथ-विषास्रजित् ॥" ( भा. प्र. ) । "अशोकस्य त्वचा रक्तप्रदरस्य विनाशिनी ।" ( शोढलः ) ।

अशोक कषाय, तिक्त, वेदनास्थापन, ग्राही, वर्ण्य तथा शोष, अपची, तृषा, दाह,

कृमि, शोथ, विष और रक्तविकारको दूर करनेवाला है। अशोककी छाल रक्तप्रदरका नाश करने वाली है।

**नव्यमत**—अशोक वेदनास्थापन, ग्राही और रक्तसंग्राहक है। गर्भाशयकी शिथिलतासे उत्पन्न अत्यार्तवमें इसका अच्छा उपयोग होता है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

अशोक रक्तप्रदर, श्वेतप्रदर, आर्तवशूल आदि गर्भाशयके रोगोंमें उत्तम गुणकारी है।

**उपयुक्त अंग**—छाल। **मात्रा**-१-२ तोला। छालका क्षीरपाक करके देना चाहिये।

**अशोकप्रधानयोग**—अशोकारिष्ट (सि. यो. सं. स्त्रीरोगाधिकार); अशोकघृत (भै. र. प्रदररोगाधिकार)।

---

## (१२३) आरग्वध।

**नाम**—(सं.) आरग्वध, राजवृक्ष, आरेवत, चतुरङ्गुल, कृतमाल, प्रग्रह, शम्पाक, कर्णिकार; (क.) फलूस; (हिं.) अमलतास; (पं.) गिर्दनली; (म.) बाहवा; (बं.) सोंदाल; (गु.) गरमालो; (मा.) गिरमालो, किरमाल; (सिंध) छिमकणी; (ते.) आरग्वधमु, रेल, कोलपोन्ना; (ता.) कोंडै, इराधविरुट्टम्; (मल.) कणिकोन्ना; (अ.) खियारशंबर; (ले.) कॅसिआ फिस्चूला (Cassia fistula)।

**वर्णन**—अमलतासके वड़े वृक्ष होते हैं। पर्ण संयुक्त १-$\frac{१}{२}$ लंबे। चैत्र-वैशाखमें पीले रंगके सुंदर पुष्प लगते हैं। सेम गोल, १-१॥ फुट लंबी होती है। सेमके भीतर काले रंगका गूदा होता है।

**उपयुक्त अंग**—फलमज्जा, मूल और पत्र।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. २) विरेचनद्रव्येषु; (सू. ४) कुष्ठघ्ने ('आरग्वध'नाम्ना), कण्डूघ्ने ('कृतमाल'नाम्ना) महाकषाये, तिक्तस्कन्धे (वि. अ. ८) तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) आरग्वधादौ, श्यामादौ च गणे, अधोभागहरद्रव्येषु (सू. अ. ३९) च आरग्वधः पठ्यते। "चतुरङ्गुलो मृदुविरेचनानां" (च. सू. अ. २५)। "ज्वरहृद्रोगवातासृगुदावर्तादिरोगिषु। राजवृक्षोऽधिकं पथ्यो मृदुर्मधुरशीतलः॥ बाले वृद्धे क्षते क्षीणे सुकुमारे च मानवे। योज्यो मृद्वनपायित्वाद्विशेषाच्चतुरङ्गुलः॥ फलकाले फलं तस्य ग्राह्यं परिणतं च यत्। तेषां गुणवतां भारं सिकतासु निधापयेत्। सप्तरात्रात् समुद्धृत्य शोषयेदातपे भिषक्। ततो मज्जानमुद्धृत्य शुचौ भाण्डे निधापयेत्॥" (च. क. अ. ८)। "आरग्वधो

गुरुः स्वादुः शीतलो मृदुरेचनः। तत्फलं स्रंसनं रुच्यं कुष्ठपित्तकफापहम्॥ ज्वरे तु सततं पथ्यं कोष्ठशुद्धिकरं परम्॥" (भा. प्र.)।

अमलतास मधुर, तिक्त, मृदु, शीतवीर्य, गुरु, मृदुरेचन, रुचिकारक तथा कुष्ठ, कण्डू, ज्वर, हृद्रोग, वातरक्त, उदावर्त तथा कफका नाश करनेवाला और ज्वरमें कोष्ठशुद्धिके लिये उत्तम है। यह मृदु और अनपायि (किसी प्रकारकी हानि न करनेवाला) होनेसे बालक, वृद्ध, क्षतक्षीण और सुकुमारोंको विरेचनके लिये प्रशस्त है।

**नव्यमत**—अमलतास आनुलोमिक, दाहशामक और वेदनास्थापन है। रक्तमें उष्णता बढ़ी हो और शरीरमें मलसंचय होकर वातरक्त, आमवात आदि रोग हुए हों तब अमलतास विरेचनके लिये देते हैं। यह सौम्य होनेसे बालक, स्त्री आदि सुकुमार प्रकृतिवालोंको भी दिया जाता है। पित्तकी प्रधानता हो तो इसके साथ इमली देते हैं। शीतकी प्रधानता हो तो इसके साथ निसोथ देते हैं। यकृत्की क्रिया ठीक न होती हो तब मकोयके साथ देते हैं। व्रणशोथ, वातरक्त और आमवातके शोथमें मग्ज(और पत्ती)का लेप करते हैं। गलेकी ग्रन्थि (टॉन्सिल) सूजकर पानी गलेमें न उतरता हो तब १ तोला छालका क्राथ करके थोड़ा थोड़ा मुँहमें डालते हैं। इससे ग्रन्थिशोथ शीघ्र उतरता है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**यूनानीमत**—अमलतास उष्ण, स्निग्ध, शोथघ्न और सारक है। अन्य योग्य औषधोंके साथ मिलाकर प्रत्येक दोषके विरेचनके लिये दिया जाता है। हर एक उमर(अवस्था)में और गर्भिणी स्त्रियोंको दे सकते हैं। खाँसी, दमा और वक्षःस्थलकी खुश्कीको दूर करनेके लिये इसका अवलेह बनाकर देते हैं। शोथोंको विलीन करनेके लिये इसका लेप करते हैं। यकृत्का सुद्दा (विबन्ध), कामला, यकृतका शोथ और उष्णतासे उत्पन्न ज्वरोंमें इसका प्रयोग करते हैं। गलेकी सूजनमें मकोयके स्वरस या गायके दूधमें मिला और क्राथ करके कुल्ले कराते हैं। अमलतासके फूलोंका गुलकंद बनाकर खाँसीमें और दस्तकी कब्जियत दूर करनेके लिये देते हैं। अमलतासके मग्जको पकानेसे उसका प्रभाव न्यून होता है, अतः क्राथको आगपरसे नीचे उतारकर पीछे उसमें अमलतासका गूदा मिलाते हैं। अमलतासका गूदा देरतक आँतोंमें चिपका रहता है, इसलिये इसको थोड़ा बादामका तेल लगाकर उपयोगमें लेना चाहिये।

---

## (१२४) चक्रमर्द।

**नाम**—(सं.) चक्रमर्द, प्रपुन्नाड, एडगज; (हिं.) पवाँड़, चकवड़; (बं.) चाकुंदा; (म.) टाकळा; (गु.) कुवाडियो; (ते.) तगिरिसे, तंट्टेमु; (ता.) तघ(क)रै; (मल) पोन्नांतकरा, तघर; (ले.) कॅसिआ टोरा (Cassia tora)।

**वर्णन**—चक्रमर्दका क्षुप २–५ फुट ऊँचा होता है। पर्ण संयुक्तदल। एक पर्णमें छः दल होते हैं। फूल पीले रंगके होते हैं। सेम लंबी और पतली होती है। एक सेममें २०–३० बीज होते हैं।

**गुण-कर्म—सुश्रुते** (सू. अ. ३९) ऊर्ध्वभागहरद्रव्येषु प्रपुन्नाडः पठ्यते। "चक्रमर्दः कटूष्णः स्यान्मेदोवातकफापहः। दद्रूकण्डूहरः कान्तिसौकुमार्यकरो मतः॥" (ध. नि.)। "चक्रमर्दो लघुः स्वादू रूक्षः पित्तानिलापहः। हृद्यो हिमः कफश्वासकुष्ठदद्रूकृमीन् हरेत्॥ हन्त्युष्णं तत्फलं कुष्ठकण्डूदद्रूविषानिलान्। गुल्मकासकृमिश्वासनाशनं कटुकं स्मृतम्॥" (भा. प्र.)। "कफापहं शाकमुक्तं वरुणप्रपुनाडयोः। रूक्षं लघु च शीतं च वातपित्तप्रकोपणम्॥" (सु. सू. अ. ४६)।

पवाँड कटु, मधुर, उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु तथा मेद, वात, कफ, दाद, खाज, श्वास, कुष्ठ, और कृमियोंका नाश करनेवाला है। पवाँडके बीज कटु, उष्णवीर्य तथा कुष्ठ, कण्डू, दाद, विष, वायु, गुल्म, खाँसी, कृमि और श्वासका नाश करनेवाले हैं। पवाँडका शाक रूक्ष, लघु, शीतवीर्य, वातपित्तप्रकोपक तथा कफनाशक है।

**नव्यमत**—पवाँडकी पत्तियोंमें सनाय जैसा विरेचन द्रव्य है। इसकी क्रिया त्वचापर होती है। इसको सब प्रकारके त्वचाके रोगोंमें देते हैं। त्वचा मोटी हो गयी हो तो इससे विशेष लाभ होता है। त्वचाके रोगोंमें पत्तियोंका साग खिलाते हैं और बीजोंको नीबूके रसमें पीसकर लगाते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (१२५) कासमर्द।

**नाम**—(सं.) कासमर्द; (हिं.) कसौंदी; (बं.) कासन्दा; (म.) कासविंदा; (गु.) कासोंदरो; (ते.) कासिन्द; (ता.) पेयाविरै; (मल.) पोन्नाविरम्; (का.) दोड्डुतगचे; (ले.) कॅसिआ ओक्सिडेन्टेलिस (Cassia occidentalis)।

**वर्णन**—कसोंदीके ३–६ फुट ऊंचे क्षुप वर्षाऋतुमें होते हैं। देखनेमें ये चकवड़ जैसे होते हैं। पर्ण संयुक्तदल; पर्णक्रम एकांतर; पुष्प पीले रंगके; सेम चपटी, ४–५ इंच लंबी होती है। सेममें १०–३० बीज होते हैं।

**गुण-कर्म—सुश्रुते** (सू. अ. ३८) सुरसादिगणे कासमर्दः पठ्यते। "कासमर्दः सतिक्तोष्णो मधुरः कफवातजित्। अजीर्णकासपित्तघ्नः पाचनः कण्ठशोधनः॥" (रा. नि.)। "कासमर्दकपत्राणां यूषः × ×। × × × हिक्काश्वासनिवारणः॥" (च. चि. अ. १७)।

कसौंदी कुछ तिक्त, मधुर, उष्णवीर्य, पाचन, कण्ठशोधन तथा कफ, वात, पित्त, अजीर्ण, खाँसी, हिक्का और श्वासका नाश करनेवाली है।

**नव्यमत**—कसौंदीकी पत्तियोंमें सनाय जैसा विरेचन द्रव्य है । क्षुपके इतर भागकी अपेक्षया बीजोंमें विरेचन सत्त्व अधिक होता है । बीजोंको सेंकनेसे उनके अंदरका विरेचन सत्त्व नष्ट होता है और उसमें कॉफी ( कहवा ) जैसा स्वाद उत्पन्न होता है । इनकी कॉफी तैयार करके पीते हैं । कसौंदी कफघ्न, संकोचविकासप्रतिबन्धक ( आक्षेपहर ), स्रंसन और जरा मूत्रजनन है । बीज ज्वरहर, कुष्ठघ्न; मूल मूत्रजनन, कुष्ठघ्न, ज्वरहर और बल्य; तथा पंचांग रेचन है । कूकरखाँसीमें पत्रस्वरसमें शहद मिलाकर देते हैं । कफज्वरमें पत्रस्वरस देते हैं, इससे श्वासनलिकाओंके संकोचविकाससे होनेवाला त्रास कम होता है । पंचांगके क्वाथसे पेटका वायु सरता है, मरोड़ कम होता है और दस्त साफ होता है । पत्तियोंको पीसकर व्रणशोथ और विसर्प पर लेप करते हैं । मूलसे पेशाब बढ़ता है, इसलिये उदररोग और जलशोथमें देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## ( १२६ ) आवर्तकी ।

**नाम**—( सं. ) आवर्तकी, चर्मरङ्गा, पीतपुष्पा; ( म. ) तरवड, ( गु. ) आवळ; ( ते. ) तंगेडु; ( ता. ) आविरै; ( मल. ) आविरम्; ( का. ) आवरिके; ( ले. ) कॅसिआ ओरिक्युलेटा ( Cassia auriculata ) ।

**वर्णन**—आवळका ३–१० फुट ऊँचा बहुशाखायुक्त क्षुप होता है । पुष्प पीले रंगके होते हैं । सेममें १०–२० बीज होते हैं । छाल चमडे रंगनेके काममें आती है । यह गुजरात, महाराष्ट्र और मारवाड़में अधिक होता है ।

**गुण-कर्म**—"आवर्तकी तिक्तशीता कषाया ग्राहिणी तथा । मुखरुक्कुष्ठकण्डूतिजन्तुशूलव्रणापहा ॥ तत्पुष्पं मधुमेहघ्नं चक्षुष्यं तृड्विनाशनम् ।

आवर्तकी तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, ग्राही तथा मुखरोग, कुष्ठ, कण्डू, कृमि, शूल और व्रणको दूर करनेवाली है । पुष्प मधुमेह और तृषाका नाश करनेवाले हैं ।

**नव्य मत**—आवर्तकी जोरदार ग्राही है । इससे सर्व शरीरको बल मिलता है । मधुमेहमें फूल अथवा बीजोंका चूर्ण ३० गुंजाकी मात्रामें देते हैं । इससे तृषा और मूत्रका प्रमाण कम होता है । शुक्रस्रावमें पुष्प देते हैं । अत्यार्तव और जीर्ण आँवमें पंचांगका क्वाथ देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## ( १२७ ) मार्कण्डी ।

**नाम**—( सं. ) मार्कण्डी; ( हिं. ) सनाय; ( म. ) सोनामुखी, ( गु. ) मींढी आवल, सोनामखी; ( अ. ) सनाय मक्की; ( ले. ) केसिआ एन्ग्युस्टिफोलिआ ( Cassia angustifolia ) ।

**वर्णन**—सनाय मद्रास प्रांतके तिनेवेल्ली जिलेसे और अरबस्तानसे आती है ।

**उपयुक्त अंग**—पत्र और सेम । **मात्रा** पत्ती १–३ माशा; सेम १०–२० । सेमको गरम जलमें ६ घंटा भिगो, हाथसे मसल, कपड़ेसे छान कर देते हैं ।

**गुण-कर्म**—"मार्कण्डिका कुष्ठहरी ऊर्ध्वाधःकायशोधनी । वातरुक्कृमिकासघ्नी गुल्मोदरविनाशिनी ॥" ( नि. सं. ) ।

सनाय विरेचक, वामक तथा वातरोग, कृमि, खाँसी गुल्म और उदररोगको दूर करनेवाली है ।

**नव्यमत**—सनाय रेचन है । थोड़े प्रमाणमें देनेसे पचनक्रिया सुधरकर दस्त साफ होता है । बड़े प्रमाणमें देनेसे पेटमें मरोड़ा आकर जुलाब होते हैं । इसकी मुख्य क्रिया छोटी आँतों पर होती है । सनाय यकृत्के लिये भी थोड़ी उत्तेजक है । सनायसे पेटमें ऐंठन न हो इसलिये उसके साथ सोंठ-सौंफ जैसे सुगन्धि द्रव्य तथा सैंधव या मिश्री मिलाते हैं । सनाय दूधके द्वारा शरीरसे बाहर आती है इसलिये माको सनाय दी गई हो तो बच्चेको भी दस्त होते हैं । कुपचन और दस्त साफ न होनेसे शरीरमें मलसंचय हुआ हो तब सनायका जुलाब देते हैं । पित्तज्वरमें सनाय-अमलतास आदिका जुलाब देना शास्त्रशुद्ध है । इससे दूषित पित्त और पित्तके साथ ज्वरकारक विष शरीरसे बाहर निकल जाते हैं और नवीन शुद्ध पित्त उत्पन्न होता है तथा ज्वरघ्न औषध अपना कार्य अच्छे प्रकारसे करते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## ( १२८ ) चक्षुष्या ।

**नाम**—( सं. ) चक्षुष्या, अरण्यकुलत्थिका; ( क. ) कीड, निन्द्रताछ; ( हिं. ) चाकसू; ( म. ) चिनोळ; ( गु. ) चिमेड, चमेड; ( सिं. ) चवर; ( ले. ) कॅसिआ एब्सस ( Cassia absus ) ।

**वर्णन**—चाकसूके काले रंगके चिकने बीज बाजारमें मिलते हैं । बीजका कवच निकाल देनेसे भीतर फीके पीले रंगका मगज मिलता है । उसका स्वाद कडुआ होता है ।

**उपयुक्त अंग**—फलमज्जा ।

**गुण-कर्म**—"आनाहमेदोगुदकीलहिक्काश्वासापहः शोणितपित्तकृच्च । कफस्य हन्ता पवनामयघ्नो विशेषतो वन्यकुलत्थ उक्तः ॥" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "हिमा प्रोक्ता कषाया च विषं स्थावरजङ्गमम् । निहन्ति योजिता सम्यङ्नेत्रस्रावाननेकशः ॥ सा च विस्फोटकण्डूर्तिव्रणदोषनिबर्हणी ।" ( ध. नि. ) ।

चाकसू कषाय, शीतवीर्य, रक्तपित्तकर तथा स्थावर और जंगम विष, नेत्रस्राव, विस्फोटक, कण्डू, व्रणदोष, आनाह, मेद, अर्श, हिक्का, श्वास, कफरोग और वातरोगका नाश करनेवाली है ।

**नव्यमत**—बीजोंको जलानेसे २½ प्रतिशत राख मिलती है । उसमें मेंगेनीझका अंश होता है । **गुण**—संग्राहक और नेत्राभिष्यन्दप्रशमन। पूययुक्त नेत्राभिष्यन्दमें बीजोंके मग्जका चूर्ण आधी रत्ती पलकके भीतर डालते हैं, इससे अच्छा लाभ होता है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

**यूनानी मत**—चाकसू दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, रक्तसंग्राहक, ग्राही, लेखन, शोथविलयन, चक्षुष्य और नेत्ररोगोंमें हितकर है । चाकसूके बीजके इक्कीस दाने श्वेतचंदन ५ माशेके साथ रातको जलमें भिगो, सवेरमें जलको कपड़ेसे छानकर पीनेसे पेशाबमें रक्त आता हो तो बंद होता है । चाकसू लेखन और शोथविलयन होनेसे नेत्ररोगोंमें इसका प्रयोग करते हैं । बीजोंको पानीमें साने हुए गेंहूके आटेमें रख, भूभलमें गरम कर, छिलका निकाल कर नेत्ररोगोंमें प्रयोग किया जाता है ।

---

## ( १२९ ) शमी ।

**नाम**—( सं. ) शमी; ( हिं. ) छोंकर, छिकुर; ( पं. ) जंड; ( बं. ) शाँई; ( म. ) शमी; ( गु. ) समडी, खीजडो; ( मा. ) खेजडो, जाट, जांटी ( वृक्ष ), सांगर( फली ); ( सिंध ) कंडी; ( ते. ) जम्मि; ( ता. ) परंबै, वण्णि; ( मल. ) परंबु, वन्नि; ( ले. ) प्रोसोपिस स्पिसिजेरा ( Prosopis spicigera )।

**वर्णन**—शमीके काँटेदार वृक्ष जांगल देशमें अधिक होते हैं । पत्र खैर या बब्बूलके तुल्य, छोटे; पुष्प श्वेताभ पीत; कच्ची फलियोंका साग बनाकर मारवाड़ और पंजाबमें खाते हैं । हिंदुलोग दशहराके दिन शमीके वृक्षका पूजन करते हैं ।

**गुण-कर्म**—**चरके ( वि. अ. ८ ) कषायस्कन्धे शमी पठ्यते । "शमीफलं गुरु स्वादु रूक्षोष्णं केशनाशनम् ।" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "गुरूष्णं मधुरं रूक्षं केशघ्नं च शमीफलम् ।" ( च. सू. अ. २७ ) । "शमी रूक्षा कषाया च रक्तपित्तातिसारजित् ।" ( रा. नि. )** ।

शमी कषाय, रूक्ष तथा रक्तपित्त और अतिसारको दूर करनेवाली है । शमीका फल मधुर, गुरु, रूक्ष, उष्णवीर्य तथा केशको हानि करनेवाला है ।

---

# शिम्बीवर्ग ३४.

## बब्बूलादि उपवर्ग ३ ।

## N. O. Mimosaceæ ( माईमोसेसी ) ।

**उपवर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; पर्ण-सदल, पक्षाकार; पुष्पविन्यास प्रायः कन्दुकाकार; पुष्प बहुत सूक्ष्म, पुष्पसमूहमें समीप-समीप लगे हुए;

पंखडियाँ समान ( छोटी-बड़ी नहीं ), किनारी समीप-समीप आई हुई और तलभागमें जुड़ी हुई; सेम चपटी; सन्धिस्थानपरसे फटनेवाली ।

---

## ( १३० ) बब्बूल ।

**नाम—( सं. )** बब्बूल; **( पं. )** किक्कर; **( हिं. )** बबूल, बबूर, कीकर; **( म. )** बाभूल; **( बं. )** बाबला; **( गु. )** बावल; **( मा. )** बावलियो; **( सिंध )** बबुर; **( ते. )** नल्लतुम्म; **( ता. )** करुवेल ; **( मल. )** करुवेलम्; **( अ. )** समग अरबी ( गोंद ); **( ले. )** अॅकेसिआ अरेबिका ( Acacia arabica ) ।

**वर्णन**—बब्बूलका वृक्ष प्रसिद्ध है । इसकी कोमल शाखाका दतवन करते हैं। पुष्प पीले रंगके; फली चिपटी, ८–१२ बीजयुक्त; दो बीजोंके बीचमें फली दबी हुई होती है । छाल चमड़ा रंगनेके काममें आती है । इससे कुछ ललाई लिये हुए सफेद रंगका गोंद निकलता है ।

**गुण-कर्म**—"बब्बूलस्तुवरः शीतः कुष्ठकासामयापहः । आमरक्तातिसारघ्नः पित्तार्शोदाहनाशनः ॥ बब्बूलस्य फलं रूक्षं विशदं स्तम्भनं गुरु । बब्बूलस्य तु निर्यासो ग्राही पित्तानिलापहः ॥ रक्तातिसारपित्तास्रमेहप्रदरनाशनः । भग्नसन्धानकः शीतः शोणितस्रुतिवारणः ॥" ।

बबूल कषाय, शीतवीर्य तथा कुष्ठ, खांसी, आँव, रक्तातिसार, पित्त, अर्श और दाहका नाश करनेवाला है । बब्बूलकी फली रूक्ष, विशद, स्तम्भन और गुरु है । गोंद ग्राही, शीतवीर्य, संधानीय तथा पित्त, वात, रक्तातिसार, प्रमेह, प्रदर और रक्तस्रावको दूर करनेवाला है । बब्बूलकी छालकी रसक्रियामें शहद मिलाकर अंजन करनेसे नेत्रस्राव दूर होता है ।

**नव्यमत**—सेममें २२ प्रतिशत कषायद्रव्य है। छाल अच्छी संग्राहक तथा गोंद स्नेहन, ग्राही और पौष्टिक है । छालके क्काथसे मुखरोग, दाँतोंके हिलने और गलेकी शिथिलतामें कुल्ले करते हैं । गुदभ्रंशमें बाहर आये हुए अंगपर छालके क्काथमें कपड़ा भिगोकर रखते हैं । गोंद मुँहमें रखनेसे गलेके सूखेपन और सूखी खाँसीमें लाभ होता है । मूत्रकृच्छ्रमें गोंद पानीमें मिलाकर देते हैं । अतिसारमें कोमल-पत्तियाँ ( कल्कके रूपमें ) देते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** ) ।

---

## ( १३१ ) खदिर ।

**नाम—( सं. )** खदिर, गायत्री; **( हिं., म. )** खैर; **( पं., गु. )** खेर; **( बं. )** खये( प )र; **( ते. )** पोडलमानु; **( ता. )** काचुकट्टि, करंगालि; **( मल. )** कदरम्, करिङ्ङालि; **( ले. )** अॅकेसिआ कॅटेच्यु ( Acacia catechu ) ।

**खदिरसारनाम**—( हिं. ) खैरसार, कत्था; ( म. ) कात; ( गु. ) काथो; ( मल. ) कात्तु; ( इं. ) कॅटेचु ( Catechu )।

**वर्णन**—खैरका काँटेदार, खुरदरी छालवाला मध्यम प्रमाणका वृक्ष होता है। पुष्प फीके पीले रंगके होते हैं। सेम २-४ इंच लंबी, पतली, चपटी, भूरे रंगकी होती है। सेममें ८-१० बीज होते हैं। खैरकी लकड़ीसे **कत्था** बनाया जाता है। खैरकी एक जाति श्वेत सार( लकड़ी )वाली होती है; उसको संस्कृतमें **सोमवल्क** ( सफेद छालवाला ) कहते हैं। इसकी एक जाति दुर्गन्धयुक्त होती है, उसको संस्कृतमें **अरिमेद** और **विट्खदिर** कहते हैं।

**गुण-कर्म**—**चरके** ( सू. अ. ४ ) कुष्ठघ्ने महाकषाये, कषायस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) च खदिरः पठ्यते। "खदिरः कुष्ठघ्नानां" ( च. सू. अ. २५ )। **सुश्रुते** ( सू. अ. ३८ ) सालसारादिगणे खदिरः पठ्यते। "शनैर्मेहिनं खदिरकषायम्।" ( सु. चि. अ. ११ )। "दिदृक्षुरन्तं कुष्ठस्य खदिरं कुष्ठपीडितः। सर्वथैव प्रयुञ्जीत स्नानपानाशनादिषु ॥" ( सु. चि. अ. ९ )। "खदिरः कृमिकुष्ठघ्नः कफरेतोविशोषणः।" ( ध. नि. )। "खदिरस्तु रसे तिक्तः शीतपित्तकफापहः। पाचनः कुष्ठकासास्रशोथकण्डूव्रणापहः ॥" ( रा. नि. )। "खदिरः शीतलो दन्त्यः कण्डूकासारुचिप्रणुत्। तिक्तः कषायो मेदोघ्नः कृमिमेहज्वरव्रणान् ॥ श्वित्रशोथामपित्तास्रपाण्डुकुष्ठकफान् हरेत्।" ( भा. प्र. )।

खैर तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, पाचन, कफ और शुक्रको सुखानेवाला तथा पित्त, कफ, कुष्ठ, खाँसी, शोथ, कण्डू, व्रण, अरुचि, मेद, प्रमेह, ज्वर, श्वित्र, आम, रक्तविकार और पांडुरोगका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—छालमें ५७ प्रतिशत कषाय द्रव्य और ३५ प्रतिशत कत्था है। छालका क्वाथ ठंडा होनेपर पात्रके तलभागमें कत्था बैठता है। **खैरसार**–यह भी एक प्रकारका कत्था है जो वृक्षकी जीवित दशामें वृक्षके मध्यभागमें अपने आप बनता है। रंग फीका कत्थे जैसा होता है। स्वाद मधुर और कषाय होता है। सूक्ष्मदर्शक काँचके नीचे रखनेसे बारीक सूई जैसे टुकड़े उसमें दीखते हैं। ठंढे पानीमें वैसा ही पड़ा रहता है। पानीमें उबालनेसे घुल जाता है, परंतु ठंढा होनेपर सूई सरीखे टुकड़ोंका स्तर नीचे बैठता है। यह मद्यमें ९० प्रतिशत घुलता है। यह गलेकी शिथिलतामें उत्तम औषध है। इसको कफरोगोंमें देते हैं। इससे नया कफ उत्पन्न होना बंद होता है। **मात्रा**—२-५ रत्ती। **गुण-कर्म**—कत्था अच्छा संग्राहक है। इसकी क्रिया श्लेष्मल त्वचा और रक्तवाहिनियोंपर होती है। इससे कफ कम होता है और छोटी छोटी रक्तवाहिनियोंका संकोच होता है। कत्थेसे आमाशयका पाचक रस कम होता है और आँतोंका मल गाढ़ा होता ( बंधता ) है। इससे सर्व शरीरकी शिथिलता कम होती है। खैरकी छालमें कत्थेके सब गुण वर्तमान

हैं। खैर संग्राहक, श्लेष्मघ्न, रक्तसंग्राहक, रक्तपित्तप्रशमन, विषमज्वरप्रतिबन्धक और कुष्ठघ्न है। जीर्णज्वरमें खैरकी छाल और चिरायतेका क्वाथ देनेसे प्लीहाकी वृद्धि कम होती है और शरीरको बल प्राप्त होता है। छालका क्वाथ पीने और कुल्ला करनेसे मसूड़ोंसे खून आना बंद होता है। त्वग्रोगोंमें व्रण होकर पीप और रक्त आता हो तो छालका क्वाथ पिलाते हैं और उससे व्रणको धोते हैं। संग्रहणी, अतिसार और खट्टे डकारमें कत्था गुणकारी है। गर्भाशयकी शिथिलतासे उत्पन्न प्रदर, रक्तस्राव और योनिशैथिल्यमें समभाग कत्था और बोलकी गोलियां गुणकारक हैं। तरुणोंके कफ-विकारमें जब कफ बहुत पड़ता हो, कफ पतला हो, शरीर फीका पड़ गया हो और हलका ज्वर रहता हो तब इन गोलियोंसे लाभ होता है। अकेला कत्था मुँहमें रखनेसे गलेकी शिथिलतासे उत्पन्न सूखी खाँसीमें लाभ होता है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## (१३२) शिरीष।

**नाम**—(सं.) शिरीष; (हिं.) सिरस; (म.) शिरस; (गु.) काळीयो सरस, सरसडो; (पं.) सरींह, शरीं; (सिंध) सिरिंह; (बं.) शिरीष; (ते.) दिरीसनमु, गिरीशमु; (ता.) वावै, चि(शि)रीदम्; (मल.) वाक; (ले.) आल्बिझिआ लेबेक् (Albizzia lebbeck)।

**वर्णन**—शिरीषका बड़ा वृक्ष होता है। पत्ते इमली जैसे। शीतकालमें पत्ते झड़ जाते हैं। पुष्प पीताभ श्वेत, सुगन्धि, चँवर जैसा और सुकुमार; सेम लंबी, पतली, चपटी; बीज ६–१०।

**उपयुक्त अंग**—त्वचा और बीज।

**गुण-कर्म-चरके**—(सू. अ. ४) विषघ्ने, वेदनास्थापने च महाकषाये, शिरोविरेचनद्रव्येषु (शिरीषबीजं, सू. अ. २), कषायस्कन्धे (वि. अ. ८) तथा **सुश्रुते** (सू. अ. ३८) सालसारादिगणे शिरीषः पठ्यते। "शिरीषो विषघ्नानां" (अग्र्यः; च. सू. अ. २५)। "तिक्तोष्णो विषहा वर्ण्यस्त्रिदोषशमनो लघुः। शिरीषः कुष्ठकण्डूघ्नस्त्वग्दोषश्वासकासहा॥" (ध. नि.)।

शिरीष कषाय, तिक्त, उष्णवीर्य, लघु, त्रिदोषहर, वर्ण्य, वेदनास्थापन, शिरोविरेचन, विषहर तथा वात, पित्त, कफ, कुष्ठ, कण्डू, श्वास और खाँसीको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—छालमें कषाय द्रव्य ७ और राल १४ प्रतिशतती है। शिरीष पौष्टिक, वाजीकर, ग्राही और विषघ्न है। फूल शुक्रस्तम्भनके लिये देते हैं। बीज दूधके साथ वीर्य गाढ़ा होनेके लिये देते हैं। छालका चूर्ण घीके साथ बृंहणके लिये देते हैं। छालके क्वाथके कुल्ले करनेसे दाँत मजबूत होते हैं। बीजोंका गंडमालामें लेप करावे

हैं और खानेको भी देते हैं। रतौंधीमें क्वाथ पिलाते हैं और आँखोंमें स्वरसकी बूंद गेरते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

## ( १३३ ) सातला।

**नाम**—( सं. ) सातला, सप्तला, चर्मकशा, फेनिला; ( हिं. ) चिकाकाई; ( म. ) शिकेकाई; ( गु. ) चिकाखाई; ( मा. ) छिकाकाई, सिकाकाई; ( ते. ) शीकाय; ( ता. ) शी(ची)यक्काय्; ( मल. ) चीक्कक्कायि, चीनिक्काय्; ( ले. ) ॲकेसिआ रुगटा ( Acacia rugata )।

**वर्णन**—सातलाका काँटेदार गुल्म होता है। पत्ते खट्टे और रोचक होते हैं। बाजारमें सेम मिलती हैं। सेमको पानीमें भिगोकर मसलनेसे रीठेके जैसे फेन ( झाग ) होते हैं। सिरके बाल और रेशमी कपड़ा धोनेके लिये इसका उपयोग करते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. २ ) विरेचनद्रव्येषु, सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) श्यामादिगणे च सप्तला पठ्यते। "सातला शोधनी तिक्ता कफपित्तास्रदोषनुत्। शोथोदरानाहहरा किञ्चिन्मारुतकृद्भवेत् ॥" ( ध. नि. )। "सातला कटुका पाके वातला शीतला लघुः। तिक्ता शोफकफानाहपित्तोदावर्तरोगनुत् ॥" ( भा. प्र. )।

सातला तिक्त, कटुविपाक, लघु, शीतवीर्य, शोधन, वातल तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, शोथ, उदर, आनाह और उदावर्तको दूर करनेवाली है।

**नव्यमत**—सातलाकी सेममें साबुन ( सेपोनीन् ) ११, सेवाम्ल ( मेलिक् एसिड् ) १२, राल १, शर्करा ( ग्लुकोझ् ) १३½ और गोंद २१ प्रतिशत होता है। सातलाकी सेम उत्तेजक कफघ्न, वामक और आनुलोमिक है। सेमकी क्रिया रीठा किंवा सेनेगा जैसी होती है। इससे नाड़ीका स्पन्दन कम होता है और मूत्रका प्रमाण बढ़ता है। पत्र खट्टे, रोचक, यकृदुत्तेजक और विरेचन हैं। पुराने कफरोगोंमें कफ पतला होने और श्वासावरोध कम होनेके लिये सेमका फांट देते हैं। इस फांटसे दस्त भी साफ होता है। सेमके क्वाथसे सिर धोनेसे जूँएँ मरती हैं। सेमके क्वाथमें कपड़ेकी बत्ती भिगो कर बच्चोंकी गुदामें चढ़ानेसे दस्त साफ होता है ( डॉ वा. ग. देसाई )।

---

## ( १३४ ) लज्जालु।

**नाम**—( सं. ) लज्जालु, समङ्गा, अञ्जलिकारिका; ( हिं. ) छुईमुई, लजालु, लाजलवती, लजनी; ( म. ) लाजाळू, लाजरी; ( गु. ) रीसामणी; ( ता. ) तोट्टचुरंगी; ( मल. ) तोट्टावाडी; ( ले. ) माईमोसा प्युडिका ( Mimosa pudica )।

**वर्णन**—लज्जालुका क्षुद्र क्षुप होता है। पत्तीको छूनेसे पत्तियाँ संकुचित हो जाती हैं। शाखाओंमें बारीक कांटे होते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) संधानीये, पुरीषसंग्रहणीये च महाकषाये तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) प्रियङ्ग्वादिगणे, अम्बष्ठादिगणे च ('समङ्गा'-नाम्ना) लज्जालुः पठ्यते । "लज्जालुः शीतला तिक्ता कषाया कफपित्तजित् । रक्तपित्तमतीसारं योनिरोगान् विनाशयेत् ॥" (भा. प्र.) ।

लज्जालु तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, संधानीय, पुरीषसंग्रहणीय तथा कफ, पित्त, रक्तपित्त, अतिसार और योनिरोगोंका नाश करनेवाली है ।

**नव्यमत**—मूलमें कषाय द्रव्य है । लज्जालु रक्तसंग्राहक और छोटी रक्तवाहिनियोंका संकोच करनेवाली है । रक्त और पित्तप्रधान रोगोंमें लज्जालु देते हैं । रक्तमिश्रित आँवमें तथा सिकतामेहमें मूलका क्वाथ देते हैं । अर्शमें पत्तियोंका चूर्ण दूधके साथ देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई) ।

---

## तरुण्यादि वर्ग ३५.

### N. O. Rosaceæ (रोझेसी) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; पर्णक्रम एकान्तर; पर्ण सदल, पक्षाकार; पुष्प शाखाग्रोद्भूत; पुष्पबाह्यकोशके दल ५; पंखड़ियाँ प्रायः ५; पुंकेशर अनियत ।

---

### (१३५) तरुणी ।

**नाम**—(सं.) तरुणी, शतपत्री; (बं.) गोलाप; (हिं., म., गु.) गुलाब; (ते.) गुलाबि; (ता.) इराशा; (मल.) पन्नीरपु; (फा.) गुलसुर्ख; (ले.) रोझा सेन्टिफोलिआ (Rosa centifolia) ।

**वर्णन**—हिमालयके कश्मीर, गढ़वाल आदि प्रदेशमें जंगली (स्वयंजात) गुलाब होता है । उसमें ५ पखड़ियाँ गुलाबी रंगकी होती हैं । जंगली गुलाबकी एक जातिमें पीताभ श्वेत रंगके फूल होते हैं, उसको (हिं.) **सेवती**; (क.) काशुर गुलाब; (ले.) रोझा आल्बा (Rosa alba) कहते हैं । बागोंमें जो गुलाब लगाया जाता है उसमें अधिक पखड़ियाँ होती हैं । औषधके लिये वसंतऋतुमें उत्पन्न (मौसिमी) पुष्पोंकी छायामें सुखाई हुई अविकसित कलिकाएँ ली जाती हैं ।

**गुण-कर्म**—"शतपत्री हिमा हृद्या सरा च शुक्रला लघुः । दोषत्रयास्रजिद्वर्ण्या तिक्ता कट्वी च पाचनी ॥" (भा. प्र.) ।

गुलाबके पुष्प तिक्त, कटु, शीतवीर्य, हृद्य, सारक, शुक्रल, लघु, वर्ण्य, पाचन तथा तीनों दोष और रक्तके विकारोंको दूर करनेवाले हैं ।

**नव्यमत**—गुलाब शीतस्वभावी आनुलोमिक है । इससे दस्त साफ होता है, भूख लगती है, अन्न पचता है और शरीर पुष्ट होता है। बच्चों और गर्भिणी स्त्रियोंको गरमीके दिनोंमें गुलकंद खानेको देते हैं । गुलकंद और अर्कगुलाबका अनुपानके रूपमें प्रयोग किया जाता हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**यूनानी मत**—गुलाबके फूल सौमनस्यजनन, हृदय-मस्तिष्क-यकृत्-आमाशय और आँतोंको बलप्रद, अधिक प्रमाणमें देनेसे रेचक और थोड़े प्रमाणमें देनेसे संग्राहक, पित्तशामक तथा स्वेदको सुगन्धित करनेवाले और अधिक स्वेदको रोकनेवाले हैं। लेप करनेसे गरम शोथको विलीन करनेवाले और पीड़ाशामक हैं । सूक्ष्म चूर्ण करके छिड़कनेसे व्रणको सुखाते हैं ।

---

## (१३९) वाताम ।

**नाम**—(सं.) वाताम; (हिं.) बादाम; (म., गु.) बदाम; (क.) बादम; (ले.) प्रुनस् ॲमिग्डेलस् ( Prunus amygdalus )।

**उत्पत्तिस्थान**—कश्मीर, अफगानिस्थान, ईरान और यूरोप ।

**वर्णन**—कश्मीरमें बादामके कच्चे फलोंका साग बनाकर खाते हैं। कच्चे फल खट्टे और पके हुए फल खटमिठे होते हैं। बादाम दो जातका होता है–(१) मीठा और (२) कड़वा। मीठे बादामका मग्ज खाया जाता है। कड़ुए बादामका मग्ज जहरीला है ।

**गुण-कर्म**—"वाताभा × × × × × ×। गुरूष्णस्निग्धमधुराः × बलप्रदाः ॥" (च. सू. अ. २७)। "वाताम × × × × × प्रभृतीनि । पित्तश्लेष्मकराण्याहुः स्निग्धोष्णानि गुरूणि च । बृंहणान्यनिलघ्नानि बल्यानि मधुराणि च ॥" (सु. सू. अ. ४६)।

बादाम मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्णवीर्य, बृंहण, बल्य पित्तश्लेष्मकर तथा वातहर है ।

**नव्यमत**—बादाममें पिष्टमय सत्त्व (स्टार्च) नहीं होता, इसलिये बादामकी पेया बनाकर मधुमेहमें देते हैं। बादामकी पेया बनानेके पहले बादामको रातभर गरम पानीमें डालकर भिगोना चाहिये। ऐसा करनेसे उसमें एक नवीन प्रकारका सत्त्व उत्पन्न होता है जो पचनक्रियाका उत्तेजक और सहायकारी है। बादामकी पेयाको अधिक पकानेसे यह सत्त्व नष्ट होता है। अतः पेयामें १–२ उफान आते ही उसको आगपरसे उतार लेना चाहिये । श्वासोच्छ्वासेन्द्रियके तथा मूत्र और जननेन्द्रियके रोगोंमें बादामकी पेया देते हैं। भिगोई हुई बादाम, असगंध, पीपर, घी, दूध और शक्कर इनकी पेया रसायन है । स्त्रियोंमें इस पेयासे कमरका

दर्द तथा श्वेतप्रदर दूर होता है और दूध बढ़ता है। कडुई बादामको जलमें पीसकर कण्डूपर विशेषतः स्त्रियोंके जननेन्द्रियकी कण्डूपर लगाते हैं। कडुई बादाममें एक प्रकारका जहरीला सत्त्व (हाइड्रोसायेनिक् ॲसिड्) होता है, इसलिये उसको खानेके काममें नहीं लेना चाहिये (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (१३७) पद्मक।

**नाम—**(सं.) पद्मक; (हिं., पं.) पद्माख, पद्माक; (म., गु.) पद्मकाष्ठ; (ले.) प्रुनस् केरेसोइडस् (Prunus cerasoides)।

**वर्णन—**पद्मकाष्ठके वृक्ष हिमालयके शिमला, गढ़वाल आदि प्रदेशोंमें होते हैं। इसमें ललाई लिये हुए पीले रंगके फल आते हैं। फल खाये जाते हैं। बाजारमें पद्मकाष्ठके कांडके टुकड़े मिलते हैं। त्वचा कृष्ण-रक्त और भीतरकी लकड़ी रक्तपीताभ श्वेत वर्णकी होती है। उसमें अच्छी सुगंध होती है। पद्माककी लकड़ी नई काममें लेनी चाहिये।

**गुण-कर्म—**चरके (सू. अ. ४) वर्ण्ये, वेदनास्थापने च महाकषाये तथा कषायस्कन्धे; सुश्रुते (सू. अ. ३८) सारिवादौ, चन्दनादौ च गणे पद्मकः पठ्यते। "पद्मकं शीतलं स्निग्धं कषायं रक्तपित्तनुत्। गर्भस्थैर्यकरं प्रोक्तं ज्वरच्छर्दिविषापहम्॥ मोहदाहज्वरभ्रान्तिकुष्ठविस्फोटशान्तिकृत्।" (ध. नि.)। "पद्मकं तुवरं तिक्तं शीतलं वातलं लघु। विसर्पदाहविस्फोटकुष्ठश्लेष्मास्रपित्तनुत्॥ गर्भसंस्थापनं वृष्यं वमिव्रणतृषाप्रणुत्।" (भा. प्र.)।

पद्मक कषाय, तिक्त, स्निग्ध, लघु, शीतवीर्य, वातल, वर्ण्य, वेदनास्थापन, गर्भस्थैर्यकर, वृष्य तथा रक्तपित्त, ज्वर, वमन, विष, मूर्च्छा, दाह, भ्रम, कुष्ठ, विस्फोटक, विसर्प, व्रण, कफ और तृषाका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत—**पद्माखकी छालमें एक विशेष प्रकारका सत्त्व (हाइड्रोसायेनिक् ॲसिड्) पाया जाता है। यह तीव्र विष है। पद्माख कटुपौष्टिक, स्तम्भन, छर्दिनिग्रहण और वेदनास्थापन है। इससे आमाशयकी श्लेष्मल त्वचाकी क्रिया बढ़कर आमाशयरस तैयार होता है और आमाशयकी शक्ति बढ़ती है। साथमें स्तम्भन और वेदनास्थापन गुण भी देखनेमें आता है। इन तीनों गुणोंका उपयोग अपचन होकर किंवा कुपचन रोगमें आमाशयकी श्लेष्मल त्वचामें सूजन आती है और वमन तथा विरेचन होते हैं किंवा आमाशयमें क्षत पड़ते हैं तब किया जाता है। स्तंभन और कटुपौष्टिक गुण इसकी लकड़ीमें है। परंतु वेदनास्थापन गुण छालमें स्थित जहरीले सत्त्वमें है। इससे वमन और मिचली बंद होती है। इस जहरीले सत्त्वकी शरीरके सब अवयवोंपर विशेषतः जीवनीय केन्द्रस्थानपर शामक क्रिया होती

है। श्वासोच्छ्वासके केन्द्रस्थान पर शामक क्रिया होनेसे सूखी खाँसी और क्षयमें अतिखेद आना कम होता है। हृदयके केन्द्रस्थान पर शामक क्रिया होनेसे हृदयकी धड़कन, हृदयके वामपटलरोगसे रक्तका पीछे बहना और हृदयपर मेद बढ़कर एक प्रकारकी खाँसी होती है उसमें पद्माख गुणकारक है। पद्माखका क्वाथ करनेसे इसका सत्त्व उड़ जाता है, इसलिये इसका गुनगुने जलमें फांट बनाकर देना चाहिये। पद्माखको जलमें घिसकर लेप करनेसे सूखी खाज कम होती है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## (१३८) आरुक।

**नाम**—(सं.) आरुक; (क.) चुनुन; (पं., हिं.) आड़ू; (गु.) पीच; (फा.) शफ्तालू; (ले.) प्रुनस् पर्सिका (Prunus persica)।

**उत्पत्तिस्थान**—अफगानिस्तान, वायव्य सीमाप्रांत, कश्मीर।

**वर्णन**—आड़ूका मध्यमप्रमाण वृक्ष होता है। पुष्प गुलाबी रंगके; फल लोमश और अष्ठील। फल खटमिठ्ठे होते हैं और खाये जाते हैं। मगजसे तेल निकालते हैं।

**गुण-कर्म**—"**नात्युष्णं गुरु संपक्वं स्वादुप्रायं मुखप्रियम्। बृंहणं जीर्यति क्षिप्रं नातिदोषलमारुकम्॥" (च. सू. अ. २७)। "आरुकाणि च हृद्यानि मेहार्शोनाशनानि च।" (ध. नि.)। "अर्शःप्रमेहगुल्मास्रदोषविध्वंसनानि च।" (रा. नि.)।**

पका हुआ आड़ु प्रायः मधुर, स्वादिष्ट, गुरु, किंचित् उष्णवीर्य, बृंहण, हृद्य, शीघ्र हजम होनेवाला और किंचित् दोषकर तथा प्रमेह, अर्श, गुल्म और रक्तविकारका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—आड़ू दीपन, स्नेहन और रक्तपित्तप्रशमन है। पुष्प भेदन हैं। तेल बालोंको लगाया जाता है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**वक्तव्य**—धन्वन्तरिनिघण्टुकारने आरुककी चार जातियाँ मानी हैं "विद्याज्जातिविशेषेण तच्चतुर्विधमारुकम्।"। संभव है कि उनकी मानी हुई चार जातियोंमें आड़ु (Prunus persica), आलूबुखारा (Prunus communis), आलुबालुगिलास (Prunus cerasus) और आलुचा (Prunus Aloocha) इन चारका समावेश होता हो।

---

## (१३९) आलूबुखारा।

**नाम**—(क.) अलूचा; (मा.) आलुबुखारो; (पं., हिं., म., गु.) आलुबुखारा; (फा.) आलुबोखारा; (अ.) इज्जास; (ले.) प्रुनस कोम्युनिस (Prunus communis)।

**वर्णन**—इसकी मूल जन्मभूमि बुखारा-समरकंद है। परंतु अभी हिमालयके कश्मीरसे गढ़वालतकके प्रदेशोंमें होता है। फल गोल; रंग श्वेत-पीला-लाल; स्वाद खट-मीठा। फलमें बादामके जैसा मग्ज होता है। सूखे फल बाजारमें सर्वत्र मिलते हैं।

**गुण-कर्म**—आलूबुखारा शीतल, पिपासाघ्न और मृदु रेचक है। पित्तज्वरमें इसका अच्छा उपयोग होता है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**यूनानी मत**—आलूबुखारा शीतल, स्निग्ध, मृदु रेचक, दाहप्रशमन, पित्तरेचक और पित्तप्रशमन है। आलूबुखारा पैत्तिक शिरःशूल, पित्तज्वर, वमन, तृषा, कामला, दाह, हृल्लास और पित्तप्रधान रक्तविकारमें दिया जाता है। तृषा तथा हृल्लासमें फल मुँहमें रख कर चुसाते हैं और इसका शर्बत बना कर पिलाते हैं।

---

## (१४०) उरुमाण।

**नाम**—(सं.) उरुमाण; (क.) चेर; (पं., हिं.) जर्दालु, खुरमानी, खुर्बानी, खुबानी; (फा.) जर्दआलू; (अ.) मिशमिश; (ले.) प्रुनस् आर्मेनीका (Prunus armeniaca)।

**वर्णन**—फल आडू जैसे परंतु उससे छोटे; रंग-जर्दालुका पीला और खुबानीका फीका लाल; स्वाद पके फलका मीठा। मग्ज बादाम जैसा। मग्ज मीठा और कडुआ दो प्रकारका होता है। सूखे फल बाजारमें सर्वत्र मिलते हैं।

**गुण-कर्म**—"××× उरुमाणप्रभृतीनि। पित्तश्लेष्महराण्याहुः स्निग्धोष्णानि गुरूणि च। बृंहणान्यनिलघ्नानि बल्यानि मधुराणि च॥" (सु. सू. अ. ४६)। "गुरूष्णस्निग्धमधुराः सोरुमाणा बलप्रदाः।" (च. सू. अ. २७)।

जर्दालू और खुबानी मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्णवीर्य, बृंहण, बल्य तथा पित्त-कफ-वातहर हैं।

---

## (१४१) सिम्बितिका।

**नाम**—सिम्बि(म्बि)तिका, सेव; (क.) चूंठ; (पं., हिं.) सेब, (गु., म.) सफरचंद; (सिंध) सूफ; (अ.) तुफ्फाह। (ले.) पाइरस् मॅलस् (Pyrus malus)।

**उत्पत्तिस्थान**—सेब भारतवर्षमें कश्मीरसे लेकर कुलूतकके हिमालयके प्रदेशमें तथा नीलगिरीमें होते हैं।

**वर्णन**—सेबका फल प्रसिद्ध है। स्वाद खटमिठा या मीठा। इसका पका हुआ फल खाया जाता है और उसका मुरब्बा भी बनाते हैं।

**गुण-कर्म**—"कषायमधुरं शीतं ग्राहि सिम्बितिकाफलम्।" (च. सू. अ. २७)। "कषायं स्वादु संग्राहि शीतं शिम्बितिकाफलम्।" (सु. सू. अ. ४६)। "सेवं समीरपित्तघ्नं बृंहणं कफकृद्गुरु। रसे पाके च मधुरं शिशिरं रुचिशुक्रकृत्॥" (भा. प्र.)।

सेव कषाय, मधुर, मधुरविपाक, शीतवीर्य, ग्राही, गुरु, बृंहण, कफकर, रुचिकर, शुक्रल और वातपित्तहर है।

**यूनानी मत**—सेव दो प्रकारका होता है—(१) मीठा और (२) खट्टा। मीठा सेब गरम और तर है तथा खट्टा सर्द और खुश्क (रूक्ष)। सेब हृदय-दिमाग (मस्तिष्क)-यकृत् और आमाशयको शक्ति देनेवाला, बढ़ी हुई उष्णताको कम करनेवाला, मनःप्रसादकर, दीपन, रक्तवर्धक, कुछ ग्राही, तृषाको कम करनेवाला और चेहरेके रंगको साफ करनेवाला है। रक्तातिसार और आमातिसारमें सेबका मुरब्बा खानेको देते हैं।

---

## (१४२) टङ्क।

**नाम**—(सं.) टङ्क; (क.) टंग; (हिं.) नाशपाती; (पं.) नाक; (मा.) बनास्पति; (फा.) अमरूद; (अ.) कुम्मसरा; (ले.) पाइरस कोम्युनिस (Pyrus communis)।

**वर्णन**—नाशपाती कश्मीर, वायव्य सरहद प्रांत और पंजाबमें होती है। पका हुआ फल मधुर और चबानेमें कुछ कड़ा होता है। इसकी कलम करके सुधारी हुई जातिको **नाक** कहते हैं। यह नाशपातीसे नरम और अधिक मीठा होता है।

**गुण-कर्म**—"कषायं मधुरं टङ्कं वातलं गुरु शीतलम्।" (च. सू. अ. २७)। "शीतं कषायं मधुरं टङ्कं मारुतकृद्गुरु।" (सु. सू. अ. ४६)।

नाशपाती कषाय, मधुर, गुरु, शीतवीर्य और वातकर है।

---

## (१४३) बिही।

**नाम**—(क.) बंमचूंठ; (हिं.) बिही; (अ.) सफरजल; (फा.) बिह; (ले.) साइडोनिआ वल्गेरिस (Cydonia vulgaris)।

**बीज**—(फा.) बिहीदाना; (म.) मोंगली बेदाणा। (गु.) मुगलाई बेदाणां।

**वर्णन**—भारतवर्षमें बिहीके फल कश्मीरमें होते हैं। फल सेब जैसे होते हैं। हकीम लोग इसका मुरब्बा और शर्बत बनाते हैं। इसके बीज **बिहीदाना**के नामसे बाजारमें मिलते हैं। बीजोंको पानीमें भिगोनेसे लुआव (पिच्छा) निकलता है।

**गुण-कर्म—**

**यूनानी मत**—मीठा बिही गरमी और सरदीमें सम तथा पहले दर्जेमें तर है। खट्टा बिही सर्द और रूक्ष है। बिही मनःप्रसादकर, हृदय-मस्तिष्क-आमाशय और यकृत्को बल देनेवाला, ग्राही और मूत्रल है। बिहीका शर्बत, फाणित और मुरब्बा बनाया जाता है, जो हृदयकी दुर्बलता, मूर्च्छा और पैत्तिक अतिसारमें तथा आमाशय और यकृत्की उष्णता, तृषा तथा वमनमें दिया जाता है।

**नव्यमत**—बीजों (बिहीदानों) में १५ प्रतिशत तैल होता है। बीजोंको जलानेसे ३½ प्रतिशत राख मिलती है। उसमें जवखार २७, सज्जीखार ३, मेग्नेशिआ १३, चूना ७⅓, फोस्फोरिक एसिड ४२, सल्फ्युरिक एसिड २¾, लोह १ और लवण २½ प्रतिशत होता है। बिहीदानोंको पानीमें भिगोनेसे लुआब बनता है। यह लुआब शीतवीर्य, स्नेहन, ग्राही, मूत्रजनन, कफघ्न और पौष्टिक है। राख बल्य है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (१४४) गन्धप्रियङ्गु।

**नाम—(सं) गन्धप्रियङ्गु**, प्रियङ्गु; **(म.)** गहुला; **(गु.)** घऊंला; **(अ.)** महलिब; **(ले.)** प्रुनस् महलिब् (Prunus mahaleb)।

**उत्पत्तिस्थान**—यह भारतवर्षमें बलोचिस्तानमें होता है।

**उपयुक्त अंग**—फलमज्जा। **मात्रा**–२–५ रत्ती।

**वर्णन**—प्रियंगुका मग्ज बंबईके बाजारमें 'घऊंला' नामसे मिलता है। मग्ज छोटी चिरौंजी जैसा, गोधूमवर्ण और सुगंधि होता है। श्वेत चंदन, कपूरकाचरी और इसका मग्ज जलमें पीसकर सुगंधि लेपके लिये इसका बंबई प्रान्तमें प्रयोग करते हैं। असली प्रियंगु यही है। **चरकने** रक्तपित्तमें दाहशांतिके लिये चन्दन और प्रियंगुका लेप की हुई स्त्रियोंके स्पर्शका विधान किया है। धन्वन्तरिनिघंटु और भावप्रकाशमें सुगन्धि वर्गमें इसका पाठ मिलता है। प्रियंगु 'कंगनी' धान्यका भी नाम है। इसकी व्यावृत्तिके लिये **चरकने** अग्र्यप्रकरण (सू. २५) में इसको **गन्ध** शब्द लगाकर **गन्धप्रियङ्गु** नाम दिया है। प्रियंगुका रस तिक्त लिखा है जो घऊंलामें है। गोंदनी आदिको प्रियंगु मानना ठीक नहीं है।

**गुण-कर्म—चरके** (सू. अ. ४) पुरीषसंग्रहणीये, मूत्रविरजनीये च गणे तथा **सुश्रुते** (सू. अ. ३८) अञ्जनादिगणे, प्रियङ्ग्वादिगणे च प्रियङ्गुः पठ्यते। "गन्धप्रियङ्गुः शोणितपित्तातियोगप्रशमनानाम्" (च. सू. अ. २५)। "प्रियङ्गुका-चन्दनरूषितानां स्पर्शाः प्रियाणां च वराङ्गनानाम्।" (च. चि. अ. ४. रक्तपित्तचिकित्सित)। "प्रियङ्गुः शीतला तिक्ता मोहदाहविनाशिनी। ज्वर-

वान्तिहरा रक्तमुद्रिक्तं च प्रशान्तयेत् ॥" (ध. नि.) । "प्रियङ्गुः शीतला तिक्ता दाहपित्तास्रदोषजित् । वान्तिभ्रान्तिज्वरहरा वक्त्रजाड्यविनाशिनी ॥" (रा. नि.) ।

प्रियंगु तिक्त, शीतवीर्य, पुरीषसंग्रहणीय, मूत्रविरजनीय तथा मूर्च्छा, दाह, ज्वर, वमन, भ्रम, पित्तविकार, रक्तविकार, रक्तप्रकोप, रक्तपित्त और मुखकी जड़ताका नाश करनेवाली है ।

**नव्यमत**—प्रियंगुमें हायड्रोसायेनिक् एसिड् है । प्रियंगु कटुपौष्टिक और वेदनास्थापन है । इसलिये वेदनायुक्त कुपचन तथा आमाशयके क्षत और अर्बुदमें इसका प्रयोग करते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## पाषाणभेदादिवर्ग ३६.

### N. O. Saxifrageceæ ( सेक्सिफ्रेगेसि ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थबीजकोश; पर्णविन्यास एकान्तर; पर्ण सादे; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ४; नरकेशर ८ ।

---

### ( १४५ ) पाषाणभेद ।

**नाम**—( सं. ) पाषाणभेद; ( क. ) पहांड; ( हिं. ) पखानभेद; ( म., गु. ) पाखाणभेद; ( ले. ) बर्जेनिआ लिग्युलेटा ( Bergenia ligulata ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—७०००-१०००० फुटकी ऊंचाईपर हिमालयके कश्मीर आदि प्रदेशोंमें होता है ।

**वर्णन**—बहुवर्षायु क्षुप, कांड छोटा और मांसल; पत्र लट्वाकार या गोल, चमकीले, पहले हरे और पीछे लाल रंगके; पुष्प श्वेत, गुलाबी या जामुनी रंगके ।

**उपयुक्त अंग**—मूल । मात्रा—१-३ माशा ।

**गुण-कर्म**—सुश्रुते ( सू. ३८ ) वीरतर्वादिगणे तथा चरके ( सू. अ. ४ ) मूत्रविरेचनीये महाकषाये पाषाणभेदः पठ्यते । "पाषाणभेदकः शूलकृच्छ्र-मेहत्रिदोषजित् । हृद्रोगप्लीहगुल्मार्शोबस्तिरोगहरः परः ॥" ( ध. नि. ) । "अश्मभेदो हिमस्तिक्तः कषायो बस्तिशोधनः । भेदनो हन्ति दोषार्शोगुल्म-कृच्छ्राश्महृद्रुजः ॥ योनिरोगान् प्रमेहांश्च प्लीहशूलव्रणानि च ।" ( भा. प्र. ) ।

**पाषाणभेद**—तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, मूत्रविरेचनीय, बस्तिशुद्धिकर, भेदन तथा वातादि तीनों दोष, शूल, मूत्रकृच्छ्र, हृद्रोग, प्लीहाके रोग, गुल्म, अर्श, योनिरोग, प्रमेह और व्रणका नाश करनेवाला है ।

**नव्यमत**—मूलको जलानेसे १३ प्रतिशत राख मिलती है । उसमें चूनेका भाग अधिक होता है । पाषाणभेदके विश्लेषणसे ये वस्तुएँ प्राप्त होती हैं—चूना ११$\frac{2}{3}$, कषायाम्ल ( टॅनिक् और गॅलिक् एसिड् ) १५$\frac{1}{2}$, शर्करा ( ग्लुकोझ् ) ५$\frac{1}{2}$, लुआब ( म्युसिलेज ) २$\frac{1}{4}$, मांसलद्रव्य ( ॲल्ब्युमिन् ) ७$\frac{3}{4}$, पिष्ट ( स्टार्च् ) १९, **क्षार** ( नरल् सॉल्ट्स् ३$\frac{3}{4}$, केलिसअम् ऑक्झोलेट् ११$\frac{3}{4}$, ) प्रतिशत होता है । पाषाणभेद छेदन, श्लेष्मघ्न, स्तम्भन और मूत्रजनन है । अश्मरीमें पाषाणभेद देनेसे पेशाबका प्रमाण बढ़कर उसका गाढ़ापन ( आविलता ) कम होता है । दूधमें घिसकर देनेसे बच्चोंको मूत्रमें क्षार जाना बंद होता है । आँव और अतिसारमें पाषाणभेद देते हैं । इससे आँतोंको शक्ति मिलती है । दाँत निकलते समय बच्चोंके मुँहसे लाल गिरती है और मुँहमें व्रण होते हैं तब पाषाणभेद शहदमें घिसकर लगाते हैं । व्रणशोथ और नेत्राभिष्यंदमें इसका लेप करते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## पर्णबीजादि वर्ग ३७.

### N. O. Crassulaceæ ( क्रॅस्युलेसी )

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थबीजकोश; पर्णक्रम एकान्तर किंवा अभिमुख; पुष्पबाह्यकोशके दल ४–८; पँखड़ियाँ ४–८; पुंकेशर ८–१६ होते हैं ।

---

### ( १४६ ) पर्णबीज ।

**नाम**—**( सं. ) पर्णबीज; ( हिं. )** पथरचट, पथरचूर, जख्मेहयात; **( म. )** घायमारी; **( बं. )** पाथरकुचा, हिमसागर; **( गु. )** खाटखटुंबो; **( ले. )** कॅलिञ्चो पिनेटा ( Kalanchœ pinnata ) ।

**वर्णन**—बहुवर्षायु मांसल क्षुप; कांड सीधा, मोटा, पोला, रक्तवर्ण; पत्र दाँतेवाले, अभिमुख; फूल बड़े और नीचे झुके हुए होते हैं । इसकी पत्तीको जमीनमें दबा देनेसे नया क्षुप उग निकलता है, इसलिये इसको **पर्णबीज** कहते हैं । कई लोग इसको पाषाणभेद मानते हैं, यह ठीक नहीं है ।

**उपयुक्त अंग**—पत्र और पत्रस्वरस ।

**नव्यमत-विश्लेषण**—पत्तोंको पीसकर छाननेसे उसमें गंधसारिक सुधा ( सल्फेट् ऑव केलिसयम् ), चिञ्चाम्लक्षार ( एसिड् टार्टरेट् ऑव पोटेशियम् ) होता है और छूँछेमें चांगेर्यम्लीयसुधा ( केलिसअम् ऑग्झेलेट् ) होता है । **गुणकर्म**—पर्णबीज व्रणशोधन, व्रणरोपण, रक्तसंग्राहक और रक्तस्कंदन है । इसके रसकी क्रिया सूक्ष्म धमनियोंपर होकर उनका संकोचन होता है और उससे रक्तका स्राव भीतरसे होता हो किंवा त्वचासे होता हो तो बंद होता है । रक्तमिश्रित आँवमें पत्रस्वरस

।०-॥० तोला देते हैं । मार और व्रणपर पत्रका कल्क जरा गरम करके बांधनेसे सूजन, लाली और वेदना शांत होकर जख्म शीघ्र अच्छा होता है । नवीन जख्मके लिये इसके तुल्य दूसरा कोई औषध नहीं है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

# सिल्हकादि वर्ग ३८.

## N. O. Hamamelidaceæ ( हेमेमेलिडेसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; पर्णक्रम एकान्तर; पत्र सादे; पुष्प पत्रकोणसे निकलते हैं ।

---

### ( १४७ ) सिल्हक ।

**नाम**—( सं. ) सिल्हक, तुरुष्क; ( हिं., म. ) शिलारस; ( गु. ) शेलारस, शिलारस; ( अ. ) मीआ साइलाः; अस्ल लब्नी; ( ले. ) ऑल्टिञ्जिआ एस्केल्सा ( Altingia esccelsa )।

**वर्णन**—शिलारस वृक्षका निर्यास है । इसके वृक्ष एशियामाइनोरमें होते हैं। यह अरबस्तानसे यहाँ आता है । शिलारस मधुसे गाढ़ा, पानीसे भारी, धूम्रवर्ण, नरम और चिकना होता है । नवीन शिलारसका गंध मिट्टीके तेल जैसा होता है, परंतु कुछ पुराना होनेपर उसमें अच्छा गंध आता है । शिलारस भारतवर्षमें आसाम और भूतानमें होता है ।

**गुण-कर्म**—सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) एलादिगणे तुरुष्कः पठ्यते । "तुरुष्कः सुरभिस्तिक्तः कटुः स्निग्धश्च कुष्ठजित् । कफवाताश्मरीमूत्राघातश्वासज्वरार्तिजित् ॥" ( रा. नि. )। "सिल्हकः कटुकः स्वादुः स्निग्धोष्णः शुक्रकान्तिकृत् । वृष्यः कण्ठ्यः स्वेदकुष्ठज्वरदाहग्रहापहः ॥" ( भा. प्र. )।

शिलारस तिक्त, कटु, मधुर, उष्णवीर्य, स्निग्ध, सुगन्धि, वृष्य, कण्ठ्य, कान्तिकर तथा कफ, वात, अश्मरी, मूत्राघात, श्वास, ज्वर, स्वेदाधिक्य और दाहका नाश करनेवाला है ।

**नव्यमत**—शुद्ध शिलारसका रंग पीलाईलिये सफेद होता है । स्वाद और गंध अच्छा होता है । यह ९० प्रतिशत मद्यमें विलीन होता है । शिलारसमें एक उड़नेवाला तेल, थोड़ा लोबानका फूल ( बेन्झोइक् एसिड् ) और लगम्ल ( सिनॅमिक् एसिड् ) होता है । शिलारस कफघ्न, मूत्रजनन, उत्तेजक, शोथघ्न, पूतिहर, कृमिघ्न, कण्डूघ्न, व्रणशोथघ्न और व्रणरोपण है । यह उत्तेजक और पूतिहर कफघ्न है, परन्तु मृदुस्वभावी है । यह मूत्रपिण्ड( गुर्दों )केलिये उत्तेजक है, परन्तु कभी कभी इससे मूत्रपिंडका दाह ( शोथ ) उत्पन्न होता है । यह फुप्फुस और मूत्रपिंडके मार्गसे शरीरसे बाहर निकलता

है। **मात्रा**—५-१० गुंजा, मुलेठीके चूर्णके साथ लेह बनाकर दें । जीर्ण कफरोगमें और क्षयमें शिलारस शहदमें मिलाकर देते हैं । इससे फुप्फुसको शक्ति मिलती है । जीर्ण पूयमेह( सुजाक )में मुलेठीके साथ शिलारस देते हैं । कण्डू, पामा आदि त्वग्रोगोंमें एक भाग शिलारस और चार भाग तिलतैल मिलाकर लगाते हैं । क्षयजन्तुजन्य व्रणपर शिलारस अकेला लगाते हैं । इससे वहाँ रक्ताभिसरण बढ़ता है और क्षयके जन्तु मरते हैं । अंडवृद्धिपर शिलारस लगाकर ऊपर तमाखू या धत्तूरेके पत्ते बांधते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## हरीतक्यादि वर्ग ३९.

### N. O. Combretaceæ ( कोम्ब्रेटेसी ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्णी; विभक्तदल; अधःस्थबीजकोश; पर्णक्रम एकान्तर किंवा अभिमुख; पर्ण सादे और अखंड; फूल छोटे; पुष्पबाह्यकोशके दल ४-५, नीचे जुड़े हुए; पँखड़ियां ४-५, या सर्वथा नहीं होतीं; पुंकेशर ४-५ या ८-१०; गर्भाशय अधःस्थ और एक खंडवाला; फल अविदारी और एकबीज होते हैं ।

---

### ( १४८ ) हरीतकी

**नाम**—( सं. ) हरीतकी, अभया, पथ्या, शिवा, अव्यथा; ( क. ) हलेला; ( हिं. ) हड़, हर्रे, हर्रें; ( म. ) हरीतकी; ( गु. ) हरडे; ( ते. ) करक्काय; ( ता. ) कडुक्काय्; ( म. ) कडु(डु)क्का; ( फा. ) हलेला; ( ले. ) टर्मिनेलिया चेब्युला ( Terminalia chebula ) ।

हरीतकीमें साधारणतः तीन जातियाँ होती हैं ( १ ) बड़ी हड़, ( २ ) पीली हड़ और ( ३ ) जवाहरड़ । उनके नाम क्रमशः ये हैं—

**नाम बड़ी हरड़का**—( हिं. ) बड़ी हड़, हर्रे ( म. ) सुरवारी हरडे; ( गु. ) हरडे, म्होटी हरड़े; ( फा. ) हलेले काबली ।

**नाम-पीली हडका**—( हिं. ) पीली हड; ( म. ) हरडा; ( गु. ) हरडा; ( फा. ) हलेले जर्द; ( अ. ) हलेलह अस्फर ।

**नाम-छोटी हड़का**—( हिं. ) जौहड़, छोटी हड़; ( म. ) बाळहरडे; ( गु. ) हीमज; ( सिं. ) इंजणी; ( मा. ) जवहरड़ी, जांगी हरड; ( फा. ) हलेलेश्याह; ( अ. ) हलेलह अस्वद ।

हड़के वृक्ष भारतवर्षमें सर्वत्र होते हैं । पंजाबके कांगड़ा जिलेमें सबसे अच्छी हर्रें होती है । होशियारपुर और अमृतसर इसकी बड़ी मंडियाँ हैं । हडके कच्चे फल जो स्वयं गिर जाते हैं या जिनको कच्ची हालतमें तोड़कर सुखा लेते हैं उनको

जौहड़, जवाहड या जंगीहड कहते हैं। इनका रंग काला होता है। जो अधपके फल सुखा लेते हैं उनको **पीली हड** या **हरड़ा** कहते हैं। इनको विशेषतः रंग बनानेके काममें लिया जाता है। औषधके लिये प्रायः इनका व्यवहार नहीं किया जाता। इसके परिपक्व फलको **बड़ी हर्रे** या **अमृतसरी हड़** कहते हैं।

डेढ़ तोलेसे ऊपरके वजनकी, भरी हुई, छिद्ररहित, जिसका बक्कल-दल बड़ा हो और गुठली छोटी हो उस हड़को खानेके काममें लेना चाहिये। हडकी कोमल पत्तियोंमें एक प्रकार कीड़ा लगकर कीटगृह बनता है। बंबई प्रान्तमें इसका 'काकडासिंगी'के नामसे व्यवहार करते हैं, परंतु यह असली काकड़ासिंगी नहीं है। काकड़ासिंगीका वर्णन इसी खंडमें पृ. १५३-१५४ पर देखें।

**गुण-कर्म**—"हरीतकी पथ्यानां" (च. सू. अ. २५)। "हरीतकीं पञ्चरसामुष्णामलवणां शिवाम्। दोषानुलोमनीं लघ्वीं विद्याद्दीपनपाचनीम्॥ आयुष्यां पौष्टिकीं धन्यां वयसः स्थापनीं पराम्। सर्वदोषप्रशमनीं बुद्धीन्द्रियबलप्रदाम्॥ कुष्ठं गुल्ममुदावर्तं शोषं पाण्ड्वामयं मदम्। अर्शांसि ग्रहणीदोषं पुराणं विषमज्वरम्॥ हृद्रोगं सशिरोरोगमतिसारमरोचकम्। कासं प्रमेहमानाहं प्लीहानमुदरं नवम्॥ कफप्रसेकं वैस्वर्यं वैवर्ण्यं कामलां क्रिमीन्। श्वयथुं तमकं छर्दिं क्लैब्यमङ्गावसादनम्॥ स्रोतोविबन्धान् विविधान् प्रलेपं हृदयोरसोः। स्मृतिबुद्धिप्रमोहं च जयेच्छीघ्रं हरीतकी॥ अजीर्णिनो रूक्षभुजः स्त्रीमद्यविषकर्षिताः। सेवेरन्नाभयामेते क्षुत्तृष्णोष्णार्दिताश्च ये॥" (च. चि. अ. १. पा. १)। सुश्रुते (सू. अ. ३८) परूषकादौ, त्रिफलायां, आमलक्यादौ, त्रिवृतादौ च गणे (सू. अ. ३९) हरीतकी पठ्यते। "व्रण्यमुष्णं सरं मेध्यं दोषघ्नं शोथकुष्ठनुत्। कषायं दीपनं चाम्लं चक्षुष्यं चाभयाफलम्॥" (सु. सू. अ. ४६)।

हरीतकी पथ्य (नित्यसेवनयोग्य), लवणको छोड़कर अन्य पाँचों रसयुक्त, शिव (आरोग्यकर), दोषोंका अनुलोमन (अधोमार्गसे निर्हरण) करनेवाली, लघु, दीपन, पाचन, आयुष्यको बढ़ानेवाली, वयःस्थापन, सर्वदोषप्रशमन, बुद्धिवर्धक, इन्द्रियोंको बल देनेवाली तथा कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त, शोष, पाण्डुरोग, मद, अर्श, ग्रहणीरोग, पुराना विषमज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतिसार, अरुचि, खाँसी, प्रमेह, आनाह, प्लीहरोग, नया उदररोग, कफप्रसेक, स्वरभंग, वैवर्ण्य, कामला, कृमि, श्वयथु, तमकश्वास, वमन, नपुंसकता, अंगावसाद, नाना प्रकारके स्रोतोंका अवरोध, हृदय और वक्षःस्थलका प्रलेप (कफलिप्तत्व) तथा स्मृति और बुद्धिके प्रमोहको शीघ्र दूर करनेवाली है।

**नव्यमत**—हरीतकीमें २५ प्रतिशत कषायाम्ल (टॅनिक् एसिड्), एक तिक्तद्रव्य और राल (रॅझिन्) है। बड़ी हर्रे मृदुविरेचन, अर्शोघ्न, श्लेष्मघ्न, शोथघ्न, रक्तसांग्राहिक, बल्य, पथ्य, गुल्महर, व्रणरोपण और वयःस्थापन है। इससे भूख लगती है, अन्न पचता है और दस्त साफ होता है। विरेचनके लिये देनेपर प्रारंभमें जुलाब होकर

अपने आप बंद हो जाते हैं, पेटमें मरोड़ आता नहीं और मितली होती नहीं । इसके नित्य सेवनसे हृदय और रक्तवाहिनियोंकी शिथिलता दूर होती है, रक्ताभिसरण सुधरनेसे मस्तिकको अधिक रक्त मिलता है और मनमें उत्साह मालूम होता है, निद्रा अच्छी आती है, वीर्य गाढ़ा होता है, शरीरका वर्ण सुधरता है और वजन बढ़ता है। छोटी हड मृदुविरेचन, वातनाशक और बल्य है । यह बड़ी हड जैसी रसायन नहीं है । इसकी क्रिया केवल पचननलिकापर होती है । कुपचन, अतिसार, आँव और आँतोंकी शिथिलतामें हर्रे देते हैं । अर्शमें सैंधवके साथ देते हैं और रक्तार्शमें क्वाथ करके देते हैं । जीर्णज्वरमें प्लीहा मोटी और कठिन हुई हो तो हर्रे नौसादरके साथ देते हैं । रक्तपित्त तथा रक्तकासमें और कई एकको रक्तस्राव होनेकी आदत होती है उनके लिये हर्रे गुणकारी है । कई लोगोंको अधिक स्वेद आनेकी, नाक बहनेकी, सर्दी-जुखाम होने पर बहुत दिनोंतक कफ पड़नेकी आदत होती है उनको हर्रेसे अच्छा लाभ होता है । मुखव्रण और गलेकी सूजनमें हर्रे पानीमें घिसकर मुँहमें लगाते हैं । छोटी हड अजीर्णसे होनेवाले जुलाव, पेचिश, जीर्ण अतिसार, जीर्ण आँव, गुल्म, प्लीहवृद्धि और हमेशाके कब्जमें गुणकारी है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

**मात्रा**—जौहड घी या एरंडतेल लगाकर सेंकी हुई १॥–३ माशा; बड़ी हडका चूर्ण ३–६ माशा विरेचनके लिये, १॥–३ माशा रसायनके लिये । बड़ी हडकी गुठली निकालकर उसका चूर्ण करना चाहिये ।

---

## ( १४९ ) विभीतक ।

**नाम**—( सं. ) बिभीतक, अक्ष; ( हिं., म., गु. ) बहेडा; ( क. ) बलेल, ( बं. ) बयड़ा; ( ते. ) ताडि; ( ता. ) अक्कम्, अक्कदम्; ( म. ) तान्नि; ( फा. ) बलेला, बलेलज; ( ले. ) टर्मिनेलिआ बेलेरिका ( Terminalia belerica )।

**वर्णन**—बहेड़ेका वृक्ष भारतवर्षमें सर्वत्र होता है । बहेड़के अच्छे पके हुए फल गुठली निकालकर काममें लेना चाहिये ।

**मात्रा**–१॥–३ माशा ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) विरेचनोपगे, ज्वरहरे च महाकषाये तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) मुस्तादिगणे, त्रिफलायां च बिभीतकं पठ्यते । "रसासृङ्मांसमेदोजान् दोषान् हन्ति बिभीतकम् । स्वरभेदकफोत्क्लेदपित्तरोगविनाशनम् ॥" ( च. सू. अ. २७ ) । "भेदनं लघु रूक्षोष्णं वैस्वर्यक्रिमिनाशनम् । चक्षुष्यं स्वादुपाक्याक्षं कषायं कफपित्तजित् ॥" । "बैभीतको मदकरः कफमारुतनाशनः ।" ( सु. सू. अ. ४६ )। "बिभीतकं स्वादुपाकं कषायं कफपित्तनुत् ।

उष्णवीर्यं हिमस्पर्शं भेदनं कासनाशनम् ॥ रूक्षं नेत्रहितं केश्यं कृमिवैस्वर्यनाशनम् । बिभीतमज्जा तृड्छर्दिकफवातहरो लघुः । कषायो मदकृच्चाथ" (भा. प्र.)।

बहेड़ा कषाय, मधुरविपाक, उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु, भेदन, चक्षुष्य, केश्य ( बालोंके लिये हितकर-बालोंको काला करने वाला ) तथा रस-रक्त-मांस और मेदके रोग, स्वरभेद, कफ, उत्क्लेश, पित्तके रोग, कृमि और खाँसीका नाश करने वाला है। बहेड़ेका मग्ज कषाय, लघु, मादक तथा कफ, वायु, तृषा और वमनको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—बहेड़ेकी छाल संग्राहक और श्लेष्मघ्न है। इसकी क्रिया मुख्यतः गले और श्वासनलिकापर होती है। फलका मग्ज साधारण मादक, वेदनास्थापन और शोथघ्न है। बहेड़ेके फलकी छाल प्रतिश्याय, कास, श्वास और स्वरभंगमें मुँहमें रखते हैं। सूजनपर मग्जका लेप दाह कम होनेके लिये लगाते हैं। तेल लगानेसे खाज कम होती है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

---

## ( १५० ) अर्जुन ।

**नाम**—( सं. ) अर्जुन, पार्थ, ककुभ; ( हिं. ) अर्जुन, कोह, कौह; ( पं. ) जुमरा; ( म. ) अर्जुनसादडा; ( ते. ) तेल्लमद्दि; ( ता. ) मरुतै; ( म. ) नीर्मरुतु; ( ले. ) टर्मिनेलिआ अर्जुन ( Terminalia arjuna )।

**वर्णन**—अर्जुनका वृक्ष होता है। बाह्यत्वक् श्वेत और श्लक्ष्ण; अन्तस्त्वक् मोटी, नरम और रक्ताभ; पत्र-संयुक्तदल, एक पर्णमें १०-१५ जोड़े और एक सिरेपर; फल कमरख जैसा ५-७ धारवाला ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) उदर्दप्रशमने महाकषाये, कषायस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) सालसारादिगणे, न्यग्रोधादिगणे ( 'ककुभ' नाम्ना ) च अर्जुनः पठ्यते । "ककुभः शीतलो हृद्यः क्षतक्षयविषास्रजित् । मेदोमेहव्रणान् हन्ति तुवरः कफपित्तहृत् ॥" ( भा. प्र. ) । "अर्जुनस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं योज्यं हृदामये ।" ( च. द. चि. ) ।

अर्जुन कषाय, शीतवीर्य, उदर्दप्रशमन, हृद्य तथा कफ, पित्त, क्षतक्षय, विष, रक्तविकार, मेदोवृद्धि, प्रमेह और व्रणको दूर करनेवाला है । अर्जुनकी छालका क्षीरपाक करके देनेसे हृद्रोगमें लाभ होता है ।

**नव्यमत**—अर्जुनकी छालमें ४३ प्रतिशत चूनेके क्षार, उनमें ३४ प्रतिशत शुद्ध चूना ( केल्सिअम् कार्बोनेट ) और १६ प्रतिशत कषाय द्रव्य ( टेनीन् ) है । अर्जुनकी क्रिया चूने और कषायाम्ल जैसी होती है। इससे रक्तवाहिनियोंका संकोचन होता

है। बारीक रक्तवाहिनियोंका संकोचन होनेसे रक्ताभिसरणका दवाव बढ़ता है, हृदयकी पोषण क्रिया अच्छी होती है, हृदयका आरामकाल दीर्घ होता है, इससे हृदयको बल मिलता है। हृदयका स्पन्दन ठीक और जोरदार होता है तथा उनकी संख्या कम होती है। रक्तवाहिनियोंसे रक्तका जलभाग शरीरमें रसता है वह इससे कम होता है और हृदयको उत्तेजन मिलता है। रुधिराभिसरणके चक्रमें जितना हृदयका महत्त्व है उतना ही रक्तवाहिनियोंका भी है। रक्तवाहिनियोंका ठीक संकोचन न हो किंवा उनमें शिथिलता आई हो तो हृदय अपना काम ठीक नहीं कर सकता। अर्जुनसे रक्त भी शुद्ध होता है। रक्तपित्त और जीर्णज्वरमें रक्त दूषित होता है तब अर्जुन देते हैं। इससे रक्तस्राव वंद होता है। इसमें पुष्कल चूना होनेसे इससे भग्न अस्थिका शीघ्र संधान होता है। अर्जुन हृदयोत्तेजक, हृदयबल्य, रक्तसांग्राहिक, शोणितास्थापन, शोथघ्न, संधान और व्रणरोपण है। **मात्रा**–छालका चूर्ण ·॥–१ तोला दूधके साथ क्षीरपाकविधिसे पकाकर दें (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

# लवङ्गादि वर्ग ४०.

## N. O. Myrtaceæ (मिर्टेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थगर्भाशय; पर्णविन्यास अभिमुख; पर्ण सादे, अखंड, तैलग्रन्थियुक्त और सुगन्धि; पुष्प पत्रकोणोद्भूत या शाखाग्रोद्भूत; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ४–५; फल शुष्क या मांसल।

---

### (१५१) लवंग।

**नाम**—(सं.) लवङ्ग, देवकुसुम; (हिं.) लवंग, लौंग; (म., गु.) लवंग; (मा.) लौंग, लूंग; (क.) रुंग; (ते.) लवंगमु; (ता.) किरांबु; (मल.) करयांपूवु; (फा.) मेखक; (अ.) करन्फुल; (ले.) केरियोफाइलस एरोमेटिकस (Caryophyllus aromaticus)।

**वर्णन**—बाजारमें जो लवंग मिलते हैं वे वृन्तसहित पुष्पकी अविकसित कलियाँ हैं। औषधके लिये जिसमेंसे तैल न निकाल लिया हो ऐसे लवंग काममें लेने चाहिये। इस देशमें लवंग जंगबार (जञ्जीबार-आफ्रीका) से आते हैं।

**गुण-कर्म**—"धार्याण्यास्येन वैशद्यरुचिसौगन्ध्यमिच्छता। × × × लवङ्गस्य फलानि च॥" (च. सू. अ. ५)। "× × × लवङ्गं च तिक्तं कटु कफापहम्। लघु तृष्णापहं वक्त्रक्लेददौर्गन्ध्यनाशनम्॥" (सु. सू. अ. ४६)। "लवङ्गं कटुकं तिक्तं लघु नेत्रहितं हिमम्। दीपनं पाचनं रुच्यं कफपित्तास्रनाशनम्॥ तृष्णां छर्दिं तथाऽऽध्मानं शूलमाशु विनाशयेत्। कासं श्वासं च हिक्कां च क्षयं

क्षपयति ध्रुवम् ॥" (भा. प्र.)। "आध्मानानाहशूलघ्नं लवङ्गं पाचनं लघु।" (रा. नि.)।

लवंग कटु, तिक्त, लघु, शीतवीर्य, दीपन, पाचन, मुँहको साफ करनेवाला, रुचिकर, सुगन्धि तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, तृषा, वमन, अफारा, शूल, खाँसी, श्वास और क्षयको दूर करनेवाला है।

---

## (१५२) जम्बू।

**नाम—**(सं.) जम्बू; (पं.) जामलु; (हिं.) जामुन; (म.) जांभूळ; (गु.) जांबू; (बं.) जाम; (मा.) जांबोली, जामन; (ते.) नेरेडु; (ता.) शंबु, नावल; (मल.) भावल; (सिंध) जंमू; (ले.) युजेनिआ जॅबोलेना (Eugenia jambolana)।

**वर्णन—**जामुनके वृक्ष भारतवर्षमें सर्वत्र होते हैं और प्रसिद्ध हैं। पके हुए ताजे फल खाये जाते हैं।

**उपयुक्त अंग—**फल, मगज, छाल और पत्र।

**गुण-कर्म—**चरके (सू. अ. ४) छर्दिनिग्रहणे (जम्बूपल्लवं), पुरीषविरजनीये, मूत्रसंग्रहणीये च महाकषाये तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) न्यग्रोधादिगणे जम्बूः पठ्यते। "जाम्बवं वातजननानां" (अग्र्यं; च. सू. अ. २५)। "जाम्बवं कफपित्तघ्नं ग्राहि वातकरं परम्॥" (च. सू. अ. २७)। "अत्यर्थं वातलं ग्राहि जाम्बवं कफपित्तजित्।" (सु. सू. अ. ४६)।

जामुन पुरीषविरजनीय, मूत्रसंग्रहणीय, ग्राहि, वातकर तथा कफ-पित्तहर है। जामुनकी कोमल पत्ती वमनको बंद करनेवाली है।

**नव्यमत—**फल और मगज पाचन और साधारण स्तंभन है। मधुमेहमें यकृत्की क्रिया बिगड़ती है, वह इसके मगजसे फिर सुधरती है। इसका विशेष उपयोग शर्कराके पाचनमें होता है। फलोंका उत्तम आसव बनता है। वह मधुमेह, अतिसार, संग्रहणी और आँवमें दिया जाता है। पत्तोंका रस अच्छा स्तम्भन है। इसलिये रक्तमिश्रित आँव, अत्यार्तव आदि रक्तस्रावयुक्त रोगोंमें देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**यूनानी मत—**जामुन दूसरे दर्जेमें शीत और रूक्ष, आमाशय और उष्ण यकृतको बलप्रद, दीपन, ग्राही और गरमीको शांत करनेवाला है। जामुनका फल और सिरका गरम आमाशय और यकृतको शक्ति देने, भूख लगाने, दाह शांत करने और पैत्तिक दस्तोंको दूर करनेके लिये देते हैं। जामुनका मगज ग्राही होनेसे अतिसार और बहुमूत्रमें देते हैं। जामुनका मगज, आमकी गुठलीका मगज और घीमें सेंकी हुई जौंहड़का चूर्ण पुराने अतिसारके लिये उत्तम है।

---

## ( १५३ ) युकेलिप्टस्।

**नाम**—( सं. ) तैलपत्र, रक्तनिर्यास, सुगन्धपत्र, हरितपर्ण; ( ले. ) युकेलिप्टस रोस्टिएटा ( Eucalyptus rosteata )।

**वर्णन**—युकेलिप्टसके वृक्ष बागोंमें लगाये जाते हैं और जंगलोंमें भी होते हैं। इसके पत्तोंसे सुगन्धि तैल निकालते हैं। वृक्षकी छालमें सीधे चीरे पड़कर उसमेंसे रक्तवर्णका गोंद बाहर आता है।

**उपयुक्त अंग**—पत्र और निर्यास। **मात्रा**—गोंद २-५ रत्ती। पत्रचूर्ण ·।।-१ तोला २० गुने गरम जलमें फांट बनाकर दें। **फांटकी मात्रा**-२।।-५ तोला। गोंद सुकुमार-प्रकृति लोगोंको संग्रहणी, अतिसार और आँवमें देते हैं। पत्रफांट कफघ्न, कफदुर्गन्धिनाशक, मूत्रजनन और पूतिहर है। इसलिये फुप्फुसके पुराने रोग, बस्तिशोथ और पुराने पूयमेह( सुजाक ) में देते हैं। ज्वरमें फांट देनेसे पसीना आता है, सिर और शरीरकी पीड़ा कम होती है तथा सब शरीरमें उत्तेजना ( स्फूर्ति ) मालूम होती है। छायाशुष्क १-१ पत्रका चूर्ण दिनमें दो बार देनेसे शीतज्वरमें लाभ होता है। सब वैद्योंको इसका वृक्ष अपने यहाँ लगाना चाहिये ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

युकेलिप्टसका तैल जन्तुघ्न, दुर्गन्धहर, पूतिहर, मूत्रल, स्वेदल, कफघ्न, ज्वरघ्न, दीपन-पाचन, वातहर और हृदयोत्तेजक है।

---

## ( १५४ ) हिज्जल।

**नाम**—( सं. ) हिज्जल, विदुल, निचुल; ( हिं., गु. ) समुद्रफल; ( बं. ) हिजल; ( म. ) सत्फल, समुद्रफल; ( मा. ) समंदरफल; ( ते. ) कण(न)पु, कणिगि; ( मल. ) समुद्रप्पळम्; ( ले. ) बेरिन्गटोनिआ एक्युटेन्ग्युला ( Barringtonia acutangula )।

**वर्णन**—समुद्रफलका मध्यमाकृति वृक्ष बंगाल और दक्षिण भारतमें होता है। पत्र लंबगोल, अंडाकृति, किनार कुछ दंतुर; पर्णवृंत छोटा; पुष्प रक्तवर्ण; पँखडियाँ ४; फल बादाम जैसा, चौकोन; फलका स्वाद आरंभमें मीठा, पीछे कडुआ और मितली लानेवाला होता है।

**गुण-कर्म**—**चरके ( सू. अ. २ ) विरेचनद्रव्येषु 'निचुल' नाम्ना, वमनोपगे महाकषाये ( सू. अ. ४ ) 'विदुल' नाम्ना तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३९ ) ऊर्ध्वभागहरे गणे हिज्जलः पठ्यते। हिज्जलः कफवातघ्नो रेचनो वामकस्तथा।**

समुद्रफल वमन और विरेचन करानेवाला तथा कफ और वातको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—समुद्रफलमें साबुन जैसा पदार्थ होता है। फलके चूर्णको पानीमें डालकर खूब हिलानेसे झाग आते हैं जो देरतक रहते हैं। झागका स्वाद आरंभमें

मधुर और पीछे तिक्त और कटु मालूम होता है। समुद्रफल कफघ्न, वामक, आनुलोमिक और वेदनास्थापन है। बच्चोंको कफरोग( कास-श्वास ) में समुद्रफल देते हैं। इससे वमन न हो तो गरम जलमें थोड़ा सैंधव गेरकर देनेसे वमन हो जाता है और दस्त भी साफ हो जाता है। दमेमें समुद्रफल ६ माशे और सफेद कोयलके मूल ६ माशे दूधमें पीसकर देनेसे वमन और विरेचन होकर श्वासका कष्ट दूर होता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )

---

## दाडिमादि वर्ग ४१.

## N. O. Punicaceæ ( प्युनिसेसी )।

---

### ( १५५ ) दाडिम।

**नाम**—( सं. ) दाडिम; ( क. ) दआन; ( हिं. ) दाड़िम, अनार; ( म. ) डाळिंब; ( गु. ) दाड़म; ( मा. ) दांडू, दाड़म; ( सिं. ) डाणहूं; ( ते. ) दाडिमसु, करकमु; ( ता. ) मादळै, मादळम्; ( मल. ) मातळम्; ( फा. ) अनार; ( अ. ) रुम्मान; ( ले. ) प्युनिका ग्रेनेटम् ( Punica granatum )।

**वर्णन**—दाडिम भारतवर्षमें सर्वत्र होता है। दाड़िमका फल मीठा, खटमिठा और खट्टा तीन प्रकारका होता है। दाड़िमके सुखाये हुए बीजोंको **अनारदाना** या **दाड़िमसार** कहते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) हृद्ये, छर्दिनिग्रहणे च महाकषाये तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) परूषकादिगणे दाडिमं पठ्यते। "अम्लं कषायमधुरं वातघ्नं ग्राहि दीपनम्। स्निग्धोष्णं दाडिमं हृद्यं कफ-पित्ताविरोधि च॥ रूक्षाम्लं दाडिमं यत्तु तत् पित्तानिलकोपनम्। मधुरं पित्तनुत्तेषां तद्धि दाडिममुत्तमम्॥" ( च. सू. अ. २७ )। "कषायानुरसं तेषां दाडिमं नातिपित्तलम्। दीपनीयं रुचिकरं हृद्यं वर्चोविबन्धनम्॥ द्विविधं तत्तु विज्ञेयं मधुरं चाम्लमेव च। त्रिदोषघ्नं तु मधुरमम्लं वातकफापहम्॥" ( सु. सू. अ. ४६ )। "तत्तु स्वादु त्रिदोषघ्नं तृड्दाहज्वरनाशनम्। हृत्कण्ठमुखरोगघ्नं तर्पणं शुक्रलं लघु॥ कषायानुरसं ग्राहि स्निग्धं मेधाबलावहम्। स्वाद्वम्लं दीपनं रुच्यं किञ्चित् पित्तकरं लघु॥ अम्लं तु पित्तजनकमाम-वात-कफापहम्॥"

दाड़िम सामान्यतः अम्ल-कषाय और मधुर रसवाला, स्निग्ध, उष्णवीर्य, छर्दिनिग्रहण, हृद्य, वातघ्न, ग्राहि, दीपन तथा कफ और पित्तको न बढ़ानेवाला है। कषाय और अम्ल रसवाला दाड़िम पित्त और वायुका प्रकोप करनेवाला है। मधुर दाड़िम पित्तको दूर करनेवाला और दाड़िमोंमें उत्तम है ( च. )। दाड़िम कषायानुरस, किंचित् पित्तकर, दीपन, रुचिकर, हृद्य और मलको बांधनेवाला है। दाड़िम मीठा और

खट्टा दो प्रकारका होता है। मीठा दाड़िम त्रिदोषनाशक और खट्टा वात और पित्तका नाश करनेवाला है (सु.)। मीठा दाड़िम त्रिदोषहर, कषायानुरस, ग्राहि, स्निग्ध, लघु, शुक्ल, मेधा और बल देनेवाला तथा तृष्णा, दाह, ज्वर और हृदय-कंठ तथा मुखके रोगोंका नाश करनेवाला है। खटमिठ्ठा दाड़िम दीपन, रुचिकर, लघु और कुछ पित्त करने वाला है। खट्टा दाड़िम पित्तकर तथा आम, वात और कफका नाश करने वाला है (भा. प्र.)।

**नव्यमत**—इस वृक्षका छिलकासमेत फल और मूलकी छाल औषधके लिये उपयुक्त होते हैं। फलका रस रोचक, रक्तशुद्धि करनेवाला और मृदु स्तम्भन है। दाड़िमका फल अतिसार, संग्रहणी, आँव, आँतोंकी शिथिलता और आँतोंसे जल-मिश्रित रक्त आना—इनमें छाल सहित फलका पुटपाकविधिसे रस निकालकर दिया जाता है। मूलकी छाल तीव्र कृमिघ्न है। १-२ तोले छालका क्वाथ खाली पेट दें। उस दिन खाना न खिलाएँ। अगले दिन सवेरे विरेचन दें। इससे चपटे कृमि (Tope-worm) मरकर निकल जाते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## मदयन्त्यादि वर्ग ४२.

### N. O. Lythraceæ (लाय्थ्रेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थगर्भाशय; पर्णविन्यास अभिमुख; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यंतरकोशके दल ३-६; फल विदारि।

---

### (१५६) मदयन्तिका।

**नाम**—(सं.) मदयन्तिका; (क.) माञ्ज, मोंज; (हिं.) मेंहदी, मेहँदी; (म., गु.) मेंदी; (मा.) मेंहदी; (तै.) कोम्मि, कुरुवकमु; (ता.) ऐवणं, मरुदोंड्रि; (मल.) मैलाञ्चि; (फा.) हिना; (अ.) हिन्ना; (ले.) लॉसोनिआ इनर्मिस (Lawsonia inermis)।

**वर्णन**—मेंहदीका क्षुप बागोंमें लगाया जाता है। पत्तियाँ पीसकर हाथ-पाँवमें लाल रंग लानेके लिये लगाई जाती हैं। फूल सुगन्धि होते हैं। फूलोंसे इत्र बनाया जाता है।

**गुण-कर्म**—सुश्रुते महानीलघृते (चि. अ. ९), राजयोग्येऽङ्गरागयोगे च मदयन्तिका पठ्यते—"हरीतकीचूर्णमरिष्टपत्रं चूतत्वचं दाडिमपुष्पवृन्तम्। पत्रं च दद्यान्मदयन्तिकाया लेपोऽङ्गरागो नरदेवयोग्यः॥" (सू. चि. अ. २४)। 'मदयन्तिका मेंहदी' इति लोके, यस्याः पिष्टैः पत्रैर्नखानां रागं श्रिय उत्पादयन्ति।" (डल्हण)। अष्टाङ्गहृदये (चि. अ. २) रक्तपित्तचिकित्सिते मदयन्तिका पठ्यते।

सुश्रुतमें कुष्ठचिकित्साके महानीलघृतमें तथा राजरोग्य अङ्गरागके योगमें और वाग्भटमें रक्तपित्तचिकित्सामें मेंहदीका उल्लेख मिलता है।

**नव्यमत**—पत्तियोंमें लाल रंग होता है। पत्र शीतल और कुष्ठघ्न हैं। फूल उत्तेजक तथा हृदय और मस्तिष्कको बल देनेवाले हैं। ज्वरमें फूलोंका फांट दाह और सिरकी पीड़ा कम करने तथा हृदयसंरक्षण और निद्रा लानेके लिये देते हैं। सन्धिशोथमें पत्तियोंका लेप करते हैं। लग्नरोगमें मेंहदीका प्रचुर प्रयोग किया जाता है। मुखव्रण और गलेकी सूजनमें पत्तियोंके क्वाथके कुल्ले कराते हैं। सुजाकमें उष्णता कम करनेके लिये पत्रस्वरसमें मिश्री मिलाकर देते हैं। रक्तमिश्रित आँवमें मेंहदीके बीजोंका कल्क देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**मेंहदीप्रधान योग-मदयंत्यादि चूर्ण** (सि. यो. सं. कुष्ठाधिकार)।

**यूनानी मत**—मेंहदी शीत, रूक्ष, दाहशामक, शोथविलयन, मूत्रल और रक्तशोधक है। सिरके दर्द और हाथ-पांवकी जलनमें मेंहदीकी पत्तियोंका लेप करते हैं। सफेद बालोंको काला करनेके लिये मेंहदी और नीलकी पत्ती (वस्मा) पानीमें पीसकर लगाते हैं। कामलामें मेंहदीकी पत्तीका स्वरस देते हैं।

---

## (१५७) धातकी

**नाम**—(सं.) धातकी; (क.) गुलिदावा; (पं.) धावी; (हिं.) धाय; (म.) धावस, धायटी; (गु.) धावणी, धावडी; (मा.) धावड़ी; (सिं.) फूलधावो; (ते.) सिरींजी; (मल.) तादिरे, तातिरि; (ले.) वुड्फोर्डिआ फ्रुटिकोसा (Woodfordia fruticosa)।

**वर्णन**—धातकीका क्षुप पहाड़ी जमीनमें सर्वत्र होता है। पत्र दाड़िम जैसे; पुष्प रक्तवर्ण होते हैं। आसवोंमें खमीर उठाने और रंग लानेके लिये फूलोंका उपयोग किया जाता है।

**उपयुक्त अंग**— पुष्प। **मात्रा**-पुष्पचूर्ण १॥-३ माशा।

**गुण-कर्म**—**चरके** (सू. अ. ४) संधानीये, पुरीषसंग्रहणीये, मूत्रविरजनीये च महाकषाये तथा **सुश्रुते** (सू. अ. ३८) प्रियङ्ग्वादौ, अम्बष्ठादौ च गणे धातकी पठ्यते। "धातकी कटुका शीता मदकृत्तुवरा लघुः।" (भा. प्र.)। "प्रवाहिकातिसारघ्नी विसर्पव्रणनाशिनी।" (रा. नि.)।

धायके फूल कटु, कषाय, लघु, शीतवीर्य, संधानीय, पुरीषसंग्रहणीय, मूत्रविरजनीय तथा प्रवाहिका, अतिसार, विसर्प और व्रणका नाश करनेवाले हैं।

**नव्यमत**—धायके फूलमें २० प्रतिशत कषायाम्ल (टेनिक एसिड) होता है। आसवोंमें फूल डालनेसे रंग अच्छा आता है। फूल संग्राहक हैं। अत्यार्तव, अतिसार और पुरानी आँवमें फूल देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## शृङ्गाटकादि वर्ग ४३.

## N. O. Onagraceæ (ओनेग्रेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थगर्भाशय; पर्णविन्यास अभिमुख या एकान्तर; पर्ण सादे; पुष्प पत्रकोण या शाखाप्रसे निकलते हैं। पुष्प-बाह्यकोश रंगीन, नलिकाकृति।

---

### (१५८) शृङ्गाटक।

**नाम**—(सं.) शृङ्गाटक; (क.) गोअर, गाअरि; (पं.) गाड़ियां; (हिं.) सिंघाड़ा; (बं.) शिङ्गाडा, पानिफल; (म.) शेंगाडा; (गु.) शींघोडां; (मा.) सिंगोडा; सीङ्गारा; (ते.) परिकेगड्डु; (म.) चिरवप्पप्पु; (ले.) ट्रैपा बाईस्पाइनोझा (Trapa bispinosa)।

**वर्णन**—सिंघाड़ेकी लता तालावोंमें होती है। इसके पत्र पानीपर तैरते नजर आते हैं। फल त्रिकोणाकृति, फलकी त्वचा हरी होती है, परंतु फलको पानीमें उबालनेपर वह काली हो जाती है। फलके ऊपर दो काँटे होते हैं। फल जलमें उबालकर, अग्निमें भूनकर या कच्चा ही त्वचा निकालकर खाया जाता है।

**गुण-कर्म**—"शृङ्गाटकाङ्कलोड्यं च गुरु विष्टम्भि शीतलम्।" (च. सू. अ. २७)। "गुरुविष्टम्भिशीतौ च शृङ्गाटककशेरुकौ।" (सु. सू. अ. ४६)। "शृङ्गाटकः शोणितपित्तहारी गुरुः सरो वृष्यतमो विशेषात्। त्रिदोषतापश्रमदोषहारी रुचिप्रदो मेहनदार्ढ्यहेतुः॥" (रा. नि.)। "शृङ्गाटकं हिमं स्वादु गुरु वृष्यं प्रदीपनम्। ग्राहि शुक्रानिलश्लेष्मप्रदं पित्तास्रदाहनुत्॥" (भा. प्र.)।

सिंघाड़ा मधुर, गुरु, शीतवीर्य, विष्टम्भि, वाजीकर, रुचिकर, ग्राहि, दीपन, वातकफकर तथा रक्तपित्त, दाह और श्रमको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—सिंघाड़ेकी लतामें मेंगेनीझ प्रचुर होता है। फलमें शीघ्र पचने वाला पिष्ट (स्टार्च) होता है। सिंघाड़ा शीतल, पौष्टिक और शोणितास्थापन है। **मात्रा**—॥-१ तोला। सिंघाड़ेकी पेया अतिसार, आँव और प्रदरमें देते हैं। इससे कफ और रक्तका गिरना बंद होता है तथा रोगीका फीकापन नष्ट होता है। पित्तप्रकृतिवालोंको इसकी पेया बहुत अनुकूल होती है। (**डॉ. वा. ग. देसाई.**)।

---

## सप्तचक्रादि वर्ग ४४.

## N. O. Samydaceæ (सेमिडेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; पर्णविन्यास एकान्तर, पत्र सादे, जामुनके पत्र जैसे परंतु उससे बड़े; पत्रमें पारदर्शक गोल अथवा रेखाकृति ग्रन्थियाँ होती हैं।

---

## ( १५९ ) सप्तचक्रा।

**नाम—( सं. )** सप्तचक्रा, स्वर्णमूला; ( म. ) सप्तरंगी, सप्तकपी; ( मल. ) एकनायक; मलाम्पावट्टा, पन्निमुरुंगा, वेल्लकुन्तन; ( ते. ) कोड्डुंगुरु; ( ले. ) केसिएरिआ एस्क्युलेन्टा ( Casearia esculenta )।

**वर्णन**—इसके क्षुप दक्षिण भारतके पहाड़ी प्रदेशों( कोंकण और मलबार )में होते हैं। पुष्प हरापन लिये हुए; फल नारंगी रंगके, खाने योग्य, १॥ इंच लंबे, अंडाकृति; मूलकी बाह्यत्वचा सुनहरी रंगकी; मूलको काटनेपर उसमें सात चक्र दीखते हैं, मूल ताजे हों तो उनमें इन्द्रधनुष जैसे विभिन्न रंग दीखते हैं। मूलका स्वाद तिक्त और कषाय होता है।

**उपयुक्त अंग**—मूल और पत्र। **मात्रा**—१॥–३ माशा।

**गुण-कर्म**—सप्तरंगी तिक्त, कषाय, मृदु विरेचन, वातनाशक, स्वेदापनयन और यकृदुत्तेजक है। इससे विना कष्ट पीले रंगके एक दो दस्त होते हैं। इससे यकृत्की शर्कराविनिमयक्रिया सुधरती है, भूख लगती है और पेटमें वायु नहीं होती हैं। रोज लेनेसे शक्ति बढ़ती है। यकृदुद्भूत मधुमेहमें इससे मूत्रका प्रमाण और शर्करा कम होती है, पित्तयुक्त पतले दस्त होते हैं, पेटका अफारा नष्ट होता है, पसीना आना बंद होता है, प्रमेहपिडका उत्पन्न होना बंद होता है, पाँवपर सूजन आई हो तो उतरती है, रोगीका रंग सुधरता है और उसको 'मैं अच्छा हूं' ऐसा मालूम होने लगता है। इससे अर्शमें भी लाभ होता है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

---

## एरण्डकर्कटीवर्ग ४५.

### N. O. Passifloraceæ ( पेसिफ्लोरेसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; इस वर्गके वृक्षोंमें नरफूल और मादाफूल भिन्न-भिन्न वृक्षोंपर आते हैं।

---

## ( १६० ) एरण्डकर्कटी।

**नाम—( सं. )** एरण्डकर्कटी, मधुकर्कटी, गोपालकर्कटी, ( हिं. ) एरंडककडी, एरंडखर्बूजा, पपीता; ( बं. ) पेंपे; ( म. ) पपाया; ( गु. ) झाडचीभडुं, पोपैयुं; ( सिंध. ) काठगिदरो; ( ते. ) बोप्पयी; ( ता. ) पचळै, पप्पळि; ( मल. ) कप्पळम्, कप्पेक्का, पप्पायम्; ( फा. ) दरख्तखुरपजा; ( अ. ) शज्रतुलबतीख; ( ले. ) केरिका पपया ( Carica Papaya )।

**वर्णन**—एरंडखर्बूजेका वृक्ष भारतवर्षमें सर्वत्र होता है। पका हुआ फल खाया जाता है। वृक्षपर परिपूर्ण हुए कच्चे फलमें सीधे चीरे लगानेसे दूध जैसा निर्यास निकलता है। इसको इकठ्ठा कर, धूपमें सुखा, शीशीमें भर, अच्छी डाट लगाकर रख लेना चाहिये।

**गुण-कर्म**—फलके दूध-क्षीर-में एक पाचक सत्त्व होता है। यह एक भाग २४० गुने मांसको गलाकर नरम कर देता है। यह दूधमें मिलानेसे उसको गाढ़ा करता है। इसकी क्रिया आमाशय और आंतों दोनोंमें बराबर होती है। एरंडखर्बूजेका क्षीर उत्तम पाचक, कृमिघ्न, वेदनास्थापन, स्तन्यजनन, कुष्ठघ्न और उदररोगहर है। इसकी क्रिया पेप्सीनसे उच्च दर्जेकी है। इसके पत्तोंकी क्रिया हृदयपर डिजिटेलिसके समान होती है। इससे नाड़ीकी गति कम होती है, हृदयका स्पन्दन ठीक होता है, हृदयका आरामकाल बढ़ता है, पसीना आता है और मूत्रका प्रमाण बढ़ता है। पत्ते हृदयबल्य और ज्वरघ्न हैं। इनमें थोड़ा पाचक गुण भी है। पचननलिकाके रोगोंमें इसके दूधका बड़ा अच्छा उपयोग होता है। जिनको मांस और शिम्बीधान्य हजम न होते हों उनको इससे विशेष लाभ होता है। आमाशयका जीर्ण शोथ-व्रण और अर्बुद, अम्लपित्त तथा कुपचन रोगमें क्षीर देते हैं। इससे आमाशयका गाढ़ा कफ द्रवीभूत होता है और अन्न अच्छा हजम होकर शीघ्र रक्तमें परिणत होता है। पेटके गोल कृमि मारनेकेलिये इसका क्षीर १ तोला, शहद १ तोला और गरम जल २ तोला, मिला, ठंढा होने पर देते हैं और दो घंटेके बाद एरंडतैल देते हैं। इससे कभी पेटमें मरोड़ आवे तो नीबूके रसमें मिश्री मिलाकर देना चाहिये। यकृत् और प्लीहा बढ़कर कठिन हुए हों तो १ तोला ताजे क्षीरमें ३ माशा चीनी मिलाकर देते हैं। हृद्रोगमें पत्तियोंका फांट बनाकर देते हैं। ज्वरमें हृदय अशक्त होकर नाड़ीकी गति त्वरित हो तो इस फांटसे नाडी शांत होती है, ज्वरका वेग कम होता है और पेशाब छुटता है। इस रोगमें पत्तियोंके साथ मूत्रजनन, स्वेदजनन और सारक औषध देते हैं **(डॉ. वा. ग. देसाई)।**

---

## कोशातक्यादि वर्ग ४६.

### N. O. Cucurbitaceæ (कुकुर्बिटेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थगर्भाशय; पर्णविन्यास एकांतर; पर्णतल बहुधा खर; पर्ण हृदयाकृति, किनार दन्तुर; नर और मादा फूल एक ही पौधेपर स्वतन्त्र; फूलका रंग पीला या श्वेत; पुष्प पत्रकोणोद्भूत; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यंतरकोशके दल ५, प्रायः एक-दूसरेसे जुड़े हुए; पुंकेशर ३, परस्पर जुड़े हुए; फल मांसल; कांड गोल किंवा कोनयुक्त।

---

## ( १६१ ) कोशातकी ।

**नाम—( सं. )** कोशातकी, कृतवेधन, मृदङ्गफल, क्ष्वेड, जालिनी; ( क. ) तुरेल; ( पं. ) तोरी; ( हिं. ) तुरई, तोरई; ( म. ) दोडके; ( गु. ) तुरया, तुरीआं, गीसोडां, घीसोडां, पाडाबल; ( बं. ) घोषा; ( मा. ) तोरुं, तूरी; ( ता. ) पेप्पीर्क्कम्; ( म. लं. ) काट्टपीचि; ( ले. ) लफा अमारा ( Luffa amara ) ।

**वर्णन**—तोरईकी दो जातियाँ होती हैं-कड़वी और मीठी । कडुई जंगलोंमें स्वयंजात होती है और मीठी लगाई जाती है । लता-पुष्प-फल आदि दोनोंके प्रायः समान होते हैं । कडुईकी अपेक्षया मीठीके फल बड़े होते हैं । औषधके लिये कडुई तोरईका ही उपयोग होता है । कडुई और मीठीका भेद बतानेके लिये तिक्त-कोशातकीके लिये जंगली या कडुईके वाचक और मिष्टकोशातकीके लिये मधुरवाचक शब्द विशेषणरूपमें लगाये जाते हैं ।

**गुण-कर्म—चरके** ( सू. अ. १ ) एकोनविंशतिफलिनीषु, वमनद्रव्येषु ( सू. अ. २ ) च कृतवेधनं पठ्यते । "अत्यर्थकटु तीक्ष्णोष्णं गाढेष्विष्टं गदेषु च । कुष्ठपाण्ड्वामयप्लीहशोथगुल्मगरादि षु ॥" ( च. क. अ. ६ ) । **सुश्रुते** ऊर्ध्व-भागहरे, उभयतोभागहरे च गणे कोशातकी पठ्यते । "××× कोशातकी ××× प्रभृतीनि । रक्तपित्तहराण्याहुर्हृद्यानि सुलघूनि च । कुष्ठमेहज्वरश्वास-कासारुचिहराणि च ॥" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "××× कृतवेधन ××× तैलानि तीक्ष्णानि लघून्युष्णवीर्याणि कटूनि कटुविपाकानि सराण्यनिलकफकृमिकुष्ठप्रमेह-शिरोरोगापहराणि च ।" ( सु. सू. अ. ४५ ) ।

कडुई तोरई वमन और विरेचन करानेवाली, अत्यन्त तिक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य तथा प्रबल कुष्ठ, पाण्डुरोग, प्लीहा, शोथ, गुल्म और गर ( विष ) आदिमें प्रशस्त है ( उनका नाश करनेवाली है ) । मीठी तुरईका शाक अति लघु, हृद्य तथा रक्तपित्त, कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर, श्वास, खाँसी और अरुचिको दूर करनेवाला है । तुरईके बीजोंका तेल कटु, कटुविपाक, तीक्ष्ण, लघु, उष्णवीर्य, सारक तथा वायु, कफ, कृमि, कुष्ठ, प्रमेह और शिरोरोगको दूर करनेवाला है ।

**नव्यमत**—जंगली तोरई तिक्त, दीपन, मूत्रजनन, विरेचन, वामक, उदरहर, शिरोविरेचन, व्रणशोधन, व्रणरोपण और विषघ्न है । अल्प प्रमाणमें देनेसे भूख लगती है, दस्त साफ होता है और पेटके अवयवोंकी क्रिया सुधरती है । मध्यम मात्रासे विरेचन होता है और मूत्रका प्रमाण बढ़ता है । बड़ी मात्रामें देनेसे पानी जैसे दस्त होते हैं । बीजके मगजकी क्रिया इपिकाकुआना जैसी होती है । सड़ने लगे व्रणोंको धोनेके लिये इसका शीतकषाय बहुत लाभदायक है । इससे व्रणकी शुद्धि होकर व्रण शीघ्र भर जाता है । अधकपाली, ( कफज ) सिरका दर्द और कामलामें फलके

शीतकषायका नस्य देनेसे शिरोविरेचन होकर लाभ होता है । यकृद्दाल्युदर, प्लीहोदर और यकृतकी विकृतिसे उत्पन्न जलोदरमें इसका मद्यासव ( टिंक्चर ) हितकारक है । आरंभमें बड़ी मात्रा देकर पीछे दस्त और पेशाबका प्रमाण देखकर मात्रा घटानी-बढ़ानी चाहिये ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## ( १६२ ) धामार्गव ।

**नाम—( सं. )** धामार्गव, कोठफला, महाजालिनी, राजकोशातकी; **( पं. )** घियातोरी; **( हिं. )** घियातुरई, नेनुआ; **( मा. )** गिलकी, घीयातूरी; **( म. )** घोसाळें; **( गु. )** गलकां; **( ले. )** लफा एजिप्टिएका ( Luffa aegyptiaca ) ।

**वर्णन—**धामार्गव ( नेनुआ ) तोरईके जैसा होता है । तोरईके फलपर धारदार रेखायें होती हैं, परंतु नेनुआपर धारदार रेखायें नहीं होती । इसमें भी मीठा और कडुआ दो जातियाँ होती हैं । कडुएका औषधके लिये व्यवहार होता है, मीठेका साग बनाकर खाते हैं ।

**गुण-कर्म—**चरके ( सू. अ. १ ) एकोनविंशतिफलिनीषु, वमनद्रव्येषु ( सू. अ. २ ) च धामार्गवः पठ्यते । "गरे गुल्मोदरे कासे वाते श्लेष्माशयस्थिते । कफे च कण्ठवक्त्रस्थे कफसंचयजेषु च ॥ रोगेष्वेषु प्रयोज्यं स्यात् स्थिराश्च गुरवश्च ये ।" ( च. क. अ. ४७ ) । सुश्रुते ( सू. अ. ३९ ) ऊर्ध्वभागहरे गणे धामार्गवः पठ्यते । "अन्या स्वादुस्त्रिदोषघ्नी ज्वरस्यान्ते हिता स्मृता ।" ( ध. नि. ) ।

जंगली ( कड़वी ) घियातोरई वमन करानेवाली है । कफके संचयसे होनेवाले गुरु और स्थिर विकारोंमें, जब वायु कफके आशयोंमें संचित हुआ हो तथा कफ कंठ और मुँहमें स्थित हो तब तथा गर, गुल्म और खाँसीमें इसका प्रयोग करना चाहिये । मीठी घिया तोरई त्रिदोषहर तथा ज्वरके अंतमें हितकर हैं ।

कड़वी घिया तोरईके गुणकर्म कड़वी तुरईके समान हैं ।

---

## ( १६३ ) जीमूतक ।

**नाम—( सं. )** जीमूतक, देवदाली, गरागरी, देवताडक; **( पं. )** धगडवेल; **( हिं )** बंदाल, घघरबेल, घुसरा( ला )इन; **( मा. )** बंदालडोडा; **( बं. )** देवताड; **( म. )** देवडांगरी; **( गु. )** कुकडवेला; **( सिं. )** नेधेजा डेलू; **( ले. )** लफा एकिनेटा ( Luffa echinata ) ।

**वर्णन—**बंदालके ककोड़े जैसे काँटेदार फल होते हैं ।

**उपयुक्त अंग—**फल । पंचांग भी काममें लिया जाता है ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. १ ) एकोनविंशतिफलिनीषु, वमनद्रव्येषु ( सू. अ. २ ) च जीमूतं पठ्यते । "जीमूतकं त्रिदोषघ्नं यथास्वौषधकल्पितम् । प्रयोक्तव्यं ज्वरश्वासहिक्काद्येष्वामयेषु च ॥" ( च. क. अ. २ ) । सुश्रुते ( सू. अ. ३९ ) ऊर्ध्वभागहरे, उभयतोभागहरे च गणे जीमूतकं पठ्यते । "देवदाली तु तिक्तोष्णा कटुः पाण्डुकफापहा । दुर्नामश्वासकासघ्नी कामलाशोथनाशिनी ॥" ( रा. नि. ) । "देवदाली रसे पाके तिक्ता तीक्ष्णा विषापहा । वामनी हन्ति गुदजकफशोफाम- कामलाः ॥ ज्वरकासारुचिश्वासहिध्मापाण्डुक्षयकृमीन् ।" ( कै. नि. ) ।

बंदाल कटु, तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, वामक, शिरोविरेचन, रेचन तथा ज्वर, श्वास, हिक्का, पाण्डुरोग, अर्श, कास, कामला, विष, शोथ, आमविकार, अरुचि, क्षय और कृमिका नाश करनेवाली है ।

**नव्यमत**—बीजोंमें तैल होता है, उसमें कडुआपन नहीं होता । बंदाल तिक्त, दीपन, मूत्रजनन, विरेचन, शिरोविरेचन, व्रणशोधन और व्रणरोपण है । बड़ी मात्रामें देनेपर वमन और विरेचन होता है तथा रोगीकी हालत हैजेके समान दीखती है, स्त्री गर्भवती हो तो गर्भ गिर जाता है । बंदाल और कड़वीतोरईकी क्रिया समान होती है ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

बंदालके एक फलको अधकुटा करके रातको थोड़े जलमें भिगो, सबेरमें हाथसे मसल, कपड़ेसे छानकर नाकमें ५-१० बूँद डालनेसे दिनभर नाकसे पानी टपकता रहता है । कामला और कफज शिरोरोगमें इस नस्यका उपयोग करते हैं ।

---

## ( १६४ ) इन्द्रवारुणी ।

**नाम**—( सं. ) इन्द्रवारुणी, गवाक्षी, गोडुम्बा, विशाला; ( क. ) हूनिहेन्द, जहरबागुन; ( पं. ) कौड़तुंबा, कौड़तुम्मा; ( हिं. ) इन्द्रायन; ( मा. ) तूसण बेल, तूस, तूसतूंबा, गडतूंबा; ( म. ) इन्द्रावण; ( गु. ) इन्द्रावणा, इन्दरवारणा; ( बं. ) राखालशशा; ( सिंध ) ड्रूह; ( ते. ) पापरबुडम्; ( ता. ) पेतिकारि; ( मल. ) पेक्कुम्मट्टि; ( फा. ) खरबुज ए तल्ख; ( अ. ) हंजल; ( ले. ) सिट्रयुलस कोलोसेन्थिस् ( Citrullus colocynthis ) ।

**वर्णन**—इन्द्रायनकी लता होती हैं । इन्द्रायनके फल प्रारंभमें हरे और पकने पर पीले रंगके होते हैं । इसकी कई जातियाँ हैं । एक जातिके फलपर छोटे काँटे होते हैं; दूसरीके फल पकने पर लाल रंगके होते हैं ।

**उपयुक्त अंग**—फल और मूल ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. १ ) षोडशमूलिनीषु ( 'गवाक्षी' नाम्ना ), विरेचनद्रव्येषु ( सू. अ. २ ) च इन्द्रवारुणी पठ्यते । सुश्रुते ( सू. अ. ३८ )

श्यामादिगणे, अधोभागहरद्रव्येषु (सू. अ. ३९) च गवाक्षी पठ्यते। "इन्द्रवारुणिकाऽत्युष्णा रेचनी कटुका तथा। कृमिश्लेष्मव्रणान् हन्ति हन्ति सर्वोदराण्यपि॥" (ध. नि.)। "गवादनीद्वयं तिक्तं पाके कटु सरं लघु। वीर्योष्णं कामलापित्तकफप्लीहोदरापहम्॥ श्वासकासापहं कुष्ठगुल्मग्रन्थिव्रणप्रणुत्। प्रमेहमूढगर्भामगण्डामयविषापहम्॥" (भा. प्र.)।

इंद्रायन तिक्त, कटुविपाक, लघु, उष्णवीर्य, रेचन तथा कृमि, कफ, व्रण, उदररोग, कामला, पित्त, प्लीहोदर, श्वास, कास, कुष्ठ, गुल्म, ग्रन्थि, प्रमेह, मूढगर्भ, आमविकार और विषका नाश करनेवाली है।

**नव्यमत**—इंद्रायन भेदन है। इससे पेटमें मरोड़ आकर पतले दस्त होते हैं। मात्रा अधिक दी जाय तो आँतोंमें शोथ होता है। बड़ी आँतों और यकृत् पर इसकी क्रिया एलुएके समान होती है। मूल रेचन और श्वयथुहर हैं। बीजोंमें रेचक गुण नहीं होता। कफप्रधान रोगोंमें इंद्रायन देते हैं। इससे स्रोतोंका अवरोध दूर होता है। आमवात, सन्धिशोथ, जलोदर, यकृद्दाल्युदर, प्लीहोदर और मलावरोधमें मूलका चूर्ण सोंठ और गुड़के साथ मिलाकर देते हैं। मूल पानीमें घिसकर व्रणशोथपर लगाते हैं; प्रारंभमें ही लेप किया जावे तो इससे लाभ होता है, परंतु पकने लगने पर कोई लाभ नहीं होता। बीजोंका तेल लगाते रहनेसे बाल सफेद नहीं होते (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (१६५) कटुतुम्बी।

**नाम**—(सं.) इक्ष्वाकु, कटुकालाबू, तिक्तालाबू, पिण्डफला; (हिं.) कड़ू तुंबी, कडवी लौकी; (बं.) तितलाउ; (म.) कडुभोपला; (गु.) कडवी तुंबडी; (मा.) कडवी तुमडी, कडवी तूंबी; (ले.) लॅगेनेरिआ वल्गेरिस् (Lagenaria vulgaris)।

**वर्णन**—कटुतुंबीकी लता और फल लौकीके समान होते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. १) एकोनविंशतिफलिनीषु, वमनद्रव्येषु च (सू. अ. २) तथा सुश्रुते (सू. अ. ३९) ऊर्ध्वभागहरे गणे इक्ष्वाकुः पठ्यते। "कासश्वासविषच्छर्दिज्वरार्ते कफकर्षिते। प्रताम्यति नरे चैव वमनार्थं तदिष्यते॥" (च. क. अ. ३)। "तिक्तालाबुरहृद्या तु वामिनी वातपित्तजित्।" (सु. सू. अ. ४६)। "कटुतुम्बी कटुस्तीक्ष्णा वान्तिकृच्छ्वासवातजित्। कासघ्नी शोधनी शोफव्रणशूलविषापहा॥" (रा. नि.)। "कटुतुम्बी हिमाऽहृद्या पित्तकासविषापहा। तिक्ता कटुर्विपाके च वातपित्तज्वरान्तकृत्॥" (भा. प्र.)। "तुम्बी ××× स्नेहास्तिक्तकषाया अधोभागदोषहराः कृमिकफकुष्ठानिलहरा दुष्टव्रणशोधनाश्च।" (सु. सू. अ. ४५)।

कटुतुंबी तिक्त, कटुविपाक, शीतवीर्य, अहृद्य, वमन करानेवाली, शोधन तथा कास, विष, वमन, पित्तज्वर, शोथ, व्रण, शूल, वात और कफको दूर करनेवाली है। कटुतुम्बीका तेल तिक्त, कषाय, अधोभागदोषहर, दुष्टव्रणशोधन तथा कृमि, कुष्ठ, कफ और वायुका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—कटुतुंबीके गुण-कर्म इंद्रायनके समान हैं। इसका गर्भ-मांस बहुत कडुआ, तीव्र वामक और भेदन है। पत्ते और प्रतान वामक और थोड़ी मात्रामें श्लेष्मनिःसारक हैं। इससे एकदम उलटी और जुलाब होते हैं, यहाँतक कि रोगीकी अवस्था हैजे होनेके जैसी हो जाती है। अल्प मात्रामें देनेसे कफ छूटता है और दस्त साफ होता है। पत्तियोंके कल्कमें पकाया हुआ तैल गण्डमाला, बद आदि ग्रन्थिरोगोंपर मलते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

## ( १६६ ) पटोल।

**नाम**—( सं. ) पटोल, कुलक; ( हिं. ) कडवा परवल; ( बं. ) तित् पटोल, तित्पल्ता; ( म. ) कडुपरवल; ( गु. ) कडवां परवल, पटोल, कडवी पाडर; ( ते. ) अडविपोट्टल; ( ता. ) काट्टुपुटोल; ( मल. ) काट्टुपटोलम्; ( ले. ) ट्राइको-सेन्थस् डायोइका ( Trichosanthes dioica )।

**वर्णन**—पटोलमें स्वयंजात ( जंगली–कड़वा ) और लगाया हुआ ( मीठा ) दो जातियाँ होती हैं। औषधके लिये कड़वा परवल लेते हैं। इसका कांड और पत्र खर, पुष्प श्वेत, फल पहले हरा और पकनेपर लाल हो जाता है।

**उपयुक्त अंग**—पञ्चाङ्ग।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) तृप्तिघ्ने, तृष्णानिग्रहणे च महाकषाये तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) आरग्वधादौ, पटोलादौ च गणे पटोलः पठ्यते । "प्रायः सर्वं तिक्तं वातलमवृष्यं च अन्यत्र वेत्राग्रपटोलात् ।" ( च. सू. अ. २७ )। "××× पटोलं ×××। कफपित्तहरं तिक्तं शीतं कटु विपच्यते ।" ( च. सू. अ. २७ )। "कफपित्तहरं व्रण्यमुष्णं तिक्तमवातलम् । पटोलं कटुकं पाके वृष्यं रोचनदीपनम् ॥" ( सु. सू. अ. ४६ )। "पटोलं कटुकं तिक्तमुष्णं पित्ताविरोधि च । कफास्रकण्डुकुष्ठानि ज्वरदाहौ च नाशयेत् ॥" ( ध. नि. )।

कडु परवल कटु, तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, पित्तको न बढ़ानेवाला, व्रणके लिये हितकर, वृष्य, रुचिकर, दीपन, तृप्तिघ्न, तृष्णानिग्रहण तथा कफ, रक्तविकार, कंडू, कुष्ठ, ज्वर और दाहका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—मूल तीव्र रेचन, फलगर्भ भेदन, प्रतान और वृंत कटुपौष्टिक–ज्वरहर और आनुलोमिक, पत्ते कटुपौष्टिक-दीपन-पाचन और बल्य हैं। अधिक मात्रामें देनेसे

वमन और विरेचन होता है। बीज कृमिघ्न हैं। पित्तप्रधान रोगोंमें पटोल विरेचनके लिये देते हैं। पित्तज्वर, जीर्णज्वर, कामला, शोथ और उदर रोगोंमें इससे विरेचन होकर पचनक्रिया सुधरती है। पित्तज्वरमें पटोलपत्र और धनियेका क्काथ (या हिम) देते हैं। त्वग्रोगोंमें पटोल और गिलोयका क्काथ देते हैं। इंद्रलुप्तमें पत्तियोंका स्वरस लगानेसे लाभ होता है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (१६७) बिम्बी।

**नाम**—(सं.) बिम्बी, तुण्डी, तुण्डिकेरी; (हिं.) कुंदरु; (बं.) तेलाकुचा, (म.) तोंडलें; (गु.) टिंडोरां, घोलां, घोली; (पं.) कंदुरी; (ले.) कोकिनिआ इन्डिका (Coccinia indica)।

**वर्णन**—बिंबी जंगली (कड़वी) और लगाई हुई (मीठी) दो जातिकी होती है। कड़वी औषधके लिये और मीठी सागके लिये प्रयुक्त होती है। फल कच्चे हरे रंगके और पकने पर रक्तवर्ण होते हैं।

**उपयुक्त अंग**—पञ्चाङ्ग। बंगीय वैद्य इसकी लताके स्वरसका मधुमेहमें वसंतकुसुमाकर आदि रसयोगोंके अनुपानार्थ प्रयोग करते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ.) षोडशमूलिनीषु तथा सुश्रुते (सू. अ. ३९) ऊर्ध्वभागहरद्रव्येषु बिम्बी पठ्यते। "तुण्डिका कफपित्तासृक्शोथपाण्डुज्वरापहा। श्वासकासापहं स्तन्यं फलं वातकफापहम्॥" (ध. नि.)।

कड़वी कुंदरुकी लता वमन करानेवाली तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, शोथ, पाण्डुरोग और ज्वरको दूर करनेवाली है। उसके फल श्वास, खांसी, वात और कफको दूर करनेवाले तथा स्तन्य हैं।

**नव्यमत**—कुँदरूकी क्रिया मूत्रेन्द्रियपर होती है। कुँदरू स्नेहन, मूत्रसंग्रहण, व्रणरोपण और रक्तसंग्राहक है। मूलका स्वरस १ तोला, किंवा मूल चूर्ण ।-॥ तोला मधुमेहमें वंगेश्वर किंवा सोमनाथ रसके साथ देनेसे बहुत लाभ होता है। मधुमेहमें इसका साग हितकर है। पेशाबमें सफेद स्निग्ध पदार्थ जाता हो तब मूलका क्काथ देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (१६८) कारवेल्लक।

**नाम**—(सं.) कारवेल्लक; (क.) करेल; (हिं.) करेला; (म.) कारलें; (गु.) कारेलां; (बं.) उच्छे; (ते.) काकर; (ता.) पाकै, पाकल; (मल.) पेरुंपावल; (ले.) मोमोर्डिका चेरन्टिआ (Momordica charantia)।

**वर्णन**—करेला प्रसिद्ध शाक है । भारतवर्षमें सर्वत्र होता है ।

**उपयुक्त अंग**—लता या फलका स्वरस । मात्रा १–३ तोला

**गुण-कर्म**—**चरके** ( वि. अ. ८ ) तिक्तस्कन्धे तथा सुश्रुते ( सू. अ. ४६ ) शाकवर्गे कारवेल्लिका (कारवेल्लकः) पठ्यते । "कारवेल्लं सकटुकं कटुपाकमवातलम् । दीपनं भेदनं तिक्तमवृष्यमहिमं लघु ॥ हन्त्यरोचकपित्तास्रकफपाण्डुव्रणकृमीन् । श्वासकासप्रमेहाश्मकोठकुष्ठज्वरानपि । कारवेल्लीफलं वन्यं ज्वरार्शःकृमिनाशनम् । कासघ्नं दीपनं हृद्यं सतिक्तं कफ-वातजित् ॥" ( कै. नि. ) ।

करेला तिक्त, कुछ कटु, कटुविपाक, लघु, उष्णवीर्य, दीपन, भेदन, अवृष्य तथा अरुचि, पित्त, रक्तविकार, कफ, पाण्डुरोग, व्रण, कृमि, श्वास, खाँसी, प्रमेह, अश्मरी, कुष्ठ और ज्वरका नाश करनेवाला है । जंगली करेला तिक्त, दीपन, हृद्य तथा ज्वर अर्श, कृमि, कास, कफ और वायुका नाश करनेवाला है ।

---

## ( १६९ ) कर्कोटक ।

**नाम**—( सं. ) कर्कोटक; ( पं. ) ककोड़ा; ( हिं. ) खेखसा, ककोड़ा; ( म. ) करटोलें; ( गु. )कंटोला, कंकोडां; ( मा. ) काँटोला; ( ले. ) मोमोर्डिका डायोइका ( Momordica dioica )।

**वर्णन**—खेखसा प्रसिद्ध शाक है जो वर्षाऋतुके प्रारंभमें होता है । पुष्प पीले रंगके संध्याको खिलते हैं । इसकी लताके नीचे कंद होता है । इसकी एक जातिमें फल नहीं लगते, उसको **वन्ध्याकर्कोटकी** ( बांझ खेखसा ) कहते हैं ।

**गुण-कर्म**—**चरके** ( सू. २७ ) तथा **सुश्रुते** ( सू. अ. ४७ ) तिक्तवर्गे, शाकवर्गे च कर्कोटकः पठ्यते । "कर्कोटक × × × कफपित्तहरं तिक्तं शीतं कटु विपच्यते ।" ( च. सू. अ. २७ ) । "कर्कोटकी कटूष्णा च तिक्ता विषविनाशिनी । वातघ्नी पित्तहृच्चैव दीपनी रुचिकारिणी ॥ वन्ध्याकर्कोटकी तिक्ता कटूष्णा च कफापहा । स्थावरादिविषघ्नी च शस्यते सा रसायने ॥" ( रा. नि. ) ।

खेखसा तिक्त, कटु, कटुविपाक, उष्णवीर्य, दीपन, रुचिकर तथा कफ, वात और विषको दूर करनेवाला है । बाँझ खेखसा तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, रसायन तथा कफ और विषका नाश करनेवाला है ।

**नव्यमत**—इसकी राखमें मेंगेनीझ होता है । इसका कंद रेचक नहीं है; मात्रा बड़ी हो तो उलटी होती है । इसमें थोड़ा रक्तसांग्राहिक गुण है । रक्तार्शमें कंदका चूर्ण देते हैं । मधुमेहमें कंदका चूर्ण वंगभस्मके साथ देते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

---

## (१७०) कूष्माण्ड।

**नाम**—(सं.) कूष्माण्ड, वल्लीफल; (क.) अल; (पं.) पेठा; (हिं.) कुम्हड़ा, पेठा; (बं.) कुमड़ा (म.) कोहळा; (मा.) कोहला, कोला, पेठा; (गु.) भुरुं कोहळुं; (ते.) गुम्मडि; (मल.) कुम्पलम्; (सिंध.) पेठो साओ; (फा.) व(प)दुबः; (अ.) महूदबः; (ले.) बेनिन्केसा हिस्पिडा (Benincasa hispida)।

**वर्णन**—पेठा भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है।

**उपयुक्त अंग**—फल, फलस्वरस और बीजमज्जा (गिरी)।

**गुण-कर्म**— "सक्षारं पक्वकूष्माण्डं मधुराम्लं तथा लघु। सृष्टमूत्रपुरीषं च सर्वदोषनिबर्हणम्॥" (च. सू. अ. २७)। "पित्तघ्नं तेषु कूष्माण्डं बालं, मध्यं कफावहम्। शुक्लं लघूष्णं सक्षारं दीपनं बस्तिशोधनम्॥ सर्वदोषहरं हृद्यं पथ्यं चेतोविकारिणाम्॥" (सु. सू. अ. ४६)। "मूत्राघातहरं प्रमेहशमनं कृच्छ्राश्मरीच्छेदनं विण्मूत्रग्लपनं तृषार्तिशमनं जीर्णाङ्गपुष्टिप्रदम्। वृष्यं स्वादुतरं स्वरोचकहरं बल्यं च पित्तापहं कूष्माण्डं प्रवरं वदन्ति भिषजो वल्लीफलानां पुनः॥" (रा. नि.)। "××× कूष्माण्डप्रभृतीनां तैलानि मधुराणि मधुर-विपाकानि वातपित्तप्रशमनानि शीतवीर्याण्यभिष्यन्दीनि सृष्टमूत्राण्यग्नि-सादनानि च।" (सु. सू. अ. ४५)।

कच्चा कूष्माण्ड पित्तघ्न; अधपका कफकर; पका हुआ मधुर, अम्ल, क्षारयुक्त, लघु, उष्णवीर्य, दीपन, बस्तिशोधन, मूत्रल, हृद्य, मल-मूत्रको साफ लानेवाला, बल्य, वृष्य, बृंहण तथा उन्माद आदि मनके विकार, मूत्राघात, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, तृषा, अरुचि और पित्तको दूर करनेवाला है। पेठेके बीजोंका तैल मधुर, मधुरविपाक, शीतवीर्य, अभिष्यन्दि, मूत्रल, अग्निमान्द्यकर तथा वात और पित्तका प्रशमन करनेवाला है।

**नव्यमत**—पेठा बल्य, पौष्टिक, शीतल, मूत्रजनन, रक्तसंग्राहक, शमन और रक्तपित्तप्रशमन है। इससे रक्तवाहिनियोंका संकोचन होता है। बड़ी मात्रामें देनेसे दस्त साफ होता है और निद्रा आती है। बीज कृमिघ्न हैं। चपटे कृमि मारनेके लिये २-४ तोला बीजका कल्क देते हैं और ऊपरसे विरेचन देते हैं। उन्मादमें जब रोगीकी आँखें लाल हों, नाड़ीकी गति तीव्र हो और रोगी उत्तेजित हो तब पेठेका रस देनेसे दस्त साफ होता है और निद्रा आती है। राजयक्ष्मामें कभी-कभी फुफ्फुससे रक्त आता है तब और किसी भी अंदरके अवयवसे रक्त आता हो तब पेठेका रस देते हैं। क्षयकी प्रथमावस्थामें मुक्तापिष्टिके साथ पेठेका ताजा रस देनेसे बड़ा लाभ होता है। मधुमेहमें पेठेका रस देते हैं। अर्शमें कूष्माण्डपाक देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

# मण्डूकपर्ण्यादि वर्ग ४७.

## N. O. Umbelliferæ ( अम्बेलिफेरी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थगर्भाशय; पुष्पविन्यास छत्राकार; पुष्प श्वेत किंवा पीत; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोशके दल ५; फल नीरस।

---

## ( १७१ ) मण्डूकपर्णी।

**नाम**—( सं. )मण्डूकपर्णी; ( बं. ) थुलकुडी, थानूकुनी; ( म. ) कारिवणा; ( गु. ) खडब्राह्मी; ( ले. ) हाइड्रोकोटिल एशिआटिका ( Hydrocotyle asiatica )।

**वर्णन**—यह जमीनपर फैलनेवाली लता है। वर्षा ऋतुमें सर्वत्र होती है। पानीवाली जमीनमें सर्वदा रहती है। कांडकी प्रत्येक संधिपरसे मूल, पर्ण, पुष्प और फल आते हैं। प्रत्येक संधिपरसे एक ही पत्ती निकलती है। पत्र वृक्काकृति, १–१॥ इंच बड़ा, पत्रपर ७ सिरायें होती हैं। ताजी मंडूकपर्णी मसलनेसे सुगंध आती है। स्वाद कटु और तिक्त होता है। पत्ती सूखनेपर स्वाद और गंध चला जाता है। मंडूकपर्णीकी लता ब्राह्मी जैसी दिखती है परंतु दोनों सर्वथा भिन्न हैं। दोनोंका स्वरूप, प्राकृतिक वर्ग और गुण-कर्म भिन्न हैं; अतः एकके प्रतिनिधिरूपमें दूसरेका व्यवहार नहीं करना चाहिये। ब्राह्मीकी पत्ती चिकनी होती है और संधिपरसे एकसे अधिक ५–७ पत्तियाँ तक निकलती हैं। ब्राह्मीकी क्रिया नाड़ीव्यूहपर और मंडूकपर्णीकी क्रिया त्वचापर होती है।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) वयःस्थापने महाकषाये, तिक्तस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) च मण्डूकपर्णी पठ्यते। सुश्रुते ( सू. अ. ४२ ) तिक्तवर्गे मण्डूकपर्णी पठ्यते। मण्डूकपर्णी ××× शाकं × × × कफपित्तहरं तिक्तं शीतं कटु विपच्यते।' ( च. सू. अ. २७ )। "मण्डूकपर्णी × × × प्रभृतीनि। रक्तपित्तहराण्याहुर्हृद्यानि सुलघूनि च। कुष्ठमेहज्वरश्वासकासारुचिहराणि च॥ कषाया तु हिता पित्ते स्वादुपाकरसा हिमा। लघ्वी मण्डूकपर्णी तु ×××।" ( सु. सू. अ. ४६ )। "मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः ×××। आयुःप्रदान्यामयनाशनानि बलाग्निवर्णस्वरवर्धनानि॥ मेध्यानि चैतानि रसायनानि ×××।" ( च. चि. अ. १. पा. ३ )।

मण्डूकपर्णी तिक्त, कषाय, कटुविपाक, लघु, शीतवीर्य, वयःस्थापन, कफ–पित्तहर, हृद्य तथा रक्तपित्त, कुष्ठ, प्रमेह, ज्वर, श्वास, खाँसी और अरुचिका नाश करनेवाली है।

**नव्यमत**—ताजी पत्तियोंमें ७८ प्रतिशत जल होता है। सूखी पत्तियोंको जलानेसे १२ प्रतिशत राख मिलती है। ताजी पत्तियोंमें उड़नेवाला तैल होता है, जो उष्णतासे उड़ जाता है। मण्डूकपर्णी कुष्ठघ्न, व्रणशोधन, व्रणरोपण, मूत्रजनन, स्तन्य-शोधन, संग्राहक, बल्य और रसायन है। बड़ी मात्रामें मादक ( नशा लानेवाली ) है। इससे सिर दुखता है, चक्कर आते हैं और नशा चढ़ता है। इसकी त्वचापर खास क्रिया होती है। इसका तैल त्वचाके मार्गसे निकलता है, त्वचा गरम मालूम होती है और त्वचामें चुभनेसा मालूम होता है। प्रथम हाथ-पाँवमें चुभन मालूम होती है और पीछे सारे शरीरमें दाह मालूम होता है, यहाँ तक कि कभी-कभी वह असह्य हो जाता है। त्वचाकी रक्तवाहिनियोंका विकास होता है और उसमें रक्तसंचार शीघ्रतासे होने लगता है। त्वचा लाल होती है और उसमें खाज आने लगती है। सप्ताह पीछे भूख बढ़ती है। इसका तैल वृक्कके द्वारा निस्सारित होता है, इसलिये मूत्रका प्रमाण बढ़ता है। त्वचाके रोगोंमें यह उत्तम गुणकारक है। उपदंशकी द्वितीयावस्थामें जब रोगका जोर त्वचा और त्वचाके नीचेकी कलामें होता है तब इससे विशेष लाभ होता है। सर्व प्रकारके जीर्णव्रण, गण्डमाला, क्षयज व्रण और श्लीपदमें यह उत्तम औषध है। व्रणपर इसका चूर्ण छिड़कनेसे व्रण जल्द भर आता है। त्वग्रोगोंमें इसे खानेको देते हैं और इसका लेप करते हैं। इसके कुछ दिन सेवनसे त्वचा लाल होती है और खाज आने लगती है। ऐसा होनेपर मात्रा घटानी चाहिये या औषध देना बंद करके विरेचन देना चाहिये ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

**उपयुक्त अंग**—ताजे पंचांगका स्वरस या छायाशुष्क पंचांगका चूर्ण। इसका क्वाथ या फांट नहीं बनाना चाहिये, क्योंकि गरम करनेसे इसका तैल उड़ जाता है।

---

## ( १७२ ) हिङ्गु।

**नाम**—( सं. ) हिङ्गु, रामठ, बाह्लीक, ( क. ) यंग; ( हिं. ) हिंग; ( बं. ) हिङ्; ( म. ) हिंग; ( गु. ) हींग, वघारणी; ( फा. ) अंगजद, अंगोजः; ( ले. ) फेरुला नॅर्थेक्स ( Ferula narthex )।

**वर्णन**—हींगके क्षुप ईरान और अफगानिस्तानमें होते हैं। हींग एक प्रकारका निर्यास है। शुद्ध हींगको दियासलाईसे जलानेसे वह संपूर्ण जल जाती है। औषधार्थ यह परीक्षा करके हींग लेनी चाहिये।

**मंडी**—केटा, डेरा ईस्माइलखां, मुलतान और पेशावर।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) दीपनीये, संज्ञास्थापने च महाकषाये तथा कटुकस्कन्धे हिङ्गु पठ्यते। सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) पिप्पल्यादौ, ऊषकादौ च गणे हिङ्गु पठ्यते। "हिङ्गुनिर्यासश्छेदनीयदीपनीयानुलोमिकवातकफप्रशमनानाम्।"

(च. सू. २५)। "वातश्लेष्मविबन्धघ्नं कटूष्णं दीपनं लघु। हिङ्गु शूलप्रशमनं विद्यात् पाचनरोचनम् ॥" (च. सू. अ. २७)। "लघूष्णं पाचनं हिङ्गु दीपनं कफवातजित्। कटु स्निग्धं सरं तीक्ष्णं शूलाजीर्णविबन्धनुत् ॥" (सु. सू. ४६)। "हृद्यं हिङ्गु कटूष्णं च कृमिवातकफापहम्। विबन्धाध्मानशूलघ्नं गुल्मोदरविनाशनम् ॥" (रा. नि.)।

हींग कटु, उष्णवीर्य, स्निग्ध, तीक्ष्ण, सर, लघु, दीपन, पाचन, रोचन, हृद्य, संज्ञास्थापन, छेदन तथा वात, कफ, विबन्ध, शूल, आध्मान, अजीर्ण, कृमि, गुल्म और उदररोगका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—विश्लेषणसे हींगमें तैलयुक्त राल, उड़नेवाला तेल और गन्धक मिलता है। हींग दीपन, पाचन, आमाशय-आँतों और गर्भाशयको उत्तेजित करनेवाला, वायुनाशक, आनुलोमिक, कृमिघ्न, छेदनीय, कफहर, कफदुर्गन्धिहर, नाड़ीव्यूहके लिये जोरदार उत्तेजक, संकोचविकासप्रतिबन्धक और विषमज्वरहर है। हींगमें स्थित उड़नेवाला तेल श्वासनलिका, त्वचा और वृक्कके द्वारा शरीरसे निःसारित होता है। इससे कफ पतला होता है, कफकी दुर्गन्ध नष्ट होती है और कफस्थित रोगजन्तु नष्ट होते हैं। फुप्फुसके रोगोंमें हींग बहुत गुणकारक है। प्रौढ़ मनुष्यके जीर्णश्वासनलिकाशोथ, दमा और बड़ी खाँसी (hooping cough) में और बालकोंके फुप्फुसशोफ, श्वासनलिकाशोथ किंवा बच्चोंको फुप्फुसका रोग अच्छा होनेके बाद जो सूखी खाँसी आती है उसमें हींग देते हैं। फुप्फुसके रोगमें हींग पानीमें मिलाकर देते हैं। इससे कफ पतला होता है और पुष्कल उत्पन्न होता हो तो कम होता है। पेटका अफारा और दर्द, कब्ज, आमाशय और आँतोंकी शिथिलता, कुपचन और कृमिरोगमें हींग गुणकारी है। गृध्रसी, अर्दित, मन्यास्तम्भ, पक्षाघात, आक्षेपक और अपतन्त्रकमें हींग देते हैं। शीतज्वरमें हींग अच्छा उपयोगी है। ज्वरमें सन्निपातके लक्षण दीखते ही हिङ्गुकर्पूरवटिका देना चाहिये। इससे नाड़ीकी गति सुधरती है और हाथ-पाँवका कंप, कपड़े फेंकना, उठना-भागना, प्रलाप आदि सान्निपातिक लक्षण कम होते हैं। हृद्रोगमें हींगका अच्छा उपयोग होता है। हृदयकी धड़कन, हृदयमें एकदम पीड़ा होना, जी घबराना-इनमें हिंगुकर्पूरवटिका देते हैं। हींगसे गर्भाशयका संकोच होकर ऋतु साफ होता है और पेटका दर्द कम होता है। प्रसूता स्त्रीको हींग देना अच्छा है। हींग खिलानेसे नारू मरता है। पेटके रोगोंमें हींग घीमें सेंक कर और फुप्फुसके रोगमें कच्चा हींग देना चाहिये।

**हिंगुकर्पूरवटिका**—हींग १ भाग, कपूर १ भाग मिलाकर दो रत्तीकी गोली बनावे। इसमें ½ भाग कस्तूरी मिलानेसे विशेष लाभ होता है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (१७३) उ(ष)शक।

**नाम—**(फा.) उशः(षः); (अ.) उश(ष)क; (अफ.) कंदल; (ले.) डोरेमा ॲमोनायकम् (Dorema ammoniacum)।

**उत्पत्तिस्थान—**ईरान और अफगानिस्थान।

**वर्णन—**यह वृक्षका गोंद है। इसके चनेसे लेकर छोटे बेर तक बड़े, पिलाई लिये हुए सफेद रंगके दाने होते हैं। ठंढीमें यह कठिन रहता है और तोड़नेसे टूट जाता है; परंतु गरमीमें नरम हो जाता है और दाने एक दूसरेसे चिपक जाते हैं। स्वाद तिक्त और कटु; इसको गुनगुने पानीमें घोटनेसे दूध जैसा मिश्रण बनता है। इसमें उड़नेवाला तेल ४, राल ७० और गोंद २० प्रतिशत होता है। गंधक नहीं होता। सुश्रुतने **ऊषकादि**गणमें लिखा हुआ ऊषक क्षारविशेष है।

**नव्यमत—**उशक श्वासनलिका, त्वचा और वृक्कद्वारा शरीरसे बाहर आता है और निकलते समय उन अवयवोंको उत्तेजित करता है। उशक छेदन, श्लेष्मनिस्सारक, स्वेदजनन, मूत्रजनन और शोथविलयन है। इससे कफका चिकनापन कम होता है, बिना कष्टके कफ जल्दी गिरता है, कफकी उत्पत्ति कम होती है, कफगत रोगजन्तुका नाश होता है और कफकी दुर्गन्ध कम होती है। बड़ी मात्रामें देनेसे दस्त साफ होता है। उशकका लेप श्वयथुविलयन है। जीर्ण सन्धिशोथ, संधिमें जल होना, गंडमाला और बद पर इसके लेपसे लाभ होता है। **मात्रा** ३–७ रत्ती गोलीके रूपमें किंवा पानीमें मिलाकर देना चाहिये।

**कल्प-मिश्रण—**उशक ३ भाग, चीनीका शर्बत ६ भाग, गरम जल १०० भाग। थोड़ा थोड़ा जल मिला, घोटकर मिला दें। **मात्रा—**½ से १ औंस।

**मरहम—**उशक १२ औंस, पारा ३ औंस, गंधक ८ ग्रेन, नीमोलीका तैल २ ड्राम। प्रथम एक पात्रमें गंधक और तेल गरम करके मिलावें, पीछे पारा और गरम किया हुआ उशक मिलावें, पारेके कण न दिखें वहाँ तक मर्दन करके मरहम तैयार करें (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## (१७४) मिश्रेया।

**नाम—**(सं.) मिश्रेया, मिशी(शि), शालेय, मधुरिका; (क.) बादयान; (पं.) सोंफ; (हिं.) सौंफ; (बं.) मौरी; (म.) बडीशेप; (गु.) वरियाली वलियारी; (सिं.) वडफ; (मा.) सूंफ, बिरियाली; (फा.) राज़ियान, बादियान; (अ.) राज़ियानज; (ले.) फिनिक्युलम् केपिलेक्युअम् (Foeniculum capillaecum)।

**वर्णन**—सौंफ भारतवर्षमें सर्वत्र होती है और सुप्रसिद्ध है। वैद्य विशेषतः इसके बीजोंका प्रयोग करते हैं। हकीम इसके बीज, मूल और बीजोंके अर्कका प्रयोग करते हैं। इसकी **एक जाति**के बीज ईरानसे आते हैं। उनको (फा.) बादियान रूमी (अ.) अनीसून; (अं.) एनिस कहते हैं। इनका तैल विलायती दवा बेचनेवालोंके यहाँ '**ऑइल एनेसी**'के नामसे मिलता है। अनीसूनके गुण-कर्म सौंफके समान हैं।

**उपयुक्त अंग**–बीज, बीजतैल और मूल।

**गुण-कर्म—सुश्रुते** (चि. अ. ३८) आस्थापनयोगेषु **मिशिः** पठ्यते। "××× शालेय ×××। हृद्यान्यास्वादनीयानि पित्तमुत्क्लेशयन्ति च।" (च. सू. अ. २७)। "तिक्ता स्वादुर्हिमा वृष्या दुर्नामक्षयजिन्मिशी। क्षतक्षीणहिता बल्या वातपित्तास्रदोषजित्॥" (ध. नि.)। "मिश्रेया मधुरा स्निग्धा कटुः कफहरा परा। वातपित्तोत्थदोषघ्नी प्लीहजन्तुविनाशिनी॥" (रा. नि.)। "मिश्रेया तद्गुणा प्रोक्ता विशेषाद्योनिशूलनुत्। अग्निमान्द्यहरी हृद्या बद्धविट् क्रिमिशुक्रहृत्॥ रूक्षोष्णा पाचनी कासवमिश्लेष्मानिलान् हरेत्॥" (भा. प्र.)।

सौंफ मधुर, तिक्त, कटु, स्निग्ध, शीतवीर्य, पाचन, मलको बांधनेवाली, हृद्य, वृष्य, बल्य तथा कफ, वात, प्लीहाके रोग, क्रिमि, अग्निमान्द्य, खाँसी, योनिशूल, अर्श, क्षय, रक्तविकार, खाँसी और वमनको दूर करनेवाली है।

**नव्य मत**—सौंफमें ३ प्रतिशत उड़नेवाला तैल है। सौंफ सुगन्धि, दीपन, वातहर तथा मूत्रविरजनीय है। मूत्रका दाह कम होनेके लिये सौंफ देते हैं। इससे मूत्र पुष्कल आकर मूत्रका रंग स्वच्छ होता है। आँव, उलटी और अजीर्णके जुलाबमें सौंफका उपयोग करते हैं। सूखी खाँसी और मुखरोगमें सौंफ मुँहमें रखकर चबाते हैं। सौंफको रेचक औषधके साथ मिलानेसे उसका पेटमें मरोड़ करनेका दोष नष्ट होता है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**यूनानी मत**—सौंफ कफपाचक, कोष्ठवातहर, दीपन, मूत्रल, आर्तवको साफ लानेवाली और चक्षुष्य है। यकृत्, प्लीहा और गुर्दोंके अवरोधको दूर करनेके लिए सौंफ देते हैं। दूध बढ़ानेके लिए इसका चूर्ण दूधके साथ देते हैं। सौंफकी जड़ कफपाचक, मूत्रजनन और आर्तवजनन है।

---

## (१७५) शतपुष्पा।

**नाम**—(सं.) शतपुष्पा; (हिं.) सोया; (बं.) शुल्फा; (म.) शेपु; (गु.) सुवा; (मा.) सोवा, सिंधी सोवा; (सिं.) सूआ; (अ.) शिबित; (ले.) प्युसिडेनम् ग्रॅविओलेन्स (Peucedanum graveolens)।

**वर्णन**—सोया भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है।

**उपयुक्त अंग**—बीज और तैल। सोयाका अर्क निकालकर उसका भी प्रयोग करते हैं।

**गुण कर्म**—"शताह्वा कटुका तिक्ता स्निग्धोष्णा श्लेष्मवातजित्। ज्वरनेत्रगदान् हन्ति बस्तिकर्मणि शस्यते ॥" (ध. नि.)। "शतपुष्पा लघुस्तीक्ष्णा पित्तकृद्दीपनी कटुः। उष्णा ज्वरानिलश्लेष्मव्रणशूलाक्षिरोगनुत् ॥" (भा. प्र.)।

सोया कटु, तिक्त, स्निग्ध, लघु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, दीपन, पित्तकर, बस्तिकर्मोपयोगी तथा कफ, वायु, ज्वर, नेत्ररोग, शूल और व्रणको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—सोयाके बीजोंमें ३ प्रतिशत तैल होता है। सोया दीपन, वातहर और गर्भाशयोत्तेजक है। प्रसूता स्त्रीको सोया देते हैं। बच्चोंके पेटके दर्द और अफारेमें सोयाका अर्क (Dill-water) सुधामण्ड (Lime-water) के साथ देते हैं। ताजी पत्ती पीसकर व्रणशोथ पकानेके लिये लेप करते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**यूनानी मत**—सोयाके बीज गरम और खुश्क हैं। ये पीड़ाशामक, कोष्ठवातहर, शोथपाचन, शोथविलयन, मूत्रजनन, आर्तवजनन और वामक हैं। पेटका दर्द और अफारा, पक्षाघात, अर्दित तथा संधिशूलमें सोयाके तेलकी मालिश करते हैं और कर्णशूलमें कानमें डालते हैं। पीड़ायुक्त अवयवपर इसके क्वाथका बफारा देते हैं या इसके गरम क्वाथमें कपड़ा भिगोकर उससे सेंकते हैं।

---

## (१७६) श्वेतजीरक।

**नाम**—(सं.) जीरक, अजाजी, जरण; (क.) जुर; (पं.) जीरा सुफेद, चिट्टा जीरा; (हिं.) जीरा, सफेदजीरा; (सिंध) जीरो अच्छो; (बं.) जीरे; (म.) जिरें; (गु.) जीरुं; (मा.) जीरो; (का.) जीरिगे; (ते.) जीलकरी; (ता.) चीरकम्; (मल.) जीरकम्; (फा.) जीरा; (अ.) कमून; (ले.) क्युमिनम् साइमिनम् (Cuminum cyminum)।

**वर्णन**—सफेद जीरा सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है। इसको दाल-सागके मसालेमें डालते हैं।

**गुण-कर्म—चरके** (सू. अ. २) शिरोविरेचनद्रव्येषु, शूलप्रशमने च महाकषाये (सू. अ. ४) तथा **सुश्रुते** (सू. अ. ३८) पिप्पल्यादिगणे जीरकं पठ्यते। "×× अजाजी ××। रोचनं दीपनं वातकफदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥" (च. सू. अ. २७)। "तीक्ष्णोष्णं कटुकं पाके रुच्यं पित्ताग्निवर्धनम्। कटु श्लेष्मानिलहरं गन्धाढ्यं जीरकद्वयम् ॥" (सु. सू. अ. ४६)। "जीरकं कटुकं रूक्षं वातहृद्दीपनं परम्। गुल्माध्मानातिसारघ्नं ग्रहणीकृमिहृत् परम् ॥" (ध. नि.)।

सफेद जीरा कटु, कटुविपाक, रूक्ष, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, रुचिकर, दीपन, पित्त और अग्निको बढ़ानेवाला, शिरोविरेचन, शूलप्रशमन, सुगन्धि तथा कफ, वायु, दुर्गन्ध, गुल्म, अतिसार, ग्रहणी और कृमिविकारको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—जीरेमें ४ प्रतिशत सुगन्धि तैल हाता है। जीरा दीपनपाचन, कोष्ठवातप्रशमन, शीतल, मूत्रविरजनीय, वेदनास्थापन और दाहप्रशमन है। जीर्णज्वरमें जीरा देनेसे भूख और शक्ति बढ़ती है। नवीन ज्वरमें देनेसे शरीर और पेशाबकी जलन कम होती है। जीरेके क्वाथसे शरीर धोनेसे कंडू कम होती है। आध्मान, उलटी, जुलाब, संग्रहणी और कुपचनमें जीरा हितकर है। अर्श सूजकर पीड़ा होती हो तो जीरा और मिश्रीका चूर्ण खानेको देते हैं और जीरा ठंढे जलमें पीसकर उसका लेप करते हैं। सुजाक, अश्मरी और मूत्रावरोधमें जीरा बड़ी मात्रामें शक्करके साथ देते हैं। त्वग्रोगोंमें कंडू और पीड़ा कम करनेके लिये जीरेका लेप करते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

**उपयुक्त अंग**—बीज। **मात्रा**—३-६ माशा।

---

## ( १७७ ) कृष्णजीरक।

**नाम**—( सं. ) कृष्णजीरक, जरणा, कारवी, काश्मीरजीरक; ( क. ) कुहनज्यु( ज़ु )र; ( हिं. ) स्याहजीरा; ( बं. ) शाजीरा; ( म. ) शहाजिरें; ( गु. ) शाहजीरूं; ( फा. ) स्याह जीरा, जीरे किरमानी; ( अ. ) कमून किरमानी; ( ले. ) केरम् कार्वी ( Carum carvi )।

**उत्पत्तिस्थान**—कश्मीर, वायव्य सीमाप्रांत, अफगानिस्तान और ईरान।

**उपयुक्त अंग**—बीज। **मात्रा**—१-३ माशा।

**गुण-कर्म**—"कारवी × × ×। रोचनं दीपनं वातकफदौर्गन्ध्यनाशनम्।" ( च. सू. अ. २७ )। 'कारवी कृष्णजीरकम्' इति चक्रः। "जरणा कटुरुष्णा च कफशोफनिकृन्तनी। रुच्या जीर्णज्वरघ्नी च चक्षुष्या ग्राहिणी परा॥" ( ध. नि. )।

स्याहजीरा कटु, उष्णवीर्य, रोचन, दीपन, दुर्गन्धनाशक, ग्राही, चक्षुष्य तथा वात, कफ, शोथ और जीर्णज्वरको नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—इसमें एक उड़नेवाला तैल है। यह दीपन, स्तन्यजनन और उत्तम कोष्ठवातप्रशमन है। आध्मान, उदरशूल, शिथिलताप्रधान कुपचन और पेचिशमें यह उपयुक्त औषध है। इसको जीर्णज्वरमें अन्न पचने और भूख बढ़ानेके लिये देते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

---

## (१७८) यवानी।

**नाम—**(सं.) यवानी, भूतीक; (क.) जाविन्द; (पं.) जवैण; (हिं.) अजवायन; (बं.) जोयान्; (म.) ओंवा; (गु.) अजमा; (फा., अ.) नानखाह; (ले.) केरम् कोप्टिकम् (Carum copticum)।

**वर्णन—**अजवायन सर्वत्र प्रसिद्ध है। अजवायनमें उड़नेवाला तैल होता है, जो ठंढीमें जम जाता है। उसको **अजवायनके फूल** या **सत अजवायन** (Thymol–थायमॉल) कहते हैं।

**गुण-कर्म—चरके (सू. अ. ४) शीतप्रशमने महाकषाये 'भूतीक'नाम्ना यवानी पठ्यते। "यवानी ××× । हृद्यान्यास्वादनीयानि पित्तमुत्क्लेशयन्ति च" (च. सू. अ. २७)। "यवानी कटुतीक्ष्णोष्णा वातश्लेष्मद्विजामयान्। हन्ति गुल्मोदरं शूलं दीपयत्याशु चानलम्॥" (ध. नि.)। "यवानी पाचनी रुच्या तीक्ष्णोष्णा कटुका लघुः। दीपनी च तथा तिक्ता पित्तला शूलशुक्रहृत्॥ वातश्लेष्मोदरानाहगुल्मप्लीहकृमिप्रणुत्॥" (भा. प्र.)।**

अजवायन कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, लघु, तीक्ष्ण, पाचन, दीपन, रोचक, हृद्य, पित्तकर तथा वायु, कफ, दाँतके रोग, गुल्म, उदर, शूल, प्लीहाकी वृद्धि और कृमिका नाश करनेवाली है।

**नव्यमत—**अजवायन दीपन-पाचन, उष्ण, उत्तम वातहर, संकोचविकासप्रतिबंधक, उत्तेजक, बल्य, कोथप्रशमन, दुर्गन्धनाशक, व्रणरोपण, उत्तेजक श्लेष्महर, गर्भाशयोत्तेजक, ज्वरहर और कृमिघ्न है। प्रसूता स्त्रीको अजवायन देनेसे भूख लगती है, अन्न पचता है, वायु सरता है, कमरका दर्द कम होता और खून साफ गिरता है। प्रसवके बाद अजवायनकी पोटली योनिमें रखते हैं, जननेन्द्रियको अजवायनके क्वाथसे धोते हैं और अजवायनकी धूनी देते हैं। सूतिकाज्वरमें अजवायन बहुत हितकर है। शीतज्वरमें अजवायनसे ठंढीका जोर घटता है, ज्वर आनेके बाद पसीना शीघ्र आता है और ज्वर उतरनेके बाद थकावट कम मालूम होती है। फुप्फुसके रोगमें अजवायनसे कफ अधिक उत्पन्न होना कम होता है, कफ ढीला होकर जल्द गिरता है और घबराहट कम होती है। दमेमें अजवायनका चूर्ण पानीके साथ देते हैं और उसका धूम्रपान कराते हैं। अजवायनसे कफकी दुर्गन्ध और रोगजन्तु (कीटाणु) नष्ट होते हैं। उलटी, कुपचन, अजीर्ण, पेटका फूलना और दर्द तथा हैजेमें अजवायन गुणकारी है। अजवायनके फूल (सत अजवायन) से पेटके बडिशाकार कृमि मरते हैं। सत अजवायन उत्तम कोथप्रशमन, जन्तुघ्न और दुर्गन्धनाशक है। कोथप्रशमन वर्गके सब औषधोंमें यह उत्तम है। इससे वृक्कका दाह (शोथ) या व्रणकी कोमल त्वचाको हानि नहीं होती। इससे पीपकी उत्पत्ति कम होती है। सत अजवायनको

गरम जलमें मिलाकर इससे व्रण धोते हैं । सत अजवायन ⅛–१ रत्ती खानेको देनेसे आँतोंमें जन्तुवृद्धि नहीं होती । अजवायनको ।–॥ तोला थोड़ा सैंधव मिलाकर गरम जलसे देते हैं । अजवायनका क्वाथ नहीं करना चाहिये । क्वाथ करनेसे इसमें स्थित उपयुक्त तैल उड़ जाता है ।

**कल्प-अर्क अजवायन**—१॥ सेर अजवायनको ४ सेर पानीमें डालकर ३ सेर अर्क निकालना चाहिये । अर्कयन्त्रमें अजवायनकी कपड़ेमें पोटली बाँधकर जलमें डूबती रहे इस प्रकार लटका देनी चाहिये । **मात्रा**—२॥–५ तोला ।

**उपयुक्त अंग**—बीज, तैल, सत्त्व और अर्क ।

---

## ( १७९ ) अजमोदा ।

**नाम**—( सं. ) अजमोदा, दीप्यक; ( हिं. ) अजमोद; ( बं. ) बन् जोयान्, रान्धनी; ( म. ) अजमोदा; ( गु. ) अजमोद, बोडी अजमोद; ( मा. ) अजमोदो; ( सिंध ) बनजाण; ( फा., अ. ) करफ्से हिंदी, तुख्म करफस; ( ले. ) केरम् रोक्सबर्घिएनम् ( Carum roxburghianum ) ।

**वर्णन**—अजमोदके बीज अजवायन जैसे परंतु उससे बड़े होते हैं ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) दीपनीये, शूलप्रशमने च महाकषाये तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) पिप्पल्यादिगणे अजमोदा पठ्यते । "अजमोदा तु शूलघ्नी तिक्तोष्णा कफवातजित् । हिक्काध्मानारुचीर्हन्ति कृमिजिद्वह्निदीपनी ॥" ( ध. नि. ) । "अजमोदा कटुरुष्णा रूक्षा कफवातहारिणी रुचिकृत् । शूलाध्मानारोचकजठरामयनाशिनी चैव ॥" ( रा. नि. ) ।

अजमोद कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रूक्ष, रोचक, दीपन, शूलप्रशमन तथा कफ, वायु, हिचकी, आध्मान, कृमि, अरुचि और उदरके रोगोंको दूर करनेवाली है ।

**नव्यमत**—अजमोद सुगन्धि, दीपन, वातहर, उत्तेजक और गर्भाशयोत्तेजक है । इसका अजवायनके जैसा उपयोग करते हैं । हिचकी, उलटी, कुपचन और मूत्राशयकी पीड़ामें अजमोद देते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** ) ।

---

## ( १८० ) धन्याक ।

**नाम**—( सं. ) धान्यक, कुस्तुम्बरु; ( क. ) धानिवल; ( पं. ) धनिया, धनेल; ( हिं. ) धनिया; ( बं. ) धने; ( म. ) धणे; ( गु. ) धाणा; ( मा. ) धणीया, धांणा; ( ले. ) कोरिएन्ड्रम् सेटाइवम् ( Coriandrum sativum ) ।

**वर्णन**—धनिया सर्वत्र होता है और सुप्रसिद्ध है । हरे धनियेकी चटनी बनाते हैं और सूखे धनियेको मसालेमें डालते हैं ।

**गुण-कर्म—चरके** (सू. अ. ४) तृष्णानिग्रहणे, शीतप्रशमने च महाकषाये तथा **सुश्रुते** (सू. अ. ३८) गुडूच्यादिगणे ('कुस्तुम्बरु' नाम्ना) धान्याकं पठ्यते। "भक्ष्यव्यञ्जनभोज्येषु विविधेष्ववचारिता। आर्द्रा कुस्तुम्बरी कुर्यात् स्वादुसौगन्ध्यहृद्यताम्॥ सा शुष्का मधुरा पाके स्निग्धा तृड्दाहनाशिनी। दोषघ्नी कटुका किञ्चित्तिक्ता स्रोतोविशोधिनी॥" (सु. सू. अ. ४६)। "× × × धान्यतुम्बरु। रोचनं दीपनं वातकफदौर्गन्ध्यनाशनम्॥" (च. सू. अ. २७)। "धान्यकं कासतृड्छर्दिज्वरहृच्चक्षुषो हितम्। कषायं तिक्तमधुरं हृद्यं रोचनदीपनम्॥" (ध. नि.)। धान्यकं मधुरं शीतं कषायं पित्तनाशनम्। ज्वरकासतृषाच्छर्दिकफहारि च दीपनम्॥" (रा. नि.)। "धान्यकं तुवरं स्निग्धमवृष्यं मूत्रलं लघु। तिक्तं कटुकमुष्णं च दीपनं पाचनं स्मृतम्॥ ज्वरघ्नं रोचनं ग्राहि स्वादुपाकि त्रिदोषनुत्। तृष्णादाहवमिश्वासकासामार्शःकृमिप्रणुत्। आर्द्रं तु तद्गुणं स्वादु विशेषात् पित्तनाशि तत्॥" (भा. प्र.)।

धनिया कषाय, तिक्त, मधुर, कटु, मधुरविपाक, शीतवीर्य, लघु, स्निग्ध, हृद्य, स्रोतोविशोधन, रोचन, दीपन, पाचन, ग्राही, मूत्रल, तृष्णानिग्रहण, शीतप्रशमन, त्रिदोषहर, चक्षुष्य तथा ज्वर, तृषा, दाह, कास, श्वास, वमन, आँव, अर्श और कृमिका नाश करनेवाला है। हरा धनिया भक्ष्य-भोज्य और व्यंजनमें मिलानेसे उसको स्वादिष्ठ, सुगन्धि और हृद्य बनाता है तथा विशेष करके पित्तका शमन करता है।

**नव्यमत**—धनियेमें उड़नेवाला सुगन्धि तैल होता है। धनिया दीपन, मधुर, शीत, कषाय, रूक्ष, मूत्रविरजनीय, पिपासाघ्न, दाहप्रशमन, वातहर और अभिष्यंदप्रशमन है। कुटे हुए धनिये पानीमें उबाल, कपड़ेसे छानकर आँखमें डालनेसे नेत्राभिष्यन्दमें बड़ा लाभ होता है। ज्वरमें धनियेके पानी( फाँट या हिम )का अच्छा उपयोग होता है। पेटके दर्दमें धनियेका तैल उत्तम औषध है। सिरके दर्द और भिलावेकी सूजन पर हरे धनियेका लेप करते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## मञ्जिष्ठादि वर्ग ४८.

### N. O. Rubiaceæ (रुबिएसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; अधःस्थगर्भाशय; पर्णविन्यास अभिमुख; पर्ण सादे और अखण्डित किनारवाले; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर-कोशके दल ४–५; पुंकेशर ४–५; पुष्प शाखाग्र किंवा पत्रकोणसे निकलते हैं।

---

## ( १८१ ) मञ्जिष्ठा ।

**नाम—**( सं. ) मञ्जिष्ठा; विकसा, योजनवल्ली; ( क. ) मजेठ; ( पं., हिं., गु. ) मजीठ; ( म. ) मंजिष्ठ; ( बं. ) मंजिष्ठा; ( सिंध. ) मैठ; ( फा. ) रूनास, रोदक; ( अ. ) फुव्व, फुव्वतुस्सबग; ( ले. ) रुबिआ कोर्डिफोलिआ ( Rubia cordifolia ) ।

**वर्णन—**मजीठकी आरोहिणी लता पहाड़ी प्रदेशोंमें होती है । बाज़ारमें इस लताके मूल **मजीठ**के नामसे मिलते हैं । मूलका उपयोग औषधार्थ और लाल रंग बनानेके लिये होता है ।

**गुण कर्म—चरके** ( सू. अ. ४ ) वर्ण्ये, विषघ्ने, ज्वरहरे च महाकषाये तथा **सुश्रुते** ( सू. अ. ३८ ) प्रियङ्ग्वादिगणे ( 'योजनवल्ली' नाम्ना ), पित्तसंशमने च गणे ( सू. अ. ३९ ) मञ्जिष्ठा पठ्यते । "मञ्जिष्ठा मधुरा स्वादे कषायोष्णा गुरुस्तथा। कफोग्रव्रणमेहास्रविषनेत्रामयाञ्जयेत् ॥" ( ध. नि. ) । "मञ्जिष्ठा तुवरा तिक्ता वीर्योष्णा मधुरा गुरुः । कर्णाक्षियोनिरोगघ्नी कफशोषविषापहा ॥ विसर्पमेहकुष्ठा-र्शोव्रणरक्तातिसारजित् ॥" ( कै. नि. ) ।

मजीठ कषाय, मधुर, तिक्त, गुरु, उष्णवीर्य, वर्ण्य, विषघ्न, ज्वरहर, पित्तसंशमन तथा कफ, व्रण, प्रमेह, रक्तविकार, नेत्ररोग, कानके रोग, योनिरोग, शोष, विसर्प, कुष्ठ, अर्श और रक्तातिसारको दूर करनेवाली है ।

**नव्यमत—**मजीठ स्तंभन, पौष्टिक, आर्तवजनन, गर्भाशयोत्तेजक, त्वग्दोषहर, शोथघ्न और व्रणरोपण है । इसकी क्रिया मस्तिष्क और नाड़ियोंपर होती है । अल्प-प्रमाणमें देनेसे इन इन्द्रियोंको शांतता मिलती है; परंतु बड़े प्रमाणमें देनेसे थोड़ा कैफ-नशा चढ़कर भ्रम उत्पन्न होता है । इससे गर्भाशयका संकोचन होता है, गर्भा-शयकी पीड़ा कम होती है और आर्तव जारी होता है । यह क्रिया खुद गर्भाशयकी पेशीपर और नाड़ियों द्वारा होती है । इससे त्वचाका रक्ताभिसरण बढ़कर त्वचाकी जीवनविनिमयक्रिया सुधरती है । मजीठसे मूत्र और स्तन्य लाल होता है । मजीठका क्वाथ प्रसूतावस्थामें रक्त साफ गिरनेके लिये देते हैं । इसके साथ गर्भाशयपर कार्य करनेवाले कीड़ामारी, कपासके मूलकी छाल, भांग, पीपलामूल आदि अन्य औषध भी मिलाये जाते हैं । सूतिकाज्वरमें मजीठके साथ मूत्रजनन और स्वेदजनन औषध मिलाने चाहिये ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## ( १८२ ) क्षेत्रपर्पट ।

**नाम—**( सं. ) पर्पट; ( बं. ) खेतपापड़ा; ( म. ) परिपाठ; ( ले. ) ओल्डेन्लेन्डिआ कोरिम्बोसा ( Oldenlandia corymbosa ) ।

**वर्णन**—इसका १-१॥ फुट ऊँचा क्षुप वर्षामें होता है। बंगालके वैद्य 'पर्पट'के नामसे इसका व्यवहार करते हैं।

**गुण-कर्म**—

**नव्य-मत**—क्षेत्रपर्पटकी राखमें जौखार, सज्जीखार और थोड़ासा चूना होता है। ये द्रव्य मुख्यतः लवणाम्लसे मिले हुए होते हैं। क्षेत्रपर्पट शीतल, ज्वरघ्न, दाहशामक, कफघ्न, कटुपौष्टिक और थोड़ासा स्तम्भन है। पित्त और वातप्रधान ज्वरमें क्षेत्रपर्पट देनेसे पसीना आता है, शरीरका दाह कम होता है, तृषा शांत होती है, पेशाब आता है और घबराहट कम होती है। पित्तज्वरमें क्षेत्रपर्पटके साथ पित्तपापड़ा देते हैं। संततज्वरमें रोगीको उलटी और जुलाब होते हों तो क्षेत्रपर्पट, हंसराज, ब्राह्मी, चंदन, खस, नागरमोथा, गिलोय और हरी चाय-(lemom grass)का क्वाथ बनाकर देते हैं। रोमान्तिका (measles)में क्षेत्रपर्पटको महाराष्ट्रके वैद्य विश्वसनीय औषध समझते हैं। क्षेत्रपर्पट, गिलोय, नागरमोथा, चिरायता और बच—इनका पंचभद्र क्वाथ सब ज्वरोंपर चलता है। क्षेत्रपर्पट पेटमें देनेसे त्वचाका दाह कम होता है। क्षेत्रपर्पट और चंदनका लेप करनेसे शरीरकी जलन कम होती है। गले और श्वासनलिकाकी सूजनमें क्षेत्र-पर्पटका धूमपान करनेसे कफ ढीला होकर शीघ्र गिरने लगता है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## (१८३) मदनफल।

**नाम**—(सं.) मदन, करहाट, राढ, पिण्डीतक, फल; (पं.) मेणफल; (हिं.) मैनफल; (म.) गेळफळ; (गु.) मींढोल, मींढल; (बं.) मयनाफल; (ते.) मंग, म्रंग; (ता.) मारुकारै, मरुक्काळम्; (म.) करळिक्काय; (अ.) जौज़ुल कै; (ले.) रेन्डिआ ड्युमिटोरम् (Randia dumetorum)।

**वर्णन**—मैनफलका काँटेदार गुल्म पहाड़ी प्रदेशोंमें होता है। पत्र हरे, मसृण, छोटे-बड़े; पुष्प हरे, पीले या श्वेत; फल अमरूदके आकारके पीले या ललाई लिये हुए भूरे रंगके; फल तोड़ने पर काले रंगके बीजोंका पिंडसा निकलता है। इसे 'मदनफलपिप्पली' कहते हैं। औषधके लिये इसका प्रयोग करते हैं।

**गुण-कर्म**—**चरके (सू. अ. १) एकोनविंशतिफलिनीषु, वमनद्रव्येषु (सू. अ. २) च मदनफलं पठ्यते। "मदनफलं वमनास्थापनानुवासनोपयोगिनाम्।" (च. सू. अ. २५)। "वमनद्रव्याणां मदनफलानि श्रेष्ठतमान्याचक्षतेऽनपायित्वात्।" (च. क. अ. १)। "× × मदनं सर्वगदाविरोधि च। मधुरं सकषायतिक्तकं तदरूक्षं सकटूष्णविज्जलम्। कफपित्तहृदाशुकारि**

चाप्यनपायं पवनानुलोमि च ॥" ( च. क. अ. ११ ) । सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) आरग्वधादौ, मुष्ककादौ च गणे तथा ( सू. अ. ३९ ) ऊर्ध्वभागहरे गणे मदनफलं पठ्यते । "मदनो मधुरस्तिक्तो वीर्योष्णो लेखनोषणः । रूक्षो लघुः प्रतिश्यायज्वरविद्रधिकुष्ठहा । गुल्मशोफकफानाहव्रणहृद्वमनाग्रणिः ॥" ( कै. नि. ) ।

मैनफल मधुर, तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, अरूक्ष, लघु, लेखन, वमनद्रव्योंमें श्रेष्ठ, आस्थापनोपग, अनुवासनोपग, वातानुलोमन तथा कफ, पित्त, प्रतिश्याय, ज्वर, विद्रधि, कुष्ठ, गुल्म, शोथ, आनाह और व्रणका नाश करनेवाला है ।

**नव्यमत**—मैनफलके गर्भमें ⅓ साबुन होता है । एक फलमें अंदाज २ रत्ती साबुन होता है । मैनफलके बीज और फलके इतर भागके गुणोंमें अन्तर है । बीज वामक तथा कफघ्न हैं; गर्भ तथा त्वचाकी क्रिया आमाशय और पक्काशयपर होती है । इससे रक्त और पूयमिश्रित कफ तथा उस भागकी पीड़ा कम होती है । समग्र फल कफघ्न है । मैनफल उत्तम वामक है । १ फलका चूर्ण २॥ तोले जलमें एक घंटा भिगो, पत्थरके खरलमें घोंट, कपड़ेसे छान, उसमें शहद और सैंधव मिलाकर खाली पेट पिलानेसे एक घंटेमें एक दो अच्छे वमन हो जाते हैं । कभी-कभी उलटीके बाद जुलाब भी होते हैं । तीव्र रक्तयुक्त आँव( प्रवाहिका )में मैनफलसे अच्छा गुण आता है । एक फलके कवचका चूर्ण कर, उसके ३ भाग करके दिनमें तीन बार देना चाहिये । आँवमें भीतरके बीज नहीं देना चाहिये ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## ( १८४ ) नाडीहिङ्गु ।

**नाम**—( सं. ) नाडीहिङ्गु, हिङ्गुशिवाटिका; ( हिं. ) डिकामाली; ( म. ) डिकेमाली; ( गु. ) डीकामारी, माल्रण, माल्रडी; ( ले. ) गार्डेनिआ गमिफेरा ( Gardenia gummifera ) ।

**वर्णन**—नाड़ीहिङ्गुके वृक्ष पहाड़ी प्रदेशोंमें होते हैं । पान अमरूद जैसे होते हैं । शाखाओंके अग्रभागपर हरे-पीले रंगका गोंद निकलकर जमता है, उसको **नाड़ीहिङ्गु ( डीकामाली )** कहते हैं ।

**गुण-कर्म**—"नाडीहिङ्गु कटूष्णं च कफवातार्तिशान्तिकृत् । विष्ठाविबन्धदोषघ्नमानाहामयहारि च ॥" ( रा. नि. ) ।

डिकामाली कटु, उष्णवीर्य तथा कफ, वात, मलका विष्टम्भ और आध्मानको दूर करनेवाली है ।

**नव्यमत**—डिकामाली संकोचविकासप्रतिबंधक, कोष्ठवातप्रशमन, कृमिघ्न, विषमज्वरघ्न, स्वेदजनन, श्लेष्मनिस्सारक और त्वग्दोषहर है । **मात्रा**—½-२ रत्ती । डिकामाली शीतज्वरमें इतर सहायक औषधोंके साथ शीत और कंप कम करनेके लिये

देते हैं। आँतोंके रोगोंमें डिकामाली देनेसे वायु सरता है, पीड़ा कम होती है और कृमि नष्ट होते हैं। गोल कृमि (केंचवे) मारनेके लिये यह उत्तम औषध है। कुपचन और पेटके आध्मानमें इसको तिक्त और सुगन्धि द्रव्योंके साथ देते हैं। बच्चोंको दाँत आते समय ज्वर आकर दस्त और उलटी होते हैं, ऐसी स्थितिमें डिकामालीसे बहुत लाभ होता है। जीर्णत्वग्रोगोंमें डिकामाली देते है। इसे व्रणपर लगानेसे मक्खियाँ नहीं बैठतीं और व्रण शीघ्र भर आता है। नारूमें डिकामाली ५ रत्ती खानेको देते हैं **(डॉ. वा. ग. देसाई)।**

---

## (१८५) कॉफी।

**नाम—(सं.); (म., गु.)** बुंद, बुंददाणा; **(फा., अ.) कहवा, बुन्न; (ले.) कॉफिया अरेबिका** ( Coffea arabica )।

**वर्णन**—कॉफीका मूल जन्मस्थान अरबस्तान है। परंतु अब दक्षिण भारतमें कॉफी प्रचुर प्रमाणमें उत्पन्न होती है। बीजोंको थोड़ा घी लगा, सेंक, चूर्ण कर, दूध, जल और शक्करके साथ फांट बनाकर पीते हैं।

**गुण-कर्म-नव्यमत**—बीजोंमें एक सुगन्धि उड़नेवाला द्रव्य, थोड़ा तैल और एक स्फटिकमय द्रव्य (कॅफीन) मिलता है। कॉफीकी पत्तियाँ ज्वरघ्न हैं। बीज हृदयबल्य, हृदयोत्तेजक, नाड्युत्तेजक, मूत्रजनन और जीवनविनिमयक्रियाको सुधारनेवाले हैं। पावसे आधा तोला पत्तियोंका क्वाथ देनेसे ज्वर और ज्वरसे उत्पन्न शिथिलता कम होती है। दूध, जल और चीनीके साथ बनाया हुआ फांट नाड़ीकी शिथिलतामें देते हैं। इससे नाड़ी स्वाभाविक जोर और स्थिरतासे चलती है। यह फांट उत्तम हृदयबल्य और हृदयोत्तेजक है। हृदयपर इसकी क्रिया प्रत्यक्ष हृदय-पेशीपर और नाड़ियोंद्वारा होती है। ज्वरमें या अन्य किसी कारणसे हृदयमें शिथिलता आई हो तब इसे देते हैं। हृत्पटलके रोगसे जब उदररोग हुआ हो तब हृदयको शक्ति देनेके लिये इसे देते हैं। यह मूत्रजनन भी है इसलिये इससे हृदयोदरसे शरीरमें संचित विष मूत्रद्वारा शरीरसे बाहर निकल जाते हैं। हृदयोदरमें कॉफीके साथ मूत्रल और आनुलोमिक द्रव्य देते हैं और ज्वरसे हृदयमें शिथिलता आई हो तब इसके साथ कुचला और डिजिटेलिस जैसे द्रव्य देते हैं **(डॉ. वा. ग. देसाई)।**

---

## (१८६) सिंकोना।

**नाम—(अं.) रेडबार्क** ( Red bark )। **(ले.) सिंकोना सक्सिरुब्रा** ( Cinchona succirubra )।

**गुण-धर्म**—सिंकोनाकी छालमें राल, एक कषायधर्मी अम्ल द्रव्य, कुनैन (Quinine) और दूसरे कुछ कुनैनसे कम दर्जेके सत्त्व पाये जाते हैं। सिंकोनाकी छाल कटुपौष्टिक, स्तम्भन, ज्वरघ्न और नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक है। कुनैन कटुपौष्टिक, नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक, ज्वरघ्न, वेदनास्थापन और गर्भाशयोत्तेजक है। **मात्रा**—छालका चूर्ण १०-३० गुंजा; कुनैन १-५ गुंजा; मध, दूध, कॉफी किंवा द्राक्षासवके साथ देते हैं। सिंकोनाकी छाल अल्प प्रमाणमें देनेसे भूख बढ़ती है, पेशी और नाड़ियोंकी शक्ति बढ़ती है, रक्तवृद्धि होती है और शरीर पुष्ट होता है। शरीरमें अशक्ति आनेसे कभी-कभी पसीना आता रहता है वह इससे बंद होता है। कुपचन, संग्रहणी आँव और अतिसारमें यह प्रशस्त औषध है। इसके साथ शंखद्राव किंवा गन्धकाम्ल देते हैं। इससे पचननलिकाकी शिथिलता दूर होकर उसको शक्ति मिलती है। कफरोगमें जब कफ पुष्कल और पूय सरीखा आता हो तब सिंकोनाका फांट अनुपानरूपमें देना चाहिये। बारीसे आनेवाले विषमज्वरमें यह उत्तम औषध है। ज्वर उतरनेके बाद और ज्वरकी हालतमें भी इसे दे सकते हैं। इसका ज्वरघ्न गुण बहुत जोरदार है। विषमज्वरमें देनेके जितने औद्भिज औषध हैं उनमें सिंकोना श्रेष्ठ है। कुनैनसे आमाशयकी पचनक्रिया बढ़ती है। मात्र यह अल्पमात्रामें (१ ग्रेन) देना चाहिये। बड़ी मात्रामें देनेसे पचनक्रिया बिगडती है। सर्व ज्वरघ्न औषधोंमें कुनैन श्रेष्ठ है। इसके देनेके पहले रोगीको हलका जुलाब देना चाहिये और साथमें यकृदुत्तेजक द्रव्य देना चाहिये। विषमज्वरमें अम्ल द्रव्योंके साथ मिलाकर प्रवाहीरूपमें देना अच्छा है। बारीसे आनेवाले रोगोंमे इससे लाभ होता है।

**कल्प-फाण्ट**—सिंकोनाका कपड़छान चूर्ण २॥ तोला, खट्टे नीबूका रस १। तोला, सोंठका चूर्ण ९ माशा, दालचीनीका चूर्ण ९ माशा, सबको मिट्टीके पात्रमें उबलते हुए ५० तोला जलमें डाल, पात्रको ढककर २ घंटे रहने दें। बादमें कपड़ेसे छानकर काचकी शीशीमें भर, डाट लगाकर रख दें। **मात्रा**—२॥-५ तोला दिनमें ३-४ बार दें (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## मांस्यादिवर्ग ४९.

### N. O. Valerianaceæ (वॅलेरेनेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; विभक्तदल; अधःस्थगर्भाशय; पर्ण अभिमुख, उपपत्ररहित; शाखाके अग्रपर फूलके गुच्छे आते हैं।

---

### (१८७) जटामांसी।

**नाम—(सं.)** जटामांसी, मांसी, जटिला, नलदा; **(क.)** भूतजटा; **(पं., हिं.)** बालछड़, जटामांसी; **(म., गु.)** जटामांसी; **(अ.)** संबुल-

तिब, सुंबुले हिंदी; (फा.) नारदहिंदी; (ले.) नार्डोस्टेकिस् जटामान्सी (Nardostachys jatamansi)।

**वर्णन**—जटामांसीका १–२ हाथ ऊँचा क्षुप हिमालयके कश्मीर, नेपाल आदि प्रदेशोंमें ६०००–१२००० फुटकी ऊँचाई पर होता है। बाजारमें जटामांसीके नामसे जो द्रव्य मिलता है वह इसका भूमिगत कांड है। इस काण्डपर जंगली सूअरके रोम जैसे पर्णवृन्त और मूलके अवशेष लगे हुए होते हैं। मूलमें सुगन्ध होती है।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) संज्ञास्थापने महाकषाये ('जटिला' नाम्ना) जटामांसी पठ्यते। "सुरभिस्तु जटामांसी कषाया कटुशीतला। कफहृद्भूतदाहघ्नी पित्तघ्नी मोदकान्तिकृत्॥" (रा. नि.)। "मांसी तिक्ता कषाया च मेध्या कान्तिबलप्रदा। स्वाद्वी हिमा त्रिदोषास्रदाहवीसर्पकुष्ठनुत्॥" (भा. प्र.)।

जटामांसी मधुर, कषाय, कटु, शीतवीर्य, संज्ञास्थापन, मेध्य, कान्ति–बल और आमोद देनेवाली तथा कफ, पित्त, भूत, दाह, त्रिदोष, रक्तविकार, विसर्प और कुष्ठको दूर करनेवाली है।

**नव्यमत**—जटामांसीमें एक काला राल जैसा पदार्थ ६, भीमसेनी कपूर जैसा कपूर और गोंद ९, तगर जैसी सुगंधवाला अम्लद्रव्य और जलविलेय पदार्थ १२ तथा उड़नेवाला तेल $\frac{3}{4}$ प्रतिशत होता है। यह उड़नेवाला तैल जटामांसीके अंदरका मुख्य सत्त्व है। यह कुछ हरापन लिये हुए फीके पीले रंगका, जलसे हलका, हवामें जमनेवाला, कपूरके समान गंधवाला तथा रसमें तिक्त और कटु होता है। जटामांसी तिक्त, कटु, सुगन्धि, कषाय, शीतल, वातहर, संकोचविकासप्रतिबन्धक, हृदयबल्य, रक्ताभिसरणोत्तेजक, त्वग्दोषहर, ज्वरहर, वातहर, वेदनास्थापन, कफघ्न, केशवर्धक, कान्तिवर्धक और मोदकर है। इससे भूख बढ़ती है, अन्न अच्छा हजम होता है परंतु कब्ज नहीं होता, पेटमें गरमी मालूम होती है, डकार आती है, सब शरीर गरम होता है, पसीना आता है, पेशाब छुटता है और नाड़ी सुधरती है। बड़ी मात्रामें देनेसे उलटी, पेटमें मरोड़ और जुलाब होते हैं। मस्तिष्क और नाड़ियोंपर इसकी पौष्टिक और उत्तेजक क्रिया होती है। छोटी मात्रामें अधिक दिन लेते रहनेसे मन शांत होता है, काम करनेका उत्साह मालूम होता है और नाड़ीका जोर बढ़ता है। अतिशय मानसिक परिश्रम अथवा चिन्तासे जब मन अस्थिर होता है, थकावट मालूम होती है और नाड़ी त्वरित चलती है, उस हालतमें जटामांसीसे लाभ होता है। सिरके दर्दमें जटामांसी उत्कृष्ट औषध है। मस्तिष्क और नाड़ियोंके रोगोंमें उपयुक्त की जानेवाली कस्तूरी, हींग आदि औषधोंकी अपेक्षया जटामांसी शीघ्र और जोरदार काम करती है। भूतावेश जैसी चेष्टाओंमें जटामांसी, ब्राह्मीका स्वरस, बच और शहद मिलाकर देते हैं। रक्ताभिसरण ठीक न होता हो तब जटामांसी बहुत उपयुक्त औषध है। मस्तिष्कका रक्ताभिसरण अधिक होने पर मस्तिष्कमें रक्तका भरावसा मालूम

होता है तथा अन्य कुछ खास लक्षण होते हैं और रक्ताभिसरण कम होनेपर चक्कर आना, मूर्च्छा होना कम सुनना, आँखोंके सामने अंधेरा मालूम होना, आदि लक्षण होते हैं। ऐसी हालतमें जटामांसीसे मस्तिष्कका रक्ताभिसरण सम होता है। हृदयकी शिथिलता, धड़कन और हृदयके कुछ रोगोंमें पेटमें वायुका संचय होता है। ऐसी स्थितिमें इतर सुगन्धि द्रव्योंके साथ जटामांसी देते हैं। जटामांसीकी रक्ताभिसरणके ऊपरकी यह क्रिया खुद हृदयपर, रक्तवाहिनियोंपर, नाड़ियोंपर और रक्ताभिसरणके केन्द्रोंपर होती है। इससे रक्तवाहिनियोंका संकोच होता है इसलिये रक्तपित्त, विसर्प और रक्तस्रावमें जटामांसीसे गुण होता है। आध्मान, उदरशूल, कुपचन आदि पचननलिकाके रोगोंमें जटामांसी नौसादर और सुगन्धि द्रव्योंके साथ देते हैं। इससे पित्तका स्राव ठीक होता है और पचनक्रिया सुधरती है। ज्वरमें किंवा शोथज्वरमें जब त्रिदोष बढ़कर रोगी थकता है और त्रिदोषके लक्षण दिखने लगते हैं तब जटामांसी देनेसे रक्ताभिसरण सुधरता है, नाडीव्यूहको शक्ति मिलती है, कंठ और श्वासनलिकाके अंदरका कफ छुटता है, शरीरका दाह कम होता है और शोथ भी कम होता है। जटामांसीका व्रणपर लेप करनेसे दाह और पीड़ा कम होती है। पीड़ितार्तवमें जटामांसीसे पीड़ा कम होती है और आर्तव ठीक आने लगता है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (१८८) तगर।

**नाम—**(सं.) तगर, नत, वक्र; (क.) मुष्कबाला; (पं.) सुगन्धवाला; (म.) तगरमूल; (गु.) तगरगंठोडा; (फा.) असारून; (ले.) वेलेरिआना वोलिचिआई (Valeriana wallichii)।

**वर्णन—**तगर हिमालयके कश्मीर, गढ़वाल, कुमाऊँ, नेपाल आदि प्रदेशोंमें ५०००–१०००० फुटकी ऊँचाईपर होता है। बाजारमें तगरमूलके १–१॥ इंच लंबे, अंगुली जितने मोटे, भंगुर, टेढ़े और उग्र गंधवाले टुकड़े मिलते हैं। तगरके नामसे कहीं-कहीं श्यामवर्णकी चंदन जैसी वजनदार लकड़ी बिकती है, वह तगर नहीं परंतु कालानुसार्य है। 'तगर'नामका श्वेतपुष्पोंवाला एक छोटा वृक्ष होता है, वह भी असली तगर नहीं है।

**गुण-कर्म—**चरके (सू. अ. ४) शीतप्रशमने महाकषाये, तिक्तस्कन्धे च तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) एलादिगणे तगरं पठ्यते। "तगरं स्यात् कषायोष्णं स्निग्धं दोषत्रयप्रणुत्। दृक्शीर्षविषदोषघ्नं भूतापस्मारनाशनम्॥" (ध. नि.)। "तगरं कटुकं तिक्तं कटुपाकं सरं लघु। स्निग्धोष्णं तुवरं भूतमदापस्मारनाशनम्॥ विषचक्षुःशिरोरोगरक्तदोषत्रयापहम्।" (कै. नि.)।

तगर कटु, तिक्त, कषाय, कटुविपाक, उष्णवीर्य, लघु, स्निग्ध, शीतप्रशमन तथा संनिपात, नेत्ररोग, शिरोरोग, विष, रक्तविकार, भूतावेश और अपस्मारको दूर करनेवाला है ।

**नव्यमत**—तगरमें एक उड़नेवाला तेल, दुर्गन्धयुक्त अम्लद्रव्य, राल और मधुर पदार्थ होता है । तगर वातहर, संकोचविकासप्रतिबन्धक, रक्ताभिसरण और नाडीतन्त्रके लिये उत्तेजक, पौष्टिक, चेतनाकारक, वेदनास्थापन और व्रणरोपण है । अधिक मात्रामें देनेसे चक्कर आते हैं, हिचकी आती है और उलटियाँ होती हैं । इसके फांटसे हृदयकी शक्ति और नाड़ीकी गति बढ़ती है; परंतु अधिक मात्रामें देनेसे नाड़ीकी गति और रक्ताभिसरणका जोर घटता है । इससे शरीरमें गरमी आने जैसा मालूम होता है और पीछे पसीना छुटता है । तगरकी क्रिया रक्ताभिसरण और दोनों प्रकारकी ( संज्ञावह और चेष्टावह ) नाड़ियोंपर होती है । इससे संज्ञावह नाडियोंके प्रांतोंकी स्पर्शग्राहिता कम होती है और उनमें शून्यता आती है; इसलिये इसमें वेदनास्थापन धर्म है । तगरके फांटका जख्म, दुःखदायक व्रण, अस्थिभग्न (काण्डभग्न ) और तीव्र आमवातमें सूजी हुई संधिकी पीड़ा कम करनेके लिये उपयोग करते हैं । अधिक दिन ज्वर रहनेसे हृदय और सर्व शरीरमें शिथिलता आती है और वात-पित्त-कफ तीनों दोषोंका प्रकोप होता है । ऐसे समयमें तगर उत्तेजक और चेतनाकारक होता है । इससे प्रलाप और अस्वस्थता कम होकर नाड़ी सुधरती है । कूकर खाँसी और श्वासनलिकाके संकोचविकाससे उत्पन्न श्वासमें तगरका अच्छा उपयोग होता है ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## भृंगराजादि वर्ग ५०.

### N. O. compositæ ( कोम्पोझिटि ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; अधःस्थगर्भाशय; पर्णक्रम एकान्तर, क्वचित् अभिमुख; पर्ण उपपत्ररहित; कुसुमोच्चय स्तबकाकार( जैसे सूरजमुखीमें ), कंदुकाकार ( जैसे गोरखमुंडीमें ) या प्यालीके आकारका ( जैसे गेंदामें ) होता है । पखड़ियाँ ४–५; पुंकेशर ४–५; स्त्रीकर १; फल शुष्क और अविदारि; बीज लंबे और पतली त्वचावाले होते हैं ।

---

### ( १८९ ) भृङ्गराज ।

**नाम**—( सं. ) भृङ्गराज, मार्कव; ( क. ) भांगर, जाडबबर; ( पं., हिं. ) भंगरा; ( म. ) माका; ( गु. ) भांगरो; ( मा. ) जलभांगरो; ( बं ) भीमराज; ( सिंध ) भंगिरो; ( ले. ) एक्लिप्टा आल्बा, वेडिलिआ केलेन्डयुलेसिआ ( Eclipta alba, Wedelia calendulacea ) ।

**वर्णन**—भंगरेका छोटा क्षुप वर्षाऋतुमें सर्वत्र होता है। पानीवाली जमीनमें बारहों मास रहता है। इसमें दो जातियाँ होती हैं-(१) श्वेतपुष्पवाला और (२) पीतपुष्पवाला।

**उपयुक्त अंग**—स्वरस या छायाशुष्क पंचांग।

**गुण-कर्म**—"मार्कवः कटुकस्तिक्तो रूक्षोष्णोऽक्षिशिरोर्तिनुत्। कफवातहरो दन्त्यस्त्वच्यः केश्यो रसायनः॥ हन्ति कासकृमिश्वासकुष्ठशोफामपाण्डुताः।" (कै. नि.)। "ये मासमेकं स्वरसं पिबन्ति दिने दिने भृङ्गरजःसमुत्थम्। क्षीराशिनस्ते बलवीर्ययुक्ताः समाः शतं जीवितमाप्नुवन्ति॥ (वा. उ. अ. ३९)।

भंगरा कटु, तिक्त, रूक्ष, उष्णवीर्य, रसायन, दाँत-त्वचा और केशको हितकर तथा कफ, वात, खाँसी, कृमि, श्वास, कुष्ठ, शोथ, आम और पांडुरोगका नाश करनेवाला है। जो मनुष्य केवल दूधपर रहकर एकमास भंगरेका रस पीते हैं वे बल और वीर्ययुक्त होकर सौ वर्ष जीते हैं।

**नव्यमत**—भंगरेमें एक जातिकी राल और सुगंधि तिक्त द्रव्य है। भंगरेको उबालनेसे इसका गुण नष्ट होता है, अतः इसके स्वरसका प्रयोग करना चाहिये। भंगरा तिक्त, उष्ण, दीपन, पाचन, वातहर, अनुलोमन, मूत्रजनन, बल्य, वातहर, त्वग्दोषहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण और वर्ण्य है। इसकी मुख्य क्रिया यकृत्पर होती है। इससे यकृत्की विनिमयक्रिया सुधरती है, पित्तस्राव ठीक होता है, आमाशय और पक्वाशयकी पचनक्रिया सुधरती है और इन तीन मुख्य स्थानोंकी क्रिया सुधरनेसे सर्व शरीरमें शक्ति मालूम होती है। भंगरेका रस यकृत्की क्रिया बिगड़ी हो तब देते हैं। यकृत्की क्रिया सुधरनेसे कामला, यकृद्वृद्धि, प्लीहवृद्धि, अर्श, उदर और कुपचन ये रोग अच्छे होते हैं। यकृत्की क्रिया बिगड़नेसे एक प्रकारका शारीरिक विष, जिसको आयुर्वेदमें 'आम' कहते हैं शरीरमें जमता है और उससे आमवात, चक्कर आना, सिरका दर्द, दृष्टिमान्द्य और नानाप्रकारके त्वग्रोग उत्पन्न होते हैं, उनमें भंगरा देनेसे अच्छा लाभ होता है। अग्निदग्ध व्रणपर भंगरा, मरवा और मेंहदीकी ताजी पत्तियाँ पीसकर लेप करनेसे जलन नष्ट होती है और जो नई त्वचा आती है वह शरीरके समान रंगकी आती है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (१९०) अरण्यजीरक।

**नाम**—(सं.) अरण्यजीरक, वनजीरक; (हिं.) काली जीरी; (म.) कडूजिरें; (गु.) काळी जीरी, कडवी जीरी; (ले.) सेन्ट्रेथेरम् एन्थेलमिन्टिकम् (Centratherum anthelminticum)।

**वर्णन**—अरण्यजीरकके क्षुप ३-५ फुट ऊँचे होते हैं। पर्ण शल्याकृति, कंगूरीदार; फूल फीके जामुनी रंगके; फल लंबे और श्यामवर्ण; बीजका स्वाद कडुआ होता है। उपकुंचिका( मंगरेला )को **काला जीरा** और अरण्यजीरकको **काली जीरी** कहते हैं। दोनों भिन्न द्रव्य हैं।

**उपयुक्त अंग**—फल ( बीज )।

**गुण-कर्म**—"वनजीरः कटुः शीतो व्रणहा कृमिनाशनः।" ( ध. नि. )।

काली जीरी तिक्त, शीतवीर्य तथा व्रण और कृमिका नाश करनेवाली है।

**नव्यमत**—काली जीरी तिक्त, दीपन, वातहर, कटुपौष्टिक, कृमिघ्न, ज्वरघ्न, मूत्रजनन, स्तन्यजनन, त्वग्दोषहर और कंडूघ्न है। काली जीरी कृमि मारनेके लिये बच्चोंको ५-१० रत्ती और प्रौढ मनुष्यको ६ माशा देकर ऊपरसे विरेचन देते हैं। पेटकी वायु और पेट फूलनेपर इसे १॥-३ माशेकी मात्रामें सुगंधित द्रव्योंके साथ देते हैं। जीर्णज्वरमें इससे अच्छा लाभ होता है। प्रसूतावस्थामें यह सर्व प्रकारसे उपयोगी है; इससे दूध बढ़ता है। त्वचाके रोगोंमें कंडू कम करनेके लिये उत्तम औषध है। इसको नीबूके रसमें पीसकर लेप करनेसे जूँ मरती है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

काली जीरीका लेप शोथविलयन है।

---

## ( १९१ ) कुष्ठ।

**नाम**—( सं. ) कुष्ठ, गद, वाप्य, पाकल, काश्मीरज; ( पं., हिं., क. ) कुठ, कुट; ( गु. ) कठ, उपलेट; ( फा. ) कुस्त-इ-तल्ख; ( ले. ) सोसुरिआ लपा ( Saussurea lappa )।

**उत्पत्तिस्थान**—हिमालयके कश्मीर, कांगड़ा आदि प्रदेशोंमें ७-१२ हजार फुटकी ऊँचाईपर कुष्ठ होता है।

**वर्णन**—कुठके सुगन्धि मूल बाजारमें मिलते हैं। मूल अंदाज ३ इंच लंबे, ॥- १ इंच मोटे, जरा टेढ़े, एक बाजूपर फटे हुए, भंगुर, तोड़नेपर भीतरसे श्वेताभ और गाजरके आकारके होते हैं।

**उपयुक्त अंग**—मूल। **मात्रा**—२-१० रत्ती।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) लेखनीये, शुक्रशोधने, आस्थापनोपगे च महाकषाये तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) एलादिगणे कुष्ठं पठ्यते। "कुष्ठं वातहराभ्यङ्गोपयोगिनाम्।" ( च. सू. अ. २५ )। "कुष्ठं कटूष्णं तिक्तं स्यात् कफमारुतकुष्ठजित्। विसर्पविषकण्डूतिखर्जूदद्रुघ्नकान्तिकृत्॥" ( रा. नि. )। "कुष्ठं तिक्तं

कटु स्वादु लघूष्णं शुक्रलं जयेत् । वातास्रविषवीसर्पकुष्ठकासकफानिलान् ॥" (कै. नि.)। "कुष्ठं वातकफश्वासकासहिक्काज्वरापहम् ।" (रा. व. नि.)।

कुष्ठ तिक्त, कटु, मधुर, लघु, उष्णवीर्य, लेखन, शुक्रशोधन, शुक्रल, आस्थापनोपग, वातहराभ्यङ्गोपयोगी तथा वात, कफ, कुष्ठ, विसर्प, विष, कंडू, दाह, वातरक्त, खाँसी, श्वास, हिक्का और ज्वरको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—कुष्ठको जलानेसे ३॥ प्रतिशत राख मिलती है । उसमें पुष्कल मेंगेनीझ् होता है । कुष्ठ सुगन्धि, तिक्त, दीपन, पाचन, वातहर, कुछ संग्राहक, उत्तेजक, कफघ्न, संकोचविकासप्रतिबन्धक, कुछ मूत्रजनन, आर्तवजनन, आर्तवशूलप्रशमन, वाजीकर, त्वग्दोषहर, कान्तिकर, व्रणरोपण, व्रणशोधन और वेदनास्थापन है। त्वग्रोगोंमें इसको खानेको देते हैं और इसका लेप करते हैं । इससे त्वचाका रुधिराभिसरण और विनिमयक्रिया सुधरती है। काँजीके साथ पीसकर लेप करनेसे सिरका दर्द बंद होता है। दाँत ढीले होनेसे मसूड़े दुखते हैं तब कुष्ठका चूर्ण मसूड़ोंपर मलनेसे मसूड़े शुद्ध होकर पीड़ा शांत होती है । व्रणपर लेप करनेसे व्रणजन्तु मरते हैं, व्रणकी शुद्धि होती है और वह शीघ्र भर आता है । व्रणको कुष्ठकी धूनी भी देते हैं । आमवातमें कुष्ठका चूर्ण एरण्डतैलमें मिलाकर खानेको देते हैं और सूजे हुए जोड़ पर उसका लेप भी करते हैं । कुष्ठ उत्तेजक और स्वेदजनन है इसलिये ज्वरमें देते हैं। स्वेदजनन औषध प्रायः थकावट लाने वाले होते हैं, परंतु यह उत्तेजक और चेतनाकारक है। ज्वरमें इससे थोड़ा पेशाव भी अधिक आता है। यह उत्तेजक कफघ्न है इसलिये खाँसीमें जब कफ अधिक आता हो तब देते हैं। इससे ज्वर उतरता है, खाँसनेकी शक्ति बढ़ती है, कफ पड़ने लगता है और खाँसीका जोर कम होता है। कूकर खाँसी और दमेमें इसका संकोचविकासप्रतिबन्धक गुण उपयोगी होता है। जननेन्द्रिय और मूत्रेन्द्रियपर इसकी उत्तेजक क्रिया होती है । इससे दूध बढ़ता है। प्रसूतावस्थामें कुष्ठ देते हैं और प्रसूतिगृहमें कुष्ठका धूप करते हैं। इससे ऋतु साफ होता है और ऋतुसमयमें होनेवाली पीड़ा कम होती है; इसलिये अनार्तव और पीडितार्तवमें कुष्ठ देते हैं। अपचन, कुपचन, उदरशूल, आध्मान, अतिसार और हैजेमें इससे अच्छा लाभ होता है। महामारीमें इसके फांटसे शरीरमें उष्णता आती है और नाड़ी सुधरती है। हृदयोदर और जलोदरमें इससे पचन सुधरता है, पेशाबके मार्गसे पेटका जल निकलता है और शरीरमें उत्तेजना आती है। उन्माद, संन्यास, भूतोन्माद, अपस्मार आदि रोगोंमें यह गुणकारक है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## ( १९२ ) दमनक ।

**नाम—**( सं. ) दमनक; ( हिं. ) दवना, दौना; ( म. ) दवणा; ( गु. ) डमरो; ( बं. ) दोना; ( ले. ) आर्टिमिसिआ सिवर्सिआना ( Artemisia sieversiana ) ।

**वर्णन—**दौनेका १–१॥ फुट उंचा क्षुप होता है । वर्ण पांडुर, स्वाद तिक्त, पत्र और पुष्प सुगन्धयुक्त होते हैं ।

**उपयुक्त अंग—**पंचांग, पत्र और पुष्प ।

**गुण-कर्म—**"दमनः स्याद्रसे तिक्तो विषघ्नो भूतदोषनुत् । त्रिदोषशमनो हृद्यः कण्डूकुष्ठापहः स्मृतः ॥" ( ध. नि. ) । "दमनस्तुवरस्तिक्तो हृद्यो वृष्यः सुगन्धिकः । ग्रहणीविषकुष्ठास्रक्लेदकण्डूत्रिदोषजित् ॥" ( भा. प्र. ) ।

दौना तिक्त, कषाय, हृद्य, वृष्य, सुगन्धि तथा कण्डू, कुष्ठ, ग्रहणी, विष, रक्त-विकार, क्लेद और तीनों दोषोंको दूर करनेवाला है ।

**नव्यमत—**दौनेमें एक कडुआ सत्त्व; हरा, उड़नेवाला और कपूरके समान गंध-वाला तैल और पुष्कल यवक्षार है । दौना तिक्त, दीपन, पाचन, पित्तद्रावी, वातहर, वेदनास्थापन, ज्वरघ्न, कासहर, शोथघ्न, मूत्रजनन और गर्भाशयसंकोचक है । मस्तिष्कके ऊपर इसके तेलकी क्रिया कपूर जैसी होती है । अग्निमांद्यमें दौनेका टिंक्चर देते हैं । ५-१० रत्ती चूर्ण देनेसे डकार और अधोवायु सरकर पेटका शूल कम होता है । दौनेसे मलका रंग पीला होता है इसलिये इसको **पित्तद्रावी** कहा है । ज्वरमें दौनेका फांट देनेसे पसीना और पेशाब आ कर ज्वर और शरीरका दर्द कम होता है तथा नींद आती है । अनार्तव और पीडितार्तवमें दौना देनेसे स्त्रीको थोड़ा नशा आता है, पीड़ा शांत होती है और ऋतु साफ आता है । पांडुरोगमें लोहभस्मके साथ दौना देनेसे अच्छा लाभ होता है । दौनेका क्षार जलोदर, वृक्कोदर और हृदयोदरमें देते हैं । इससे मूत्रका प्रमाण बढ़कर सूजन उतर जाती है । दौनेका व्रणशोथपर लेप करनेसे वेदना और शोथ कम होते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## ( १९३ ) अफसंतीन ।

**नाम—**( क. ) टिटवीन; ( कु. ) तीत पाती; ( अ. ) अफसंतीन; ( ले. ) आर्टिमिसिआ एब्सिन्थिअम् ( Artemisia absinthium ) ।

**वर्णन—**भारतवर्षमें कश्मीर और वायव्य सीमा प्रांतमें अफसंतीन प्रचुर प्रमाणमें होती है । शाखायें कोमल, श्वेतरोमयुक्त, पत्र १॥–२ इंच लंबे, पुष्प पीलाईलिये हुए सफेद रंगके, समस्त वनस्पति तीव्र गंधयुक्त और अति तिक्त होती है ।

**गुणकर्म—**अफसंतीन सुगंधि, उत्तेजक और कृमिघ्न है ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

**यूनानी मत**—अफसंतीन रूक्ष, उष्ण, कृमिघ्न, ज्वरघ्न, मूत्रल, आर्तवजनन, दीपन, वेदनास्थापन और यकृत्को बल देनेवाला है। यकृत् और प्लीहाका शोथ, जलोदर, जीर्णज्वर, विषमज्वर, कृमिरोग, अनार्तव, कृच्छ्रार्तव और अर्शमें इसका प्रयोग किया जाता है।

**उपयुक्त अंग**—पंचांग। **मात्रा**—२-४ माशा।

---

## (१९४) कीटमारी यवानी।

**नाम**—(सं.) कीटमारी यवानी, चौहार; (हि.) किरमानी अजवायन; (क.) आमश्रुरी; (म.) किरमाणी ओंवा; (गु.) करमाणी अजमा, छुहारो; (फा.) दिर्मना; (अ.) शीह; (ले.) आर्टिमिसिआ मेरिटिमा (Artemisia maritima)।

**नव्यमत**—किरमानी अजवायनको जलानेसे ६½ प्रतिशत राख मिलती है, राखमें चूना और यवक्षार होता है। फूलोंसे एक क्षारधर्मी सत्त्व (सेंटोनीन) निकलता है। यह नया हो तब श्वेत वर्णका और पुराना होने या धूपमें रखनेपर पीले रंगका हो जाता है। किरमानी अजवायन दीपन, वेदनास्थापन और उत्कृष्ट कृमिघ्न है। इससे गण्डूपदाकार कृमि (केंचुए) मर जाते हैं। इसमें रेचक गुण नहीं है, इसलिये इसको रात्रिको देकर सवेरमें एरंडतैलका विरेचन देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**उपयुक्त अंग**—पंचांग। **मात्रा**—पंचांगचूर्ण ३-६ माशा। सेंटोनीन १-३ ग्रेन।

---

## (१९५) गोरखमुंडी।

**नाम**—(सं.) मुण्डिका, श्रावणी; (पं.) मुंडी; (हि.) मुंडी, गोरखमुंडी; (म., गु., मा.) गोरखमुंडी; (ले.) स्फिरेन्थस इन्डिकस (Sphaeranthus indicus)।

**वर्णन**—गोरखमुंडीका ।॥-१॥ फुट ऊंचा जमीनपर फैला हुआ क्षुप वर्षाऋतुके अंतमें होता है। शीतकालमें उसमें किरमजी रंगके पुष्प आते हैं। एक पुष्पसमूहमें अनेक छोटे-छोटे फूल लगते हैं।

**उपयुक्त अंग**—पंचांग और पुष्प।

**गुण-कर्म**—चरके (चि. अ. १, पा. ४) इन्द्रोक्तरसायनद्रव्येषु श्रावणी, महाश्रावणी च पठ्यते। "मुण्डिका कटुतिक्ता स्यादनिलास्रविनाशिनी। अपचीक्षयपस्मारगण्डश्लीपदनाशिनी॥" (ध. नि.)। "मुण्डी तिक्ता कटुः पाके वीर्योष्णा मधुरा लघुः। मेध्या गण्डापचीकुष्ठकृमियोन्यर्तिपाण्डुनुत्॥ श्लीपदारुच्यपस्मारप्लीहमेदोगुदार्तिहृत्।" (भा. प्र.)।

गोरखमुंडी कटु, तिक्त, मधुर, कटुविपाक, उष्णवीर्य, लघु, मेध्य, रसायन तथा वात, रक्तविकार, अपची, अपस्मार, श्लीपद, कुष्ठ, कृमि, योनिरोग, पांडुरोग, प्लीहाके रोग, मेदोरोग और अर्शका नाश करनेवाली है ।

**नव्यमत**—मुंडीमें एक कालापन लिये हुए लाल रंगका तेल और कडुआ सत्त्व होता है । मुंडी दीपन, मूत्रजनन और आनुलोमिक है । इसका तैल त्वचा और वृक्कद्वारा निःसारित होता है, इसलिये मुंडी लेनेवालेके पसीने और पेशावमें एक प्रकारका गंध आता है । मूत्रेन्द्रियके रोगोंमें मुंडीसे अच्छा लाभ होता है । इससे पेशाव छुटता है और वृक्कसे मूत्रद्वारपर्यन्त सारे मार्गका शोधन होता है, वारंवार पेशाब होना कम होता है, पेशाबका रंग सुधरता है । अधिक दिन लेते रहनेसे बारंबार फोडे-फुन्सी निकलनेकी आदत मिटती है और खाँसी, गण्डमाला, शारीरिक अशक्तता आदि जीर्ण रोग अच्छे होते हैं तथा कांति सुधरती है **( डॉ. वा. ग. देसाई )** ।

---

## ( १९६ ) अकरकरा ।

**नाम**—( सं. ) आकारकरभ, आकल्लक; ( हिं. ) अकरकरा; ( म. ) अक्कलकरा; ( गु. ) अक्कलकरो; ( अ. ) आकिरकिर्हा; ( ले. ) ॲनेसायक्लस् पायरेथ्रम् ( Anacyclus pyrethrum ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—उत्तरी अफरीका, अलजीरिया ।

**वर्णन**—अकरकराके मूल बाजारमें मिलते हैं । ये २–३ इंच लंबे, पावसे पौन इंच मोटे और बेलनाकार गोल होते हैं । रंग बाहर भूरा और तोड़नेपर भीतरसे सफेद होता है । खानेसे स्वाद चरपरा मालूम होता है, लालास्राव होता है और मुँह तथा कंठमें चुनचुनाहट मालूम होती है ।

**गुण-कर्म**—**"आकल्लको ह्युष्णवीर्यो बलकृत् कटुको मतः । प्रतिश्यायं च शोथं च वातं चैव विनाशयेत् ॥" ( भा. प्र. )** ।

अकरकरा कटु, उष्णवीर्य, बलकारक तथा प्रतिश्याय, शोथ और वातरोगोंका नाश करनेवाला है ।

**यूनानीमत**—अकरकरा उष्ण, रूक्ष, छेदन, स्वापजनन, अवरोधोद्घाटक, वाजीकर, शुक्रस्तम्भन, लालाप्रसेकजनन और आर्तवजनन है । अर्दित, पक्षाघात, कम्पवात, अपतानक, अपस्मार आदि वात-कफज व्याधियोंमें अकरकरा देते हैं । वाजीकर माजूनों और गोलियोंमें डाला जाता है तथा अकेला भी मधुके साथ खिलाया जाता है । वाजीकर तिलाओं( पतले लेपों )में प्रयुक्त होता है । इससे कामोद्दीपन और शिश्नेन्द्रियको दृढ़ता होती है । दंतशूल, मसूड़ोंका शोथ और जिह्वास्तम्भमें मंजनके रूपमें

इसका प्रयोग करते हैं । हाथ-पाँव या अन्य किसी अंगमें गरमी पहुँचानेके लिये इसको बारीक पीसकर या तेलमें मिलाकर मर्दन करते हैं ।

**नव्यमत**—अकरकरामें राल, पीले रंगका उड़नेवाला तैल और शर्करा होती है। मूलका टुकड़ा मुँहमें रखनेसे लार छुटती है और कुछ समयके बाद शून्यता ( स्पर्शज्ञान ) मालूम होती है । मूल उत्तेजक, वातहर, वेदनास्थापन और नाड़ियोंको बल देनेवाला है । रास्नाके प्रतिनिधिरूपमें इसका प्रयोग कर सकते हैं । अकरकराका थोड़ासा चूर्ण सड़े हुए दाँतमें भरनेसे लार बहकर पीड़ा कम होती है । जिह्वास्तंभ, गलस्तंभ और स्वरभेदमें आर्द्रता आकर शिथिलता कम होनेके लिये इसका टुकड़ा मुँहमें रखते हैं । कफ-वातप्रधान रोगोंमें अकरकरा बहुत उपयोगी है । ज्वरमें सन्निपातके लक्षण दीखते ही रोगीको चेतना लानेके लिये इसका फांट देते हैं । इससे शरीरमें उत्तेजना आती है और हृदयको बल मिलता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

## ( १९७ ) आयापान ।

**नाम**—( बं. ) आयापान; ( ले. ) युपेटोरिअम् आयापान ( Eupatorium ayapana )।

**वर्णन**—आयापानका फैलनेवाला छोटा क्षुप होता है । पत्ती १ इंच लंबी, तीन सिरायुक्त और मसृण होती है । मसलनेसे अच्छी सुगंध आती है । यह वनस्पति बंगदेशमें अधिक होती है ।

**गुण-कर्म-नव्यमत**—आयापान अल्पप्रमाणमें रोचक, उत्तेजक और चेतनाकारक; बड़ी मात्रामें गरम-गरम फांट देनेसे स्वेदजनन और पुष्कळ फांट एक साथ पीनेसे वामक है । फांट थोड़ा थोड़ा देते रहनेसे शरीरमें उष्णता आती है, हृदयका स्पन्दन जोरसे और स्पष्ट होता है, नाड़ी जोरसे चलती है और थोड़ा पसीना आता है । इसका लेप उत्तम व्रणशोधन और व्रणरोपण है । शारीरिक अशक्तता और तरुण शोथप्रधान रोगोंमें थकावट कम होनेके लिये चायके बदले इसका फांट देते हैं। विषमज्वरमें ठंढ भरनेके समय और प्रतिश्यायके प्रारंभमें इसका गरम फांट देते हैं। फांट उत्तम उत्तेजक और बलकारक है । हैजेमें शरीरमें उष्णता लाने और रक्ताभिसरण सुधारनेकेलिये फांट बहुत उपयोगी है । कुपचन रोगमें चाय बंदकरके इसका फांट देते हैं । रक्तपित्तमें स्वरस गुणकारक है । ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

**उपयुक्त अंग**—पंचांग । **मात्रा**—फांट ॥—२ औंस; स्वरस १ ड्राम; चूर्ण १ ड्राम। अजीर्ण और अन्य रोगोंमें उत्तेजक बलकरके रूपमें इसका प्रयोग होता है । रक्तकास, रक्तवमन, नकसीर फूटना, रक्तमूत्र, रक्तातिसार और अत्यार्तवमें यह अमोघ औषध है।

इसमें एक उड़नेवाला तैल, **आयापानिन** नामका दानेदार सत्त्व और यथेष्ट प्रमाणमें टेनिन (कषायद्रव्य) है (**डॉ. कार्तिकचंद्र बसु**)।

**वक्तव्य**—बंगालके वैद्य और डॉक्टर इसका प्रचुर प्रमाणमें प्रयोग करते हैं। अन्य प्रांतके वैद्योंको भी यह अपने यहाँ लगाकर इसका उपयोग करना चाहिये।

---

## (१९८) झण्डु।

**नाम**—(सं.) झण्डु; (हिं.) गेंदा; (गु.) गलगोटो; (फा.) गुलहजारा (म.) झेंडु; (ले.) टेगेटिस इरेक्टा (Tagetes erecta)।

**वर्णन**—गेंदाका क्षुप अपने सुंदर पीले पुष्पोंकेलिये बागोंमें लगाया जाता है। कांड और शाखा साधारण कोणयुक्त और खरस्पर्श; पर्ण एकान्तर, मोटे और रोंए-दार; पुष्प पीले। पुष्प आनेपर इसका प्रयोग किया जाता है।

**गुण-कर्म**—"झण्डुः कटुकषाया स्याज्ज्वरभूतग्रहापहा।" (रा. नि)।

गेंदा तिक्त, कषाय और ज्वर तथा भूतग्रहका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—गेंदेमें एक कडुवा सत्त्व पाया जाता है। गेंदा शोणितसंग्राहक और शोथहर है। फूलकी पँखडियाँ ॥–१ तोला घीमें तलकर अर्शका रक्त बंद करनेके लिये देते हैं। गेंदेके पंचांगका स्वरस जोडोंके मोच और अभिघातज शोथपर लगानेसे लाभ होता है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## (१९९) पुष्करमूल।

**नाम**—(सं.) पुष्करमूल; (क.) पोशकरमूल, पोहकरमूल, (ले.) इन्युला रेसिमोझा (Inula Racemosa)।

हिंदी, मराठी और गुजरातीमें इसे **पुष्करमूल** या **पोहकरमूल** कहते हैं।

**वर्णन**—पुष्करमूल काश्मीरमें ७–९ हजार फुटकी ऊँचाईपर होता है। मूल देखनेमें कुष्ठके समान होते हैं। कश्मीर सरकार पुष्करमूल बेचती है। अमृतसर, दिल्ली, बंबई आदि बड़े शहरोंमें यह मिलता है।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) श्वासहरे, हिक्कानिग्रहणे च महाकषाये पुष्करमूलं पठ्यते। "पुष्करमूलं हिक्काश्वासकासपार्श्वशूलहराणां" (च. सू. अ. २५)। "पुष्करं कटु तिक्तोष्णं कफवातज्वरापहम्। श्वासारोचककासघ्नं शोफघ्नं पाण्डुनाशनम्॥" (रा. नि.)। "पौष्करं कटुकं तिक्तमुष्णं वातकफज्वरान्। हन्ति कासारुचिश्वासान् विशेषात् पार्श्वशूलनुत्॥" (भा. प्र.)।

पुष्करमूल कटु, तिक्त, उष्णवीर्य तथा वात, कफ, कास, श्वास, पार्श्वशूल, हिक्का, अरुचि, शोथ और पांडुरोगका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—पुष्करमूल तिक्त, कटु, उष्ण, पाचन, उत्तेजक, कफघ्न, श्वासहर, कासहर, ज्वरघ्न, शोथहर, व्रणरोगनाशन, वातहर और विषहर है। मस्तिष्क, आमाशय, वृक्क और गर्भाशयके ऊपर पुष्करमूलकी उत्तेजक क्रिया होती है। पुष्करमूल जन्तुनाशक और पूतिहर है। पुष्करमूल कुपचन, पेटका अफारा और दर्द तथा सर्व प्रकारके फुप्फुसके रोगों( जैसे-दमा, जीर्ण श्वासनलिकाशोथ, क्षय, फुप्फुसकलाशोथ, पार्श्वशूल आदि )में देते हैं। इससे श्वासयन्त्रकी सूजन कम होती है, रोगजन्तुका नाश होता है और ज्वर उतरता है। सर्व प्रकारके वातरोग चाहे वे सर्दीसे हुए हों या आमविषसे, पुष्करमूलसे अच्छे होते हैं। इससे सूजन और ज्वर उतरता है तथा पीड़ा कम होती है। क्षयजन्तुओंसे एक विशिष्ट प्रकारका व्रण होता है, उसका शोधन और रोपण पुष्करमूलसे होता है। अनार्तवमें पुष्करमूल देनेसे पेटका दर्द कम होकर आर्तव आने लगता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

**वक्तव्य**—डॉ. देसाईने ये गुण रास्नाके नामपर दिये हैं। परंतु उनकी मानी हुई रास्ना ( ले. इन्युला रेसिमोझा ) वास्तवमें रास्ना नहीं परंतु पुष्करमूल है। कई लोगोंने **ओरिस रूट**को पुष्करमूल माना है। यह कश्मीरमें होता है। वहाँ उसको **मजारमुंड** और **मजारपोश** कहते हैं। यूनानी वैद्य इसको **इरसा** या **सोसन** कहते हैं। यह **हैमवती वचा** है, पुष्करमूल नहीं है।

---

## चित्रकादि वर्ग ५१.

## N. O. Plumbaginaceæ ( प्लुम्बेजिनेसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; उपरिस्थ गर्भाशय; पर्णविन्यास अभिमुख किंवा एकान्तर; पर्ण सादे; पुष्पबाह्यकोशके दल ५, नीचेसे जुड़कर नलिकाकार बने हुए, इस पर छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं; पँखड़ियाँ ५; पुंकेशर ५; स्त्रीकेशर १; फल बारीक और कठिन ( नीरस ) होते हैं।

---

### ( २०० ) चित्रक।

**नाम**—( सं. ) चित्रक, अग्नि, दहन; ( बं. ) चिता; ( हिं. ) चित्रक, चीता; ( गु. ) चित्रो; ( फा. ) शितरज; ( ले. ) प्लुम्बेगो झिलेनिका ( Plumbago zeylanica ) श्वेतचित्रक; प्लुम्बेगो रोझिआ ( Plumbago rosea ) रक्तचित्रक।

**वर्णन**—चित्रकका ३-६ फुट ऊँचा बहुवर्षायु क्षुप होता है। कांड गोल; शाखाएँ अनेक; पर्ण एकान्तर, लंबगोल, हरे रंगके, मोतियाके जैसे; फूल गुच्छोंमें, श्वेत-लाल या आसमानी रंगके; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तर कोशके दल ५;

पुंकेशर ५; स्त्रीकेशर १; फल लंब-गोल; मूल भंगुर; मूलका रंग ऊपरसे ललाई लिये हुए भूरा और भीतरसे सफेद; मूलका स्वाद कटु, उग्र, जीभको चुभनेवाला और दुःखदायक होता है।

**उपयुक्त अंग**—मूलकी छाल। मूलकी छाल नई काममें लेना चाहिये, पुरानी होनेसे हीनवीर्य हो जाती है।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) लेखनीये, भेदनीये, दीपनीये, अर्शोघ्ने, तृप्तिघ्ने, शूलप्रशमने महाकषाये, कटुकस्कन्धे च; तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) आरग्वधादौ, वरुणादौ, मुष्ककादौ, पिप्पल्यादौ, मुस्तादौ, आमलक्यादौ च गणे चित्रकः पठ्यते। "चित्रकमूलं दीपनीयपाचनीयगुदशोथार्शःशूलहराणां" (च. सू. अ. २५)। "× × × चित्रक × × × प्रभृतीनि। कटून्युष्णानि रुच्यानि वातश्लेष्महराणि च। चित्रकः × × कफशोफहरे लघू।" (सु. सू. अ. ४६) "चित्रकोऽग्निसमः पाके कटुकः कफशोफजित्। वातोदरार्शोग्रहणीकृमिपाण्डुविनाशनः॥" (ध. नि.)।

चित्रक कटु, कटुविपाक, लघु, उष्णवीर्य, रुचिकारक, लेखन, भेदन, दीपन, पाचन, अर्शोघ्न, तृप्तिघ्न, शूलप्रशमन तथा वात, कफ, शोथ, गुदशोथ, शूल, उदर, अर्श, ग्रहणीरोग, कृमि और पांडुरोगका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—अल्पमात्रामें चित्रकसे पचननलिकाकी कलाको उत्तेजन मिलता है और आमाशय तथा उत्तरगुदका रक्ताभिसरण बढ़कर उनको शक्ति मिलती है। इससे पेटमें गरमी उत्पन्न होती है और पचनक्रिया बढ़ती है। इससे यकृत् उत्तेजित होकर पित्त ठीक बहने लगता है, इसलिये चित्रक देनेके बाद मलका रंग पीला होता है। यह रक्तमें मिलकर मलोत्सर्जक ग्रन्थियों पर विशेषतः त्वचाकी स्वेदग्रन्थियों पर अपना कार्य करता है; इसलिये इससे पसीना अधिक छुटता है और ज्वर कम होता है। बड़ी मात्रामें चित्रक दाहजनक तथा नशा लानेवाला विष है। बड़ी मात्रामें देनेसे गले और आमाशयमें जलन होती है, जी मिचलाता है, उलटी और जुलाब होते हैं, पेशाब करनेमें कष्ट होता है, नाड़ी अशक्त होकर वक्रगतिसे चलती है और शरीर ठंढा पड़ता है। गर्भाशयपर चित्रककी क्रिया विशेष महत्त्वकी और ध्यानमें रखने योग्य है। साधारण बड़ी मात्रासे कटिस्थित सर्व अवयवोंमें दाह उत्पन्न होता है, जुलाब होते हैं और जुलाबके साथ गर्भाशयसे रक्त बहने लगता है, पेशाब बूँद बूँद आने लगता है और गर्भाशयका जोरदार संकोच होता है–यहाँतक कि एक-दो प्रहरमें गर्भ गिर जाता है। यह क्रिया निश्चित रूपसे होती है और नौ मासमें कभी भी देनेसे गर्भपात होता है–गर्भ मरा हुआ गिरता है। गर्भपात होनेके लिये चित्रक देते हैं। चित्रकके ताजे मूलके लेपसे फफोला–ब्लिस्टर उठता है। त्वचापर लगानेसे बहुत पीड़ा होती है,

त्वचा काली पड़ती है और व्रण शीघ्र भरता नहीं। विषमज्वरमें जब यकृत् और प्लीहाकी वृद्धि हुई हो तब चित्रकसे बहुत लाभ होता है। ज्वरमें जब रक्ताभिसरण मंद होता है और अन्न लिया नहीं जा सकता तब चित्रक उपयुक्त औषध है। सूतिकाज्वरमें चित्रकसे ज्वर कम होता है, सर्व शरीरको उत्तेजन मिलता है और गर्भाशयको उत्तेजन मिलकर दूषित रक्त बहने लगनेसे मक्कलशूल कम होता है। सूतिकाज्वरमें चित्रकके साथ निर्गुंडी (संभालू) देना चाहिये। जननेन्द्रियोंकी शिथिलतासे उत्पन्न नपुंसकत्वमें चित्रकसे लाभ होता है। अरोचक, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, कुपचन, कभी कब्ज कभी जुलाब, पेटका अफारा आदि पचननलिकाकी शिथिलतासे उत्पन्न रोगोंमें चित्रक देते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## विडङ्गादि वर्ग ५२.

### N. O. myrsinaceæ (मर्सिनेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; ऊर्ध्वस्थगर्भाशय; पर्णविन्यास एकान्तर; पर्ण सादे; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल ४–५; फल मांसल।

---

### (२०१) विडङ्ग।

**नाम—(सं.)** विडङ्ग; **(हिं.)** बायविडंग; **(पं.)** बावडींग; **(म.)** वावडिंग, **(गु.)** वावडींग; **(ले.)** एम्बेलिया रिब्स् (Embelia ribes)।

**वर्णन**—बायविडंगके बड़े गुल्म होते हैं। पत्र अंडाकृति; पुष्प श्वेत, फल काली मिर्च जितने बड़े गुच्छोंमें आते हैं। फल तोड़नेपर भीतर ललाई लिये हुए भूरे रंगका मगज और एक बीज होता है। स्वाद जरा कडुआ और कषाय होता है।

**गुण-कर्म-चरके** (सू. अ. २) शिरोविरेचनद्रव्येषु तथा (सू. अ. ४) तृप्तिघ्ने, कृमिघ्ने, कुष्ठघ्ने च महाकषाये विडङ्गं पठ्यते। "विडङ्गं कृमिघ्नानां" (च. सू. अ. २५)। **सुश्रुते** (सू. अ. ३८) सुरसादौ, पिप्पल्यादौ च गणे विडङ्गं पठ्यते। ××× विडङ्ग × तैलानि कटूनि कटुविपाकानि, सराण्यनिलकफकृमिकुष्ठप्रमेहशिरोरोगापहराणि च" (सु. सू. अ. ४५)। "विडङ्गं कटु तीक्ष्णोष्णं रूक्षं वह्निकरं लघु। शूलाध्मानोदरश्लेष्मकृमिवातविबन्धनुत्॥" (भा. प्र.)।

बायविडंग कटु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु, दीपन, शिरोविरेचन, तृप्तिघ्न, कुष्ठघ्न तथा शूल, आध्मान, उदररोग, कफ, कृमि, वात और विबन्धका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—बायविडङ्गमें एक अम्लस्वभावी सत्त्व (विडङ्गाम्ल–एम्बेलिक् ॲसिड्) २॥ प्रतिशत होता है। बायविडंग थोड़ा कडुआ, कषाय, उष्णवीर्य, दीपन, पाचन,

थोड़ा आनुलोमिक और मूत्रजनन, उत्तम कृमिघ्न, वातहर, बल्य, मस्तिष्क और नाड़ियोंको बलप्रद, रक्तशोधन और रसायन है। इससे मूत्रका रंग लाल होता है और उसमें अम्लता बढ़ती है। बायबिड़ंगकी क्रिया शरीरकी सब ग्रन्थियोंपर विशेषतः रसग्रन्थियोंपर होती है। बायबिड़ंग लेनेसे भूख लगती है, अन्न पचता है, दस्त साफ होता है, वजन बढ़ता है, त्वचाका रंग सुधरता है और मनको आल्हाद मालूम होता है। बच्चोंके लिये यह दिव्य औषध है। गंडमालामें बायबिड़ंग गूगल, मनसील और साबरसींगके भस्मके साथ मिलाकर घृत और मधुके साथ देते हैं। इससे देरीसे परंतु अच्छा लाभ होता है। आक्षेपक, अपस्मार, अर्धाङ्गवात आदि मस्तिष्क और नाड़ियोंके रोगोंमें बायबिड़ंग लहसुनके साथ क्षीरपाकविधिसे पकाकर देते हैं। त्वग्रोगोंमें बायबिड़ंग मुख द्वारा देते हैं और उसका लेप तथा धुआँ देते हैं। विविध प्रकारके त्वग्रोग अन्न ठीक न पचनेसे होते हैं। बायबिड़ंगसे पचनक्रिया सुधरती है, दस्त साफ होता है और बायबिड़ंगकी त्वचापर उत्तेजक क्रिया होती है, इसलिये कुष्ठविकार अच्छे होते हैं। अग्निमान्द्य, अरुचि, कुपचन, उलटी, शूल, आध्मान और अर्शमें बायबिडंगका चूर्ण छाछके साथ देते हैं। गोल और चिपटे क्रिमिके लिये १ तोला बायबिड़ंगका चूर्ण पहले जुलाब देकर खाली पेट देते हैं और ऊपरसे फिर जुलाब देते हैं। इससे कृमि मरकर गिर जाते हैं। पीनस और अधकपालीमें बायबिड़ंगका नस्य देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## मधूकादि वर्ग ५३.

### N. O. Sapotaceæ (सेपोटेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; पर्णविन्यास एकान्तर; पर्ण सादे, अखंड, चर्मसदृश और उपपत्ररहित; पुष्प पत्रकोणोद्भूत, पुष्पोंमें दूध जैसा पुष्कल रस होता हैं। फल मांसल और अविदारी।

---

### (२०२) मधूक।

**नाम**—(सं.) मधूक, गुडपुष्प; (हिं.) महुवा; (म.) मोहड़ा; (गु.) महुडो; (बं.) मौल; (पं.) महा, महुआ; (ले.) बेसिआ लेटिफोलिआ (Bassia Latifolia)।

**वर्णन**—महुवेके बड़े वृक्ष जंगलोंमें होते हैं। पत्ते १ बिलांद लंबे; पुष्प श्वेत और मांसल; फल लंबगोल, बेरके तुल्य, पक्कावस्थामें पीतवर्ण; फलमें २-३ बीज होते हैं। बीजोंसे तैल निकालते हैं। फूलोंको गरीब लोग आटेमें मिलाकर उसकी रोटी बनाते हैं। पुष्पोंसे मद्य बनाया जाता है।

उपयुक्त अंग—फूल ।

गुण-कर्म—"××× मधूकपुष्पप्रभृतीनि । रक्तपित्तहराण्याहुर्गुरूणि मधुराणि च । बृंहणीयमहृद्यं च मधूककुसुमं गुरु । वातपित्तोपशमनं फलं तस्योपदिश्यते ॥" (सु. सू. अ. ४६)। "मधूकपुष्पं मधुरं शीतलं गुरु बृंहणम् । बलशुक्रकरं प्रोक्तं वातपित्तविनाशनम् ॥ फलं शीतं गुरु स्वादु शुक्रलं वातपित्तनुत् । अहृद्यं हन्ति तृष्णास्रदाहश्वासक्षतक्षयान् ॥" (भा. प्र.)।

महुवाका फूल मधुर, गुरु, शीतवीर्य, बृंहण, बलकारक, वीर्यवर्धक तथा रक्तपित्त, वात और पित्तका नाश करनेवाला है। महुआका फल, मधुर, गुरु, शीतवीर्य, शुक्रल, अहृद्य तथा वात, पित्त, तृषा, रक्तविकार, दाह, श्वास, क्षत और क्षयको दूर करनेवाला है।

नव्यमत—फूलोंमें ६० प्रतिशत एक प्रकारकी शर्करा होती है, जो शीघ्र मद्यमें परिणत होती है। फूलोंमें थोड़ा-बहुत मद्य तैयार हुआ होता है, इसलिये फूल खानेसे थोड़ा नशा आता है। बीजोंका तेल शीघ्र खराब होता है, इसलिये दवाके काममें नहीं आता। इससे अच्छा साबुन और मोमबत्ती बनती है। महुवाके फूल शीतल, बल्य, पौष्टिक और स्नेहन हैं; इसलिये ज्वर और कफरोगमें देनेके कषायोंमें डालते हैं।

---

## (२०३) बकुल ।

नाम—(सं.) बकुल; (हिं.) मौलस(सि)री; (बं., म.) बकुल; (गु.) बोलसरी; (ले.) मिम्युसोप्स् एलेन्गी (Mimusops elengi)।

वर्णन—मौलसरीके वृक्ष सुगंधि पुष्पोंके लिये बागोंमें लगाये जाते हैं।

उपयुक्त अंग—छाल, पुष्प और फल।

गुण-कर्म—"सुगन्धि विशदं हृद्यं बाकुलं ×××।" (सु. सू. अ. ४६)। "मधुरं च कषायं च स्निग्धं संग्राहि बाकुलम् । स्थिरीकरं च दन्तानां विशदं तत्फलं गुरु ॥" (ध. नि.) बकुलस्तुवरोऽनुष्णः कटुपाकरसो गुरुः । कफपित्तविषश्वित्रक्रिमिदन्तगदापहः ॥" (भा. प्र.)।

मौलसरीका पुष्प मधुर, कषाय, कटुविपाक, गुरु, हृद्य, स्निग्ध तथा कफ, पित्त, विष, श्वित्र, कृमि और दाँतके रोगोंका नाश करनेवाला है।

नव्यमत—मौलसरीकी छाल कषाय, पौष्टिक; फूल रोचक; फल स्नेहन और संग्राहक हैं। छालका क्वाथ जीर्णज्वरमें पुष्टिकरणार्थ देते हैं। फूलोंका अर्क ज्वरमें उत्तेजनार्थ देते हैं। दाँत हिलने और मुखपाकमें छालके क्वाथके कुल्ले कराते हैं किंवा कच्चे फल चबानेको देते हैं। रक्तयुक्त जीर्ण आँवमें पके हुए फल खिलाते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

# रोध्रादि वर्ग ५४.

## N. O. Symplocaceæ ( सिम्प्लोकेसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; ऊर्ध्वस्थगर्भाशय; पर्णविन्यास एकान्तर; पर्ण सादे, उपपत्ररहित; पुष्प गुच्छोंमें लगते हैं; पुष्पबाह्यकोशके दल ४; पँखड़ियाँ ४-५; फल मांसल।

---

### (२०४) लोध्र।

**नाम**—(सं.) लोध्र, रोध्र, शाबरक, (पं.) पठानी लोध; (हिं.) लोध; (कु.) लोधिया; (म.) लोध्र; (गु.) लोधर; (मा.) लोद; (ले.) सिम्प्लोकोस् रेसिमोझा (Symplocos Racemosa), सिम्प्लोकोस क्रेटिगोइड्स (Symplocos Crataegoides)।

**वर्णन**—लोध्रका हमेशा हरा रहनेवाला मध्यम प्रमाणका वृक्ष होता है। पत्र लंबगोल, मसृण; फूल पीलापन लिये हुए सफेद; फल अंडाकृति, पकानेपर जामुनी रंगका; छाल ललाईलिये श्वेत, भंगुर, बाहरी बाजूपर चीरेवाली, अंदरका भाग तन्तुमय; छालका स्वाद कषाय और कुछ सुगंधि होता है।

**उपयुक्त अंग**—छाल; **मात्रा**—१०-२० रत्ती।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) संधानीये, पुरीषसंग्रहणीये, शोणितास्थापने च महाकषाये तथा कषायस्कन्धे लोध्रः पठ्यते। सुश्रुते (सू. अ. ३८) लोध्रादौ, अम्बष्ठादौ, न्यग्रोधादौ च गणे रोध्रः सा(शा)बररोध्रश्च पठ्यते। "लोध्रो ग्राही लघुः शीतश्चक्षुष्यः कफपित्तनुत्। कषायो रक्तपित्तासृग्ज्वरातीसारशोथहृत्॥" (भा. प्र.)।

लोध्र कषाय, लघु, शीतवीर्य, ग्राही, संधानीय, शोणितास्थापन, चक्षुष्य तथा कफ, पित्त, रक्तपित्त, रक्तविकार, ज्वर, अतिसार और शोथका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—लोध्रकी छालमें कषाय द्रव्य (टॅनिन) नहीं है। छालसे ७½ प्रतिशत राख मिलती है। उसमें १८ प्रतिशत सज्जीखार होता है। लोध्र ग्राही, रक्तस्तम्भन, श्लेष्मघ्न, शोथघ्न और व्रणरोपण है। इसकी मुख्य क्रिया छोटी रक्तवाहिनियोंपर होती है और उनका संकोच होता है, इसलिये रक्तस्राव बंद होकर सूजन उतरती है। लोध्रसे श्लेष्मल त्वचामें शक्ति आकर कफ उत्पन्न होना कम होता है। त्वचाके रोग (कुष्ठ) और व्रणमें लोध्र खानेको देते हैं और उसका लेप करते हैं। आँखकी लाली और सूजन उतरनेके लिये आँखकी पलकपर लोध्रका लेप करते हैं। अतिसार, रक्तातिसार और प्रवाहिकामें लोध्र देते हैं। श्वेतप्रदर और अत्यार्तव बहुत करके गर्भाशयकी शिथिलतासे उत्पन्न होते हैं। लोध्रसे गर्भाशयकी शिथिलता कम होती है और

रक्तवाहिनियोंका संकोच होता है; इसलिये उक्त दोनों रोगोंमें लोध्रसे लाभ होता है। सगर्भावस्थामें सातवें-आठवें मासमें गर्भका विशेष चलन होता है, उस समय लोध्र शहदके साथ देते हैं। इससे गर्भाशयकी शिथिलता कम होकर गर्भका चलन कम होता है। प्रसूतावस्थामें योनिमें क्षत हुए हों तो लोध्रका लेप करते हैं या लोध्रके क्वाथकी उत्तरबस्ति देते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

**वक्तव्य—सुश्रुत**में ( सू. अ. ३८ ) रोध्रादिगणमें **रोध्र** और **साबररोध्र** दोनोंका उल्लेख है और उस गणको **स्तम्भी** ( स्तम्भनगुणवाला ) लिखा है; अम्बष्ठादिगणमें साबररोध्रका उल्लेख है और उस गणको **पक्कातीसारनाशन** लिखा है; न्यग्रोधादि गणमें रोध्र और साबररोध्र दोनोंका पाठ है और उस गणको **संग्राही** लिखा है; इससे स्पष्ट होता है कि सुश्रुत लोध्र और साबर लोध्र दोनोंको ग्राही मानते थे। चरकमें ( सू. अ. ४ ) संधानीय, पुरीषसंग्रहणीय और शोणितास्थापन इन तीन महाकषायोंमें लोध्रका उल्लेख मिलता है; इससे चरकके मतमें भी लोध्रका ग्राही-स्तम्भन होना सिद्ध होता है। परंतु दृढबलने चरक कल्पस्थान अ. ९ में तिल्वकका पर्याय **लोध्र** लिखकर भ्रम उत्पन्न किया है। तिल्वक और लोध्र दोनों भिन्न द्रव्य हैं। लोध्र ग्राही-स्तम्भन है, और तिल्वक विरेचन है। चरक-सुश्रुत दोनोंने ग्राही-स्तम्भन गणोंमें **लोध्र** शब्दका प्रयोग किया है। ( जैसा कि ऊपर बताया है ) और विरेचन द्रव्योंमें दोनोंने **तिल्वक** शब्दका प्रयोग किया है "विरेचने प्रयोक्तव्यः पूतिकस्तिल्वकस्तथा।" ( च. सू. अ. १ ); सुश्रुतमें श्यामादिगण( सू. अ. ३९ )में तथा अधोभागहर द्रव्यों ( सू. अ. ३९ )में **तिल्वक** शब्दका प्रयोग किया है। अतः तिल्वक और रोध्र एक वस्तु नहीं हैं। तिल्वक इस समय वैद्यसमाजमें अपरिचित है। कई लोग **रेवंद**( चीनी )को तिल्वक बताते हैं, परंतु यह ठीक नही है; रेवंदका क्षुप होता है वृक्ष नहीं होता और चरकने तिल्वकको वृक्ष-तरु लिखा है। चरक और सुश्रुत दोनोंने तिल्वकके वृक्षकी त्वचाका प्रयोग करनेको लिखा है—"इमांस्त्रीनपरान् वृक्षान् प्राहुर्येषां हितास्त्वचः। पूतिकः कृष्णगन्धा च तिल्वकश्च तरुः।" ( च. सू. अ. १ ); "तिल्वकादीनां पाटलान्तानां त्वचः।" ( सू. अ. ३८ ); परंतु रेवंदके मूलका प्रयोग होता है।

---

## ( २०५ ) लोबान।

**नाम—**( पं., हिं.; म; गु; बं. ) लोबान; ( ता. ) सांब्राणि; ( ले. ) स्टाइरेक्स बेंझोइन् ( Styrax benzoin )।

**वर्णन—**भारतवर्षमें लोबान सयाम और सुमात्रासे आता है। सयामका लोबान अच्छा होता है। लोबानमें दूसरी वस्तुओंकी मिलावट भी करते हैं। इसलिये अच्छा लोबान देखकर लेना चाहिये। लोबान एक वृक्षका निर्यास है। अच्छे लोबानके

बादामके आकारके कौड़ी जैसे दीखनेवाले टुकड़े होते हैं। ये एक-दूसरेसे चिपके हुए होते हैं। बहुधा ये टुकड़े छोटे-बड़े होकर राल जैसे पदार्थमें मिले हुए होते हैं। अच्छा लोबान भंगुर होता है, उष्णतासे नरम होता है, कोई खास स्वाद नहीं होता, गंध मधुर होता है। लोबानका आयुर्वेदमें वर्णन नहीं पाया जाता।

**नव्यमत**—लोबानमें एक अम्लस्वभावी सत्त्व है, जिसको लोबानके फूल (सतलोबान-एसिड बेन्झोइन्) कहते हैं। सयामके लोबानमें यह १५ प्रतिशत होता है। दूसरा अम्ल सत्त्व जिसको दालचीनीके फूल (सिनामिक् एसिड्) कहते हैं वह, राल तथा उड़नेवाला तैल है। इतर अम्ल द्रव्य उष्णतासे उड़ते नहीं हैं; परंतु लोबानके फूल उष्णतासे उड़ते हैं। लोबान पूतिहर, दुर्गन्धनाशक, त्वचाकी रक्तवाहिनियोंको उत्तेजित करनेवाला, व्रणशोधन, व्रणरोपण, शोणितास्थापन, श्लेष्मघ्न, उत्तेजक, कफघ्न और मूत्रजनन है। लोबान पेटमें जानेपर श्वासनलिकाद्वारा निःसारित होता है। पुष्कल गाढ़े और दुर्गन्धकफयुक्त जीर्ण श्वासनलिकाशोथमें लोबान बादाम और गोंदके साथ जलमें घोटकर देते हैं। इससे श्वासनलिकाकी श्लेष्मल त्वचामें शक्ति आकर कफकी उत्पत्ति कम होती है तथा उत्पन्न कफ जल्दी गिरकर खाँसी कम होती है। क्षय और दमेमें भी इससे लाभ होता है। फुप्फुसके सर्व रोगोंमें लोबानका धुआँ लेनेसे लाभ होता है। लोबानके धुएँसे प्रतिश्याय, सिरका दर्द, गलेकी सूजन और श्लेष्मकज्वर (इन्फ्लुएन्झा) में लाभ होता हैं। आमाशयमें अन्नका विदाह, सुजाक और बस्तिशोथमें लोबान देते हैं। लोबानका मद्यासव (टिंक्चर बेन्झोइन) ताजे जख्म (सद्योव्रण) पर लगानेसे रक्तस्राव बंद होता है। लोबानके फूल उत्तम पूतिहर, स्वेदजनन, ज्वरघ्न, मूत्रजनन, उत्तेजक कफघ्न और जीवनविनिमयक्रियाको उत्तेजित करनेवाला है। यह त्वचासे निःसारित होता है तब पसीना आता है, फुप्फुससे निःसारित होता है इसलिये कफघ्न है तथा वृक्कसे निःसारित होता है तब मूत्रका प्रमाण बढ़ता है और मूत्र अम्ल होता है। **मात्रा**–३-८ रत्ती मुलेठीके चूर्णके साथ देवें। जीर्ण बस्तिशोथमें लोबानके फूल बहुत उपयोगी हैं। यह वृक्कसे मूत्राशयमें जानेपर उसकी शोधन और पूतिहर क्रिया आरंभ होती है। इससे गाढ़ तथा क्षार और दुर्गन्धयुक्त मूत्रकी शुद्धि होती है। वृक्कशोथमें भी इससे लाभ होता है। पुराने सुजाकमें पेशाबकी जलन इससे कम होती है। तीव्र और तरुण आमवातमें लोबानके फूल १५ रत्ती प्रमाणमें देनेसे सॅलिसिलिक् ॲसिड् जैसा फायदा होता है। इसके साथ शुद्ध सर्जिकाक्षार मिलानेसे विशेष गुण होता है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## पारिजातादिवर्ग ५५.

### N. O. Oleaceæ (ओलिएसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; ऊर्ध्वस्थगर्भाशय; पर्णविन्यास अभिमुख; पर्ण उपपत्ररहित; पँखडियाँ ५; पुंकेशर २।

---

## (२०६) पारिजात (हारशृङ्गार)।

**नाम**—(हिं.) हारसिंगार, परजाता; (बं.) शिऊली; (म.) पारिजात; (गु.) हारशणगार, (ले.) निक्टेन्थिस् आर्बोर् ट्रिस्टिस (Nyctanthes arbor tristis)।

**वर्णन**—हारशृंगारके वृक्ष अपने सुंदर और सुगन्धि पुष्पोंके कारण बागोंमें लगाये जाते हैं। पत्ते जपाके जैसे और खर; पुष्पवृन्त लाल और पँखड़ियाँ सफेद होती हैं। फूल रातको खिलते हैं और सवेरमें झड़ जाते हैं।

**गुण-कर्म**—हारशृंगार ज्वरघ्न, कफघ्न, यकृदुत्तेजक, आनुलोमिक, शामक और त्वग्दोषहर है। पत्र सेन्टोनीन जैसे कृमिघ्न, कटुपौष्टिक, पित्तद्रावक और आनुलोमिक हैं। ज्वरमें ताजी पत्तियोंका स्वरस और अदरकका स्वरस शहदके साथ देते हैं। खाँसी और दमेमें पत्रचूर्ण १-२ रत्ती नागरपानके साथ देते हैं। बीज पानीमें पीसकर सिरके गंजपर लगाते हैं। इस लेपसे जन्तु मरकर नये बाल उगते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## (२०७) मल्लिका।

**नाम**—(सं.) मल्लिका; (हिं.) बेला, मोगरा, मोतिया; (म.) मोगरा, (गु.) डोलर, मोगरो; (बं.) बेला; (ले.) जस्मीनम् सेम्बॅक् (Jasminum Sambac)।

**वर्णन**—मोतियाका क्षुप या झाड़ (गुल्म) होता है। यह सुगंधि फूलोंके कारण बागोंमें लगाया जाता है। इसकी जिस जातिमें वर्षामें पुष्प आते हैं उसको **वार्षिकी**; जिसमें ग्रीष्ममें फूल आते हैं, उसको **ग्रैष्मी**; जिसमें छोटे फूल आते हैं उसको **अतिमुक्ता** कहते हैं। मोतियाके पत्र, पुष्प और मूल औषधके लिये प्रयुक्त होते हैं।

**गुण-कर्म**—**"मालतीमल्लिके तिक्ते सौरभ्यात् पित्तनाशने।" (सु. सू. अ. ४६)। "मल्लिका कटुतिक्ता स्याच्चक्षुष्या मुखपाकनुत्। कुष्ठविस्फोटकण्डूतिविषव्रणहरा परा॥" (ध. नि.)। "मल्लिका कटुका तिक्ता लघूष्णा शुक्रला हरेत्। पित्तवातास्यदृग्व्याधिकुष्ठारुचिविषव्रणान्॥" (कै. नि.)।**

मल्लिका कटु, तिक्त, लघु, उष्णवीर्य, वाजीकर, चक्षुष्य तथा वात, पित्त, मुखपाक, नेत्रके रोग, कुष्ठ, विस्फोटक, कण्डू, विष, व्रण और अरुचिको मिटानेवाली है।

**नव्यमत**—मल्लिका शोथघ्न, शोणितास्थापन, स्तन्यनाशन और गर्भाशयोत्तेजक है। मल्लिकाकी क्रिया गर्भाशय और स्तनपर होती है। प्रसूतावस्थामें जब

स्तनकी दुग्धवाहिनियोंमें शोथ होकर स्तन पकने लगता है तब मल्लिकासे त्वरित लाभ होता है। तोलेभर फूलोंको कुचल कर शोथपर बाँधते हैं। ४-४ घंटेसे उन फूलोंको उतारकर नये फूल बाँधते हैं। इस प्रयोगसे दूध बंद होता है, स्तनका शोथ उतरता है और पूय होनेकी क्रिया रुकती है। आर्तव अनियमित और थोड़ा आता हो तब पाव तोला मोतियाके मूलका क्वाथ देनेसे आर्तव साफ होता है। रक्तप्रवाहिकामें २-४ कोमल ताजी पत्ती २-३ तोले ठंढे जलमें पीस, कपड़ेसे छान, मिश्री मिलाकर दिनमें ३-४ बार देते हैं। इससे रक्त और बार-बार दस्त आना कम होता है। न भरनेवाले व्रणोंपर पत्तियोंका लेप करते हैं **( डॉ. वा. ग. देसाई )।**

---

## (२०८) सौमनस्यायनी, जाती, मालती।

**चमेलीके नाम—( सं. )** सौमनस्यायनी; **( हिं. )** चमेली, चंबेली; **( म. )** चमेली; **( गु. )** चंबेली, चमेली; **( बं. )** चामेली; **( ले. )** जस्माईनम् ग्रान्डिफ्लोरम् ( Jasminum grandiflorum )।

**जाईके नाम—( सं. )** सुमना, जाति; **( हिं. )** जाही, जाई; **( म., गु. )** जाई; **( बं. )** जाती; **( ले. )** जस्माइनम् ओरिक्युलेटम् ( Jasminum auriculatum )।

**मालतीके नाम—( सं. )** मालती; **( हि., बं., गु. )** मालती; **( म. )** कुसर। **( ले. )** जस्माइनम् एर्बोर्सिन्स ( Jasminum arborescens )।

**वर्णन**—चमेलीकी पत्तियाँ और फूल जाईसे छोटे होते हैं। पँखड़ियाँ ऊपरसे रक्ताभ श्वेत और भीतरसे श्वेत वर्णकी होती हैं। सुगंधि जाईसे अधिक होती है। जाईकी पत्तियाँ और पुष्प चमेलीसे बड़े होते हैं और पुष्प श्वेत होता है। जाईकी एक जाति पीले पुष्पवाली होती है, उसको **स्वर्णजाति** कहते हैं। मालतीकी बड़ी लता होती है। पत्र लंबोतरे और नुकीले, २॥-३ अंगुल चौड़े ४-५ अंगुल लंबे; फूल सफेद जाई जैसे, परंतु उससे बड़े होते हैं। पुष्पवृन्त-१-२ अंगुल लंबा होता है।

**गुण-कर्म—चरके ( सू. अ. ४ )** कुष्ठघ्ने महाकषाये जातिप्रवालाः पठ्यन्ते। "मालती-मल्लिके तिक्ते सौगन्ध्यात् पित्तनाशने।" ( सु. सू. अ. ४६ )। "मालती कफपित्तास्यरुक्पाकव्रणकुष्ठजित्। चक्षुष्यो मुकुलस्तस्यास्तत्पुष्पं कफवातजित्॥" ( ध. नि. )। "मालती शीततिक्ता स्यात् कफघ्नी मुखपाकनुत्। कुड्मलं नेत्ररोगघ्नं व्रणविस्फोटकुष्ठनुत्॥" ( रा. नि. )।

चमेली, जाई और मालती तिक्त, शीतवीर्य तथा कफ, पित्त, मुखपाक, व्रण और कुष्ठको दूर करनेवाली है। उनकी कली और पुष्प चक्षुष्य तथा वात, कफ, नेत्ररोग, व्रण, विस्फोटक और कुष्ठका नाश करनेवाले हैं।

**नव्यमत-चमेलीके पत्र**—शीत, तिक्त, व्रणशोधन, व्रणरोपण और कुष्ठघ्न; तथा **फूल** मूत्रजनन, आर्तवजनन और वाजीकर हैं। चमेलीके फूलोंका लेप त्वचाके रोगोंमें कंडू कम होनेके लिये करते हैं। मुखपाक और दाँतोंकी पीड़ामें पत्तियाँ चबानेको देते हैं। कानसे पीव आती हो तब चमेलीपत्रकल्कसे सिद्ध किया हुआ तेल कानमें डालते हैं। पत्तियाँ कुचलकर पेडू और कमरपर बाँधनेसे पेशाब आता है, कामवासना बढ़ती है और आर्तवशूल कम होकर थोड़ा आर्तव भी साफ आता है। नेत्ररोगमें फूलोंका लेप करते हैं। सिरके दर्दमें फूलोंका लेप या चमेलीके तेलकी मालिश करते हैं। **जाई**-शीतल, त्वग्दोषहर, व्रणशोधन और व्रणरोपण है। मुखपाकमें जाईकी पत्तियाँ चबाते हैं या जाईकी पत्ती, दारुहल्दी और त्रिफलाका क्वाथ करके उसके कुल्ले कराते हैं। कर्णशूल और पूतिकर्णमें पत्तियोंके स्वरससे सिद्ध किया हुआ तेल कानमें डालते हैं। पाँवकी अंगुलियोंके बीचमें चीरे पड़ते हैं उनपर और व्रणपर पत्रकल्क लगाते हैं। **मालती**—ज्वरघ्न, कफघ्न, वामक और विरेचन है। फुप्फुस और श्वासनलिकाके शोथमें मालतीका प्रयोग करते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

---

## पीलवादि वर्ग ५६.

### N. O. Salvadoraceæ ( सॅल्वेडोरेसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; उपरिस्थगर्भाशय; पर्णविन्यास अभिमुख; पर्ण अखंड और चर्मसदृश; फूल छोटे, पीले किंवा सफेद रंगके; पुष्पबाह्यकोशके दल ३–५, पँखड़ियाँ ४; पुंकेशर ४; स्त्रीकेशर १; फल मांसल।

---

### ( २०९ ) पीलु।

**छोटे पीलुके नाम**—पीलु, गुडफल; ( हिं. ) पीलु; ( पं. ) पीलू, वण, जाल; ( म. ) पीलु; ( गु. ) खारी जाल ( र. ); ( ले. ) सॅल्वेडोरा पर्सिका ( Salvadora persica )

**बड़े पीलुके नाम**—( सं. ) वृद्धपीलु; ( गु. ) मीठी जाल ( २ ); ( ले. ) सॅल्वेडोरा ओलिओइडस ( Salvadora oleoides )।

**उत्पत्तिस्थान**—गुजरात, कच्छ, काठियावाड़, सिंध, निचला पंजाब आदि रूक्षोष्ण प्रदेशोंमें पीलुके वृक्ष अधिक होते हैं।

**वर्णन**—पीलुका वृक्ष १०–२० फुट ऊँचा होता है। शाखायें टेढ़ी-मेढ़ी; पत्र मोटे, हरे रंगके आमने-सामने होते हैं। पुष्प पिलाई लिये हरे रंगके पौष-माघमें आते हैं। फल चैत्र-वैशाखमें पक जाते हैं। फल श्यामता लिये लाल रंगके होते हैं। फलका स्वाद मीठा और चरपरा होता है।

**गुण-कर्म**—चरके शिरोविरेचनद्रव्येषु, विरेचनद्रव्येषु च (सू. अ. २), तथा विरेचनोपगे, ज्वरहरे च महाकषाये (सू. अ. ४) तथा कटुकस्कन्धे (वि. अ. ८) पीलुः पठ्यते। सुश्रुते (सू. अ. ३९) शिरोविरेचनद्रव्येषु पीलुपुष्पं पठ्यते। "तिक्तं पित्तकरं तेषां सरं कटुविपाकि च। तीक्ष्णोष्णं कटुकं पीलु सस्नेहं कफवातजित्॥" (सु. सू. अ. ४६)। "×× पीलु ××। ×× दोषघ्नं गरहारि च।" (च. सू. अ. २७) "रक्तपित्तहरः पीलुः फलं कटुविपाकि च। अर्शोघ्नं बस्तिशमनं सस्नेहं कफवातजित्॥ पीलुजस्तु रसः स्वादुर्गुल्मार्शोघ्नस्तु तीक्ष्णकः।" (ध. नि.)। लघ्वाह्वः कटुकः पीलुः कषायो मधुराम्लकः। सरः स्वादुश्च गुल्मार्शःशमनो दीपनः परः॥ मधुरस्तु महापीलुर्वृष्यो विषविनाशनः। पित्तप्रशमनो रुच्य आमघ्नो दीपनीयकः॥" (रा. नि.)।

पीलु तिक्त, कटु, कटुविपाकी, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, किंचित् स्निग्ध, सारक, शिरोविरेचन, विरोचनोपग, ज्वरहर, पित्तकर तथा गर (कृत्रिमविष), कफ, वात, रक्तपित्त, अर्श और बस्तिके रोगोंको दूर करनेवाला है। पीलुके फलका रस मधुर, तीक्ष्ण और गुल्म तथा अर्शका नाश करनेवाला है। छोटा पीलु कटु, कषाय, खटमीठा, स्वादिष्ट, सारक, दीपन और गुल्म तथा अर्शका नाश करनेवाला है। बड़ा पीलु मधुर, वृष्य, रुचिकर, दीपन, पित्तप्रशमन तथा विष और आमका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—छोटे पीलुकी पत्तियाँ सनाय जैसी रेचक हैं। बीजोंके तेलकी क्रिया राईके तेलके समान है। तैल संधिवातमें लगाते हैं। मूलकी छाल उत्तेजक, स्वेदजनन और थोड़ी मूत्रजनन है। मूलकी छालका क्वाथ ज्वरमें जब रोगी प्रलाप करता हो और अशक्त होता हो तब चेतनावर्धनार्थ देते हैं। बड़े पीलुकी पत्तियाँ उष्णवीर्य, वातनाशक, मूत्रजनन और क्षीरजनन हैं। छाल तिक्त, उष्णवीर्य, दाहजनक और उत्तेजक है। फल उष्णवीर्य, लघु, दीपन, वातनाशक और मूत्रजनन हैं। फलमें पुष्कल शर्करा होती है। संधिवात और प्लीहावृद्धिमें फल देते हैं। बीजोंसे तैल निकालते हैं जो गाढ़ा, हरापन लिये और तीक्ष्ण गंधवाला होता है। जीर्ण संधिवातमें तेलकी मालिश करनेसे पीड़ा कम होती है। तेल बंबईमें **'खांखणका तेल'** के नामसे मिलता है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## कुटजादि वर्ग ५७.

### N. O. Apocynaceæ (ॲपोसाइनेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; उपरिस्थगर्भाशय; पर्णविन्यास अभिमुख किंवा चक्राकार; पर्ण सादे, अखंड और उपपत्ररहित; पुष्प शाखाप्रोद्भूत; पुष्पाभ्यन्तरकोश और पुष्पबाह्यकोशके दल ४-५; पुंकेशर ४-५; फल सेम, गोल या लंबगोल; एक वृंतपर दो सेम साथ होती हैं।

---

## ( २१० ) कुटज ।

**नाम**—( सं. )शक्र, वृक्षक, कुटज, गिरिमल्लिका, वत्सक; ( हिं. ) कुड़ा, कुरैया; ( बं. ) कुडचि; ( म. ) कुडा; ( गु. ) कडो; ( ले. ) **श्वेतकुटज**—होलेह्रेना ॲन्टिडिसेन्टेरिका ( Holarrhena antidysenterica ); **असितकुटज**—राइटिआ टिन्क्टोरिआ ( Writia tinctorea ) (ज.) **बीज**—(सं.) इन्द्रयव, कलिङ्गक; ( हिं. ) इन्द्रजव, इन्द्रजौ; (म.) इन्द्रजव; (गु. ) इन्द्रजव।

**वर्णन**—कुटजमें सितकुटज ( सफेद कुड़ा ) और असितकुटज ( काला कुड़ा ) ये दो जातियाँ होती हैं । सफेद कुड़ाके बीज कडुए ( कड़वे इंद्रजव ) और कालाकुड़ाके बीज मीठे ( मीठा इंद्रजव ) होते हैं । वृक्ष ४ से १०–१२ फुट ऊँचा होता है । पुष्प श्वेतवर्णके जाई जैसे सुगन्धि होते हैं । कड़वे इंद्रजवमें दो सेमकी जोड़ी होती हैं परंतु दोनों सिरेपर अलग रहती हैं और मीठे इंद्रजवकी सेमकी जोड़ी सिरेपर जुड़ी हुई होती है ।

**गुण-कर्म**—चरके वमनद्रव्येषु ( सू. अ. २ ); तथा अर्शोघ्ने, कण्डूघ्ने स्तन्यशोधने, आस्थापनोपगे च महाकषाये ( सू. अ. ४ ) कुटजः पठ्यते। "कुटजत्वक् श्लेष्मपित्तरक्तसांग्राहिकोपशोषणानाम्" ( च. सू. अ. २५ ) । "रक्तपित्तकफघ्नस्तु सुकुमारेष्वनत्ययः। हृद्रोगज्वरवातासृग्वीसर्पादिषु शस्यते ॥" ( च. क. अ. ५ )। सुश्रुते—( सू. अ. ३८ ) आरग्वधादौ, पिप्पल्यादौ ( इन्द्रयवः ), हरिद्रादौ ( कुटजबीजं ), बृहत्यादौ ( कुटजफलं ), लाक्षादौ च गणे तथा ऊर्ध्वभागहरद्रव्येषु ( सू. अ. ३९ ) कुटजः पठ्यते । "कुटजः कटुको रूक्षो दीपनस्तुवरो हिमः। अर्शोऽतिसारपित्तास्रकफतृष्णामकुष्ठजित् ॥" ( भा. प्र. ) । "तत्पुष्पं शीतलं तिक्तं कषायं लघु दीपनम् । वातलं कफपित्तास्रकुष्ठातीसारजन्तुजित् ॥" ( कै. नि. ) । "शक्राह्वाः कटुतीक्ष्णोष्णास्त्रिदोषघ्नाश्च दीपनाः । रक्तार्शांस्यतिसारं च घ्नन्ति शूलं कृमींस्तथा ॥" ( ध. नि. ) ।

कुड़ा तिक्त, कषाय, रूक्ष, शीतवीर्य, दीपन, वामक, अर्शोघ्न, कण्डूघ्न, स्तन्यशोधन, आस्थापनोपग, सांग्राहिक, उपशोषण तथा कफ, पित्त, रक्तपित्त, हृद्रोग, ज्वर, वातरक्त, विसर्प, अतिसार, तृषा, आम और कुष्ठको मिटानेवाला है । कुड़ाके पुष्प तिक्त, कषाय, शीतवीर्य, लघु, दीपन, वातकर तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, कुष्ठ, अतिसार, और कृमिका नाश करनेवाले हैं । **इन्द्रजव** तिक्त, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, त्रिदोषघ्न, दीपन तथा रक्तार्श, अतिसार, शूल और कृमिका नाश करनेवाला है ।

**नव्यमत**—सफेद कुड़ेकी छालमें एक बहुत कडुआ सत्त्व होता है । गिलोयके सत्त्व निकालनेकी विधिसे यह निकाला जाता है। यह पिष्ट ( स्टार्च ) जैसा और क्षारस्वभावी होता है । यह मद्य और जलमें घुल जाता है । इन्द्रजवमें एक कडुआ और रवादार( दानेदार ) सत्त्व होता है । यह मद्यमें घुलता है परंतु जलमें नहीं घुलता।

कुड़ाकी छाल इपिकाक्युआनाके समान तिक्त, दीपन, स्तम्भन, नियतकालिकज्वर-प्रतिबंधक, ज्वरहर और बल्य है। छाल और बीजोंमें रक्तसंग्राहक और वेदनास्थापन गुण है। बीजोंके सेकनेसे संग्राहक गुण बढ़ता है। रक्तप्रवाहिकामें कुड़ाके मूलकी छालके तुल्य दूसरा औषध नहीं है। ताजे मूलकी छाल खट्टी छाछमें पीसकर ५ तोलाकी मात्रामें वह छाछ ४-४ घंटेपर देनेसे ज्वर, बारबार दस्त जाना और मलमें रक्त आना कम होता है। आँवमें इन्द्रजवका क्वाथ देते हैं। नवीन आँवमें छालसे विशेष गुण नहीं होता परंतु जीर्ण आँवमें निश्चित गुण होता है। हमेशा ताजी छालका उपयोग करना चाहिये, क्योंकि वह सूखनेपर निरुपयोगी हो जाती है। ताजी छालकी घनरसक्रिया करके रख लेनेसे काम चलता है। कुटजके घनक्वाथके साथ अतीस, बच और शहद मिलाकर देते हैं। बच्चोंके रक्तातिसारमें कड़वा इन्द्रजव और नागरमोथाका क्वाथ देते हैं। संग्रहणीमें छालके साथ कषाय, सुगन्धि और बल्य औषध मिला, क्वाथ करके अथवा सेका हुआ इन्द्रजव देते हैं। कड़वे इन्द्रजवका चूर्ण हररोज खानेसे भूख बढ़ती है, अन्न पचता है, पेटमें हवा भरती नहीं और कृमि हो तो मरकर निकल जाते हैं। इन्द्रजवके फांटसे अर्शसे रक्त गिरता हो तो बंद होता है। मसूड़ोंसे रक्त बहने और मसूड़ोंमें पूय होनेपर इन्द्रजव मसूड़ोंपर मलनेसे लाभ होता है। **काला कुड़ा** अल्पप्रमाणमें देनेसे आमाशय और यकृतकी क्रिया सुधरती है परंतु अधिक प्रमाणमें देनेसे उलटी और जुलाव होते हैं। कोमल पत्तियोंका स्वरस १ ड्राम भर देनेसे कामलामें लाभ होता है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**उपयुक्तअंग**—मूलकी छाल और बीज (इन्द्रजव)। **मात्रा**—मूलत्वचा १-२ तोला क्वाथ करके। इन्द्रजवचूर्ण ४-८ रत्ती।

---

## (२११) सप्तपर्ण।

**नाम**—सप्तपर्ण; (हिं.) सतौना, छतिवन; (पं.) सतौना; (बं.) छातिम; (म.) सातवीण; (गु.) सातवण; (ते.) एडाकुलरिटि; (ता.) एळिलै प्पालै; (म.) ळिलंप्पाल; (का.) हाले; (ले.) एल्स्टोनिआ स्कोलेरिस् (Alstonia scholaris)।

**वर्णन**—सप्तपर्णका जंगलोंमें बड़ा विशाल वृक्ष होता है। इसमें प्रायः सात (५-८ तक) पर्ण एकसाथ लगते हैं, इसलिये इसको **सप्तपर्ण** कहते हैं। पुष्प श्वेत-वर्णके गुच्छोंमें लगते हैं। छाल भंगुर; छालका स्वाद कड़ुआ होता है।

**गुण-कर्म**—**चरके** (सू. अ. ८) कुष्ठघ्ने, उदर्दप्रशमने च महाकषाये तथा (वि. अ. ८) तिक्तस्कन्धे, कषायस्कन्धे, शिरोविरेचनद्रव्येषु (सप्तच्छदपुष्पं) च सप्तपर्णः पठ्यते। **सुश्रुते** (सू. अ. ३८) आरग्वधादौ, लाक्षादौ च गणे तथा (सू. अ. ३९) अधोभागहरद्रव्येषु सप्तपर्णः (सप्तच्छदक्षीरं) पठ्यते।

"त्रिदोषशमनो हृद्यः सुरभिर्दीपनः सरः। शूलगुल्मकृमीन् कुष्ठं हन्ति शाल्मलिपत्रकः॥" (ध. नि.)। "सप्तपर्णो व्रणश्लेष्मवातकुष्ठास्रजन्तुजित्। दीपनः श्वासगुल्मघ्नः स्निग्धोष्णस्तुवरः सरः॥" (भा. प्र.)।

सप्तपर्ण तिक्त, कषाय, स्निग्ध, उष्णवीर्य, सारक, दीपन, सुगंधि, हृद्य, त्रिदोषघ्न तथा कुष्ठ, उदर्द, शूल, गुल्म, कृमि, व्रण, रक्तविकार और श्वासको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—सप्तपर्णकी छालमें २ प्रतिशत पिष्ट जैसा, कुछ रवेदार, अतितिक्त और क्षारस्वभावी सत्त्व होता है। यह मद्य और जलमें घुलनेवाला होता है। इस सत्त्वके गुण कुनैनके समान हैं। यह नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक, ज्वरघ्न, कटुपौष्टिक, कृमिघ्न और स्तन्यजनन है। समग्रत्वचामें स्तंभन गुण अधिक है। **मात्रा**-छालका चूर्ण २-४ तोला ले, उसका फांट किंवा क्वाथ करके देवें। सत्त्व १५-३० रत्ती दिनमें ३-४ बार देना चाहिये। सर्वप्रकारके ज्वर और पचननलिकाके रोगोंमें सप्तपर्ण देते हैं। इससे कुनैनके समान गुण होता है, परंतु कुनैनसे जो त्रास होता है वह इससे नहीं होता। प्रसूतावस्थामें पहले दिनसे ही सप्तपर्ण सुगंधि पदार्थोंके (उदा०—वच, अदरक, कचूर) साथ देते रहनेसे ज्वर नहीं आता, अन्न ठीक पचता है और दूध बढ़ता है। त्वग्रोगोंमें सप्तपर्णका बहुत प्रयोग किया जाता है। त्वचापर सप्तपर्णकी उत्तेजक क्रिया होती है। पुराने व्रणोंपर छालका लेप करते हैं। पुराने अतिसार और आँवमें छालका क्वाथ उत्तम औषध है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## (२१२) करवीर।

**नाम**— (सं.) करवीर, अश्वमारक; (हिं. पं.) कनेर; (कु.) कन्यूर; (बं.) करवी; (म.) कण्हेर; (गु.) कणेर, करेण; (फा.) खरजहरा; (सिं.) जंगी गुलु; (क.) खरजहर; (अ.) सम्मुल्हिमार; (ले.) नेरियम् ओडोरम् (Nerium odorum)।

**वर्णन**—कनेरका गुल्म फूलोंके लिये बागोंमें लगाया जाता है। पुष्पके रंगके भेदसे इसके **श्वेत** (सफेद फूलवाला), **रक्त** (लाल फूलवाला) और **पीत** (पीला फूलवाला) ये तीन भेद प्रसिद्ध हैं।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) कुष्ठघ्ने महाकषाये तथा (वि. अ. ८) तिक्तस्कन्धे करवीरः पठ्यते। सुश्रुते (सू. अ. ३८) लाक्षादिवर्गे, शिरोविरेचनद्रव्येषु च (सू. अ. ३९) करवीरः पठ्यते। "करवीरः कटुस्तिक्तो वीर्ये चोष्णो ज्वरापहः। चक्षुष्यः कुष्ठकण्डूघ्नः प्रलेपाद्विषमन्यथा॥" (ध. नि.)। "करवीरद्वयं तिक्तं कषायं कटुकं च तत्। व्रणलाघवकृन्नेत्रकोपकुष्ठव्रणापहम्॥ वीर्योष्णं कृमिकण्डूघ्नं भक्षितं विषवन्मतम्॥" (भा. प्र.)।

कनेर तिक्त, कटु, कषाय, उष्णवीर्य, चक्षुष्य, ज्वरहर तथा प्रलेपसे कुष्ठ, कण्डू, नेत्रप्रकोप और व्रणको दूर करनेवाला है। भक्षण करनेसे विषप्रभाव दिखलाता है।

**नव्यमत**—पीले कनेरका क्षीर दाहजनक तीक्ष्ण विष है। छाल तिक्त, भेदन जोरदार ज्वरघ्न और नियतकालिकज्वरप्रतिबंधक है। १५ रत्ती सिंकोनाकी छालसे जितना असर होता है उतना १ रत्ती पीली कनेरकी छालसे होता है। घन ½ रत्ती ज्वर उतरनेके बाद देनेसे ज्वरकी पारी रुकती है। फांट ज्वर चढनेपर देते हैं। यह औषध भरे पेट देना चाहिये। खाली पेट कभी न दें। इसकी क्रिया शारीरिक उष्णताके केन्द्रस्थान और त्वचापर होती है। इसके देनेपर खूब पसीना छुटता है और शरीर ठंढा पड़ता है। यदि अधिक थकावट मालूम हो तो गरम दूध और मद्य देना चाहिये। पीली कनेरकी हृदयपर डिजीटेलीस्के समान क्रिया होती है। इसकी क्रिया साक्षात् हृदय, हृदयमें जाने–आनेवाली नाडियों और हृदयके केन्द्रपर होती है। इससे हृदयकी संकोचनक्रिया सुधरती है तथा संकोचन थोड़े समयमें होनेसे हृदयको अधिक समय आराम मिलता है और आरामके समयमें हृदयका रक्ताभिसरण अच्छा होकर उसको पुष्टि मिलती है। हृदय ठीक काम करने लगनेसे इतर इन्द्रियोंका रक्ताभिसरण भी ठीक होता है। वृक्कों( गुर्दों )का रक्ताभिसरण बढ़नेसे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है। इन सर्व क्रियाओंका उपयोग हृद्रोग और हृदयोदरमें होता है। हृदयमें शिथिलता आनेसे हृदयका स्पन्दन ठीक सुननेमें न आता हो, नाड़ी कमजोर होकर बहुत शीघ्र चलती हो, पेशाब बहुत कम होता हो, जरा उठने-बैठनेपर साँस भरता हो, बिछानेपर सोया न जाता हो, पाँव सूजकर पेटमें पानी हो गया हो, ऐसी स्थितिमें पीली कनेर किंवा उसके समान कार्य करनेवाले डिजीटेलीस, सफेद कनेर, जंगली प्याज, कुटकी आदि द्रव्य देते हैं। इन द्रव्योंको मिलाकर नहीं देना चाहिये, क्योंकि ये द्रव्य स्वतः प्रभावशाली हैं। इन द्रव्योंके साथ स्वेदजनन, मूत्रजनन और विरेचन द्रव्य दे सकते हैं। सफेद और लाल कनेरकी रासायनिक घटना स्ट्रोफेन्थिस्के समान है। सफेद और लाल कनेरकी हृदय पर डिजिटेलीस जैसी जोरदार क्रिया होती है। यह हृदयके लिये घातक, शोथघ्न, त्वग्दोषहर और सर्व प्राणियोंके लिये विष है। अल्पमात्रामें मूलकी छालकी क्रिया हृदयपर पीली कनेरके समान होती है। पीली कनेरसे यह अधिक तीव्र है। मात्रा मूलकी छाल ½ से १ गुंजा। हृद्रोग और हृदयोदरमें कनेर देनेसे पेशाब छुटता है और उदर कम होता है। इसको हमेशा भरे हुए पेटपर देना चाहिये। मात्रा अधिक होने पर शरीर ठंढा पड़ता है, नाडीका स्पंदन एकदम कम होता है, शरीर खिंचता है और हृदय तथा श्वासोच्छ्वासकी क्रिया एक साथ बंद होती है। त्वग्रोग और व्रणशोथमें मूलको गोमूत्रमें पीसकर लगाते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## ( २१३ ) सर्पगन्धा ।

**नाम—( सं. )** सर्पगन्धा; ( बनारस ) धवलबरुवा; ( वि. ) धनमरवा, चंदमरवा, इसरगज; ( बं. ) चाँदड़(र), छोटा चाँद; ( म. ) अडकई; ( ले. ) रुवोल्फिआ सर्पेन्टिना ( Rauwolfia serpentina ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—बिहारमें विपुल प्रमाणमें तथा बंगाल और कोंकणमें अल्प प्रमाणमें होती है ।

**वर्णन**—सर्पगंधाका २–३ हाथ ऊँचा क्षुप होता है । कांड स्वाश्रयी, कांडकी प्रत्येक सन्धिसे ३–४ पत्र निकलते हैं । पुष्प जामुनी छाया लिये हुए लाल रंगके; फल मटर जितने बड़े और लाल रंगके; मूल अंगुली जितने बड़े और भंगुर; स्वाद अत्यंत तिक्त; मूल तोड़ने पर भीतर गोल चक्र और केन्द्ररेखा स्पष्ट दिखती है ।

**गुण-कर्म— सुश्रुते** ( उ. तं. अ. ६० ) मानसरोगहरे **अपराजिते** गणे सर्पगन्धा पठ्यते । आयुर्वेदमें केवल **सुश्रुत**के अमानुषोपसर्गाध्यायमें मानसरोगहर **अपराजितगण**में सर्पगंधाका उल्लेख मिलता है । बनारस, बिहार और बंगालके लोग प्राचीन कालसे उन्माद और अनिद्रामें इसका प्रयोग करते हैं ।

**उपयुक्त अंग**—मूल ।

**नव्यमत— सन** १९३० में **डॉ. कार्तिकचंद्र वसुकी** लेबोरेटरीमें **स्व. वा. म. म. क. गणनाथसेनजी** और **डॉ. वसुने** सर्पगंधाकी क्रियाओंका परीक्षण किया । इसमें १ प्रतिशत एक प्रकारका उपक्षार है । इसके अतिरिक्त राल, पिष्ट ( स्टार्च ), गोंद और लवण ( सॉल्ट ) हैं । लवणांशमें पोटेशियम् कार्बोनेट, फोस्फेट और सिलिकेटके साथ केल्सिअम और मेंगेनीज़ होता है । इसमें किसी प्रकारका टेनिन ( कषायद्रव्य ) नहीं है । **जीवच्छरीरके ऊपर इसकी क्रिया**—यह उत्तम निद्रा लानेवाली और उत्तेजनाशामक है । इसके मूलका चूर्ण उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे अच्छी नींद आती है और उन्मत्तताका ह्रास होता है । इसका उपक्षार हृदयपर अवसादक क्रिया करता है और सूक्ष्म रक्तवाहिनियोंका विकास करता है । इसलिये रक्तका दबाव ( ब्लड प्रेशर ) कम होता है । इसका उपक्षार गर्भिणीके जरायुका संकोच करता है । रालकी रक्तके दबावपर कोई क्रिया नहीं होती, परंतु उसके द्वारा निद्रा आती है । उन्मादके सब रोगियोंको इससे लाभ नहीं होता । खूब उत्तेजित और बलवान् रोगीपर इसका प्रयोग करना चाहिये । दुर्बल, निस्तेज और मनोवसाद-( Melancholy )ग्रस्त रोगीपर सावधानीसे इसका प्रयोग करना चाहिये । इन रोगियोंके रक्तके दबावकी परीक्षा करके यदि वह अधिक हो तब ही इसका प्रयोग करना चाहिये । जिन उन्मादरोगियोंका रक्तका दबाव कम हो उनको इससे लाभ नहीं होता । प्रबल ज्वरमें इसका सेवन करनेसे अशांतता और मोह दूर होता है, अच्छी नींद आती है, प्रलाप दूर होता है, आँखोंका वर्ण स्वाभाविक होता है और

साथमें ज्वरका वेग भी कम होता है। अकारण लिंगोत्थानसे जिनको निद्राभंग और सिरमें दर्द होता हो तथा सुजाक (पूयमेह) के परिणामस्वरूप अत्यंत ध्वजोच्छ्रायसे शिश्न टेढ़ा होता हो उनको यह फलप्रद है। इसकी क्रिया स्त्री और पुरुष दोनोंपर समान होती है (**भारतीय भैषज्यतत्त्वसे** अनुवादित)।

**मात्रा**—रक्तका दबाव कम करनेके लिये ५–१० ग्रेन; निद्रा लानेके लिये १५–३० ग्रेन; उन्मादके लिये १॥–३ माशा। **अनुपान**–दूध, जल या गुलाबका अर्क और मिश्री।

---

## (२१४) कृष्णसारिवा।

**नाम**—(सं.) कृष्णसारिवा, श्यामालता; (हिं.) कालीसर; (कु.) दुधिलो; (बं.) श्यामालता (ले.) इक्नोकार्पस फ्रुटिसन्स (Ichnocarpus frutescens)।

**वर्णन**—इसकी लता हिमालय, बंगाल और दक्षिण कोंकणमें होती है। पत्र छोटे-बड़े, लंबगोल, साधारणतः २–३ इंच लंबे और $\frac{3}{4}$ से १$\frac{1}{2}$ इंच चौड़े, पत्रवृंत $\frac{1}{4}$ इंच लंबा; पुष्पका गुच्छा पत्रकोण या शाखाग्रसे निकलता है; पुष्प सफेदी लिये हुए जामुनी रंगके होते हैं। मूल सारिवा जैसे कालाई लिये भूरे रंगके; इसमें अनंतमूल जैसी सुगंधि नहीं होती।

**गुण-कर्म**—**सुश्रुते** (सू. अ. ३८) विदारिगन्धादौ गणे कृष्णसारिवा पठ्यते। "कृष्णमूली तु संग्राही शिशिरा कफपित्तजित्। तृष्णारुचिप्रशमनी रक्तपित्तहरा स्मृता॥" (ध. नि.)। "सारिवायुगलं स्वादु स्निग्धं शुक्रकरं गुरु। अग्निमान्द्यारुचिश्वासकासामविषनाशनम्॥ दोषत्रयास्रप्रदरज्वरातीसारनाशनम्॥" (भा. प्र.)।

कृष्णसारिवा मधुर, स्निग्ध, शीतवीर्य, ग्राही, शुक्रकर तथा कफ, पित्त, तृषा, अरुचि, रक्तपित्त, अग्निमान्द्य, श्वास, कास, आम, विष, रक्तविकार, प्रदर, ज्वर और अतिसारका नाश करनेवाली है।

**वक्तव्य**—जहाँ केवल **सारिवा** लिखा हो वहां अनंतमूल और **सारिवाद्वय** लिखा हो वहाँ अनंतमूल और श्यामालताका मूल दोनों लिये जाते हैं।

---

# अर्कादि वर्ग ५८.

## N. O. Asclepiadaceæ (एस्क्लेपिएडेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; पर्णविन्यास अभिमुख; पर्ण अखंड, मोटे, उपपत्ररहित; पुष्प नियमित; पुष्पबाह्यकोश, पुष्पाभ्यंतरकोश और

पुंकेशर ५–५; फल युग्म; बीज रोम( रूई )युक्त। इस वर्गकी सब वनस्पतियोंको ताजी हालतमें तोड़नेसे क्षीर-दूध निकलता है।

---

## ( २१५ ) अर्क।

**नाम**— ( सं. ) अर्क, मन्दार; ( हिं. ) आक, मदार; ( कु. ) आंक; ( बं. ) आकंद; ( म. ) रुई; ( गु. ) आकडो; ( क. सिं. पं. ) अक; ( ले. ) कैलोट्रोपिस् प्रोसिरा ( Calotropis procera )

**वर्णन**—आक भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है। पत्ते लंबे, मोटे और चौड़े होते हैं। पत्रकोणसे पुष्पदंड निकलता है जिसपर छत्राकारमें पुष्पगुच्छ लगता है। फूल बाहरसे सफेद और ललाई लिये बेंगनी रंगके होते हैं। केवल श्वेतपुष्पवाला आक भी होता है। फलमेंसे मुलायम रूई निकलती है।

**गुण-कर्म**—**चरके** ( सू. अ. ४ ) भेदनीये, स्वेदोपगे, वमनोपगे ( 'सदापुष्पा' नाम्ना ) च महाकषाये तथा **सुश्रुते** ( सू. अ. ३ ) अर्कादिगणे, अधोभागहरे च गणे ( सू. ३९ ) अर्कः पठ्यते। "क्षीरमर्कस्य विज्ञेयं वमने सविरेचने।" ( च. सू. अ. १ )। "अर्कस्तिक्तो भवेदुष्णः शोधनः परमः स्मृतः। कण्डूव्रणहरो हन्ति जन्तुसंततिमुद्धताम्॥" ( ध. नि. )। "अर्कस्तु कटुरुष्णश्च वातजिद्दीपनीयकः। शोथव्रणहरः कण्डूकुष्ठक्रिमिविनाशनः॥" ( रा. नि. )। "अर्कद्वयं सरं वातकुष्ठकण्डूविषव्रणान्। निहन्ति प्लीहगुल्मार्शःश्लेष्मोदरशकृत्क्रिमीन्॥ अलर्ककुसुमं वृष्यं लघु दीपनपाचनम्। अरोचकप्रसेकार्शःकासश्वासनिवारणम्॥ क्षीरमर्कस्य तिक्तोष्णं स्निग्धं सलवणं लघु। कुष्ठगुल्मोदरहरं श्रेष्ठमेतद्विरेचनम्॥" ( भा. प्र. )।

आक तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, शोधन, भेदन, स्वेदोपग, वमनोपग, दीपन तथा कण्डू, व्रण, वात, शोथ, कुष्ठ, कृमि, प्लीहरोग, गुल्म, अर्श, कफ और उदररोगका नाश करनेवाला है। आकके फूल वृष्य, लघु, दीपन, पाचन तथा अरुचि, प्रतिश्याय, खाँसी और श्वासका नाश करनेवाला है। आकका क्षीर तिक्त, किंचित् लवण, उष्णवीर्य, स्निग्ध, वमन और विरेचन करनेवाला तथा कुष्ठ, गुल्म और उदररोगको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—मूलकी छाल, कटु, तिक्त, उष्ण, दीपन, पाचन, पित्तस्रावी, स्वेदजनन, कफघ्न, वामक, संकोचविकासप्रतिबन्धक, जीवनविनिमयक्रिया–रसग्रन्थि और त्वचाके लिये उत्तेजक, बल्य और रसायन है। छाल अल्पमात्रामें आमाशयको प्रत्यक्ष उत्तेजक है। इससे आमरस ठीक बहने लगता है। बड़ी मात्रासे आमाशयमें दाह होता है और उससे वमन होता है। छालके अन्तर्गत उपयुक्त द्रव्य रक्तमें शीघ्र मिल जाता है। यह त्वचासे निकलते समय त्वचापर प्रत्यक्ष उत्तेजक क्रिया करता है

और त्वचाकी सूक्ष्म रक्तवाहिनियोंका विकास होता है । यह उपयुक्त द्रव्य ( वीर्य ) रक्तमें बहता हुआ श्वासोच्छ्वासके और वमनके केन्द्र पर प्रत्यक्ष क्रिया करता है । इस केन्द्रस्थानको उत्तेजन मिलनेसे वमन होता है । आकका वामक कार्य प्रत्यक्ष आमाशयद्वारा और परंपरया वामक केन्द्रद्वारा होता है । इसका स्वेदजनन धर्म उत्तम है । इससे पुष्कल पसीना आता है । संकोचविकासप्रतिबंधक धर्म साधारण है और वह श्वासनलिकाओंपर विशेष स्पष्ट मालूम होता है । इसका रसायनधर्म पारदके समान उत्तम है । इसके अन्तर्गत वीर्य शरीरमें संचार होते समय यकृत्की क्रिया सुधरती है और पित्तका स्राव अच्छा होता है, शरीरान्तर्गत विभिन्न ग्रन्थियोंको उत्तेजना मिलनेसे उनके रस अच्छी तरहसे तैयार होते हैं और जीवन-विनिमयक्रियाको उत्तेजना मिलती है इसलिये शरीरकी पुष्टि और बल बढ़ता है । इन धर्मोंसे आकको 'उत्तेजक बल्य' कहा गया है । अन्तस्त्वचा, बाह्यत्वचा और त्वचाके नीचेका ढीला स्तर इनके रोगोंमें मूलकी छाल देते हैं और उससे लाभ होता है । सर्व प्रकारके व्रण वे सादे हों, रक्तदोषसे हुए हों या उपदंशसे हुए हों उनमें और श्लीपदमें छाल खानेको देते हैं और उसका लेप करते हैं । श्लीपदमें आकके मूलकी छालके साथ रससिंदूर, सुरमा ( स्रोतोञ्जन-ॲन्टिमनी सल्फाइड ) और सांभरसींग-भस्म देते हैं । वद और गंडमालामें मूलकी छाल खानेको देते हैं और क्षीर लगाते हैं । सर्व प्रकारके जीर्ण त्वग्रोगोंमें छालका चूर्ण निमोलीके तेलमें मिलाकर लगाते हैं । यकृत् तथा प्लीहाकी वृद्धि और उससे उत्पन्न उदररोगमें मूलकी छालसे लाभ होता है । जीर्ण और नूतन आँवमें मूलकी छाल सुगन्धि द्रव्यों (सौंफ, गुलाबपुष्प, दालचीनी आदिके ) साथ देते हैं । जीर्णज्वर और शीतज्वरमें मूलकी छाल नागरपानके साथ देते हैं । अर्कपुष्प दीपन, कफघ्न और संकोचविकासप्रतिबन्धक हैं । खाँसी, दमा, क्षुधानाश और कुपचन रोगमें फूलोंसे अच्छा लाभ होता है । अर्कपत्र वातहर, शोथहर, व्रणशोधन, व्रणरोपण और आनुलोमिक हैं । पत्रचूर्ण व्रणपर छिड़कनेसे व्रणका शीघ्र रोपण होता है । पत्तोंपर एरंडतैल लगा, उनको गरम करके सूजन पर बाँधनेसे पीडा कम होकर सूजन उतरती है ( **डॉ. वा. गो. देसाई**कृत **औषधीसंग्रह**से सारांशरूपमें उद्धृत ) ।

---

## ( २१६ ) सारिवा ।

**नाम—( सं. )** अनन्ता, उत्पलसारिवा, गोपी, गोपकन्या, सारिवा; ( हिं. बं. ) अनंतमूल; ( म. ) उपरसाल, उपलसरी; ( गु. ) उपलसरी, कागडियो कुंढेर, कपूरीमधुरी; ( ले. ) हेमिडेस्मस इन्डिकस ( Hemidesmus indicus ) ।

**वर्णन**—सारिवाकी ५-१५ फुट लंबी लता होती है । कांड बारीक, कालाई लिये लाल रंगका; पर्णविन्यास अभिमुख; पत्रवृन्त छोटा; पत्ते छोटे-बड़े, लंबे, मध्यमें श्वेत-रेखांकित; पुष्प पत्रकोणोद्भूत, छोटे, जामुनी छाया लिये हुए हरे रंगके गुच्छोंमें; फल युग्म, शिम्बी; मूल लंबे, गोल, जरा टेढ़े-मेढ़े, लाल रंगके, सुगंधि; मूलका स्वाद मधुर और जरा तिक्त होता है ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) स्तन्यशोधने, पुरीषसंग्रहणीये, ज्वरहरे, दाहप्रशमने च महाकषाये; मधुरस्कन्धे ( गोपवल्लीनाम्ना ) ( वि. अ. ८ ) तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) विदारिगन्धादौ, सारिवादौ, वल्लीपञ्चमूले च गणे सारिवा पठ्यते । "सारिवे द्वे तु मधुरे पित्तवातास्रनाशने । कण्डूकुष्ठज्वरहरे मेहदुर्गन्धि-नाशने ॥" ( ध. नि. ) । "सारिवायुगलं स्वादु स्निग्धं शुक्रकरं गुरु । अग्निमान्द्यारुचिश्वासकासामविषनाशनम् ॥ दोषत्रयास्रप्रदरज्वरातीसारनाशनम् ॥" ( भा. प्र. ) ।

अनंतमूल मधुर, स्निग्ध, गुरु, शुक्रकर, वर्ण्य, कण्ठ्य, स्तन्यशोधन, पुरीषसंग्रहणीय, दाहप्रशमन तथा वातादि तीनों दोष, रक्तविकार, ज्वर, कण्डू, कुष्ठ, प्रमेह, शरीरकी दुर्गन्ध, अग्निमान्द्य, अरुचि, श्वास, खाँसी, आँव, विष और अतिसारको दूर करनेवाला है ।

**नव्यमत**—अनंतमूलमें एक सुगन्धि और बाष्पके साथ उड़नेवाला वीर्य है, इसलिये अनंतमूलका क्वाथ नहीं करना चाहिये । यह वीर्य मूलकी छालमें होता है, भीतरके काष्ठमें नहीं होता । इसलिये हमेशा बारीक और नये मूल लेने चाहिये । मूल मोटे हों तो मूलकी त्वचा ही लेनी चाहिये । अनंतमूल मूत्रविरेचन, मूत्रविरजन, स्वेदजनन, दीपन, जीवनविनिमयक्रियाको उत्तेजक, बल्य, त्वग्दोषहर और रसायन है । अनंतमूलके फांटसे मूत्रका प्रमाण तिगुना-चौगुना बढ़नेपर भी मूत्रपिंडोंको कुछ भी त्रास नहीं होता । गिलोय और सौंफ मिलानेसे अनंतमूलकी क्रिया बढ़ती है । अनंतमूलका फांट मूत्रपिंड( गुर्दे )के शोथ और संकोचनमें अतिगुणकारक है । इस रोगमें अनंतमूल गिलोय और जीरेके साथ देते हैं । अनंतमूलसे त्वचाकी जीवनविनिमयक्रिया सुधरती है और बारीक रक्तवाहिनियोंका थोड़ा सा विकास होता है । ज्वरमें इसके फांटसे पसीना और पेशाब होता है, शरीरकी उष्णता कम होती है और पचनक्रिया बढ़ती है । सर्व प्रकारके त्वग्रोगों और उपदंशकी द्वितीयावस्थामें अनंतमूल गिलोयके साथ देनेसे अच्छा लाभ होता है । गंडमालामें अनंतमूल बायविडंगके साथ देते हैं । क्षुधानाश और कुपचन रोगमें अनंतमूल देनेसे आमाशयकी शक्ति बढ़ती है, भूख लगती है, अन्नपर रुचि उत्पन्न होती है और अन्न ठीक हजम होता है । शरीरकी थकावट, वजन कम होना, प्रदर, जीर्ण आमवात और रक्तदोषसे उत्पन्न पांडुरोगमें अनंतमूल गुणकारक है । उपदंश

था सुजाकसे गर्भपात होता हो अथवा बच्चा पैदा होते ही मरता हो, ऐसी स्थितिमें अनंतमूल देनेसे बालक बच जाता है। गर्भ रहनेपर प्रसवकाल पर्यन्त स्त्रीको अनंतमूलका सेवन कराना चाहिये **( डॉ. वा. ग. देसाई )।**

---

## (२१७) जीवन्ती।

**नाम—(सं.)** जीवन्ती, शाकश्रेष्ठा; **(म.)** खानदोडकी, शिरदोडी; **(गु.)** दोडी, डोडी, खरणेर, मीठी खरखोडी, राडारूडी; **(ले.)** होलोस्टेमा एन्युलर, लेप्टेडेनिआ रेटिक्युलेटा ( Holostemma annulare; Leptadenia reticulata )।

**वर्णन**—जीवन्तीकी लता चातुर्मासमें होती है। पत्र हृदयाकृति; पुष्प आकके समान, जामुनी छाया लिये हुए श्वेतवर्णके या पिलाईलिये हरे रंगके; सेम २-४ इंच लंबी; कच्ची सेमका शाक बनाकर खाते हैं। साग मधुर और स्वादिष्ट होता है। जिसकी सेमको तोड़नेसे सफेद दूध निकलता है, उसको **जीवन्ती** और जिसकी सेमको तोड़नेसे पीला दूध निकलता है उसको **स्वर्णजीवन्ती** कहते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) जीवनीये महाकषाये, मधुरस्कन्धे (वि. अ. ८) च, तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) काकोल्यादिगणे जीवन्ती पठ्यते। "चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी जीवन्ती समुदाहृता" (सु. सू. अ. ४६)। "चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी जीवन्ती मधुरा हिमा। शाकानां प्रवरा" (ध. नि.)। "जीवन्ती मधुरा शीता रक्तपित्तानिलापहा। क्षयदाहज्वरान् हन्ति कफवीर्यविवर्धिनी॥" (रा. नि.)। "जीवन्ती मधुरा शीता सुस्निग्धा ग्राहिणी लघुः। चक्षुष्या सर्वदोषघ्नी बल्या वृष्या रसायनी॥" (कै. नि.)।

जीवंती मधुर, स्निग्ध, लघु, शीतवीर्य, चक्षुष्य, बल्य, वृष्य, रसायन, ग्राही, कफ और वीर्यको बढ़ानेवाली तथा वातादि तीनों दोष, रक्तपित्त, क्षय, दाह और ज्वरको दूर करनेवाली है।

**नव्यमत**—जीवंती स्नेहन, शीतल, मूत्रजनन और शोथघ्न है। नये सुजाकमें मूलका क्वाथ जीरेका चूर्ण, मिश्री और दूध मिलाकर देते हैं। इससे मूत्रनलिकाकी जलन कम होती है, पेशाब पुष्कल छुटता है और सुजाक शांत होता है। शुक्रस्रावमें इसके मूल और सेमलमुसली दूध और चीनीके साथ देते हैं **( डॉ. वा. ग. देसाई )।**

**उपयुक्त अंग**—मूल। **मात्रा**—मूलचूर्ण ३ माशा; क्वाथके लिये मूल १ तोला।

---

## कारस्करादि वर्ग ५९.

## N. O. Loganiaceæ ( लोगेनिएसी ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; उपरिस्थगर्भाशय; पर्णक्रम अभिमुख; पर्ण अखंड, उपपत्ररहित, मसृण; पुष्प हरापनलिये हुए शाखाके अग्रपर आते हैं; फल मांसल ।

---

### ( २१८ ) कारस्कर ( कुचला ) ।

**नाम**—( सं. ) कारस्कर, विषतिन्दुक, काकतिन्दुक, कुपीलु; ( हिं. ) कुचला, ( बं. ) कुँचिला; ( म. ) काजरा; ( गु. ) झेरकोचला, ( अ. ) अजराकि, हब्बुल गुराब; ( फा. )कुचूला, फुलूसेमाही; ( ले. ) स्ट्राइक्नोस् नक्सवोमिका ( Strychnos nuxvomica )

**वर्णन**—कुचलाका बड़ा वृक्ष होता है । पत्र चमकीले; फल तेंदूके फलके समान; बीज अधेली जितने चौड़े, एक बाजूपर दबे हुए, दूसरी बाजूपर फूले हुए, बारीक लोमयुक्त; भीतरकी गिरी लचीली, गंधरहित और अत्यंत तिक्त होती है ।

**उपयुक्त अंग**—शुद्ध की हुई बीजकी गिरी । मात्रा ।।-१ गुंजा ।

**गुण-कर्म**—"कारस्करः कटूष्णश्च तिक्तः कुष्ठविनाशनः । वातामयास्रकण्डूतिकफामार्शोव्रणापहः ॥" ( रा. नि. ) ।

कुचला कटु, तिक्त, उष्णवीर्य तथा कुष्ठ, वातरोग, रक्तविकार, खाज, कफ, आम, अर्श और व्रणको दूर करनेवाला है ।

**नव्यमत**—कुचलामें **स्ट्रिक्नीन** और **ब्रुसीन** नामके दो तीव्र जहरीले सत्त्व पाये जाते हैं । कुचला तिक्त, दीपन, पाचन, कटुपौष्टिक, नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक, बल्य और वाजीकर है । बीजका लेप पूतिहर और वेदनास्थापन है । कुचलासे शरीरके सब अवयवोंकी क्रियाएँ उत्तेजित होती हैं । नाड़ीसंस्थानके ऊपर इसकी विशेष क्रिया होती है । मस्तिष्कके ऊपर इसकी विशेष क्रिया नहीं होती, परंतु मस्तिष्कके नीचे जो जीवनीय केन्द्र हैं उन पर और पृष्ठवंशकी नाड़ियों पर इसकी विशेष उत्तेजक क्रिया होती है । श्वासोच्छ्वासके केन्द्रस्थानको उत्तेजन मिलनेसे रोगीकी श्वास लेनेकी शक्ति बढ़ती है, अच्छी तरहसे खाँसा जाता है और कफ गिरता है । हृदय और रक्तवाहिनियोंके केन्द्रस्थानको उत्तेजन मिलनेसे हृदयकी संकोचन-विकसन क्रिया ठीक होती है, रक्तवाहिनियोंकी स्थिति सुधरती है और रक्तका दबाव बढ़ता है । कुचला शीतज्वरमें गुणकारक है । इससे ज्वरकी बारी रुकती है और शीतज्वरके दुष्परिणाम नहीं होते । कुचलासे आमाशयकी शक्ति बढ़ती है और पचनक्रिया सुधरती है, कुपचन और जीर्ण अभिष्यंदयुक्त

आमाशयके रोगोंमें कुचला देते हैं। आमाशयकी अपेक्षया आँतोंपर विशेषतः बड़ी आँत पर कुचलाकी जोरदार क्रिया होती है। इससे आँतोंकी चलनशक्ति बढ़ती है। आँतोंकी शिथिलतामें सुगन्धि द्रव्योंके साथ कुचला देते हैं। अल्प प्रमाणमें कुचला देनेसे कब्ज दूर होता है। अर्दित, अर्धांगवात आदि नाडियोंके रोगोंमें जो गतिभ्रंश और ज्ञानभ्रंश होता है, उसमें कुचला देते है। बच्चोंका शय्यामूत्र, हस्तमैथुनके अनंतर अपने आप वीर्यस्खलन, अतिमैथुनसे उत्पन्न नपुंसकता, मूत्राशयकी अशक्तता, मानसिक थकावटसे उत्पन्न अनिद्रा, इन रोगोंमें कुचलासे लाभ होता है। हृदयमें शिथिलता आनेसे हृदयका स्पन्दन ठीक सुननेमें न आता हो, नाड़ीकी गति मंद—अति त्वरित किंवा खंडित होती हो, जरासा श्रम करनेपर पसीना आता हो और दम भर आता हो ऐसी स्थितिमें कुचला देना आवश्यक है। हृत्पटलके जीर्ण रोगमें हृदयमें शिथिलता आती है और हृदय बड़ा होता है, हाथ-पाँवमें सूजन आती है, पेटमें जल जमता है, यकृत् बड़ा होता है, मूत्र कम और लाल रंगका होता है, दस्त साफ नहीं होता, अन्न पचता नहीं, पेट फूलता है, सोनेसे जी घबराता है, इस लिये दिन-रात बैठा रहना पड़ता है, ऐसी स्थितिको **हृदयोदर** कहते हैं। इसमें कुचलाका अर्क देते हैं और साथमें इतर सहायक औषध जैसे-कफकी प्रधानता हो तो कफघ्न द्रव्य, हींग और कपूर; जलशोथकी प्रधानता हो तो स्वेदजनन, मूत्रजनन और रेचन द्रव्य तथा कॉफी आदि देना चाहिये। फुप्फुसके तीव्र रोगोंमें जब श्वासक्रिया ठीक नहीं चलती, जी घबराता है और रोगी थकने लगता है तब कुचला देते हैं। श्वासनलिकाशोथ, फुप्फुसशोथ और दमेमें उत्तेजक कफघ्न औषधोंके साथ कुचला देते हैं। राजयक्ष्मामें कुचलासे रात्रिको स्वेद आना बंद होता है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**विषलक्षण और चिकित्सा—**

कुचला अल्पमात्रामें बलकारक, दीपन और कामोत्तेजक है। सेवन करनेसे पाचनशक्ति बढ़ती है, भूख लगती है और पेशाब अधिक होता है। कुछ अधिक मात्रामें खानेसे सुषुम्णाकांडपर क्रिया करता है, मुखमंडल और ग्रीवाकी पेशियोमें खींचाव (आक्षेप) होता है, हाथ-पाँवमें कंप और श्वासोच्छ्वासमें कुछ कष्ट मालूम होता है; कुछ देरके बाद अन्य पेशियोंमें भी आक्षेप मालूम होने लगता है; स्पर्शज्ञान उत्तेजित होता है अर्थात् किसी अंगको एकदम स्पर्श करनेसे समग्र शरीर काँपता है और रोयें खड़े होते हैं। **विषमात्रा**में सेवन करनेसे पूर्वोक्त लक्षण बढ़कर धनुर्वातके लक्षण होते हैं। पाँवसे सिरतक समग्र पेशियाँ आक्षिप्त होकर कठिन हो जाती हैं। ग्रीवाकी पेशियोंके आक्षेपसे सिर पीछेकी ओर मुड़ जाता है। मुँह ऐसा बंद होजाता है कि किसी तरह खुलता नहीं। मुखमंडलकी पेशियोंके आक्षेपसे मुखमंडल भयानक विकृत दिखता है। हाथ-पाँव प्रसारित और कठिन हो जाते हैं—मुड़ते नहीं। हाथकी मुट्ठी बद्ध हो जाती है। पृष्ठदेशकी

पेशियोंके आक्षेपसे शरीर धनुर्वातके समान पीछेकी ओर मुड़ जाता है । १-५ मिनट यह हालत रहकर समग्र शरीर कुछ शिथिल होता है । ८-१० मिनटके बाद फिर आक्षेप आता है । श्वास-प्रश्वास संबन्धी पेशियोंके आक्षेपसे श्वासकी गति द्रुत और असंपूर्ण होती है, आक्षेपके समय प्रायः रुक जाती है । प्रतिबार आक्षेपके बाद शरीर दुर्बल होता जाता है और नाड़ी क्षीण, क्वचित् मंदगति होती है । इस प्रकार वारंवार आक्षेप होते होते एकदम श्वास रुक कर मृत्यु होती है । मरण पर्यंत चैतन्य ( होश ) रहता है । अधिक मात्रामें सेवन करनेसे १०-३० मिनटमें विषलक्षण प्रकाशित होते हैं और ५-६ आक्षेप होनेके बाद मृत्यु होती है । कुचलाद्वारा विषाक्त होनेपर आमाशयसे विष निकाल देना प्रधान उद्देश्य होता है । इसलिये अर्कमूलत्वचा, मैनफल, गंधकाम्लीय यशद ( झिंक सल्फेट ) आदि वामक द्रव्योंसे वमन कराना चाहिये । पीछे स्टमक पंपसे आमाशयको वारंवार धोना चाहिये । पीछे दूधमें गायका घी या अंडेकी सफेदी मिलाकर पिलावें । बिहीदानेका लबाब पिलाना भी अच्छा है । पेशियोंको शिथिल करनेवाले अफीम, बेलाडोना, कर्पूर, गांजा और तमाखू ( फांटके रूपमें ) जैसे द्रव्य देने चाहिये । रोगी लेनेमें असमर्थ हो तो इंजेक्शन द्वारा औषध देना चाहिये ।

---

## भूनिंबादि वर्ग ६०.

### N. O. Gentiaceæ. ( जेन्शिएनेसी ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; उपरिस्थगर्भाशय; पर्णक्रम अभिमुख; पर्ण सादे, अखंड, उपपत्ररहित; कांड प्रायः चतुष्कोण; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यंतरकोशके दल तथा नरकेशर ५-५; फल नीरस; फलमें पुष्कल छोटे बीज होते हैं ।

---

### ( २१९ ) भूनिम्ब ( चिरायता ) ।

**नाम**—( सं. ) भूनिम्ब, किराततिक्त, किरात; ( पं. ) चरैता; ( हिं. ) चिरायता; ( बं. ) चिराता; ( म. ) किराईत; ( गु. ) करियातुं; ( मा. ) चिरायतो; ( सिं. ) चिराईतो; ( ले. ) स्वर्टिआ चिरेटा ( Swertia chirata ) ।

**वर्णन**—चिरायता हिमालयकी तराई या मध्यप्रदेशमें होता है । यह भारतवर्षमें सर्वत्र मिलता है और प्रसिद्ध है ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) स्तन्यशोधने, तृष्णानिग्रहणे च महाकषाये तथा ( वि. अ. ८ ) तिक्तस्कन्धे च किराततिक्तः पठ्यते । सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) आरग्वधादिगणे किराततिक्तः पठ्यते । "किरातको रसे तिक्तः सरः शीतो लघुस्तथा । श्लेष्मपित्तास्रशोफार्शःकासतृष्णाज्वरापहः ॥" ( ध. नि. ) । "किरातः सारको रूक्षः शीतलस्तिक्तको लघुः । सन्निपातज्वरश्वासकफपित्तास्रदाहनुत् ॥ कासशोथतृषाकुष्ठज्वरव्रणकृमिप्रणुत् ।" ( भा. प्र. ) ।

चिरायता तिक्त, रूक्ष, लघु, शीतवीर्य, सारक, स्तन्यशोधन तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, शोथ, अर्श, खाँसी, श्वास, तृषा, ज्वर, रक्तविकार, दाह, कुष्ठ, व्रण, और कृमियोंका नाश करनेवाला है ।

**नव्यमत**—चिरायता दीपन, पाचन, कटुपौष्टिक, ज्वरघ्न, दाहप्रशमन और आनुलोमिक है । इससे आमाशयरस बढ़ता है और अन्नका पचन होता है । यह उत्तम कटुपौष्टिक है । इसके साथ सुगन्धि द्रव्योंका प्रयोग करना चाहिये । जीर्ण विषमज्वरमें जब शरीरमें ज्वर गुप्तावस्थामें रहता हो और कुपचन तथा शरीरमें दाह रहता हो तब चिरायतासे बहुत फायदा होता है । श्वासनलिकाओंके शोथ और संकोच-विकाससे उत्पन्न दमामें इससे लाभ होता है । आमाशयकी शिथिलतामें यह उत्तम औषध है । इससे दस्त साफ होता है ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## ( २२० ) त्रायमाणा ।

**नाम**—( सं. ) त्रायमाणा, त्रायन्ती, गिरिसानुजा; ( अ. ) गाफिस ।

**वर्णन**—त्रायमाणाके विषयमें सोलन ( जि. शिमला ) के **वैद्यराज विद्याधरजी विद्यालङ्कार** लिखते हैं कि–"सोलनमें यह **खनोग** नामक पहाड़की चोटीपर होती है । यह पहाड़ी लगभग ७ हजार फुटकी ऊँची है । वहाँ श्वेत रंगके कोमल पत्थरोंकी चट्टानोंके बीच-बीचमें यह पैदा होती है । पत्थरकी चट्टानोंमें कहीं-कहीं थोड़ासा गड्ढा होता है वहाँ ही त्रायमाणा उगती है । इसकी जड़ ४–६ अंगुल गहरी पत्थरमें होती है । ऊपर तीन–चार लंबे पत्ते होते हैं । जो चट्टान पर बिछे होते हैं । बीचों-बीच नाल निकल कर एक बालिश्तसे कम ऊँची जाती है । उसपर नीले रंगके दो–तीन फूल लगते हैं । सोलन तथा सिरमोरमें इसे **कड्डू** कहते हैं । **वैश्नवी देवी** ( जम्मूके पास ) के पहाड़की चोटियों पर भी यह पैदा होती है । वहां इसे **तीता** कहते हैं । यह सितंबरमें पुष्पयुक्त होती है तब इसका संग्रह करते हैं" । **गुले गाफिस** इस समय ईरानसे आता है । **मुहीते आजममें** गाफिसका संस्कृत नाम **त्रायमाण** दिया है ।

**गुण-कर्म—चरके** ( वि. अ. ८ ) तिक्तस्कन्धे तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) लाक्षादिगणे त्रायमाणा पठ्यते । "त्रायन्ती कफपित्तास्रगुल्मज्वरहरा मता । उष्णा कटुकषाया च सूतिकाशूलनाशिनी ॥ रक्तपित्तश्रमच्छर्दिविषघ्नी तिक्तवल्कला ॥" ( ध. नि. ) । "त्रायन्ती तुवरा तिक्ता सरा पित्तकफापहा । ज्वरहृद्रोगगुल्मास्र-भ्रमशूलविषप्रणुत् ॥" ( भा. प्र. ) । "त्रायमाणाशृतं वाऽपि पयसा ज्वरितः पिबेत् ।" ( च. चि. अ. ३ ) ।

त्रायमाणा तिक्त, उष्णवीर्य, सारक तथा पित्त, कफ, रक्तविकार, गुल्म, ज्वर, मक्कलशूल, रक्तपित्त, भ्रम, वमन, विष और हृद्रोगको दूर करने वाली है ।

**यूनानी मत—गाफिस** पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें रूक्ष; यकृत-प्लीहाके अवरोधोंको खोलनेवाला, दोषतारल्यजनन, दोषच्छेदन, लेखन, स्रोतोविशोधन, दग्धदोषविरेचन, मूत्रजनन, आर्तवजनन, स्तन्यशोधन, स्वेदन, दीपन और रक्तप्रसादन है । यकृत्-आमाशयका शोथ एवं काठिन्य, प्लीहाकाठिन्य, पांडुरोग, जीर्ण एवं दोष-संमिश्र ज्वर, कंडू और इन्द्रलुप्त इन रोगोंमें गाफिसका प्रयोग करते हैं । **अहितकर**-प्लीहाको । **निवारण**-असारून ( तगर ) और अफसंतीन । **प्रतिनिधि**-अनीसून । **उपयुक्त अंग**-पुष्प और पंचांगकी रसक्रिया । **मात्रा** ३–५ माशा ।

**नव्यमत**—स्वाद तिक्त । इससे भूख लगती है, आमाशयरस बढ़ता है ( दीपन ), अन्न पचता है, पित्तका स्राव होता है और दस्त साफ होता है । इसमें थोड़ा कोष्ठवातप्रशमन धर्म होनेसे पेट फूलनेसे जो हलका दर्द होता है वह कम होता है । इससे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है । इसका प्राचीन समयमें आर्य वैद्य विशेष उपयोग करते थे । आजकल हकीम लोग इसका विशेष प्रयोग करते हैं । यह तिक्त होनेसे कुपचन रोगमें और अग्निमांद्यजनित शरीरशैथिल्यमें कटुपौष्टिकके रूपमें इसका उपयोग करते हैं । इससे दस्त साफ होता है और यह पीड़ाशामक है इसलिये अर्शमें देते हैं । इससे दस्त साफ होता है और मूत्रका प्रमाण बढ़ता है इसलिये प्लीहोदर, यकृदुदर, जलोदर और हृदयोदरमें इसे देते हैं । मूत्रजनन और स्रंसन होनेसे जीर्णज्वर और पित्तज्वरमें इसका प्रयोग करते हैं । इन सब रोगोंमें इतर योगवाही औषधोंके साथ त्रायमाणा देते हैं **( डॉ. वा. ग. देसाई )** ।

**वक्तव्य**—त्रायमाणा बड़ा उपयोगी द्रव्य है । वैद्योंको इसके प्रयोगसे लाभ उठाना चाहिये । त्रायमाणा वैद्य **विद्याधरजी विद्यालंकार** पो. **सोलन**, जि. शिमलासे प्राप्त हो सकती है । **गाफिस** नामसे यूनानी पनसारियोंके यहांसे मिलने वाली वनस्पति त्रायमाणाकी ईरानमें होनेवाली एक जाति है ।

---

# श्लेष्मातकादि वर्ग ६१.

## N. O. Boraginaceæ ( बोरेजिनेसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; ऊर्ध्वस्थगर्भाशय; शाखा और पत्र खर; पर्णक्रम एकांतर; पर्ण उपपत्ररहित, अखंड, मोटे, बहुधा लोमयुक्त; पुष्पबाह्यकोश, पुष्पाभ्यंतरकोश और पुंकेशर ४–८; फलमें १–४ बीज होते हैं ।

---

### ( २२१ ) श्लेष्मातक ।

**नाम**—( सं. ) श्लेष्मात( न्त )क, कर्बुदार, शेलु, बहुवार; ( पं. ) लसूडा; ( हिं. ) लसूड़ा, लिसोड़ा( रा ); ( म. ) भोंकर; ( गु. ) वडगुंदा, गूंदा, ( मा. ) बडगूंदा, ल्हेसवा; ( सिंध. ) लेसूडो; ( फा. ) सपिस्तां, सपिस्तान; ( ले. ) कोर्डिआ ओब्लिका ( Cordia obliqua )।

**वर्णन**—इसका बड़ा वृक्ष होता है । कच्चे फलका अचार और पके फलका शाक बनाते हैं । फल कच्चे हरे रंगके और पके हुए पिलाईलिये सफेद रंगके होते हैं । इसकी छोटी जातको **गोंदी** या **गोंदनी** कहते हैं । फल लिसोड़ेसे छोटा, पकनेपर रक्तवर्ण और स्वादमें मधुर होता है ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) विषघ्ने महाकषाये श्लेष्मातकः पठ्यते । "बहुवारो विषस्फोटव्रणवीसर्पकुष्ठनुत् । मधुरस्तुवरस्तिक्तः केश्यश्च कफपित्तहृत् ॥ फलमामं तु विष्टम्भि रूक्षं पित्तकफास्रजित् । तत् पक्वं मधुरं स्निग्धं श्लेष्मलं शीतलं गुरु ॥' । ( भा. प्र. ) ।

लिसोड़ा मधुर, कषाय, तिक्त, केशके लिये हितकर तथा कफ, पित्त और विषको दूर करनेवाला है । लिसोड़ेका कच्चा फल विष्टम्भी, रूक्ष तथा पित्त, कफ और रक्तविकारको दूर करनेवाला है । लिसोड़ेका पका हुआ फल मधुर, स्निग्ध, गुरु और शीतवीर्य है ।

**नव्यमत**—छाल संग्राहक और पौष्टिक तथा फल स्नेहन और संग्राहक हैं । कफको पतला करने और पेशाबकी जलन कम करनेके लिये तथा अतिसारमें फलका क्वाथ देते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** ) ।

**यूनानी मत**—प्रकृति अनुष्णाशीत और स्निग्ध । पके हुए लिसोड़े दूसरे फलोंके सदृश खाये जाते हैं । सूखी खाँसी, उष्ण प्रतिश्याय तथा गले और श्वासनलिकाओंकी रूक्षता दूर करनेके लिये इसे मुँहमें रखकर चूसते हैं या इसका फांट पिलाते हैं । पैत्तिक ज्वर, पेशाबकी जलन तथा अतितृषामें इसका क्वाथ देते हैं । तीक्ष्ण विरेचन औषधोंके दोषनिवारणके लिये उनके साथ मिलाकर प्रयोग करते हैं ।

---

## ( २२२ ) गोजिह्वा ।

**नाम**—( सं. ) गोजिह्वा, खरपत्रा, दर्वीपत्रा, गोजी; ( हिं., म., गु., फा. ) गावजबान ( पं. ) काजबां; ( क. ) काहजबान, ( सि. ) गाजबां; ( अ. ) लिसानुस्सौर ( वृषजिह्वा ); ( ले. ) ओनोस्मा ब्रेक्टिएटम् ( Onosma bracteatum ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—ईरान, अफगानिस्तान और हिमालयमें काश्मीरसे कुमाऊँतकका प्रदेश ।

**वर्णन**—गावजबानका पत्र गोजिह्वासदृश, मोटे और मांसल होते हैं । पत्रके ऊपर साबूदाने जैसे छोटे दाग होते हैं । फूल नवीन नीलवर्ण, पुराने होनेपर रक्ताभ वर्णके होते हैं । पत्तोंको जलमें भिगोनेसे उनमेंसे लुआव निकलता है । यूनानी दवा बेचनेवालोंके यहाँ पत्र **बर्ग गावज़बान** और पुष्प **गुले गावज़बान**-के नामसे मिलते हैं ।

**गुण-कर्म**—"गोजिह्वा तुवरा तिक्ता स्वादुपाकरसा हिमा । वातला ग्राहिणी हृद्या कफपित्तहरा लघुः ॥ हन्यात् कासारुचिश्वासप्रमेहास्रव्रणज्वरान् ।" ( कै. नि. ) ।

गावजबान कषाय, तिक्त, मधुर, मधुरविपाक, लघु, शीतवीर्य, वातल, ग्राही, हृद्य तथा कफ, पित्त, खाँसी, अरुचि, श्वास, प्रमेह, रक्तविकार, व्रण और ज्वरको दूर करनेवाली है ।

**नव्यमत**—पत्तोंको जलमें भिगोनेसे पुष्कल लुआब ( पिच्छा ) उत्पन्न होता है । पंचांगकी राखमें सज्जीखार ९॥, यवक्षार १४।, मेग्नेशिया २॥।, चूना २७ और लोह १ प्रतिशत होता है । गावजबान क्षारस्वभावी, मूत्रजनन और स्नेहन है । विषमज्वरमें ठंढ लगनेपर इसको आसवके साथ देते हैं । उपदंश और पूयमेह ( सुजाक ) से उत्पन्न संधिशोथमें इसे चोपचीनीके साथ देते हैं । इसके फांटसे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है । हृत्स्पन्दन और मूत्रकृच्छ्रमें फांट देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

**यूनानी मत**—ताजा गावजबान पहले दर्जेमें गरम और तर तथा शुष्क गावजबान रूक्षता लिये गरम है । गावजबान सौमनस्यजनन, हृद्य, उत्तमांगोंको बलप्रद, सारक और श्लेष्मनिःसारक है । गावजबानके पत्र ( बर्ग गावज़बान ) और पुष्प ( गुले गावजबान ) उन्माद, हृत्स्पन्दन, प्रतिश्याय, कास, श्वास और छातीकी रूक्षता निवारणके लिये उपयोगमें आते हैं ।

**उपयुक्त अंग**—पत्र और पुष्प । **मात्रा**—पत्र ५–७ माशा; पुष्प ३–५ माशा ।

# त्रिवृतादि वर्ग ६२.

## N. O. Convolvulaceæ ( कॉन्वॉल्व्युलेसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; पर्णविन्यास एकांतर; पर्ण हृदयाकृति, उपपत्ररहित; पुष्प पत्रकोणोद्भूत, गलन्तिकाकार ( Funnel-shaped ); पुष्पबाह्यकोष स्थायी; पुंकेशर ५; बीजकोश २ खंडोंवाला; बीज ४।

---

### ( २२३ ) त्रिवृता।

**नाम**—( सं ) त्रिवृता (-त्), सरला, सुवहा; ( हिं. ) निशो( सो )थ; ( पं. ) तिरवी; ( सिंध. ) ट्रीज; ( म. ) निशोत्तर; ( गु. ) नसोतर; ( बं. ) तेउडी, ( तै. ) तेगड; ( ता. ) शिवदै, त्विवतै; ( म. ) चिकोल्पकोन्न; (फा.) तुर्बुद; (ले.) ओपर्क्युलिना टर्पेथम् ( Operculina turpethum )।

**वर्णन**—निशोथकी लता होती है। औषधार्थ मूलका व्यवहार होता है। मूल गोल और एक बाजूसे फटे हुए होते हैं। ललाई लिये हुए सफेद मूल मध्यका काष्ठभाग निकाल कर काममें लेने चाहिये।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) भेदनीये महाकषाये तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) श्यामादिगणे, अधोभागहरे गणे ( सू. अ. ३९ ) च त्रिवृता पठ्यते। "त्रिवृत् सुखविरेचनानाम्।" ( च. सू. अ. २५ )। "त्रिवृता कटुरुष्णा च कृमिश्लेष्मोदरज्वरान्। शोफपाण्ड्वामयप्लीहान् हन्ति श्रेष्ठा विरेचने॥" ( ध. नि. )। "त्रिवृदुष्णा कटुस्तिक्ता रूक्षा स्वाद्वी विरेचनी। कषाया कटुका पाके वातला कफपित्तहा॥ ज्वरशोफोदरप्लीहपाण्डुव्रणविनाशिनी॥" ( कै. नि. )। "कषाया मधुरा रूक्षा विपाके कटुका च सा। कफपित्तप्रशमनी रौक्ष्याच्चानिलकारिणी॥ मूलं तु द्विविधं तस्याः श्यामं चारुणमेव च। तयोर्मुख्यतरं विद्धि मूलं यदरुणप्रभम्॥ सुकुमारे शिशौ वृद्धे मृदुकोष्ठे च तच्छुभम्। ( च. क. अ. ७ )।

निशोथ कषाय, कटु, मधुर, रूक्ष, कटुविपाक, उष्णवीर्य, वातकर, विरेचन द्रव्योंमें श्रेष्ठ; तथा कफ, पित्त, कृमि, उदर, ज्वर, शोफ, पाण्डुरोग, प्लीहवृद्धि और व्रणका नाश करनेवाली है। निशोथ अरुण ( फीके लाल ) रंगके मूलवाली और श्याम मूलवाली दो प्रकारकी होती है। इनमें अरुण मूलवाली श्रेष्ठ है और सुकुमार, बालक, वृद्ध तथा मृदुकोष्ठवालोंके लिये अच्छी है।

**नव्यमत**—निशोथ रेचन है। इसकी क्रिया जालपके समान होती है। इससे पीले रंगके पानी जैसे दस्त होते हैं। इससे पेटमें मरोड़ा होता है इसलिये इसके साथ सुगन्धि द्रव्य और सैंधव या मिश्री मिलाकर देना चाहिये। जलोदर, आमवात और वातरक्तमें यह विशेष लाभप्रद है। निशोथ और बड़ी हर्रेका चूर्ण अच्छा कार्य करता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

## ( २२४ ) काला दाना ।

**नाम—**( हिं. ) काला दाना; ( कु. ) भौरड़; ( क. ) सियाहदाना; ( गु. ) काळो कूंपो, काळा दाणा; ( म. ) काळादाणा; ( फा. ) तुख्मे नील; ( अ. ) हब्बुन्नील; ( ले. ) आइपोमिआ हेडरेसिआ ( Ipomoea hederacea )।

**वर्णन—**काला दानाकी लता होती है । बीज काले रंगके और त्रिकोण होते हैं । बीजोंको तोडनेपर उनसे सफेद मग्ज निकलता है । इनका स्वाद आरंभमें मीठा और पीछे कडुआहट लिये चरपरा मालूम होता है ।

**गुण-कर्म—**"रेचनं श्यामबीजं स्याच्छोथोदरविनाशनम् । ज्वरे पुरीषसंगे च दारुणे शिरसो गदे ॥ उदावर्ते तथाऽऽनाहे बुधैरेतत् प्रयुज्यते" (आ. वि. )। कालादाना रेचन है । शोथ, उदररोग, ज्वर, कब्ज, सिरका दर्द तथा उदावर्तमें इसका प्रयोग करते हैं ।

**नव्यमत—**इसकी क्रिया जालप किंवा निशोथके समान होती है । इससे पित्त, कफ और कृमि विरेचनद्वारा निकलते हैं । जलोदर, आमवात और वातरक्तमें इसका प्रयोग करते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

**यूनानी मत—**काला दाना रेचन, कृमिघ्न, रक्तशोधक, मूत्रजनन और आर्तवजनन हैं । इससे पेटमें मरोड़ और उत्क्लेश होता है उसके निवारणके लिये इसे गुलाबके फूल और हब्बके साथ मिलाकर देते हैं । इसके लेपसे किलास और झाईमें लाभ होता है ।

**उपयुक्त अंग—**बीज । मात्रा–१॥–३ माशा । काला दानाको बालूके साथ भाड़में भून, चूर्ण बना, चीनीके साथ मिलाकर प्रयोग करना चाहिये ।

---

## ( २२५ ) विदारीकन्द ।

**नाम—**( सं. ) विदारीकन्द, विदारिका, भूमिकूष्माड; ( जम्मू ) सियालिया; ( पं. ) ( हिं. ) भूँई कोहला, भूँई कुम्हडा, बि(वि)दारीकंद, बिलाईकंद; ( बं. ) भूँईकुम्डा; ( म. ) भुईकोहळा; ( गु. ) विदारीकंद; ( ते. ) नेल्लगुम्मुड; ( मल. ) मुत्तुकु; ( ले. ) आइपोमिआ डिजिटेटा ( Ipomœa digitata ) ( क्षीरविदारी )।

**वर्णन—**विदारीकंदकी सुदीर्घ लता होती है, जो जमीन पर फैलती है या वृक्षका आश्रय मिलने पर उस पर चढ़ जाती है । जमीनके भीतर कन्द होता है । कंद ऊपरसे भूरे रंगका और भीतरसे सफेद रंगका होता है । ताजे कंदको काटनेपर उसमेंसे सफेद क्षीर निकलता है । विदारीकंदके **विदारी** और **क्षीरविदारी** ये दो भेद चरकने मधुरस्कन्ध ( वि. अ. ८ )में लिखे हैं । **स्व. जयकृष्ण**

इंद्रजीने विदारीका लेटिन नाम प्युरेरिया ट्युबरोझा ( गु. फगियो, फगडानो वेलो ) खाखरवेल; म-वेंदर लिखा ) है । इसकी बड़ी लता होती है । पत्र पलाशके समान तीन-तीन एक साथ लगते हैं । इसको घोड़े बड़े चावसे खाते हैं । ( डॉ. वा. ग. देसाई )ने इसको उष्ण, स्तन्यजनन, मूत्रजनन और पौष्टिक लिखा है ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) बृंहणीये, बल्ये, वर्ण्ये ( 'पयस्या'नाम्ना ), कण्ठ्ये, स्नेहोपगे च महाकषाये तथा मधुरस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) विदारी ( क्षीरविदारी च ) पठ्यते । सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) विदारिगन्धादौ, वल्लीपञ्चमूलसंज्ञके गणे, पित्तसंशमने वर्गे ( सु. सू. अ. ३९ ) च विदारी पठ्यते । "मधुरो बृंहणो वृष्यः शीतः स्वर्योऽतिमूत्रलः । विदारीकन्दो बल्यस्तु पित्तवातहरश्च सः ॥" ( सु. सू. अ. ४६ ) । विदारी मधुरा शीता गुरुः स्निग्धाऽस्रपित्तजित् । विज्ञेया कफकृत् पुष्टिबलवीर्यविवर्धनी ॥" ( रा. नि. ) । "विदारिकन्दो बल्यश्च वातपित्तहरस्तथा । मधुरो बृंहणो वृष्यः शीतस्पर्शोऽतिमूत्रलः ॥" ( ध. नि. ) "विदारी मधुरा स्निग्धा बृंहणी स्तन्यशुक्रदा । शीता स्वर्या मूत्रला च जीवनी बलवर्णदा ॥ गुरुः पित्तास्रपवनदाहान् हन्ति रसायनी ॥" ( भा. प्र. ) ।

विदारीकंद मधुर, स्निग्ध, शीतवीर्य, बृंहण, बल्य, कण्ठ्य ( स्वर्य ), वर्ण्य, स्नेहोपग, पित्तसंशमन, स्तन्यजनन, वृष्य, मूत्रल, जीवनीय, रसायन, कफकर तथा वात, पित्त रक्तविकार और दाहको दूर करनेवाला है ।

**नव्यमत**—विदारीकंदमें पुष्कल पिष्ट, दश प्रतिशत शर्करा और अल्पप्रमाणमें आनुलोमिक राळ है । विदारीकंद आनुलोमिक, पित्तसारक, स्तन्यजनन, स्नेहन और उत्तम पौष्टिक है । इससे भूख लगती है, अन्न पचता है, दस्त साफ होता है, शरीरका वर्ण सुधरता है और वजन बढ़ता है । कॉडलिवर ओईलसे भी अच्छा कार्य इससे होता है । शारीरिक किंवा मानसिक कारणोंसे जब शिथिलता आई हो और वजन कम हुआ हो तब विदारीकंद देते हैं । यकृत् और प्लीहाकी वृद्धिमें विदारीकंद देते हैं; इससे पित्तस्राव ठीक होता है और दस्त साफ होता है । दूध बढ़ानेके लिये द्राक्षासवके साथ विदारीकंद देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

**उपयुक्त अंग**—कंद । **मात्रा**—¼-½ तोला, जरासे घीमें सेंक, दूध और मिश्री मिला, पेया बनाकर देना चाहिये ।

---

## ( २२६ ) शंखपुष्पी ।

**नाम**—( सं. ) शङ्खपुष्पी, विष्णुक्रान्ता; ( हिं. ) शंखाहुली, कोड़ेना, कौड़ियाली; ( बं. ) डानकुणी; ( म. ) सांखवेल, शंखाहुली ( गु. पं. ) शंखावली; ( ले. ) इवोल्व्युलस् एल्सिनोईडस ( Evolvulus alsinoides ) ।

**वर्णन**—शंखपुष्पीकी बहुवर्षायु, पुष्कल शाखायुक्त, छोटी, फैलनेवाली लता होती है। शाखायें वर्षायु और जमीनपर फैली हुई होती हैं। पत्ती साधारण सनाय जैसी, ½ इंचसे छोटी, सूक्ष्म लोमयुक्त होती हैं। पुष्प श्वेत, गुलाबी या नील वर्णके होते हैं। नीलवर्णके पुष्पवाली शंखपुष्पीको **विष्णुक्रांता** कहते हैं।

**गुण-कर्म**—"कल्कः प्रयोज्यः खलु शङ्खपुष्प्याः। × × × मेध्या विशेषेण च शङ्खपुष्पी।" (च. चि. अ. १)। "शङ्खपुष्पी सरा मेध्या वृष्या मानसरोगहृत्। रसायनी कषायोष्णा स्मृतिकान्तिबलप्रदा॥ दोषापस्मारभूताश्रीकुष्ठकृमिविषप्रणुत्।" (भा. प्र.)। "शङ्खपुष्पी सरा स्वर्या कटुस्तिक्ता रसायनी। अनुष्णा वर्णमेधाग्निबलायुःकान्तिदा हरेत्॥ अपस्मारमथोन्मादमनिद्रां च तथा भ्रमम्।" (कै. नि.)।

शंखपुष्पी कषाय, कटु, तिक्त, सारक, मेध्य, वृष्य, बल्य, जठराग्नि और कान्तिको बढ़ानेवाली, स्वर्य, रसायन तथा मानसरोग, उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ, कृमि, विष, अनिद्रा और भ्रमको दूर करनेवाली है।

**नव्यमत**—शंखपुष्पी दीपन, पाचन, आनुलोमिक, शामक, ज्वरघ्न, पौष्टिक और गर्भाशय, मस्तिष्क तथा नाडियोंको हितावह है। उन्मादमें २–४ तोला ताजी शंखपुष्पीका स्वरस देनेसे दस्त साफ होता है और मद उतरता है। बद्धकोष्ठ, गुल्म और आनाह इन रोगोंमें मूल देते हैं। इससे दस्त साफ होकर शारीरिक विष बाहर निकल जाता है। ज्वरमें जब प्रलाप होता है तब मस्तिष्कको शक्ति पहुँचाने और निद्रा लानेके लिये शंखपुष्पीका फांट देते हैं। **उपयुक्त अंग**—पंचांग। **मात्रा**—स्वरस २–४ तोला; चूर्ण ३–६ माशा; फांट ४–८ तोला।

---

## (२२७) वृद्धदारु।

**नाम**—(सं.) वृद्धदारु, अन्तःकोटरपुष्पी, छगलान्त्री; (हिं.) बिधारा; (बं.) बिजूताड़क, बिद्धताड़क; (म.) समुद्रशोक; (गु.) समदरशोष, वरधारो; (मा.) समन्दरसोख; (ले.) आर्जीरिआ स्पेशिओझा (Argyreia speciosa)।

**वर्णन**—बिधारेकी वृक्षोंपर चढ़नेवाली बड़ी लता होती है। पत्र गोल, एक बित्ते भर चौड़े; पत्रका अपर पृष्ठ मसृण, अधर पृष्ठ श्वेतरोमयुक्तः पुष्प गहरे गुलाबी या जामुनी रंगके, घंटाकृति; फल लंबगोल, कच्चे फीके हरे रंगके और पके हुए पिलाई लिये हुए भूरे रंगके होते हैं। बीज तीन धारवाले, भूरापन लिये हुए सफेद रंगके होते हैं। इसके मोटे कांडके टुकड़े और मूल **विधारा**के नामसे बिकते हैं।

**उपयुक्त अंग**—मूल, अंगुष्ठ जितना मोटा कांड और बीज। **मात्रा**—मूल या कांडका चूर्ण १॥–३ माशा; बीज ५–१० रत्ती।

**गुण-कर्म**—सुश्रुते (सू. अ. ३९) अधोभागहरे गणे 'छगलान्त्री' पठ्यते। "वृद्धदारुः कटुस्तिक्तः कषायोष्णो रसायनम्। शुक्रायुर्बलमेधाग्निस्वरकान्तिकरः सरः॥ शोथामवातवातास्रव्रणमेहकफापहः।" (कै. नि.)।

विधारा कटु, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, रसायन, सारक, शुक्र-आयु-बल-मेधा-जठराग्नि-स्वर और कांति देनेवाला तथा शोथ, आमवात, वातरक्त, व्रण, प्रमेह और कफको दूर करनेवाला है।

पत्रका नीचेका रोमश पृष्ठ व्रणशोथ पर बाँधते हैं। इससे व्रणशोथ पककर फूट जाता है; ऊपरका चिकना पृष्ठ व्रण पर बाँधनेसे व्रणका शोधन-रोपण होता है। विधारेके मूलका चूर्ण ३-६ माशा देनेसे दस्त साफ होता है। समभाग विधारा और असगंधका चूर्ण ३ माशा दूधके साथ खानेसे श्वेत प्रदर मिटता है।

---

## कण्टकार्यादि वर्ग ६३.

### N. O. Solanaceæ (सोलेनेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; ऊपरिस्थगर्भाशय; पर्णक्रम एकांतर; पर्ण सादे, क्वचित् विभक्त, उपपत्ररहित; पुष्प पत्रकोणोद्भूत किंवा शाखाग्रोद्भूत; पुष्पबाह्यकोश स्थायी, ५-१० दलवाला; पुष्पाभ्यंतरकोशके दल ४-५ आपसमें मिले हुए गलन्तिकाकार (funnel-shaped); पुंकेशर ५; स्त्रीकेशर बहुधा १; गर्भाशय दो खंडवाला; फल गोल किंवा लंबा और अविदारि होता है।

---

### (२२८) कण्टकारी-क्षुद्रा।

**नाम**—कण्टकारी, निदिग्धिका, क्षुद्रा, व्याघ्री, दुःस्पर्शा; (पं.) कंडियारी; (सिं.) कांडेरी; (हिं.) कटेरी, कटेली, कटाई, भटकटैया; (भा.) पसर-कटाई; (म.) भुईरिंगणी; (गु.) बेठी रिंगणी, भोटींगडी, भोरिंगणी, भोंय-रिंगणी; (बं.) कण्टिकारी; (अ.) बादं जान बर्री; (फा.) बादंगानबर्री; (ले.) सोलेनम् झॅन्थोकार्पम् (Solanum xanthocarpum)।

**वर्णन**—कटेलीका क्षुप भारतवर्षमें सर्वत्र होता है। इसमें जामुनी रंगके पुष्प लगते हैं। फल कच्चे हरे रंगके, श्वेतरेखांकित और पकने पर पीले रंगके होते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) कण्ठ्ये, हिक्कानिग्रहणे, कासहरे, शोथहरे, शीतप्रशमने, अङ्गमर्दप्रशमने च महाकषाये तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) बृहत्यादिगणे, वरुणादिगणे, लघुपञ्चमूले च गणे कण्टकारिका पठ्यते। "कण्टकारी सरा तिक्ता कटुका दीपनी लघुः। रूक्षोष्णा पाचनी कासश्वासज्वरकफानिलान्॥ निहन्ति पीनसं पार्श्वपीडाकृमिहृदामयान्॥ तस्याः फलं कटु रसे पाके च कटुकं

भवेत् । शुक्रस्य रेचनं भेदि तिक्तं पित्ताग्निकृल्लघु । हन्यात् कफमरुत्कण्डूकासमेदः-कृमिज्वरान् ॥" ( भा. प्र. ) ।

छोटी कटेरी तिक्त, कटु, लघु, रूक्ष, उष्णवीर्य, सारक, दीपन, पाचन, कण्ठ्य, हिक्कानिग्रहण, कासहर, शोथहर, शीतप्रशमन, अंगमर्दप्रशमन तथा खाँसी, श्वास, ज्वर, कफ, वात, पीनस, पार्श्वशूल, कृमि और हृद्रोगका नाश करनेवाली है। कटेरीके फल तिक्त, कटु, विपाकमें कटु, शुक्रविरेचन, भेदन, पित्तकर, अग्निकर, लघु तथा कफ, वात, कंडू, खाँसी, मेदोवृद्धि, कृमि और ज्वरको दूर करने वाले हैं।

**नव्यमत**—छोटी कटेरी स्वेदजनन, ज्वरघ्न, मूत्रजनन और कफघ्न है। बीज वेदनास्थापन हैं। इससे गले और श्वासनलिकाका सूखापन कम हो कर कफ छूटने लगता है; इसलिये गले और श्वासनलिकाके शोथकी प्रथमावस्थामें इसका प्रयोग करते हैं। स्वेदजनन और ज्वरघ्न होनेसे सर्दी-जुकाममें इसको देते हैं। दाँत सड़कर होने-वाले दंतशूलमें और बवासीर( अर्श ) सूजकर होनेवाले दर्दमें छोटी कटेरीके बीजोंकी धूनी देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

**उपयुक्त अंग**—पंचांग, मूल और फल ।

---

## ( २२९ ) बृहती ।

**नाम**—( सं. ) बृहती, स्थूलभण्टाकी; ( हिं. ) बड़ी कटेरी, बरहंटा, बनभंटा; ( म. ) डोरलें ( ली ); ( गु. ) उभी रिंगणी; ( बं. ) व्याकुड; ( फा. ) कटाई कलाँ; ( ले. ) सोलेनम् इन्डिकम् ( Solanum indicum ) ।

**वर्णन**—बृहतीका क्षुप ४–८ फुट ऊँचा, देखनेमें बैंगनके सदृश होता है। पुष्प जामुनी या आसमानी रंगके; फल कच्चे हरे; श्वेतरेखान्वित, पकनेपर पीले पड़ जाते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) कण्ठ्ये, हिक्कानिग्रहणे, शोथहरे, अङ्गमर्द-प्रशमने च महाकषाये तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) बृहत्यादिगणे, लघुपञ्चमूले च गणे बृहती पठ्यते। "बृहती कटुका तिक्ता सोष्णा वातकफापहा। दीपनी पाचनी हृद्या ग्राहिणी ज्वरकुष्ठनुत् ॥ श्वासास्यमलवैरस्यकासारोचकशूलनुत्।" ( कै. नि. ) ।

बड़ी कटेरी कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, दीपन, पाचन, हृद्य, ग्राही तथा वात, कफ, ज्वर, कुष्ठ, श्वास, कास, मुखका वैरस्य और मल, अरोचक तथा शूलका नाश करनेवाली है।

**नव्यमत**—बृहतीका मूल कफरोगमें देते हैं। इससे ज्वर कम होता है, पेटका वायु-दर्द और मरोड़ कम होता है तथा पेशाब ठीक होता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )

---

## (२३०) काकमाची।

**नाम**—(सं.) काकमाची; (बं.) गुडकामाई; (हिं.) मकोय; (पं.) मको; (सिं.) कांवलि; (म.) कामोणी; (गु.) पीलुडी; (कच्छ) कांपेरू; (कु.) किवे, गिवे; (ले.) सोलेनम् नाइग्रम् (Solanum nigrum)।

**वर्णन**—मकोयका १–३ फुट ऊँचा क्षुप होता है। पत्र लाल मिर्चके समान; पुष्प सूक्ष्म, श्वेत वर्णके; फल कच्चे हरे और पकने पर रक्ताभ श्यामवर्णके हो जाते हैं।

**उपयुक्त अंग**—पंचांग, फल।

**गुण-कर्म**—चरके (वि. अ. ८) तिक्तस्कन्धे काकमाची पठ्यते। "त्रिदोषशमनी वृष्या काकमाची रसायनी। नात्युष्णशीतवीर्या च भेदिनी कुष्ठनाशिनी॥" (च. सू. अ. २७)। "ईषत्तिक्तं त्रिदोषघ्नं शाकं कटु सतीनजम्। नात्युष्णशीतं कुष्ठघ्नं काकमाच्यास्तु तद्विधम्॥" (सु. सू. अ. ४६)। "हन्ति दोषत्रयं कुष्ठं वृष्या सोष्णा रसायनम्। काकमाची सरा स्वर्या" (वा. सू. अ. ६)। "काकमाची कटुस्तिक्ता सरोष्णा कफनाशिनी। शूलार्शःशोफदोषघ्नी कुष्ठकण्डूतिहारिणी॥" (रा. नि.)।

मकोय कटु, तिक्त, अनुष्णाशीत, भेदन (सारक), वृष्य, स्वर्य, रसायन, त्रिदोषप्रशमन तथा कुष्ठ, शूल, अर्श, शोथ और कंडूको मिटानेवाली है।

**नव्यमत**—मकोय शीतल, मूत्रजनन, रेचन, वेदनास्थापन, श्लेष्महर, स्वेदजनन और कुष्ठघ्न है। मकोयकी मुख्य क्रिया यकृत्पर होती है। यकृत्की क्रिया बिगड़नेसे जीर्ण यकृद्वृद्धि, अर्श, उदर, आँव और नाना प्रकारके त्वग्रोग उत्पन्न होते हैं। मकोयके पत्रस्वरससे दस्त साफ होकर अन्त्रगत विष निकल जाते हैं; जो थोड़े–बहुत विष यकृत्में पहुँचते हैं वे मूत्रद्वारा निकल जाते हैं। जलशोथमें स्वरस बड़ी मात्रामें देते हैं। ज्वर, जलशोथ, हृद्रोग और नेत्ररोगमें फल देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (२३१) अश्वगंधा।

**नाम**—(सं.) अश्वगन्धा; (हिं.) असगंध; (म.) डोरगुंज, आसंध; (गु.) आसंध, घोड़ाआहन, घोड़ाभाकुन; (ले.) वाइथेनिआ सोम्नीफेरा (Withania somnifera)।

**वर्णन**—अश्वगंधाका क्षुप २–५ फुट ऊँचा; पर्णक्रम एकान्तर, पर्ण लंबगोल, पत्रके दोनों पृष्ठोंका रंग समान; पुष्प पत्रकोणोद्भूत, ३–६ गुच्छोंमें; पुष्पबाह्यकोश, पुष्पाभ्यंतरकोश और पुंकेशर ५–५; फल रसभरीके समान कवचसे ढका हुआ, लाल

रंगका; मूल पेन्सिलसे १–१॥ इंच तक मोटा और १–१॥ फुट तक लंबा होता है। असंगध स्वयंजात ( जंगली ) और खेती की हुई दो प्रकार की होती है। बाजारमें जो असगंधके मूल मिलते हैं वे खेती की हुई असगन्धके हैं। खेती करने, खाद देने और छोटे मूल लेनेसे जंगलीकी अपेक्षया इसके स्वरूप, रस तथा गुणोंमें अन्तर मालूम होता है। वाजीकर, बल्य तथा बृंहण गुणके लिये खानेके काममें बाजारी असगंध लेना चाहिये, लेपादि बाह्य प्रयोग तथा तैलादिमें जंगली असगंधके मूल लेने चाहिये। मालवामें असगंधकी खेती की जाती है और वहाँसे विक्रयार्थ मूल बाहर भेजे जाते हैं[१]।

**गुण-कर्म—चरके ( सू. अ. ४ ) बृंहणीये, बल्ये च महाकषाये तथा मधुरस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) अश्वगन्धा पठ्यते। "अश्वगन्धाऽनिलश्लेष्मशोथश्वित्रक्षयापहा। बल्या रसायनी तिक्ता कषायोष्णाऽतिशुक्रला॥" ( भा. प्र. )। "अश्वगन्धा कषायोष्णा तिक्ता वृष्या रसायनम्। बलपुष्टिप्रदा हन्ति कफकासानिलव्रणान्॥ शोफकण्डूविषश्वित्रकृमिश्वासक्षतक्षयान्।" ( कै. नि. )।**

असगंधा मधुर, कषाय, तिक्त, उष्णवीर्य, बृंहण, बल्य, रसायन, वाजीकर तथा वात, कफ, शोथ, श्वित्र, क्षय, खाँसी, व्रण, कुष्ठ, कृमि और श्वासको दूर करनेवाली है।

**नव्यमत-बाजारी असगंध** और विदारीकंदके गुण समान हैं। यह उत्तम पौष्टिक है। ·॥· से १ तोला असगंध के चूर्णको गायके घीमें सेंक, उसमें पावभर दूध और यथारुचि मिश्री मिला, गरम करके देना चाहिये। छोटे बच्चोंके लिये यह उत्तम औषध है। इससे बच्चोंका सूखना बंद होता है। स्त्रियोंका कमरका दर्द और श्वेत प्रदर इससे अच्छा होता है। **जंगली असगंध**के मूल अवसादक, स्वापजनन और मूत्रजनन हैं। वातनाड़ीपर इसकी अवसादक क्रिया होती है, परंतु हृदयपर अवसादक क्रिया नहीं होती। इसका स्वापजनन धर्म प्रसिद्ध है। बीज स्वापजनन और मूत्रजनन तथा बड़ी मात्रामें विष हैं। बद, ग्रन्थि आदि पर मूलका लेप करते हैं **( डॉ. वा. ग. देसाई )।**

---

१ इस विषयमें मेरे पत्रके उत्तरमें बनारस हिन्दु युनिवर्सिटीके आयुर्वेदकॉलेजके वनस्पतिशास्त्रके अध्यापक **प्रो. बलवंतसिंहजी** लिखते हैं कि—असगंध बाजारी और जंगली दोनोंके मूलकी मैंने माइक्रोस्कोपमें परीक्षा करके देखी—दोनों एक ही वनस्पतिके मूल मालूम होते हैं। बाजारीमें स्टार्चका संग्रह अधिक होनेसे फाइबर(रेशे) कम बने हैं; जंगलीमें फाइबर अधिक हैं। दोनोंके स्टार्च एक ही प्रकारके हैं। ऐसी संभावना है कि मिट्टीके भेदसे और कृषिमें आनेके कारण यह परिवर्तन हो गया है।

## (२३२) धत्तूर।

**नाम**—(सं.) धत्तूर, कनक, धूर्त, उन्मत्तक; (क.) धुतूर; (हिं.) धतूरा; (म.) धोत्रा; (मा.) धत्तूरो; (गु.) धत्तूरो, धतूरो; (बं.) धुतूरा; (ले.) श्वेत—डतूरा आल्बा (Datura alba); कृष्ण—डतूरा फॅश्चुओझा (Datura fastuosa)।

**वर्णन**—धतूरके राजधत्तूर, श्वेतधत्तूर और कृष्णधत्तूर ये तीन भेद हैं। राजधत्तूर काश्मीर, गढ़वाल, कुमाऊं, नेपाल आदि हिमालयके प्रदेशोंमें होता है। इसके बीज काले, वृक्काकृति और चपटे होते हैं। श्वेत (सफेद फूलवाला) और कृष्ण (काला फूलवाला) धतूरा नीचे सर्वत्र होता है। इन दोनोंके बीज कुछ पिलाईलिये सफेद होते हैं।

**गुण-कर्म**—"धत्तूरः कटुरुष्णश्च कान्तिकारी व्रणार्तिनुत्। त्वग्दोषखर्जूकण्डूतिज्वरहारी भ्रमप्रदः ॥" (ध. नि.)। "धुस्तूरो मदवर्णाग्निवातकृज्ज्वरकुष्ठनुत्। कषायो मधुरस्तिक्तो यूकालिक्षाविनाशकः ॥ उष्णो गुरुर्व्रणश्लेष्मकण्डूक्रिमिविषापहः।" (भा. प्र.)। "धत्तूरो मदमूर्च्छाकृत् कफघ्नो वह्निपित्तकृत्।" (रा. व. नि.)।

धतूरा कटु, कषाय, मधुर, तिक्त, उष्णवीर्य, गुरु, भ्रम-मद-मूर्च्छा-वर्ण-जठराग्नि-पित्त और वायु करनेवाला तथा कफ, कुष्ठ, कण्डू, ज्वर, व्रण, कृमि, विष, जूँ और लीखका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—धतूरा वेदनास्थापन, संकोचविकासप्रतिबन्धक, कासहर, श्वासहर, नियतकालिकज्वरप्रतिबंधक और शोथहर है। बड़ी मात्रामें उग्र विष है। धतूराको बेलाडोनाके प्रतिनिधिरूपमें काममें ले सकते हैं। श्वासमार्गके संकोचविकासप्रधान रोगोंमें धतूरेका विशेष उपयोग करते हैं। श्वालनलिकाशोथ और दमा इन दोनों रोगोंमें धतूरा खानेको देते हैं और उसके पत्रका धूमपान कराते हैं। इससे कफ गिरने लगता है और दमा कम होता है। पालीसे आनेवाले शीतज्वरमें धतूरेके बीज दहीके साथ देते हैं। शीतज्वरमें अफीम, भांग और खुरासानी अजवायन जैसे और भी मादक द्रव्य देते हैं। इन औषधोंसे ठंढी भरनेसे होनेवाला त्रास, शरीरका दाह तथा सिर और शरीरकी पीड़ा कम होती है। इन औषधोंसे शीतज्वर समूल नष्ट नहीं होता, परंतु उससे होनेवाली पीड़ा कम होती है। उदरशूल, पित्ताश्मरीशूल और वृक्कशूलमें धतूरा देते हैं। शोथमें धतूरेकी पत्तियोंका या मूल गोमूत्रमें पीसकर उसका लेप करते हैं। धतूरा और शिलाजीत मिला कर लेप करनेसे अंडशोथ, उदरशोथ, फुफ्फुसधराकलाशोथ, संधिशोथ और अस्थिशोथमें विशेष लाभ होता है। स्तनशोथ, शोथयुक्त अर्श और पीड़ायुक्त अक्षिशोथ पर पत्ते जरा गरम करके बाँधते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**उपयुक्त अंग**—मूल, पत्र और बीज । **मात्रा**—पत्रचूर्ण ½ से १½ गुंजा खानेके लिये; धूमपानके लिये ५–१५ गुंजा । शोधित बीजचूर्ण–½ से १ गुंजा ।

**शोधन**— धतूरेके बीजोंको तीन दिन–रात मिट्टी या काचके पात्रमें गोमूत्रमें भिगोकर रखे । चौथे दिन गोमूत्रसे निकाल, एक प्रहर गोदुग्धमें दोलायन्त्रमें पका, गरम जलसे धो, सुखाकर काममें ले ।

**विषलक्षण**—धतूरा अधिक मात्रामें खानेसे ज्ञानेन्द्रियाँ अस्थिर और बुद्धि लुप्त होती है, जीभ और कण्ठ सूखने लगता है, नेत्र रक्त होते हैं, कनीनिका (पुतलियाँ) विस्तृत होती हैं, रोगी प्रलाप करने लगता है, कभी–कभी रोगी भागनेका प्रयास करता है परंतु मद्यपायियोंकी भाँति इधर उधर पैर रखता है, कपड़ा–दीवाल–बिछौना आदि पकड़नेका यत्न करता है । विषप्रभाव अधिक और चिकित्सा न होनेपर रोगी श्वास और हृदयकी गति बंद होकर मर जाता है। **चिकित्सा**–प्रारंभमें कोई वामक औषध देकर वमन करावें और पीछे गायका ताजा दूध और मक्खन दें ।

---

## (२३३) पारसि(सी)क यवानी ।

**नाम**—पारसीक यवानी, यावनी, तुरुष्का, मदकारिणी; (पं.) खुरासानी अजवैन; (हिं.) खुरासानी अजवायन; (म.) खुरासानी ओवा; (गु.) खुरासाणी अजमा; (अ.) बजुलबंज; (फा.) तुख्मबंग; (ले.) हायोसायेमस् रेटिक्युलेटस् (Hyoscyamus reticulatus)।

**वर्णन**—खुरासानी अजवायनका क्षुप भारतवर्षमें कश्मीर, उत्तरी पंजाबकी पहाडियाँ, गढ़वाल, कुमाऊँ आदिमें होता है । वैद्य और हकीम प्रायः इसके बीज औषधके काममें लेते हैं । बीज अजवायनके बीज जितने बड़े, वृक्काकृति और ख़ाकी रंगके होते हैं ।

**उपयुक्त अंग**—पत्र और बीज । मात्रा २–५ रत्ती ।

**गुण-कर्म**—"यवानी यावनी रूक्षा ग्राहिणी मोहिनी कटुः ।" (रा. नि.)। खुरासानी अजवायन कटु, रूक्ष, ग्राही और मादक है ।

**नव्यमत**—बीजोंमें ¼ स्थायी तैल होता है । बीज और पत्रमें अल्प प्रमाणमें **हायोसाएमिन्** नामका वीर्य (सत्त्व) पाया जाता है । खुरासानी अजवायन वेदनास्थापन, स्वापजनन, संकोच-विकासप्रतिबंधक, अवसादक और मूत्रजनन है। अल्प प्रमाणमें हृदयावसादक और बल्य है । परंतु बड़ी मात्रामें हृदयके लिये अहित है । इसकी अवसादक (शामक) क्रिया मस्तिष्क, जनन–मूत्रेन्द्रिय और आँतोंपर होती है । यह निश्चित स्वापजनन है । इससे घंटोंतक गाढ़ निद्रा आती है । ऐसा निद्रा-लानेवाला और वेदनास्थापन औषध अफीम है । परंतु जहाँ अफीम नहीं दे सकते

वहाँ खुरासानी अजवायन दे सकते हैं। अफीमसे कब्ज होता है परंतु इससे दस्त साफ होता है । मस्तिष्कके संतापप्रधान रोग जैसे-नूतन उन्माद, मस्तिष्कधराकलाशोथ आदि रोगोंमें खुरासानी अजवायन देनेसे गाढ़ निद्रा आती है। किसी भी कारणसे उत्पन्न मानसिक अस्वस्थता और निद्राभंगमें खुरासानी अजवायन उत्तम औषध है। खुरासानी अजवायनकी मूत्रेंद्रियकी श्लेष्मत्वचा पर प्रत्यक्ष अवसादक क्रिया होती है । बार-बार थोड़ा थोड़ा पेशाब होना, बस्तिशोथ और अश्मरीसे उत्पन्न बस्तिदाहमें खुरासानी अजवायनसे उत्तम लाभ होता है। जननेंद्रियपर इसकी अच्छी अवसादक क्रिया होती है। पीड़ितार्तव, अल्पार्तव और अनियमितार्तवमें इससे अच्छा लाभ होता है । शीघ्रशुक्रस्खलन, स्वप्नदोष और अतिकामवासनामें भी इससे लाभ होता है। सूखी खाँसी, कफके साथ रक्त आना और दमा इनमें इससे लाभ होता है। पेटके दर्दमें और किसी औषधसे मरोड़ आने लगे उसमें यह उपयुक्त औषध है। शोथ और पीड़ामें खुरासानी अजवायनको मधुमें पीसकर उसका लेप करते हैं; स्तनशोथ, अंडशोथ, सिरदर्द, अर्श, दुष्टव्रणग्रन्थि और आमवातमें इस लेपसे लाभ होता है **( डॉ. वा. ग. देसाई )**।

---

## (२३४) बेलाडोना।

**नाम**—(पं.) सूची; (क.) झलाकफल; (ले.) एट्रोपा बेलाडोना (Atropa belladonna)।

**उत्पत्तिस्थान**—बेलाडोनाका क्षुप काश्मीर, शिमला, कुमाऊँ, बलोचिस्तान और इरानमें ६०००–१२००० फुटकी ऊँचाईपर होता है।

**वर्णन**—क्षुप ४–५ फुट ऊँचा, कांड मोटा और मसृण; पत्र ३–८ इंच लंबे, दोनों सिरोंपर संकरे; कोमल पत्ते लोमश, जीर्ण पत्ते लोमरहित, नीचेके पत्ते एकांतर, परंतु ऊपरके आमने-सामने; फल करौंदे जैसे काले, चमकीले; मूल १ फुट-तक लंबा, १–२ इंच मोटा और मांसल होता है।

**गुण-कर्म**—बेलाडोनामें **एट्रोपीन** और **हायोसाएमिन** नामके दो जहरीले सत्त्व पाये जाते हैं। बेलाडोना घातक विष है, परंतु सावधानीसे और अत्यल्प प्रमाणमें उपयोग करनेसे उपयुक्त औषध है । बेलाडोना अवसादक, संकोचविकासप्रतिबंधक, कासहर, श्वासहर, हृदयबल्य, नाड़ीशैथिल्यकर, तारकाविकासी, शोथहर, रक्तप्रतिबंधक, ग्रन्थिस्रावस्तंभन, मस्तिष्कावसादक, मूत्रजनन, स्तन्यनाशन, कंड्घ्न, वेदनास्थापन और त्वचाको सुन्न करनेवाला है । फुप्फुसके रोगोंमें बेलाडोना बहुत गुणकारी है । दमा, श्वासनलिकाशोथ और बड़ी खाँसी (Whooping cough)में इसे देते हैं। खाँसीमें कफ पुष्कल हो, खाँसनेकी शक्ति कम हो और हृदय अशक्त हो तब यह उत्तम औषध है। बेलाडोनासे शरीरके बहुतसे

रस कम होते हैं । मस्तिष्कके रोगोंमें और सगर्भावस्थामें लालास्राव अधिक होता हो तब इसे देते हैं । क्षयमें और अन्य कई ज्वरोंमें पसीना बहुत आता हो तब इसे अकेला या यशदभस्मके साथ देते हैं । दूध बंद करनेके लिये इसे देते हैं । इससे दूध बंद होता है और स्तनमें सूजन आई होतो वह भी उतरती है। आमाशयमें अम्लरस अधिक उत्पन्न होता हो तब बेलाडोना देते हैं । पुराने कब्जमें एलुए ( मुसब्बर ) के साथ बेलाडोना देते हैं । बेलाडोना मूत्रमार्गसे निकलते समय मूत्रका प्रमाण बढ़ाता है । केवल मूत्रजनन कर्मके लिये इसका प्रयोग नहीं होता । परंतु इतर उपयुक्त द्रव्योंके साथ देनेसे मूत्रमार्गकी पीड़ा और संकोचविकास, दुःखदायक शिश्नस्तब्धता, स्वप्नमें शुक्रस्राव, मूत्रावरोध, शय्यामूत्र, बस्तिशोथ और कफमेह इन रोगोंमें बेलाडोना देते हैं । बेलाडोनाको मधुमें पीसकर लेप करनेसे ज्ञानतन्तुओंके टोंकोंपर इसकी क्रिया होकर उतने भागमें सुन्नता आकर दुःख कम होता है । इससे शोथकी विभिन्न अवस्थाओंका ज़ोर कम होता है, पूयोत्पत्ति कम होती है या होती ही नहीं । व्रणशोथ, ग्रन्थिशोथ, दूध भरनेसे उत्पन्न स्तनशोथ और संधिशोथमें इसका पूय-रक्त-प्रतिबन्धक धर्म अच्छा देखनेमें आता है । आमवात, संधिशोथ, वातरक्त, विसर्प और सिराशोथमें इसका लेप करनेसे सूजन उतरती है और पीड़ा कम होती है । हृदयकी पीड़ा, हृद्द्रव और हृदयके अनियमित स्पन्दनमें बेलाडोना देते हैं । बेलाडोना अफीमका अगद(निवारण-उतार ) है ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

**उपयुक्त अंग**—पत्र और मूल । **मात्रा**—$\frac{1}{8}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती । बेलाडोनासे आँखकी तारका ( पुतली ) विकसित होती है । जब पुतली बड़ी हो जाय तो इसका प्रयोग बंद कर देना चाहिये ।

---

## तिक्तादि वर्ग ६४.

### N. O. Scrophulariaceæ ( स्क्रोफ्युलेरिएसी ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; उपरिस्थगर्भाशय; पर्णक्रम एकान्तर किंवा अभिमुख; पर्ण उपपत्ररहित; पखड़ियाँ संयुक्त; पुंकेशर ४, उनमेंसे एक जोड़ी छोटी और एक बड़ी होती है ।

---

### ( २३५ ) कुटकी ।

**नाम**—( सं. ) कटुका, तिक्ता, कटुरोहिणी, मत्स्यरोहिणी; ( पं. ) कौड़; ( हिं. ) कुटकी; ( बं. ) कट्की; ( म. ) काळी कुटकी, बालकडू; ( गु. ) कडू; ( ले. ) पिक्रोराइझा कुरो ( Picrorrhiza kurrooa ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—कुटकी हिमालयमें कश्मीरसे सिकिम तक ७०००–१४००० फुटकी ऊँचाई पर होती है।

**वर्णन**—कुटकीके मूल बाजारमें मिलते हैं। मूल गहरे भूरे रंगके, १–२ इंच लंबे और साधारण मुड़े हुए होते हैं। बाहरी पृष्ठ खुरदरा, सूक्ष्मग्रन्थियुक्त और उसपर पत्र गिरनेके चिह्न होते हैं। मूल एक ओर मोटा और दूसरी ओर सकड़ा होता है, मोटी बाजूके सिरे पर काण्डका अवशेष होता है। स्वाद अत्यन्त तिक्त होता है। मूल तोड़नेसे शीघ्र टूट जाते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) लेखनीये ('कटुरोहिणी' नाम्ना), भेदनीये ('शकुलादनी' नाम्ना), स्तन्यशोधने च महाकषाये तथा तिक्तस्कन्धे (वि. अ. ८) कटुका पठ्यते। सुश्रुते (सू. अ. ३८) पिप्पल्यादिगणे, पटोलादिगणे, मुस्तादिगणे च कटुरोहिणी पठ्यते। "कट्वी तु कटुका पाके तिक्ता रूक्षा हिमा लघुः। भेदिनी दीपनी हृद्या कफपित्तज्वरापहा॥ प्रमेहश्वासकासास्र-दाहकुष्ठकृमिप्रणुत्।" (भा. प्र.)।

कुटकी तिक्त, कटुविपाक, शीतवीर्य, रूक्ष, लघु, लेखन, भेदन, स्तन्यशोधन, दीपन, हृद्य तथा कफ, पित्त, ज्वर, प्रमेह, श्वास, खाँसी, रक्तविकार, दाह, कुष्ठ और कृमिका नाश करनेवाली है।

**नव्यमत**—कुटकीमें मुख्य तिक्त द्रव्य (पिक्रो-हाइज़िन्-कटुकीन) १५ प्रतिशत तथा रेचनद्रव्य (कॅथार्टिक् ॲसिड्-रेचनाम्ल) ९½ प्रतिशत होता है। मुख्य तिक्त सत्त्व जलमें सुविलेय और अम्लस्वभावी है। इसको जलानेसे ३⅞ प्रतिशत राख मिलती है। कुटकी दीपन, उत्तम कटुपौष्टिक और बड़ी मात्रामें स्रंसन है। इसका नियत-कालिकज्वरप्रतिबंधक धर्म कुनैनसे कम दर्जेका है। इससे दीपन–पाचन होता है, आमाशयरस बढ़ता है और दस्त साफ होता है। मूलका क्वाथ देनेसे डिजिटेलिसके समान क्रिया होती है, हृदयकी गति कम होती है परंतु शक्ति बढ़ती है और रक्तका दबाव बढ़ता है। विषमज्वर रोकनेके लिये कुटकी बड़े प्रमाणमें देनी पड़ती है। कभी–कभी उससे जुलाब होने लगते हैं। जिन रोगियोंको विषमज्वरके साथ मलावष्टंभ हो उनको अच्छा लाभ पहुँचाती है। कुपचनसे उत्पन्न दमामें कुटकी मिश्रीके साथ देते हैं। कुटकीका क्वाथ दिनमें तीन वार हृदयोदर और जलशोथमें देनेसे विशेष लाभ होता है। इससे पानी जैसे दस्त होते हैं, हृदयको शक्ति मिलती है और उदर कम होता है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**उपयुक्त अंग**—मूल। **मात्रा**—कटुपौष्टिक गुणके लिये ५–१० रत्ती; विरेचनके लिये ४ से ६ माशेका क्वाथ बना कर देना चाहिये।

---

## (२३६) डिजिटेलिस ।

**नाम**—( सं. ) तिलपुष्पी; ( ले. ) डिजिटेलिस पर्प्युरिआ ( Digitalis purpurea )।

**वर्णन**—डिजिटेलिस भारतवर्षमें ५००० – ७००० फुट ऊँचाईकी हिमालय और नीलगिरिकी पहाड़ियोंपर होता है। पत्र तमाखूके पत्र जैसे और खुरदरे होते हैं। पुष्प तिलके पुष्पोंके समान परंतु उससे बड़े होते हैं।

**नव्यमत**—डिजिटेलिस हृदयावसादक, मूत्रजनन, ज्वरघ्न, बड़ी मात्रामें दाहजनक और मादक विष है। **उपयुक्त अंग**—पत्र। **मात्रा**—$\frac{1}{4}$ से $\frac{1}{2}$ रत्ती चूर्ण, गोली या फांटके रूपमें देना चाहिये। डिजिटेलिसकी क्रिया हृदय, रक्तवाहिनियों और रक्ताभिसरण पर होती है। रक्ताभिसरण पर क्रिया करनेवाला एक गण है। उसमें डिजिटेलिसके अतिरिक्त कनेर, जंगली प्याज, कॉफी, कपूर, जवखार, ताम्र, जस्त, एरंडखर्बूजेके पत्र, मकईके ऊपरके केश ये प्रधान हैं। यह गण हृदयोत्तेजक, हृदयशक्तिवर्धक और मूत्रजनन है। ये सब द्रव्य विष हैं, इसलिये निश्चित मात्रासे अधिक प्रमाणमें नहीं देने चाहिये। जो गुण-कर्म डिजिटेलिसके हैं वे ही थोड़े-बहुत प्रमाणमें इस गणके अन्य द्रव्योंमें भी हैं। इसकी क्रिया खास हृदय, हृदयमें जानेवाली नाड़ी और हृदयके केन्द्रस्थान पर होती है; छोटी रक्तवाहिनियों पर भी क्रिया होती है और उनका संकोचन होता है, हृदय अपना कार्य जोरसे और शीघ्र करता है इसलिये हृदयको अधिक विश्रांति मिलती है, नाड़ी सावकाश चलती है और कुछ समयके अनंतर मूत्रका प्रमाण भी बढ़ता है। ऊपर लिखे हुए गुणोंके कारण ज्वर किंवा इतर रोगोंमें जब हृदयमें शिथिलता आती है तब डिजिटेलिस देते हैं। हृदयोदर और वृक्कोदरमें इससे दो प्रकारसे लाभ होता है। हृदयको शक्ति मिलती है और मूत्रका प्रमाण बढ़कर उदर कम होता है। इस प्रकारके उदरमें मूत्रजनन, स्वेदजनन और विरेचन औषध इस गणके साथ देना चाहिये। ये औषध देते हों तब रोगीको बिछौनेपर लेटाये रखना चाहिये और दूध, शर्करा, मांसरस आदि पौष्टिक अन्न देना चाहिये। दमा, खाँसी, क्षय, फुप्फुससे रक्तस्राव होना और फुप्फुसशोथ इन रोगोंमें डिजिटेलिससे लाभ होता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

## श्योनाकादि वर्ग ६५.

### N. O. Bignoniaceæ. ( बिग्नोनिएसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; पर्ण अभिमुख, बहुधा संयुक्त, उपपत्ररहित और बड़े; पुष्प बिगुल ( Bugle ) की आकृतिके; पुष्पबाह्यकोश ५ दलोंका और घंटाकृति; पँखड़ियाँ ५ नीचेसे जुड़ी हुई; पुंकेशर ४, दो छोटे, दो बड़े; फल लंबी-चपटी सेम जैसे; बीज चपटे, पतले और पंखयुक्त होते हैं।

---

## (२३७) श्योनाक।

**नाम**—(सं.) श्योनाक, शुकनास, कट्वङ्ग, टिण्टुक; (हिं.) सोनापाठा; (कु.) फरकट, ढोलदगड़ो; (बं.) शोणा; (म.) टेंटू; (ले.) ओरोक्झाइलम् इन्डिकम् (Oroxylum indicum)।

**वर्णन**—इसका साधारण बड़ा वृक्ष होता है। पर्ण संयुक्त २-३ हाथ लंबे; चातुर्मासके प्रारंभमें पुष्प लगते हैं; फली दो दो हाथ लंबी, चार अंगुल चौड़ी, तलवारकी आकृतिकी; बीज चपटे और पंखवाले; छाल फीके पीले रंगकी; छालका स्वाद जरा कड़वा और चरपरा होता है।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) अनुवासनोपगे, पुरीषसंग्रहणीये, शोथहरे, शीतप्रशमने च महाकषाये तथा कषायस्कन्धे (वि. अ. ८) श्योनाकः पठ्यते। सुश्रुते (सू. अ. ३८) अम्बष्ठादौ, बृहत्पञ्चमूले च गणे श्योनाकः पठ्यते। "टिण्टुकः शिशिरस्तिक्तो बस्तिरोगहरः परः। पित्तश्लेष्मामवातातिसारकासारुचीर्जयेत्॥" (ध. नि.)। "स्योनाकः कटुकः पाके कषायस्तिक्तको हिमः। संग्राही दीपनः कासश्लेष्मपित्तामवातजित्॥" (कै. नि.)।

सोनापाठा कषाय, तिक्त, कटुविपाक, शीतवीर्य, ग्राही, दीपन, बस्ति रोगहर तथा पित्त, कफ, आमवात, अतिसार, कास और अरुचिको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—इसके फलकी छाल उत्तम स्वेदजनन, जरा वेदनास्थापन, स्तंभन और व्रणरोपण है। शोथ और वातप्रधान रोगोंमें श्योनाकमूल देते हैं। तरुण आमवातमें इससे अच्छा लाभ होता है। यह स्तंभन है इसलिये इससे कब्ज हो तो एरंडतैल देना चाहिये। अतिसारमें छालका पुटपाक करके निकाला हुआ रस देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**उपयुक्त अंग**—मूलकी छाल। **मात्रा**—मूलत्वक्चूर्ण १०-२० रत्ती। इसका फांट बनाना चाहिये; क्वाथ बनानेसे उसमें स्तंभन द्रव्य अधिक उतरता है।

---

## (२३८) पाटला।

**नाम**—(सं.) पाटला; (पं.) पाडल; (हिं.) पाडर, पाढ़ल; (बं.) पारुल; (म., गु.) पाडळ; (ते.) कळिगोट्टु; (मल.) पाति(दि)रि; (ले.) स्टिरिओस्पर्मम् स्वाविओलन्स् (Stereospermum Suaveolens)।

**वर्णन**—पाटलाका बड़ा वृक्ष होता है। पर्णविन्यास अभिमुख; पर्ण संयुक्त, विषमदल; पुष्प वसंत ऋतुमें शाखाके अग्रभागपर पिलाई लिये हुए लाल रंगके और सुगन्धि आते हैं। इसमें टेढ़ी बड़ी सेम लगती है, जिसमें १२-३० बीज होते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) शोथहरे महाकषाये तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) आरग्वधादौ, महत्पञ्चमूले, अधोभागहरे ( सू. अ. ३९ ) च गणे पाटला पठ्यते । "पाटलाऽरुचिशोथास्रश्वासतृट्छर्दिनाशिनी । नात्युष्णं तुवरं स्वादु तत्पुष्पं कफवातनुत् ॥ पित्तातिसारदाहघ्नं फलं हिक्कास्रपित्तनुत् ।" ( ध. नि. ) । "पाटला तुवराऽनुष्णा तिक्ता दोषत्रयापहा । अरुचिश्वासशोथार्शश्छर्दिहिध्मातृषापहा ॥" ( कै. नि. ) । "सुगन्धि विशदं हृद्यं बाकुलं पाटलानि च ।" ( सु. सू. अ. ४६ ) ।

पाटला कषाय, तिक्त, वीर्यमें अनुष्णाशीत, अधोभागदोषहर तथा तीनों दोष, अरुचि, श्वास, शोथ, अर्श, वमन, हिचकी, तृषा और रक्तविकारको मिटानेवाली है। पाटलाके पुष्प कषाय, मधुर, कुछ उष्णवीर्य, सुगन्धि, विशद, हृद्य तथा कफ और वातको दूर करनेवाले हैं । पाटलाका फल पित्तातिसार, दाह, हिक्का और रक्तपित्तका नाश करनेवाला है ।

**नव्यमत**—सूखे हुए फूलोंमें शर्करा, लुआव और मांसल पदार्थ ( प्रोटीन ) होता है । फूलोंको जलमें रखनेसे जलमें उनका सुवास उतरता है । पाटला दशमूलका एक द्रव्य है । पुष्प वाजीकर, पौष्टिक और शीतल तथा छाल कफवातहर है । पाटला कफ और वातप्रधान रोगोंमें देते हैं । फूलोंका स्वरस शहदके साथ हिचकीमें देते हैं। पंचांगका क्षार मधुमेह और मूत्राघातमें देते हैं । छालका फांट अम्लपित्तमें देते हैं। फूलोंका गुलकंद पौष्टिक है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** ) ।

---

## ( २३९ ) रोहीतक[1] ।

**नाम**—( सं. ) रोहीतक, प्लीहशत्रु, दाडिमच्छद; ( हिं. ) रोहेड़ा; ( म. ) रोहिडा; ( गु. ) रोहिडो; ( ले. ) टिकोमेला अन्ड्युलेटा ( Tecomella undulata ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—राजपूताना, पंजाबका राजपूतानेसे लगा हुआ प्रदेश ( हिसार-रोहतक आदि ), काठियावाड़ और कच्छमें रोहिड़के वृक्ष होते हैं ।

**वर्णन**—वृक्ष १०-१५ फुट ऊँचा; पत्तियाँ २-५ इंच लंबी, ॥ इंचतक चौड़ी और लहरदार धारकी होती हैं । ये देखनेमें अनारकी पत्तियोंसे मिलती-जुलती हैं । पुष्प १।-२॥ इंच लंबे, केशरी रंगके ( नारंगपीत वर्णके ) शीतकालमें लगते हैं । फली पतली, कुछ टेढ़ी, ८ इंच तक लंबी होती है ।

---

१ पहले १४३ वें पृष्ठ पर निम्बादिवर्गमें रोहीतकका वर्णन दिया है, परंतु वास्तवमें रोहीतक स्योनाकादि वर्गकी वनस्पति है, अतः इसका वर्णन दुबारा यहाँ दिया है । १४३ पृष्ठ पर दिया हुआ **अमूरा रोहीतका** यह लेटिन नाम भी ठीक नहीं है ।

**उपयुक्त अंग**—वृक्षत्वक् । **मात्रा**—१॥-३ माशा चूर्णरूपमें; क्वाथके लिये ॥-१ तोला ।

**गुण-कर्म**—"रोहीतको यकृत्प्लीहगुल्मोदरहरः सरः ।" (ध. नि.) ।

रोहिड़ा सारक तथा यकृत्के रोग, प्लीहाके रोग, गुल्म और उदररोगका नाश करनेवाला है ।

---

## तिलादि वर्ग ६६.

### N. O. Pedaliaceæ. (पेडेलिएसी) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; उपरिस्थ बीजकोश; पर्ण अभिमुख, अखंड, उपपत्ररहित; पँखड़ियाँ ५, नीचेसे जुड़कर नलिकाकार बनी हुईं; पुंकेशर ४, दो छोटे दो बड़े; बीजकोश दो खंडोंका और पुष्कल बीजयुक्त होता है ।

---

### (२४०) तिल ।

**नाम**—(सं.) तिल; (हिं.) तिल; (म.) ति(ती)ळ; (गु.) तल; (सि.) तिर; (फा.) कुंजद; (ले.) सिसेमम् इन्डिकम् (Sesamum indicum) ।

**वर्णन**—तिल भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है । तिलमें काले, सफेद और लाल तीन जातियाँ होती हैं । औषधके लिये प्रायः काले तिल लिये जाते हैं ।

**गुण-कर्म**—"स्निग्धोष्णो मधुरस्तिक्तः कषायः कटुकस्तिलः । त्वच्यः केश्यश्च बल्यश्च वातघ्नः कफपित्तकृत् ॥" (च. सू. अ. २७) । "ईषत्कषायो मधुरः सतिक्तः सांग्राहिकः पित्तकरस्तथोष्णः । तिलो विपाके मधुरो बलिष्ठः स्निग्धो व्रणालेपन एव पथ्यः ॥ दन्त्योऽग्निमेधाजननोऽल्पमूत्रस्त्वच्योऽथ केश्योऽनिलहा गुरुश्च । तिलेषु सर्वेष्वसितः प्रधानो मध्यः सितो हीनतरास्तथाऽन्ये ॥" (सु. सू. अ. ४६) । "कषायानुरसं स्वादु सूक्ष्ममुष्णं व्यवायि च । पित्तलं बद्धविण्मूत्रं न च श्लेष्माभिवर्धनम् ॥ वातघ्नेषूत्तमं बल्यं त्वच्यं मेधाग्निवर्धनम् । तैलं संयोगसंस्कारात् सर्वरोगापहं स्मृतम् ॥" (च. सू. अ. २७) । "तैलं त्वाग्नेयमुष्णं तीक्ष्णं मधुरं मधुरविपाकं बृंहणं प्रीणनं व्यवायि सूक्ष्मं गुरु सरं विकासि वृष्यं त्वक्प्रसादनं शोधनं मेधामार्दवमांसस्थैर्यवर्णबलकरं चक्षुष्यं बद्धमूत्रं लेखनं तिक्तकषायानुरसं पाचनमनिलबलासक्षयकरं क्रिमिघ्नमशितपित्तजननं योनिकर्णशिरःशूलप्रशमनं गर्भाशयशोधनं च, तथा छिन्नभिन्नविद्धोत्पिष्टच्युतमथितक्षतपिच्चितभग्नस्फुटितक्षाराग्निदग्धविश्लिष्टदारिताभिहतदुर्भग्नमृगव्यालविदष्टप्रभृतिषु परिषेकाभ्यङ्गावगाहादिषु तिलतैलं प्रशस्यते" (सु. सू. अ. ४५) ।

तिल मधुर–कटु–कुछ कषाय और तिक्त, विपाकमें मधुर, स्निग्ध, गुरु, उष्णवीर्य, दाँत-त्वचा और केशके लिये हितकर, बल्य, कफ-पित्तकर, सांग्राहिक, व्रणमें लेपनके लिये पथ्य, मूत्र कम करनेवाला, जठराग्नि और मेधाको बढ़ानेवाला तथा वातहर है। तिलोंमें काले तिल उत्तम, सफेद मध्यम और अन्य कम गुणवाले हैं। तिलका तेल मधुर, तिक्तकषायानुरस, मधुरविपाक, उष्णवीर्य, सूक्ष्म, व्यवायि, पित्तको बढ़ानेवाला, मूत्र कम करनेवाला, शरीरकी स्थूलता कम करनेवाला, कफको न बढ़ानेवाला, वातघ्न द्रव्योंमें श्रेष्ठ, बलकारक, त्वचाको हितकर, मेधा और अग्निको बढ़ानेवाला, द्रव्यान्तर–संयोग और संस्कारसे तीनों दोषोंके रोगोंको हरनेवाला, तीक्ष्ण, बृंहण, प्रीणन, गुरु, सारक, विकासि, वृष्य, शोधन, मार्दवकर, मांसको दृढ़ करनेवाला, चक्षुष्य, लेखन, पाचन, क्रिमिघ्न, योनि–कान-और सिरके दर्दको दूर करनेवाला, गर्भाशयशोधन तथा छिन्न, भिन्न, कटा हुआ, विद्ध, उतिपष्ट, च्युत, मथित, क्षत, पिच्चित, भग्न, स्फुटित, क्षार तथा अग्निसे दग्ध, विश्लिष्ट, दारित, अभिहत, दुर्भग्न, अहिंस्र या हिंस्र पश्वादिसे दष्ट आदि अवस्थाओंमें परिषेक, अभ्यंग, अवगाह आदिमें प्रशस्त है।

**नव्यमत**—तिल स्नेहन, कंठ्य, कफघ्न, आनुलोमिक, मूत्रजनन, वाजीकर, आर्तवजनन, स्तन्यजनन, पौष्टिक, बल्य, व्रणशोधन, व्रणरोपण और केशवर्धन है। अर्शरोगमें तिलोंको पीस, गरम करके अर्शके ऊपर बांधते हैं और मक्खनके साथ मिलाकर खानेको देते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

---

## ( २४१ ) बड़ा गोखरू।

**नाम**—( सं. ) बृहद्गोक्षुरः; ( हिं. ) बड़ा गोखरू; ( म. ) मोठें गोखरू; ( गु. ) ऊभा गोखरू, म्होटा गोखरू, कडवा गोखरू; ( पं. ) बड़ा भखड़ा(रा); ( अ. ) हसके कबीर; ( फा. ) खारेखसके कलाँ; ( ले. ) पेडेलियम् म्युरेक्स् ( Pedalium murex )।

**वर्णन**—बड़े गोखरू सर्वत्र मिलते हैं और प्रसिद्ध हैं।

**उपयुक्त अंग**—पत्र और फल। **मात्रा**—३–६ माशा।

**गुण-कर्म**—"गोक्षुरः शीतलः स्निग्धो बलकृद्वस्तिशोधनः। मधुरो दीपनो वृष्यः पुष्टिदश्चाश्मरीहरः॥ प्रमेहश्वासकासार्शःकृच्छ्रहृद्रोगवातनुत्।" ( भा. प्र. )। "शर्कराश्मरिमेहेषु कृच्छ्रेषु प्रदरेऽपि च। रसायनप्रयोगेषु महानेव गुणोत्तरः॥" ( शिवदत्त )।

बड़ा गोखरू शीतवीर्य, स्निग्ध, बलकारक, बस्तिशोधन ( मूत्रविरेचन ), मधुर, दीपन, वृष्य, पौष्टिक तथा अश्मरी, प्रमेह, श्वास, खाँसी, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, हृद्रोग और वातरोगको दूर करनेवाला है। शर्करा, अश्मरी, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, प्रदर–इन रोगोंमें और रसायनप्रयोगोंमें बड़ा गोखरू विशेष गुणकारक है।

**नव्यमत**—ताजी पत्तियाँ ठण्ढे पानीमें मसलनेसे पानी लुआबदार हो जाता है। बड़ा गोखरू स्नेहन, मूत्रजनन, वल्य और वाजीकर है। इसका मूत्रजनन धर्म उत्तम है। नये सुजाकमें ताजे-हरे पंचांगका हिम ताजा-ताजा बनाकर देते हैं। फलोंका क्वाथ करना हो तो उसमें मुलेठी और नागरमोथा मिलाना चाहिये। इससे पेशाबकी जलन कम होती है। स्वप्नमें वीर्यस्राव होना, पेशाब अपने आप हो जाना, कामशक्ति कम होना-इनमें फलोंका फांट या दो माशा चूर्ण शक्कर, घी और दूधके साथ देते हैं। सूतिकारोगमें तथा यकृत् और प्लीहाके रोगोंमें फलोंका क्वाथ अथवा पंचांगका स्वरस देते हैं। **फांटविधि**—२॥ तोला फलका चूर्ण २५ तोले उबलते हुए जलमें डाल, एक घंटे तक पात्रको बंद रख, कपड़ेसे छान, थोड़ा-थोड़ा करके दिनभरमें दे देवें (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**यूनानीमत**—बड़ा गोखरू स्नेहन, संशमन, मूत्रजनन, आर्तवजनन, अश्मरी-नाशन, वल्य और वाजीकर है। इसके ताजे पंचांगका जलमें निकाला हुआ लुआब या सूखे फलोंका क्वाथ मूत्रमार्गदाह, मूत्रावरोध, वेदनायुक्त बिंदुमूत्रता, सुजाक, जननाङ्गोंकी बढ़ी हुई स्पर्शशक्ति, स्वप्नमेह, शीघ्रपतन, जलोदर, यकृत्-प्लीहाकी वृद्धि, आमवात और अनियमित आर्तवमें देनेसे लाभ होता है।

---

## अटरूषादि वर्ग ६७.

### N. O. Acanthaceæ. (ॲकेन्थेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; पर्णविन्यास अभिमुख; पर्ण उपपत्र-रहित; पुष्पका आकार दो ओष्ठोंके समान; पुष्पबाह्यकोश और पुष्याभ्यन्तर कोशके दल ५-५; पुंकेशर दो या चार; गर्भाशय उपरिस्थ और दो खण्डोंवाला होता है।

---

### (२४२) अटरूषक।

**नाम**—(सं.) वासा, वासक, वृष, अटरूषक; (पं.) वांसा, बहेंकड़, बौंकड; (हिं.) बाँसा, अडूसा; (कु.) बैसिंग; (म.) अडुळसा; (गु.) अरडुसो (-सी); (अ.) हशीशतुस्सुआल; (फा.) बाँसः, ख्वाजा; (ले.) अधाटोडा वासिका (Adhatoda vasica)।

**वर्णन**—अडूसा भारतवर्षमें ४००० फुटकी ऊँचाई तक सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है।

**उपयुक्त अंग**—पत्र, पुष्प और मूलत्वचा।

**गुण-कर्म**—"वृषपुष्पं × × × कफपित्तहरं तिक्तं शीतं कटु विपच्यते।" ( च. सू. अ. २७ )। "वृषागस्त्ययोः पुष्पाणि तिक्तानि कटुविपाकानि क्षयकासापहानि च।" ( सु. सू. अ. ४६ )। "वासा तिक्ता कटुः शीता कासघ्नी रक्तपित्तजित्। कामलाकफपित्तास्त्रज्वरश्वासक्षयापहा॥" ( रा. नि. )

अडूसा तिक्त, कटु, शीतवीर्य तथा कास, रक्तपित्त, कामला, कफ, पित्त, रक्तविकार, ज्वर, श्वास और क्षयका नाश करनेवाला है। अडूसेके फूल तिक्त, शीतवीर्य, कटुविपाकी तथा कफ, पित्त, क्षय और खाँसीका नाश करनेवाले हैं।

**नव्यमत**—अडूसा उत्तम उत्तेजक कफनिःसारक और संकोचविकासप्रतिबन्धक है। इसकी क्रिया इपिकाकुआनाके समान होती है। फूल तिक्त, कटु, ज्वरघ्न, मूत्रजनन, रक्तकी उष्णता कम करनेवाले और संकोचविकासप्रतिबंधक हैं। मूल ज्वरघ्न, मूत्रजनन, श्लेष्मनिःसारक, नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक, कृमिघ्न और कोथप्रतिबन्धक हैं। पत्र और मूलकी अपेक्षया फूलोंमें संकोचविकासप्रतिबंधक धर्म अधिक है। पत्रकी अपेक्षया मूलमें कफनिःसारक धर्म अधिक है। पत्रमें स्वेदजनन धर्म भी है। अडूसाका स्वेदजनन और ज्वरघ्न धर्म अल्प प्रमाणमें है। कफको पतला करना और कासका वेग कम करना—ये अडूसाके प्रधान कर्म हैं। **मात्रा**—पुटपाकविधिसे निकाला हुआ स्वरस १ से १½ तोला थोड़ा सैंधव, पिप्पलीचूर्ण और शहद मिलाकर देते हैं। फूल ५–१० रत्ती शहदके साथ अथवा फांट करके देते हैं। मूलत्वक्चूर्ण २–५ रत्ती शहदके साथ देते हैं। अडूसासे छोटी रक्तवाहिनियोंका संकोचन होकर रक्तस्राव बंद होता है। इसलिये रक्तपित्त और क्षयमें फुप्फुससे रक्तस्राव होना, रक्तमिश्रित आँव, रक्तप्रवाहिका, रक्तार्श और रक्तप्रदरमें अडूसाका स्वरस पिलाते हैं। सद्योव्रण और शोथपर पत्तियोंका लेप करते हैं। नेत्राभिष्यन्दमें आँखकी ललाई दूर करनेके लिये ताजे फूल आँखपर बाँधते हैं। कफकास( श्वासनलिकाशोथ )में अडूसा देनेसे कफ पतला होकर तुर्त गिरने लगता है और खाँसी, दमा, ज्वर और मूत्रदाह कम होता है। अडूसाकी सूखी पत्तियोंके मोटे चूर्णमें थोड़ी धतूरेकी पत्तीका चूर्ण मिलाकर धूम्रपान करानेसे दमाका वेग शांत होता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

## ( २४३ ) इक्षुरक।

**नाम**—( सं. ) इक्षुरक, कोकिलाक्ष; ( हिं. ) तालमखाना; ( बं ) कुलेखाडा, कुलेकाँटा; ( म. ) तालिमखाना, कोळसुंदा; ( गु. ) एखरो; ( ले. ) एस्टेराकेन्था लोंगिफोलिआ ( Asteracantha longifolia )।

**वर्णन**—तालमखानाका काँटेदार क्षुप आर्द्र या जलासन्न भूमिमें होता है। कांड चतुष्कोण; शाखाकी ग्रन्थिपरसे अवृन्त लंबे पत्रोंकी जोड़ी निकलती है; पुष्प द्रोण-

पुष्पी (गूमा) के समान शाखाग्रन्थिके चारों ओरसे आसमानी रंगके निकलते हैं। बीज छोटे और रक्ताभ होते हैं। बीजोंको जलमें भिगोनेसे लुआब (पिच्छा) बनता है।

**उपयुक्त अंग**—बीज (तालमखाना), मूल, पत्र और पंचांगका क्षार। **मात्रा**—पंचांगका स्वरस २ तोला, मूलक्वाथ ४ तोला, बीजचूर्ण १॥-३ माशा, क्षार २-५ रत्ती।

**गुण-कर्म**—चरकके (सू. अ. ४) शुक्रशोधने महाकषाये **इक्षुरकः** पठ्यते। "कोकिलाक्षस्तु मधुरः शीतः पित्ताश्मरिप्रणुत्। वृष्यः कफहरो बल्यो रुच्यः संतर्पणः परः॥" (रा. नि.)। "इक्षुरः शीतलो वृष्यो मधुरः पिच्छिलस्तथा। तिक्तो वातामशोफाश्मतृष्णारुच्यनिलास्रजित्॥" (भा. प्र.)

तालमखाना मधुर, तिक्त, शीतवीर्य, शुक्रशोधन, वृष्य, पिच्छिल, संतर्पण, बल्य, रुचिकारक तथा पित्त, कफ, अश्मरी, आमवात, शोथ, तृषा, अरुचि, वातरोग और रक्तविकारको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—तालमखानाका **मूल** उत्कृष्ट शीतल, वेदनास्थापन, बलकारक और मूत्रजनन है। **बीज** स्निग्ध, मूत्रजनन और कामोत्तेजक है। पंचांगका क्षार मूत्रजनन है। मूलका क्वाथ सुजाक और बस्तिशोथमें देते हैं। मूलका क्वाथ अथवा पंचांगका क्षार यकृदुदरमें देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (२८४) कालमेघ।

**नाम**—(हिं.) कल्पनाथ, कालमेघ; (बं.) कालमेघ; (म.) पालेकिराईत, ओलें किराईत; (गु.) लीलुं करियातुं; (ले.) एन्ड्रोग्रेफिस् पेनिक्युलेटा (Andrographis paniculata)।

**वर्णन**—काण्ड ३ फुट तक ऊँचा हरे रंगका; पत्र आमने-सामने; पुष्प दूरसे देखने पर मच्छरके आकारके दिखते हैं; सेम यवाकार। सेम जौके आकारकी और समग्र क्षुप अत्यंत तिक्त होनेसे बंगालके वैद्य इसको **यवतिक्ता** मानते हैं।

**उपयुक्त अंग**—समग्र क्षुप। **संग्रहकाल** वर्षा ऋतुके अंत और शीतके आरंभमें इसे ले, छायामें सुखाकर शुष्क स्थानमें रखना चाहिये। **मात्रा**—चूर्ण ५-१० रत्ती; स्वरस २-४ माशा; क्वाथ २-४ तोला।

**गुण-कर्म**—तिक्त, दीपन और कटुपौष्टिक। दो भाग कालमेघ और एक भाग काली मिर्चका चूर्ण १॥ माशाकी मात्रामें मलेरिया ज्वरमें देते हैं। यकृतकी वृद्धि, जीर्ण ज्वर और शोथमें इसके सेवनसे दस्त साफ होता है, भूख लगती है और शरीर सुस्थ होता है। बंगालमें जीरा, अजमोद, लवंग, जायफल और बड़ी इलायचीके

बीज—इनके चूर्णको कालमेघके स्वरसकी ५–७ भावनायें दे, २–२ रत्तीकी गोलियाँ बना, माके दूधमें मिलाकर बालकोंको अतिसार, पेटका दर्द, वमन आदिमें देते हैं। इस योगको **आलुई** कहते हैं।

---

## निर्गुण्ड्यादि वर्ग ६८.

## N. O. Verbenaceæ. (वर्बिनेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; उपरिस्थ गर्भाशय; पर्णविन्यास अभिमुख; पर्ण एकाकी; फूल छोटे, परंतु बड़े गुच्छोंमें; पुष्पबाह्यकोश नलिकाकार और स्थायी; पुंकेशर ४, उसमें दो बड़े और दो छोटे; फल एकबीजी अथवा बहुबीजी और मांसल।

---

### (२४५) निर्गुण्डी।

**नाम—(सं.) निर्गुण्डी, सिन्दु(न्धु)वार, शेफालिका; (हिं.) सम्हालू, संभालू, मेवड़ी; (म.) निर्गुण्डी, निगड; (गु.) नगद, नगोड़; (बं.) निशिंदा; (कु.) सेंवाली; (अ.) असलक; (फा.) पंजंगुस्त; (ले.) विटेक्स् निगुन्डो, विटेक्स् ट्राइफोलिआ (Vitex negundo, Vitex trifolia)।**

**वर्णन**—संभालूका वृक्ष भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है। फूलके रंगभेदसे इसके सफेद फूलवाली और नीलाभ पुष्पवाली ये दो भेद होते हैं। पत्रभेदसे इसके अखण्ड किनारीके पत्रवाली और कटीहुई किनारीके पत्रवाली ये दो भेद होते हैं।

**गुण-कर्म—चरके (सू. अ. ४) विषघ्ने ('सिन्धुवार' नाम्ना), क्रिमिघ्ने च महाकषाये तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) सुरसादिगणे निर्गुण्डी पठ्यते।** "सिन्धुवारं (पुष्पं) विजानीयाद्धिमं पित्तविनाशनम्।" (सु. सू. अ. ४६)। "निर्गुण्डी कटुतिक्तोष्णा कृमिकुष्ठज्वरापहा। वातश्लेष्मप्रशमनी प्लीहगुल्मापचीर्हरेत्॥" (ध. नि.)। "सिन्दुवारः कटुस्तिक्तः कफवातक्षयापहः। कुष्ठकण्डूतिशमनः शूलहृत् काससिद्धिदः॥ कटूष्णा नीलनिर्गुण्डी तिक्ता रूक्षाऽस्रकासजित्। श्लेष्मशोफसमीरार्तिप्रदराध्मानहारिणी॥" (रा. नि.)।

सँभालू कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रूक्ष तथा कफ, वात, कृमि, कुष्ठ, ज्वर, प्लीहाके रोग, गुल्म, अपची, क्षय, कण्डू, शूल, खाँसी, वातरोग, प्रदर और आध्मानका नाश करनेवाली है। सँभालूके पुष्प शीतवीर्य और पित्तनाशक हैं।

**नव्यमत**—सँभालू, कटु, तिक्त, कषाय, लघु, उष्ण, दीपन, वातप्रशमन, वेदनास्थापन, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न, व्रणशोधन, व्रणरोपण, उत्तम शोथघ्न, कफनिःसारक, ज्वरघ्न, नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक, कफघ्न, कासहर, मूत्रजनन, आर्तवजनन, कृमिघ्न, मस्तिष्कबलदायक, बल्य और रसायन है। किसी भी प्रकारकी बाहरी या भीतरी सूजन सँभालूसे अच्छी होती है। शोथमें सँभालूका पत्रस्वरस अथवा मूल या पत्रका क्वाथ पिलाते हैं और पत्तियोंको गरम करके सूजनपर बाँधते हैं। फुप्फुसशोथ, फुप्फुसावरणशोथ, अन्त्रकलाशोथ, संधिशोथ, आमवात, वृषणशोथ आदिमें सँभालूसे अच्छा लाभ होता है। स्नायुक (नारू, नहरवा) रोगमें स्वरस पिलाते हैं और पत्रकल्कका लेप करते हैं। सँभालूके पत्रस्वरससे सिद्ध किया हुआ तैल पूयकर्णमें कानमें डालते हैं। सूतिकाज्वरमें सँभालूसे गर्भाशयका संकोचन होकर दूषित रक्त निकल जाता है और गर्भाशयकी सूजन उतरकर गर्भाशय पूर्व स्थितिपर आता है। सूतिकाज्वरमें सँभालू खानेको देते हैं तथा जननेन्द्रिय और पेडूपर पत्तियाँ गरम करके बाँधते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**यूनानी मत**—**प्रकृति**—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क। **गुण-कर्म**—सँभालू लेखन, वेदनाहर, कठिनश्वयथुविलयन, उपशोषण और यकृत् एवं प्लीहाके अवरोधका उद्घाटनकर्ता है।

---

## (२४६) शाक।

**नाम**—(सं.) शाक, साग, खरपत्र; (हिं.) सागौन, सागवन; (म., गु.) सागवान; (बं.) सेगुन; (ले.) **टिक्टोना ग्रेन्डिस्** (Tectona grandis)।

**वर्णन**—यह बड़ा और प्रसिद्ध वृक्ष जंगलोंमें होता है। इसकी लकड़ी इमारत और फर्निचर बनानेके काममें आती है।

**गुण-कर्म**—**सुश्रुते** (सू. अ. ३८) सालसारादिगणे शाकः पठ्यते। "शाकः कषायः शिशिरो रक्तपित्तप्रसादनः। कुष्ठश्लेष्मानिलहरो गर्भसंधानस्थैर्यकृत्॥ शाकपुष्पं प्रमेहघ्नं रूक्षं तुवरतिक्तकम्। कफपित्तहरं वातकोपनं विशदं लघु॥" (कै. नि.)।

सागौन कषाय, शीतवीर्य, रक्त और पित्तका शमन करनेवाला, गर्भस्थैर्यकर तथा कुष्ठ, कफ और वायुको हरनेवाला है। सागौनके पुष्प कषाय, तिक्त, रूक्ष, विशद, लघु, वातप्रकोपक तथा प्रमेह, कफ और पित्तका नाश करनेवाले हैं।

**नव्यमत**—**पुष्प** और **बीज** मूत्रजनन; **बीजतैल** केशवर्धन और कण्डूघ्न; **पत्र** पित्तशामक, शोणितास्थापन और सूक्ष्मरक्तवाहिनीसंकोचक; **छाल** पित्तशामक, साधारण स्तंभन, शोथघ्न और कृमिघ्न है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## ( २४७ ) अग्निमन्थ ।

**नाम**—( सं. ) अग्निमन्थ, अरणी, तर्कारी, गणिकारिका; ( हिं. ) अ(अँ)गेथू, अरनी(-णी ), गनियारी; ( कु. ) अग्नो; ( म. ) ऐरण, टाकली; ( गु. ) अरणी; ( बं. ) गणियारी; ( ले. ) क्लिरोडेन्ड्रोन् फ्लोमिडीस् ( Clerodendron phlomidis ) ।

**वर्णन**—अरनीका वृक्ष सर्वत्र होता है । पत्र आमने-सामने, गोल, किंचित् नोकीले, मृदु; पुष्प श्वेतवर्ण, गुच्छेदार, सुगन्धि; फल छोटे करोंदेके समान ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) अनुवासनोपगे, शोथहरे, शीतप्रशमने च महाकषाये तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) वरुणादौ, वीरतर्वादौ, महत्पञ्चमूले च गणे, तथा वातसंशमने वर्गे ( सू. अ. ३९ ) अग्निमन्थः पठ्यते । "तर्कारी कटुका तिक्ता तथोष्णाऽनिलपाण्डुनुत् । शोथश्लेष्माग्निमान्द्यामविबन्धांश्च विनाशयेत् ॥" ( ध. नि. ) ॥ "अग्निमन्थः श्वयथुनुद्वीर्योष्णः कफवातहृत् । पाण्डुनुत् कटुकस्तिक्तस्तुवरो मधुरोऽग्निदः ॥" ( भा. प्र. ) ॥ "तर्कारी कटुका तिक्ता तुवरा मधुराऽग्निदा । वीर्योष्णा हरते वातकफश्वयथुपाण्डुताः ॥ अग्निमन्थो गुणैस्तद्वद्विशेषाद्वातशोथहा" । ( कै. दे. ) ।

अरनी कटु, तिक्त, कषाय, मधुर, उष्णवीर्य, अग्निदीपन, शोथहर, अनुवासनोपग, शीतप्रशमन तथा वात, कफ, पाण्डुरोग, शोथ, अग्निमान्द्य और विबन्धको हरनेवाली है ।

**नव्यमत**—वात, कफ और शोथप्रधान रोगोंमें अरणीका उपयोग होता है । अरणी दशमूलका एक द्रव्य है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** ) ।

**वक्तव्य**—सुश्रुतमें वरुणादि गणमें **तर्कारी** और **अग्निमन्थ** ये दोनों शब्द आये हैं, अतः ये दोनों भिन्न द्रव्य मालूम होते हैं । **अग्निमन्थ**को ( हिं. ) अरणी(नी); ( गु. ) मोटी अरणी; ( म. ) ऐरण; ( ले. ) क्लिरोडेन्ड्रोन् फ्लोमोमिडीस् और **तर्कारी**को ( हिं. ) गनियारी; ( म. ) नरवेल; ( गु. ) नानी अरणी और ( ले. ) प्रेम्ना एन्टिग्रिफोलिआ ( Premna integrifolia ) मानना उचित मालूम होता है । एकके अभावमें दूसरेका उपयोग कर सकते हैं ।

---

## ( २४८ ) भार्गी ।

**नाम**—( सं. ) भार्गी, ब्राह्मणयष्टिका; ( हिं. ) भारंगी, बनबाकरी ( जौनसर; ) ( बं. ) बामुनहाटी; ( म. ) भारंग; ( गु. ) भारंगी; ( पं. ) भरंगी; ( ले. ) क्लिरोडेन्ड्रोन् सरेटम् ( Clerodendron serratum ) ।

**वर्णन**—हिमालयकी तराईमें इसके गुल्म होते हैं। पत्तियाँ ४ इंच लंबी; २-३ इंच चौड़ी, लंबगोल; पुष्प नीलाभ श्वेत; फल पकनेपर जामुनी रंगके होते हैं।

**उपयुक्त अंग**—मूल। मात्रा १॥-४ माशा।

**गुण-कर्म**—सुश्रुते (सू. अ. ३८) पिप्पल्यादिगणे भार्गी पठ्यते। "भार्गी तु कटुतिक्तोष्णा कासश्वासविनाशिनी। शोफव्रणकृमिघ्नी च दाहज्वरनिवारिणी॥" (रा. नि.)। "भार्गी रूक्षा कटुस्तिक्ता रुच्योष्णा पाचनी लघुः। दीपनी तुवरा गुल्मरक्तजिन्नाशयेद्ध्रुवम्॥ शोथकासकफश्वासपीनसज्वरमारुतान्॥" (भा. प्र.)।

भारंगी कटु, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, लघु, रूक्ष, दीपन, रुचिकर तथा कफ, वात, कास, श्वास, शोथ, व्रण, कृमि, दाह, ज्वर, गुल्म, रक्तविकार और पीनसका नाश करनेवाली है।

**नव्यमत**—भारंगमूल उष्ण, तिक्त, कटु, पाचन, दीपन, कफघ्न, ज्वरघ्न, श्वासहर, वातहर और शोथघ्न है। भारंगमूल ज्वर और कफयुक्त रोगोंमें देते हैं। सर्दी, कण्ठशोथ और कफयुक्त दमामें सोंठ किंवा वचके साथ भारंगमूल देते हैं। इसमें थोड़ा उत्तेजक गुण भी है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (२४९) काश्मरी-गम्भारी।

**नाम**—(सं.) श्रीपर्णी, काश्म(श्मी)री, गम्भारी; (पं., हिं.) गंभारी; (बं.) गामार; (म.) शिवण; (गु.) शीवण, सवन; (ले.) मेलीना आर्बोरिआ (Gmelina arborea)।

**वर्णन**—गंभारीके मध्यम ऊँचाईके वृक्ष होते हैं। पत्ती-५-१० इंच लंबी; ३ इंच चौड़ी; फूल पीले रंगके और छाल श्वेताभ होती है।

**उपयुक्त अंग**—फल और मूल।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) विरेचनोपगे (काश्मरीफलं), दाहप्रशमने (काश्मर्यफलं), श्वयथुहरे च महाकषाये तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) महत्पञ्चमूले, सारिवादिगणे च काश्मरी (काश्मरीफलं) पठ्यते। "हृद्यं मूत्रविबन्धघ्नं पित्तास्रवातनाशनम्। केश्यं रसायनं मेध्यं काश्मर्यं फलमुच्यते॥" (सु. सू. अ. ४६)। "काश्मर्यफलं रक्तसांग्राहिकरक्तपित्तप्रशमनानाम्।" (च. सू. अ. २५)। "×काश्मर्य× तैलानि मधुरकषायाणि कफपित्तप्रशमनानि।" (सु. सू. अ. ४५)। "काश्मीरी कटुका तिक्ता गुरूष्णा कफशोथनुत्। त्रिदोषविषदाहार्तिज्वरतृष्णास्रदोषजित्॥" (रा. नि.) "श्रीपर्णी मधुरा तिक्ता वीर्योष्णा तुवरा गुरुः। दीपनी पाचनी मेध्या भेदिनी भ्रमशोषजित्॥ दोषतृष्णामशूलार्शोविषदाहज्वरापहा।" (कै. नि.)।

गंभारी कटु, तिक्त, मधुर, कषाय, गुरु, उष्णवीर्य, विरेचनोपग, दाहप्रशमन, श्वयथुहर, दीपन, पाचन, मेध्य, भेदन तथा त्रिदोष, विष, दाह, ज्वर, तृषा, रक्तविकार, भ्रम, अर्श, शोष और शूलको दूर करनेवाली है। गंभारीके फल हृद्य, केश्य, मेध्य, रसायन, रक्तसांग्राहिक, रक्तपित्तप्रशमन तथा पित्त, रक्तविकार और मूत्रकी रुकावटको दूर करनेवाला है। गंभारीके बीजोंका तेल मधुर, कषाय तथा कफ और पित्तका शमन करनेवाला है।

**नव्यमत**—गंभारीकी **कोमल पत्ती** शीतल और स्नेहन; **फल** तृषाहर, दाहप्रशमन और स्नेहन; **मूल** तिक्त, दीपन और अनुलोमन है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

---

# तुलस्यादि वर्ग ६९.

## N. O. Labiatæ. ( लेबिएटी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तदल; ऊर्ध्वस्थगर्भाशय; काण्ड प्रायः चतुष्कोण; पर्णविन्यास अभिमुख; पर्ण उपपत्ररहित, सुगन्धि; पुंकेशर ४, उनमें दो छोटे और दो बड़े; बीजकोश ४ खण्डवाला; प्रत्येक खण्डमें १–१ बीज होता हैं। बीजोंको जलमें भिगोनेसे पिच्छिल लुआब निकलता है।

---

### ( २५० ) तुलसी।

**नाम**—( सं. ) तुसली, सुरसा(स); ( पं., हि., गु., बं. ) तुलसी; ( म. ) तुळस; ( अ. ) फरंजमि( मु )श्क; ( ले. ) ओसिमम् सेन्कटम् ( Ocimum sanctum )।

**वर्णन**—तुलसी भारतवर्षमें सर्वत्र होती है और प्रसिद्ध है। तुलसीके श्वेत तुलसी, काली तुलसी, रामतुलसी ये तीन मुख्य भेद हैं।

**गुण-कर्म**—**सुश्रुते** ( सू. अ. ३८ ) **सुरसादिगणे** ( '**सुरसा**'**नाम्ना** ) **तुलसी** पठ्यते। "**हिक्काकासविषश्वासपार्श्वशूलविनाशनः। पित्तकृत् कफवातघ्नः सुरसः पूतिगन्धहा॥**" ( **च. सू. अ. २७** )। "**कफानिलविषश्वासकासदौर्गन्ध्यनाशनः। पित्तकृत् पार्श्वशूलघ्नः सुरसः समुदाहृतः॥**" ( **सु. सू. अ. ४६** )। "**तुलसी लघुरुष्णा च रूक्षा कफविनाशिनी। कृमिदोषं निहन्त्येषा रुचिकृद्वह्निदीपनी॥**" ( **ध. नि.** )। "**तुलसी कटुका तिक्ता हृद्योष्णा दाहपित्तकृत्। दीपनी कुष्ठकृच्छ्रास्रपार्श्वरुक्कफवातजित्।**" ( **भा. प्र.** )।

तुलसी कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रूक्ष, लघु, रुचिकर, हृद्य, दीपन, दाह और पित्त करनेवाली तथा कफ, वात, हिक्का, खाँसी, श्वास, पार्श्वशूल, विष, कृमिविकार, कुष्ठ, मूत्रकृच्छ्र और रक्तविकारका नाश करनेवाली है ।

**नव्यमत**—तुलसीका स्वरस तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, ज्वरघ्न, शीतहर, कफघ्न, उत्तेजक और वातहर है । शीतप्रधान रोगोंमें तुलसी देते हैं । ज्वरमें तुलसीका स्वरस काली मिर्चके चूर्णके साथ देते हैं और शरीरमें दर्द अधिक हो और संधिशोथ हो तो अजवायन और सँभालूके साथ देते हैं । सर्दीके ज्वरमें तुलसी देनेसे सर्दी छातीमें उतरती नहीं और छातीमें उतरी हो तो कफ सरलतासे पड़ने लगता है और छातीका दर्द कम होता है । जहरीले ज्वरमें अथवा बहुतदिनों तक रहनेवाले ज्वरमें तुलसीका स्वरस रोगीके शरीरपर मलते हैं और मुँहमें लगाते हैं । इससे रोगीको उत्तेजना मिलती है, दुर्गन्ध नष्ट होती है और इतर लोगोंको संक्रमणका भय नहीं रहता । मलेरियाग्रस्त विस्तारमें तुलसीके क्षुप लगानेसे मेलेरियाका भय कम होता है । आँतोंपर तुलसीका वातप्रशमन और कृमिघ्न प्रभाव होता है । तुलसीके स्वरससे वमन बंद होता है और दस्त साफ होता है । तुलसीके स्वरससे व्रण धोनेसे व्रणगत कृमि नष्ट होते हैं और व्रण शीघ्र भर आता है । तुलसीके बीजका हिम ( लुआब ) जीरा, मिश्री और दूधके साथ मूत्रदाह, सुजाक, बस्तिशोथ और अश्मरीशूलमें देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## ( २५१ ) मरुबक ।

**नाम**—( सं. ) मरुवक; ( हिं. ) मरुआ, मरुवा; मर्वा; ( म. ) मरवा; ( गु. ) मरवो; ( फा. ) मर्ज़ञ्जोश; ( ले. ) ओरिजेनम् मॅजोराना ( Origanum majroana ) ।

**वर्णन**—मरुआ बागोंमें लगाया जाता है और जंगली भी होता है ।

**गुण-कर्म**—"मरुबकः कफहरो रुच्यो मुखसुगन्धकृत् ।" ( ध. नि. ) । "मरुवः कटुतिक्तोष्णः कृमिकुष्ठविनाशनः । विड्बन्धाध्मानशूलघ्नो मान्द्यत्वग्दोषनाशनः ॥" ( रा. नि. ) ।

मरुआ कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रुचिकारक, मुखको सुगन्धित करनेवाला तथा कृमि, कुष्ठ, मलावरोध, आध्मान, शूल, अग्निमान्द्य और त्वग्दोषका नाश करनेवाला है ।

**नव्यमत**—मरुआ सुगन्धी, कोष्ठवातप्रशमन, स्वेदजनन, उत्तेजक, श्वासहर और आर्तवजनन है । सर्दी( प्रतिश्याय )में मरुआका फांट देनेसे पसीना आता है और स्फुर्ति मालूम होती है । सर्दीसे ऋतु आना बंद हुआ हो तो मरुआका फांट देते हैं । पुराने व्रणपर मरुआका स्वरस लगानेसे व्रणरोपण और वेदनास्थापन कार्य होता है ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## ( २५२ ) पुदीना ।

**नाम**—( सं. ) पूतिहा; ( हिं. ) पुदीना; ( पं. ) पोदीना, पूतना; ( म. ) पुदिना; ( गु. ) फुदीनो; ( अ. ) फूदनज; ( फा. ) पुदिनः; ( ले. ) मेन्था अर्वेन्सिस, मेन्था विरिडिस्, मेन्था सिल्वेस्ट्रिस् ( Mentha arvensis, Mentha viridis, Mentha sylvestris )

**वर्णन**—पुदीना भारतवर्षमें सर्वत्र बागोंमें लगाया जाता है और हिमालयकी पहाड़ियोंमें स्वयंजात भी होता है। पुदीनाको सैंधव, जीरा, अदरख आदिके साथ पीसकर चटनी बनाई जाती है।

**गुण-कर्म**—पूतिहा कटुरुष्णश्च रोचनो दीपनस्तथा । हन्ति वातं कफं शूलं वम्याध्मानकृमींस्तथा ॥

पुदीना कटु, उष्णवीर्य, रोचन, दीपन तथा वायु, कफ, उलटी, पेटका दर्द और अफारा तथा कृमियोंका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—पुदीना उष्ण, रूक्ष, वातप्रशमन, दीपन, आर्तवजनन, संकोचविकासप्रतिबंधक ( आक्षेपहर ) और उत्तेजक है। पुदीना अजीर्ण, कुपचन, उदरशूल, उदराध्मान, और वमनमें देते हैं। प्रसूतिज्वरमें पुदीनेका स्वरस १–२ तोला रोज देनेसे बहुत फायदा होता है। कफज्वर, आमाशयकी अशक्तता, अतिसार, वातरोग और अश्मरीमें इसका स्वरस देनेसे लाभ होता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )

पुदीनेका स्वरस, फांट या अर्कके रूपमें उपयोग करना चाहिये। **मात्रा**—स्वरस ॥–२ तोला, फांट २–४ तोला और अर्क २–४ तोला।

**यूनानीमत**—पुदीना दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, श्वयथुविलयन, गाढ़े दोषको पकाने और पतला करनेवाला, उत्क्लेशहर, कृमिघ्न, वेदनाहर, मूत्रल, आर्तवजनन, स्वेदन, वातानुलोमन, दीपन और विषहर है।

---

## ( २५३ ) पुदीनेके फूल ।

**नाम**—पुदीनेके फूल, पुदीनेका सत्त्व, सत पुदीना; ( अं० ) मेन्थोल ( Menthol )।

**वर्णन**—पुदीनेकी जातिके मेन्था अर्वेन्सिस् और मेन्था पाइपरेटा इन दो पुष्पित और ताजी वनस्पतियों ( क्षुपों ) से परिस्रावणविधिसे प्राप्त तैलको **ओइल पीपरमेन्ट** ( Oil peppermint ) और इस तैलसे प्राप्त लंबे, षट्कोन, दानेदार पदार्थको **पुदीनेके फूल** या **पुदीनेका सत्त्व** ( त ) कहते हैं। पुदीनेका तैल और सत्त्व ये दोनों चीन और जापानसे भारतवर्षमें आते हैं।

**गुण-कर्म**—बाह्यप्रयोगसे पुदीनेका सत्त्व उत्तम कोथप्रशमन, स्वापजनन ( सुन्नता लानेवाला ) और त्वग्दोषहर है । खिलानेसे इसकी क्रिया कपूरके समान होती है, परंतु इसमें श्लेष्महर और कोष्ठवातप्रशमन धर्म विशेष है । पुदीनेका सत्त्व धान्याहारी लोगोंके कुपचन, अजीर्ण और उदरशूलमें देते हैं । इससे उलटी, विशेषतः सगर्भावस्थामें होनेवाली उलटी बंद होती है । दन्तशूलमें रूईको १-२ बूँद पीपरमेन्टके तैलमें भिगोकर दाँतके नीचे दबानेसे पीड़ा शांत होती है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** ) ।

एक भाग मेन्थोल और दो भाग कपूरको एकत्र मिलानेसे द्रव बन जाता है । किसी भी प्रकारकी वातजन्य पीड़ाको शमन करनेके लिये इसकी मालिश करते हैं । अजीर्णजन्य वमन, अतिसार, विसूचिका और उदरशूलमें इसके २-५ बूँद शक्करमें मिलाकर देते हैं ।

---

## ( २५४ ) उस्तू(स्त)खुदूस ।

**नाम**—( ले. ) लॅवेन्ड्युला स्टीकस् ( Lavandula steachas ) ( अं. ) अरेबियन् लेवेन्डर् ( Arabian lavander ) ।

**वर्णन**—उस्तखुदूसके फूल यूनानी दवा बेचनेवाले पनसारियोंके यहाँ मिलते हैं । फूल कुछ पिलाई और ललाई लिये हुए बनफशाई-बैंगनी रंगके होते हैं । इनमें कपूरकीसी गंध आती है ।

**यूनानी मत—प्रकृति**—पहले दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क । **गुण-कर्म**—प्रमाथी, श्वयथुविलयन, नाड़ी और मस्तिष्कसंशोधक, बलकारक, दीपन, वातानुलोमन और कफ-सोदाविरेचक है । यूनानी वैद्य उस्तखदूसका अधिकतया पक्षवध, अर्दित, अपस्मार, प्रतिश्याय, विस्मृति, नाड़ीशूल और आमवातमें उपयोग करते हैं ।

**नव्यमत**—उस्तखुदूस मधुर, तीक्ष्ण, उष्ण, रूक्ष, वायुनाशक, संकोचविकासप्रतिबन्धक, उत्तेजक और कफघ्न है । यह कफरोग और दमामें गुणकारी है । सूखे दमेमें उस्तखुदूस, जूफा, सौंफ और मुलेठीका क्वाथ देते हैं । उदरवात, उदरशूल और भूतोन्मादमें उस्तखुदूस देते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** ) ।

---

## ( २५५ ) द्रोणपुष्पी ।

**नाम**—( सं. ) द्रोणपुष्पी; ( हिं. ) गूमा; ( कु. ) बनकूला; ( बं. ) वड़-घसे, दंडकलस; ( म. ) तुंबा, कुंभा; ( गु. ) कूबो; ( मा. ) दड़घल; ( ले. ) ल्युकस् सिफेलोटस ( Leucas cephalotes ) ।

**वर्णन**—गूमा वर्षा ऋतुमें सर्वत्र होता है। क्षुप २-३ फुट ऊँचा; पत्र २-३ इंच लंबे, ½ इंच चौड़े; पुष्प श्वेतवर्ण, शाखाओंपर पत्रकोणमें लगे हुए, आकृतिमें द्रोणके तुल्य होते हैं (अतः इसे **द्रोणपुष्पी** कहते हैं)। पुष्प शरद् ऋतुमें लगते हैं। गरमीमें क्षुप शुष्क हो जाता है।

**गुण-कर्म**—"द्रोणपुष्पी कटुः सोष्णा रुच्या वातकफापहा। अग्निमान्द्यहरा चैव कामलाज्वरहारिणी॥" (रा. नि.)। **चरके** (सू. अ. २७), **सुश्रुते** (सू. अ. ४६) च शाकवर्गे 'कुतुम्बक' नाम्ना द्रोणपुष्पी पठ्यते।

गूमा कटु, उष्णवीर्य, रुचिकर तथा वात, कफ, अग्निमान्द्य, कामला और ज्वरको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—गूमा उष्ण, स्वेदजनन, वातप्रशमन, स्रंसन और कफघ्न है। कफ-ज्वरमें गूमाका स्वरस शुद्ध टंकण और शहद मिलाकर देते हैं। आध्मान और पेटके दर्दमें स्वरस पिलाते हैं। सर्दीके सिरके दर्दमें इसके स्वरसका नस्य देते हैं **(डॉ. वा. ग. देसाई)**।

**यूनानी मत**—गूमा दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, श्वयथुविलयन तथा कामला, कफ, ज्वर, अर्श और विषको दूर करनेवाला है।

---

### (२५६) जूफा।

**नाम**—(अ., फा.) जूफा; (ले.) हिसोपस् ओफिसिनेलिस् (Hyssopus officinalis)।

**वर्णन**—यह **जूफा**के नामसे यूनानी दवा बेचनेवाले पनसारियोंके यहाँ मिलता है।

**उपयुक्त अंग**—पंचांग। **मात्रा**—३-६ माशा।

**यूनानी मत—प्रकृति**—प्रथम दर्जेमें गरम और खुश्क। **गुण-कर्म**—प्रमाथी, कफनिःसारक, श्वयथुविलयन, लेखन, वातानुलोमन, कृमिघ्न और कास-श्वासघ्न है। कृच्छ्रश्वास, कफज कास, श्वसनक ज्वर (न्युमोनिया) और प्रतिश्यायमें इसका क्वाथ देते हैं। इसका शर्बत श्वास और खाँसीमें देते हैं।

उक्त रोगोंमें हकीम लोग इसका विशेष उपयोग करते हैं। यह उपयुक्त औषध है। वैद्योंको भी इसका उपयोग करना चाहिये।

---

## इसबगोलादि वर्ग ७०.

### N. O. Plantaginaceæ. (प्लेन्टेजिनेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्णी; संयुक्तदल; पुष्पवाह्यकोश और पुष्पाभ्यंतर कोशके दल ४-४; पुंकेशर ४; फल विदारी और बहुबीज; बीज पानीमें भिगोनेसे लुआब छोड़ते हैं।

---

### (२५७) इसबगोल।

**नाम**—(सं.) ईषद्गोल, अश्वकर्णबीज; (हिं.) इसबगोल, ईसरगोल; (गु.) ओ(ऊ)थमी जीरुं; (फा.) अस्पगोल; (ले.) प्लेन्टेगो ओवेटा (Plantago ovata)।

**उत्पत्तिस्थान**—ईरान, पंजाब और सिंध।

**वर्णन**—इसके बीज सर्वत्र बाजारमें मिलते हैं। बीज हलके गुलाबी रंगके और नोकदार होते हैं। बीज पानीमें भिगोनेसे गंध और स्वादरहित प्रचुर लुआब(पिच्छा)से आवृत हो जाते हैं।

**उपयुक्त अंग**—बीज और बीजके छिलके (इसबगोलकी भूसी)। **मात्रा**—३-६ माशे। फांट किंवा हिमके लिये ½ से १ तोला।

**यूनानी मत**—प्रकृति दूसरे दर्जेमें शीत और स्निग्ध। **गुण-कर्म**—उष्णश्वयथुविलयन, संशमन, तृषाहर, ज्वरसंतापहर, सर और पिच्छिल; भुना हुआ इसबगोल संग्राही है। अपनी पिच्छिलताके कारण यह विबद्ध मल(सुद्दा)को फिसला कर निकालता है। थोड़ासा गायका घी लगा, जरासा सेंक कर खानेसे अतिसार और प्रवाहिकामें लाभ पहुँचाता है। शुष्क कास, कंठ और श्वासनलिकाकी शुष्कता, तीव्र ज्वर, तृषा तथा सुजाककी जलन दूर करनेके लिये इसबगोलका लुआब थोड़ीसी मिश्री मिलाकर पिलाते हैं।

---

## पुनर्नवादि वर्ग ७१.

### N. O. Nyctaginaceæ. (निक्टेजिनेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प, द्विबीजपर्ण; बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश; पर्णविन्यास अभिमुख; पर्ण सादे, उपपत्ररहित, पर्णकी जोड़ीमें एक पर्ण मोटा और एक छोटा; पुंकेशर अनियत; बीजकोश उपरिस्थ, एक खंडवाला; फल पतली त्वचावाला और कोशकी नलीके अंदर ढका हुआ होता है।

---

### (२५८) पुनर्नवा।

**नाम**—(सं.) पुनर्नवा, वर्षाभू, कठिल्लक, वृश्चीर; (पं.) इटसिट; (हिं.) गदहपूरना, बिसखपरा; (म.) घेटुली, खापरा; (गु.) राती साटोडी, वसेडो; (बं.) गदापुण्या; (मा.) साटी; (ले.) बोर्हेविया डिफ्युझा (Boerhavia diffusa)।

**वर्णन**—पुनर्नवाकी बहुवर्षायु भूमिपर फैलनेवाली लता होती है। वर्षारम्भमें इसमें नये अङ्कुर उत्पन्न होते हैं। पत्र प्रायः गोल और मांसल; पुष्प और शाखा प्रायः रक्ताभ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) स्वेदोपगे, अनुवासनोपगे, कासहरे, वयःस्थापने च महाकषाये तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) विदारिगन्धादौ गणे पुनर्नवा पठ्यते। "पुनर्नवा × × प्रभृतीनि। उष्णानि स्वादुतिक्तानि वातप्रशमनानि च। तेषु पौनर्नवं शाकं विशेषाच्छोथनाशनम् ॥" ( सु. सू. अ. ४६ )। "पुनर्नवा भवेदुष्णा तिक्ता रूक्षा कफापहा। सशोथपाण्डुहृद्रोगकासोरःक्षतशूलनुत् ॥" ( ध. नि. )। "रक्ता पुनर्नवा तिक्ता सारिणी शोफनाशिनी। रक्तप्रदरदोषघ्नी पाण्डुपित्तविमर्दिनी ॥" ( रा. नि. )।

पुनर्नवा मधुर, तिक्त, सारक, रूक्ष, स्वेदोपग, अनुवासनोपग, कासहर, वयःस्थापन, उष्णवीर्य तथा वात, कफ, शोथ, रक्तप्रदर, पाण्डुरोग, हृद्रोग, उरःक्षत और शूलको दूर करनेवाली है।

**नव्यमत**—पुनर्नवा दीपन, विरेचन, मूत्रविरेचन, स्वेदजनन, कफघ्न, वामक और शोथहर है। पुनर्नवासे मूत्रपिण्डको कुछ भी त्रास न होकर मूत्रका प्रमाण दूना बढ़ता है। मूत्रजनन गुण आधा तोलाकी मात्रामें देनेसे ही होता है। कफघ्न गुण थोड़ी-थोड़ी बार-बार देनेसे देखनेमें आता है। वमन होनेके लिये ४० रत्तीकी मात्रा १-२ बार देनी पड़ती है। इससे उलटीके साथ विरेचन होकर दोनों मार्गोंसे कफ बाहर निकल जाता है। पुनर्नवाका स्वेदजनन गुण अल्प है। इसका असर हृदयपर अल्प प्रमाणमें, धीरे-धीरे परंतु स्पष्ट होता है। इससे हृदयकी संकोचन क्रिया बढ़ती है, रक्त जोरसे धमनियोंमें जाता है, रक्तका दबाव बढ़ता है और सिराओंसे हृदयमें रक्त अधिक शोषण होता है, यह क्रिया डिजिटेलिसके समान है। रक्तका दबाव बढ़नेसे पेशावका प्रमाण बढ़ता है और शरीरमें जमा हुआ पानी कम होता है। इसलिये पुनर्नवाको **शोथघ्नी** कहा गया है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

## अपामार्गादि वर्ग ७२.

## N. O. Amaranthaceæ. ( ॲमेरेन्थेसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश; पर्ण सादे, उपपत्ररहित, अभिमुख अथवा एकान्तर; पुष्प गुच्छोंमें शाखाग्र या पत्रकोणसे निकलते हैं; फल शुष्क, स्थायी और कोशके अंदर ढका हुआ होता है।

---

## (२५९) अपामार्ग।

**नाम—**(सं.) अपामार्ग, शिखरी, किणिही, प्रत्यक्पुष्पा, मयूरक, खरमञ्जरी; (पं.) पुठकंडा; (हिं.) चिरचिटा, लटजीरा; (कु.) साजी; (मा.) आंधीझाड़ो, ओंगा; (बं.) आपाङ्; (म.) आघाडा; (गु.) अघेडो; (ले.) ॲचिरेन्थस् एस्पेरा (Achyranthes aspera)।

**वर्णन—**अपामार्ग भारतवर्षमें सर्वत्र होता है। इसकी दो जातियाँ होती हैं (१) श्वेत और (२) रक्ताभ। **उपयुक्त अंग—**मूल, बीज, पञ्चाङ्ग और पञ्चाङ्गका क्षार।

**गुण-कर्म—**चरकके शिरोविरेचनद्रव्येषु (सू. अ. २); क्रिमिघ्ने, शिरोविरेचनोपगे, वमनोपगे च महाकषाये (सू. अ. ४); तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) अर्कादिगणे ('मयूरक'नाम्ना) अपामार्गः पठ्यते। "प्रत्यक्पुष्पा शिरोविरेचनानाम्।" (च. सू. अ. २५)। "अपामार्गस्तु तिक्तोष्णः कटुकः कफनाशनः। अर्शःकण्डूदरामघ्नो रक्तहृद्ग्राहिवान्तिकृत्॥" (ध. नि.)। "अपामार्गः कटुस्तिक्तस्तीक्ष्णोष्णो दीपनः सरः। पाचनो रोचनश्छर्दिकफमेदोनिलापहः॥ निहन्ति शूलहिध्मार्शोदद्रूकण्डूदरापचीः॥" (कै. नि.)।

अपामार्ग कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, दीपन, पाचन, सारक, रोचक, वमन करानेवाला, ग्राही, शिरोविरेचन (बीजतण्डुल) तथा कफ, मेद, वात, अर्श, कण्डू, उदर, आम, शूल, हिक्का और अपचीका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत—**अपामार्ग तिक्त, कटु, तीक्ष्ण, दीपन, अम्लतानाशक, रक्तवर्धक, शोधन, अश्मरीघ्न, मूत्रजनन, मूत्राम्लतानाशक, स्वेदजनन, कफघ्न और पित्तसारक है। भोजनके पहले अपामार्ग देनेसे आमशयका पाचक रस बढ़ता है और आमाशयकी पीड़ा कम होती है। भोजनके बाद देनेसे आमाशयमें अम्लता कम होती है और कफ विलीन होता है। अपामार्गसे यकृत्की पित्तवाहिनियोंका शोथ कम होता है, यकृत्की क्रिया सुधरती है और यकृतमें रक्तसंचार ठीक होने लगता है। इसलिये पित्ताश्मरी और अर्शमें अपामार्ग देते हैं। अपामार्गके अन्तर्गत क्षार रक्तमें शीघ्र मिल जाता है, रक्तके रञ्जक कण बढ़ते हैं, रक्तका रंग सुधरता है और रक्तोदकका क्षार धर्म बढ़ता है। रक्तमें मिला हुआ क्षार मूत्रपिंड(गुर्दे), त्वचा, फुप्फुस, आमाशय, यकृत् और पित्तके द्वारा बाहर आता है और जिन जिन अवयवोंद्वारा बाहर आता है उनकी जीवनविनिमयक्रिया सुधारता है। अपामार्ग तरुण और जीर्ण आमवात, संधिशोथ, गण्डमाला, मूत्रपिंडोदर, हृदयोदर, अश्मरी, बस्तिशोथ, मूत्रपिंडशोथ, श्वासनलिकाशोथ, प्लीहावृद्धि और यकृद्वृद्धि इन रोगोंमें हितकर है। रतौंधीमें अपामार्गमूलचूर्ण ॥–१ तोला रातको सोते समय दूधके साथ देना और रोगीको पौष्टिक आहार खानेको देना लाभप्रद है। आँखकी फूलीमें अपामार्गमूल शहदमें घिसकर लगाते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

# चुक्रादिवर्ग ७३.

## N. O. Polygonaceæ. ( पोलिगोनेसी ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश; काण्ड गोल; पर्ण एकान्तर, सवृन्त; पुंकेशर ५–९, एक किंवा दो चक्रोंमें; बीजकोश २–३ खंडवाला, उपरिस्थ ।

---

### ( २६० ) चुक्र ।

**नाम**—( सं. ) चुक्र; ( हिं. ) चूका; ( बं. ) चुकापालङ्; ( म. ) चाकवत; ( गु. ) चुको, खाटी भाजी; ( अ. ) ह(हु)म्माज; ( ले. ) रुमेक्स् वेसिकेरिअस् ( Rumex vesicarius ) ।

**वर्णन**—चूका भारतवर्षमें सर्वत्र होता है । इसका साग बनाकर खाते हैं । स्वाद खट्टा होता है । चूकाके बीजोंका यूनानी वैद्यकमें '**तुख्म हुम्माज**'के नामसे व्यवहार होता है ।

**गुण-कर्म**—"**चुक्रं स्यादम्लपत्रं तु लघूष्णं वातगुल्मनुत् । रुचिकृद्दीपनं पथ्य-मीषत्पित्तकरं मतम् ॥" ( रा. नि. )** ।

चूका लघु, उष्णवीर्य, रुचिकर, दीपन, पथ्य, किंचित् पित्तकर और वातगुल्मको दूर करनेवाला है ।

**नव्यमत**—चूका शीतल, दीपन, शोथघ्न, वेदनास्थापन और स्रंसन है । चूका पचननलिकाके दाह और आँवमें तथा उलटी बंद करने और भूख लगानेके लिये देते हैं । सूजन और वृश्चिकदंशपर पत्तियोंका लेप करते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** ) ।

**यूनानी मत-चूका** पहले दर्जेमें शीत, दूसरे दर्जेमें रूक्ष, ग्राही, दाहप्रशमन, वेदनास्थापन और उष्णयकृद्बलदायक है । पित्तातिसार, पैत्तिक वमन, पित्तप्रकोप, तृष्णा और कामलामें चूका गुणकर है । **चूकाके बीज ( तुख्म हुम्माज )** ग्राही, क्लेसदार, चिपकनेवाला और दाहप्रशमन है । पित्तोद्वेग, उष्ण हृत्स्पंदन, कामला, आमाशयशोथ, मूत्रमार्गका दाह, अन्त्रव्रण और पित्तातिसारमें चूकाके बीजोंका उपयोग करते हैं । **मात्रा**—३–५ माशा ।

---

### ( २६१ ) रेवंदचीनी ।

**नाम**—( सं. ) पीतमूला, अम्लपर्णी; ( पं. ) रयोंदचीनी; ( का. ) पम्बचालन; ( गढ़वाल ) आर्चा; ( कु. ) डोलु; ( ने. ) पद्म(द)मचाल; ( हिं. ) रेवंदचीनी; ( बं. ) रेउचिनि; ( गु. ) रेवन(न्द)चीनी; ( अ., फा. ) रेवंद, रावंद, रेवास; ( ले. ) ह्रिअम् इमोडी ( Rheum emodi ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—भारतवर्षमें ७०००—१२००० फुटकी ऊँचाई पर कश्मीरसे नेपाल तक तथा तातार, खोतान ( खता ), सिक्किम और चीन।

**वर्णन**—**रेवंद** फारसी नाम है। यह ईरान, अरबस्तान आदिमें चीन और खता (खोतान) से जाती थी इसलिये हकीमोंने इसका नाम **रेवंदचीनी** या **रेवंदखताई** रखा। बाजारमें इसके भूरे पीले रंगके मूल मिलते हैं। चबानेसे थूक पीला हो जाता है, स्वाद तिक्त और कषाय होता है। इसकी शाखायें और पत्तियाँ खट्टी होती हैं। शाखाओंको सुखा, वेणी जैसे गूंथकर **अमलबेतके** नामसे बेचते हैं। इसकी एक छोटी जात कश्मीरमें होती है, उसको **रेवास** कहते हैं।

**गुण-कर्म**—रेवंदचीनी तिक्त, दीपन, छोटी ( २–१० ग्रेन ), मात्रामें ग्राही यकृदुत्तेजक और सारक है; बड़ी ( १५–३० ग्रेन ) मात्रामें रेचक है। थोड़ी मात्रामें देनेसे लालारस और आमाशयरस बढ़ता है, भूख लगती है, अन्न पचता है और यकृत्को उत्तेजन मिलनेसे पित्तस्राव ठीक होता है। छोटी मात्रामें देनेसे इसका गुण स्पष्ट देखनेमें आता है। बड़ी मात्रामें देनेसे जुलाब होते हैं। इससे बड़ी आँतोंकी गति बढ़कर ६–८ घंटेमें विरेचन होने लगता है और पेटमें मरोड़ आते हैं। विरेचन होनेके बाद इसकी ग्राही क्रिया आरम्भ होती है और जुलाब अपने आप बंद हो जाता है, इससे मूत्रका रंग गाढ़ा ( लाल ) होता है। वातरक्तके रोगीको विरेचनके लिये रेवंदचीनी प्रशस्त औषध है। अर्शके रोगीको रेवंदचीनीके जुलाबसे लाभ होता है। छोटे बच्चोंको पेटमें दूध न पचकर सड़नेसे और अम्लता बढ़नेसे दस्त होते हैं। ऐसी स्थितिमें रेवंदचीनी देनेसे सड़ा हुआ दूध विरेचनद्वारा निकल जाता है, अम्लता कम हो जाती है और जुलाब अपने आप बंद हो जाते हैं। पहले जुलाब लाकर पीछेसे कब्ज करनेवाले दो औषधद्रव्य हैं—एक एरंडतैल और दूसरा रेवंदचीनी। परंतु एरंडतैल क्षारस्वभावी न होनेसे उससे पेटकी अम्लता नष्ट नहीं होती और रेवंदचीनीसे अम्लता नष्ट होती है। रेवंदचीनीका क्षारस्वभाव अल्प है इसलिये इसके साथ थोड़ा शुद्ध सर्जिकाक्षार ( सोडा बाई कार्ब ) मिलाना चाहिये। रेवंदचीनीसे पेटमें मरोड़ होता है, इसलिये इसके साथ शुंठी ( और सौंफ ) जैसे सुगंधि द्रव्य मिलाने चाहिये। रेवंदचीनीको जलमें पीसकर सूजन पर लगानेसे सूजन उतरती है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

**यूनानी मत**—रेवंदचीनी बाह्यप्रयोगसे लेखन, शोथविलयन और वेदनाहर है। अल्प प्रमाणमें अंतःप्रयोगसे कफनिःसारक, आमाशय और अन्त्रको शक्ति देनेवाली, वातानुलोमन, यकृदुत्तेजक, मूत्रल और आर्तवजनन है। अधिक प्रमाणमें देनेसे पतले और पीले रंगके दस्त लाती है, परन्तु अन्तमें कब्ज करती है।

---

## ईश्वर्यादि वर्ग ७४.

## N. O. Aristolochiaceæ. ( एरिस्टोलोकिएसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश; अधःस्थगर्भाशय; पर्ण सादे, एकान्तर, अवृन्त, उपपर्णरहित; पुंकेशर ६, स्त्रीकेशरनलिकाके नीचे चक्राकारमें लगे हुए; गर्भाशय ६ खंडवाला; फल नीरस, ६ खंडवाला; प्रत्येक खंडमें पुष्कल बीज होते हैं।

---

### ( २६२ ) ईश्वरी।

**नाम**—( सं. ) नाकुली, ईश्वरी; ( हिं. ) ईश्वरमूल; इसरमूल, इशरोल(ड़); ( म. ) सापसण( न ), सापसंद; ( ले. ) एरिस्टोलोकिआ इण्डिका ( Aristolochia indica )।

**वर्णन**—इसरमूलकी बहुवर्षायु लता होती है। **उपयुक्त अङ्ग**—मूल; **मात्रा**—५-१० रत्ती।

**गुण-कर्म**—"नाकुली तुवरा तिक्ता कटुकोष्णा नियच्छति। भोगिलूतावृश्चिकाखुविषज्वरकृमिव्रणान् ॥" ( भा. प्र. )।

इसरमूल कषाय, तिक्त, कटु, उष्णवीर्य तथा सर्प-लूता-विच्छू-चूहा आदिका विष, ज्वर, कृमि और व्रणको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—ईश्वरी कपूरके समान सुगन्धित और अति कड़ई होती है। ईश्वरी कटुपौष्टिक, वातहर, ग्राही, गर्भाशयोत्तेजक, सन्धिशोथघ्न, नाड्युत्तेजक, स्वेदजनन, नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक और विषहर है। ज्वरमें ईशरमूल देनेसे सिरका दर्द और पेशाबकी जलन कम होती है और थकावट न आकर ज्वर उतरता है। सर्व प्रकारके ज्वरमें इसे दे सकते हैं, परंतु विषमज्वर और सूतिकाज्वरमें यह विशेष गुणकारी है। त्रिदोषज ज्वरमें इसको तगरके साथ देनेसे विशेष लाभ होता है। तरुण और जीर्ण आमवात और संधिशोथमें ईशरमूल खिलाते हैं और संधिपर इसका लेप करते हैं। कफज्वरमें ईशरमूलसे खाँसनेकी शक्ति बढ़कर कफ पड़ने लगता है। प्रसवकालमें स्त्रीको कष्ट होता हो तो पीपलामूलके साथ ईशरमूल देते हैं। इससे गर्भाशयका संकोचन होकर शीघ्र प्रसव होता है। प्रसूतिके अनंतर ईशरमूल देनेसे दूषित रक्त साफ गिर जाता है। अनार्तव और पीडितार्तवमें ईशरमूल देते हैं। ईशरमूलसे आमाशयकी पाचनशक्ति बढ़ती है और आँतोंकी शिथिलता कम होती है। बालकोंको दंतोद्गमके समयमें ज्वर, उलटी और जुलाब होते हों तो ईशरमूल देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

### (२६३) कीटमारी।

**नाम**—(सं.) कीटमारी, धूम्रपत्रा; (गु.) कीड़ामारी; (मा.) गंधण, कीड़ामारी; (ले.) एरिस्टोलोकिआ ब्रॅक्टिएटा (Aristolochia bracteata)।

**वर्णन**—कीड़ामारीकी १–२ फुटतक जमीनपर फैलनेवाली लता वर्षाऋतुमें होती है। पर्ण १–३ इंच लंबे, १–२ इंच चौड़े; पुष्प जामुनी रंगके; फल ½—१ इंच लंबा, ½ इंच चौड़ा और ६ फांकवाला होता है। समग्र लताका स्वाद तिक्त होता है।

**गुण-कर्म**—"धूम्रपत्रा रसे तिक्ता शोथघ्नी कृमिनाशिनी। उष्णा कासहरा चैव रुच्या दीपनकारिणी॥" (रा. नि.)। "वातश्लेष्मज्वरहरा कृमिघ्नी विषनाशिनी।" (शो. नि.)।

कीड़ामारी तिक्त, उष्णवीर्य, रुचिकारक, दीपन तथा वात, कफ, शोथ, कृमि, खाँसी और विषको दूर करनेवाली है।

**नव्यमत**—कीड़ामारी कड़ई, कटुपौष्टिक, स्रंसन, कृमिघ्न, गर्भाशयोत्तेजक, स्वेदजनन, नियतकालिकज्वरप्रतिबंधक और विषघ्न है। कीड़ामारीसे गर्भाशयका संकोचन होता है और शीघ्र प्रसव होता है। अनार्तवमें, विशेषतः स्त्रीको पाण्डुरोग और मलावरोध हो तो कीड़ामारीसे लाभ होता है। कीड़ामारीका ज्वरघ्न और स्वेदजनन गुण प्रशंसनीय है। विषमज्वरमें कीड़ामारी काली मिर्चके साथ देते हैं। कीड़ामारीसे पेटके कृमि मरकर निकल जाते हैं। व्रणान्तर्गत कृमिनाशनार्थ कीड़ामारीका रस व्रणपर लगाते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**उपयुक्त अंग**—पञ्चाङ्ग। **मात्रा**—१॥–३ माशा।

---

## पिप्पल्यादि वर्ग ७५.

### N. O. Piperaceæ. (पाइपरेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश; कांड मुड़नेवाला, आधार मिलनेपर ऊपर चढ़ने वाला; पर्ण अखण्ड, एकान्तर, हृदयाकृति; पुष्प छोटे, कांडपर एकस्थानपर जमे हुए, पत्रकोण या पत्रके सामनेसे निकलते हैं।

---

### (२६४) पिप्पली।

**नाम—फल** (सं.) पिप्पली, कणा, मागधी; (हिं.) पीपल; (पं.) मगां; (बं.) पिपुल; (म.) पिंपळी; (गु.) पीपळ(र), लिंडी पीपर; (अ.) दार फिल्फिल; (फा.) फिल्फिल दराज़; (ले.) पाइपर् लोंगम् (Piper longum)।

**मूलनाम**—पिप्पलीमूल, कणामूल, ग्रन्थिक; (हिं) पीपलामूल; (म.) पिंपळीमूल; (गु.) पीपळा(रा)मूळ; पीपरगंठोडा। (अ.) फिल्फिलमूयः; (फा.) बेख फिलिफल् दराज़।

**वर्णन**—पीपलकी दो जातियाँ बाजारमें मिलती हैं—(१) **छोटी पीपल** या **पीपल** और (२) **बड़ी पीपल** या **गजपीपल**। गजपीपलके काण्डको **चव्य** या **चविका** कहते हैं। छोटी पीपलके मूलको **पीपलामूल** कहते हैं।

**उपयुक्त अंग**—फल और मूल। **मात्रा**–५–१० रत्ती।

**गुण-कर्म**—**चरके** (सू. अ. २) शिरोविरेचनद्रव्येषु, वमनद्रव्येषु तथा (सू. अ. ४) दीपनीये, तृप्तिघ्ने, हिक्कानिग्रहणे, कासहरे, शूलप्रशमने च महाकषाये पिप्पली पठ्यते। **सुश्रुते** (सू. अ. ३८) पिप्पल्यादिगणे तथा (सू. अ. ३९) ऊर्ध्वभागहरे, शिरोविरेचने च गणे पिप्पली पठ्यते। "पिप्पलीमूलं दीपनीयपाचनीयानाहप्रशमनानाम्।" (च. सू. अ. २५)। "श्लेष्मला मधुरा चार्द्रा गुर्वी स्निग्धा च पिप्पली। सा शुष्का कफवातघ्नी कटूष्णा वृष्यसंमता॥" (च. सू. अ. २७)। "तेषां गुर्वी स्वादुशीता पिप्पल्यार्द्रा कफावहा। शुष्का कफानिलघ्नी सा वृष्या पित्ताविरोधिनी॥" (सु. सू. अ. ४६)। "पिप्पली दीपनी वृष्या स्वादुपाका रसायनी। अनुष्णा कटुका स्निग्धा वातश्लेष्महरी लघुः॥ पिप्पली पाचनी हन्ति वातश्लेष्मोदरज्वरान्। कुष्ठप्रमेहगुल्मार्शःप्लीहशूलाममारुतान्। दीपनं पिप्पलीमूलं कटूष्णं पाचनं लघु। रूक्षं पित्तकरं भेदि कफवातोदरापहम्॥ आनाहप्लीहगुल्मघ्नं कृमिश्वासक्षयापहम्॥" (भा. प्र.)।

पीपल कटु, मधुरविपाक, स्निग्ध, अनुष्णाशीत, लघु, दीपन, पाचन, वृष्य, रसायन, शिरोविरेचन, ऊर्ध्वभागदोषहर, पित्तको न बढ़ानेवाली तथा कफ, वात, तृप्ति, हिक्का, खाँसी, शूल, उदररोग, ज्वर, कुष्ठ, प्रमेह, गुल्म, अर्श, प्लीहरोग और आमवातका नाश करनेवाली है। पीपलामूल कटु, उष्णवीर्य, लघु, रूक्ष, दीपन, पाचन, पित्तकर, भेदन तथा कफ, वात, उदर, आनाह, प्लीहरोग, गुल्म, कृमि, श्वास और क्षयका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—पीपल उष्ण, वातहर, श्वासहर, दीपन, नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक और गर्भाशयसंकोचक है। काली मिर्चकी क्रिया जैसे पचनेन्द्रियपर विशेष होती है वैसे पीपलकी क्रिया फुप्फुस और गर्भाशयपर विशेष होती है। शीत और कफप्रधान रोगोंमें पीपलसे लाभ होता है। प्रसव होनेमें विलम्ब होता हो तो पीपलामूल, ईशरमूल और हींग नागरपानके साथ देते हैं। इससे आवीका जोर बढ़कर शीघ्र प्रसव हो जाता है। प्रसवके अनंतर पीपलामूलका फांट देनेसे जरायु आसानीसे गिर जाता है। प्रसूतिज्वर, शीतज्वर, आमवात, गृध्रसी और कफज्वरमें पीपल शहदके साथ देते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**यूनानीमत**—पीपल दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, दीपन, वातानुलोमन, वाजीकर, उष्णताजनन और श्वयथुविलयन है। अग्निमान्द्य, उदरशूल, आनाह, कास, श्वास, आमवात, गृध्रसी तथा अन्य कफज व्याधियोंमें पीपल देते हैं।

---

## (२६५) नागवल्ली।

**नाम**—(सं.) नागवल्ली, ताम्बूलवल्ली; (म.) नागवेल; (गु., मा.) नागरवेल; (अ., फा.) तंबूल; (ले.) पाइपर् बीटल् (Piper bettle)।

इसके पत्तोंको उत्तरभारतकी सब भाषाओंमें **पान** कहते हैं।

**वर्णन**—पान भारतवर्षमें सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसपर चूना और कत्था लगाकर सुपारी, इलायची, सोंफ आदिके साथ इसको मुँहमें रखकर चबाते हैं।

**गुण-कर्म**—"ताम्बूलपत्रं तीक्ष्णोष्णं कटु पित्तप्रकोपणम्। सुगन्धि विशदं स्वर्यं तिक्तं वातकफापहम्॥ स्रंसनं कटुकं पाके कषायं वह्निदीपनम्। वक्त्रकण्डूमलक्लेददौर्गन्ध्यादिविनाशनम्॥" (सु. सू. अ. ४६)। "नागवल्ली कटुस्तीक्ष्णा तिक्ता पीनसवातजित्। कफकासहरा रुच्या दाहकृद्दीपनी परा॥" (रा. नि.)।

पान कटु, तिक्त, कषाय, कटुविपाक, उष्णवीर्य, सुगन्धि, विशद, स्वर(आवाज)को सुधारनेवाला, दीपन, रुचिकर, दाहकर, पित्तप्रकोपक तथा वात, कफ, मुँहके कंडू-मल-क्लेद और दुर्गन्ध, पीनस और खाँसीका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—पानमें एक प्रकारका सुगन्धि और उष्णतासे उड़नेवाला तैल होता है। इस तेलमें फीनोल और टार्पिन होता है। पान उत्तम दीपन, पाचन, श्लेष्मघ्न, शोथघ्न, वेदनास्थापन और व्रणरोपण है। पानका रस उत्तम पूतिहर है। कारबॉलिक एसिडसे भी यह अधिक जन्तुघ्न है और कफप्रधान रोगोंमें बहुत उपयुक्त होता है। दमा, फुप्फुसनलिकाशोथ और श्वासमार्गद्वारशोथमें पानका रस देते हैं। कंठरोहिणी-(डिप्थेरिआ) में पानका रस गरम पानीमें डालकर कुल्ला करानेसे जन्तुओंका नाश होता है, गलेकी सूजन कम होती है और कफ छुटता है। भोजनके बाद पान खानेसे लालाका प्रमाण बढ़कर आमाशयको उत्तेजना मिलती है। पान गरम करके सूजी हुई ग्रन्थिपर बाँधनेसे सूजन और पीड़ा कम होती है। स्तनशोथपर पान गरम करके बाँधनेसे दूध नष्ट होता है और शोथ उतरता है। **मात्रा**- स्वरस ½ से १ तोला (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## (२६६) मरिच।

**नाम**—(सं.) मरि(री)च, ऊषण, कटुक, कोल; (हिं.) काली मिर्च, गोल मिर्च, मिरिच; (बं.) गोल मरिच; (म.) मिरीं; (गु.) मरी, कालामरी,

तीखा; (अ.) फिल्फिल अस्वद; (फा.) फिल्फिल स्याह; (ले.) पाइपर् नाईग्रम् (Piper Nigrum)।

**वर्णन**—मलबार और कोंकणमें काली मिर्चकी खेती की जाती है। पके हुए फलोंको पानीमें भिगो, ऊपरका काला छिलका निकालकर **सफेद मिर्च**के नामसे बेचते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. २) शिरोविरेचनद्रव्येषु तथा (सू. अ. ४) दीपनीये, कृमिघ्ने, शूलप्रशमने च महाकषाये मरिचं पठ्यते। सुश्रुते (सू. ३८) पिप्पल्यादिगणे, त्र्यूषणगणे च मरिचं पठ्यते। "स्वादुपाक्यार्द्रमरिचं गुरु श्लेष्मप्रसेकि च। कटूष्णं लघु तच्छुष्कमवृष्यं कफवातजित्॥ नात्युष्णं नातिशीतं च वीर्यतो मरिचं सितम्। गुणवन्मरिचेभ्यश्च चक्षुष्यं च विशेषतः॥" (सु. सू. अ. ४६)। "नात्यर्थमुष्णं मरिचमवृष्यं लघु रोचनम्। छेदित्वाच्छोषणत्वाच्च दीपनं कफवातजित्॥" (च. सू. अ. २७)। "मरिचं कटु तीक्ष्णोष्णं लघु श्लेष्मविनाशनम्। समीरकृमिहृद्रोगहरं च रुचिकारकम्॥" (रा. नि.)।

**काली मिर्च**—कटु, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, लघु, अवृष्य, रोचन, छेदन, शोषण, दीपन, शिरोविरेचन, कृमिघ्न, शूलप्रशमन तथा कफ, वात और हृद्रोगका नाश करनेवाली है। सफेद मिर्च उष्णता और शीततामें मध्यम (न अति उष्ण, न अतिशीत), काली मिर्चसे विशेष गुणकारक और नेत्रके लिये हितकर है। ताजी (आर्द्र) मिर्च मधुरविपाक, गुरु और और कफका स्राव करानेवाली है।

**नव्यमत**—काली मिर्चके छिलकेमें एक रालसदृश पदार्थ है जो पानीमें विलेय है और दूसरा बाष्पके साथ उड़नेवाला तैल होता है; सफेद मिर्चके छिलके निकाले हुऐ होते हैं इसलिये उसमें कटुता कम होती है। काली मिर्च उष्ण, दीपन, वातनाशक, नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक, उत्तेजक तथा मूत्रेन्द्रिय और उत्तरगुदके लिये उत्तेजक है। कुपचन और आध्मानमें काली मिर्च गुणकारक है। उत्तरगुदपर इसकी क्रिया विशेष होती है। इसलिये इससे अर्शमें लाभ होता है। काली मिर्च मूत्रपिंडके लिये उत्तेजक है इसलिये इससे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है। शीतज्वरमें ज्वर आनेके पहले काली मिर्च देनेसे रोगीको अच्छा मालूम होता है। परंतु इसमें ज्वरघ्न गुण अल्प है, इसलिये इसके साथ अन्य ज्वरघ्न औषध देना चाहिये (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**यूनानी मत**—काली मिर्च तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क; बाह्यप्रयोगसे प्रथमतः लेखन, रक्ताकर्षण और संक्षोभक परंतु अन्ततः अवसादक; चबानेसे लालास्रावजनक; आन्तरिक प्रयोगसे नाड़ीबलदायक, दीपन पाचन, यकृद्बलवर्धन, वातानुलोमन, मूत्र और आर्तवप्रवर्तक तथा कफनिःसारक है।

---

## (२६७) कंकोल्ल ।

**नाम**—(सं.) कंकोल(ल्ल); (हिं.) कबाबचीनी, शीतलचीनी, शीतलमिर्च; (गु.) चणकबाब; (बं.) काबाबचिनि; (अ.) कबाबेसीनी, हब्बुल उरूस; (फा.) कबाबः, कबाबचीनी; (ले.) पाइपर् क्युबेबा (Piper cubeba)।

**उत्पत्तिस्थान**—सुमात्रा, जावा, मलाया आदि ।

**वर्णन**—कबाबचीनीके काली मिर्चके तुल्य सवृन्त फल बाजारमें मिलते हैं। इनको चबानेसे मनोरम तीक्ष्ण गंध आती है, स्वाद कडुआ तथा चरपरा और जीभ ठंढी मालूम होती है ।

**गुण-कर्म**—"कङ्कोल्लं कटु तीक्ष्णोष्णं वक्त्रजाड्यहरं परम् । दीपनं पाचनं रुच्यं कफवातनिकृन्तनम् ॥" (रा. नि.)। "कङ्कोल्लकं × कटु तिक्तं कफापहम् । लघु तृष्णापहं वृष्यं वक्त्रदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥" (सु. सू. अ. ४६)।

कबाबचीनी कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, लघु, दीपन, पाचन, रुचिकर, वृष्य तथा कफ, वात, तृषा एवं मुखकी जड़ता और दुर्गन्धका नाश करनेवाली है ।

**नव्यमत**—कबाबचीनी कफघ्न, उत्तेजक, पूतिहर, मूत्रजनन, वातनाशक और दीपन है । इसकी क्रिया श्लेष्मल कलापर विशेषतः मूत्रमार्ग और गुदापर होती है। श्वासमार्गकी श्लेष्मल कलापर इसकी थोड़ी बहुत उत्तेजक क्रिया होती है। पुराने सुजाक (पूयमेह) और अर्शमें यह उत्तम औषध है। पुराने कफरोगमें कबाबचीनी उत्तेजक कफघ्न क्रिया करती है। गलेकी शिथिलता और मुखपाकमें कबाबचीनी मुँहमें रखनेको देते हैं। नाकके भीतरका कफ कम होनेके लिये कबाबचीनीका नस्य देते हैं। (डॉ. वा. ग. देसाई)। सुजाकमें कबाबचीनीका तेल शक्करमें मिलाकर देते हैं। कबाबचीनीमें १० प्रतिशत उड़नेवाला तैल, दो प्रकारकी राल और **क्युबेबिन्** नामका दानेदार वीर्य होता है ।

**यूनानी मत**—कबाबचीनी दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, दोषोंको पतला करनेवाली, प्रमाथी, श्वयथुविलयन, दीपन, दाँतों और मसूढ़ोंको बलप्रद, स्वरशोधक, मूत्रल, आर्तवजनन, वातानुलोमन, मुखदौर्गन्ध्यहर, शोणितोत्क्लेशक और ध्वजोच्छ्राय-जनक है ।

**मात्रा**—बीजचूर्ण-१-३ माशा, तैल ५-२० बिंदु ।

**उपयुक्त अंग**—बीज और तैल ।

---

## जातीफलादि वर्ग ७६.

## N. O. Myristicaceæ. (माइरिस्टिकेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश; पर्ण एकान्तर, अखण्ड, उपपत्ररहित; पुष्प श्वेतरंगके; पुष्पबाह्यकोशके दल ३; पुंकेशर १०; बीजकोश १ खंडवाला; फल मांसल; बीज बड़े और प्रचुरतैलयुक्त।

---

### (२६८) जातीफल।

**नाम-बीज**— (सं.) जातीफल; (हि., बं.) जायफल; (पं.) जयफल; (म., गु.) जायफळ; (अ.) जौजबुवा; (फा.) जौजबुया। **कोश**—(सं.) जातीकोश, जातिपत्री; (हिं.) जायपत्री, जावित्री। (पं.) जयपत्री, जवित्री; (म.) जायपत्री; (गु.) जावंत्री; (बं.) जैत्री; (अ.) बस्बास; (फा.) बज्बाज। वृक्षको लेटिनमें माइरिस्टिका फ्रॅग्रेन्स् (Myristica fragrans) कहते हैं।

**वर्णन**—जायफल और जावित्री सर्वत्र बाजारमें मिलते हैं और प्रसिद्ध हैं। इसकी एक जाति सुगन्धरहित होती है; उसके फलको **रामफल** और कोशको **रामपत्री** कहते हैं। औषधके लिये नया, सुगन्धी, वजनदार और तैलयुक्त जायफल काममें लेना चाहिये।

**गुण-कर्म**—"जातीकोशोऽथ कर्पूरं जातीकटुकयोः फलम्। ×× तिक्तं कटु कफापहम्। लघु तृष्णापहं वक्त्रक्लेददौर्गन्ध्यनाशनम्॥" (सु. सू. अ. ४६)। "जातीफलं कषायोष्णं कटु कण्ठामयार्तिजित् वातातिसारमेहघ्नं लघु वृष्यं च दीपनम्॥" (ध. नि.)। "जातीफलं रसे तिक्तं तीक्ष्णोष्णं रोचनं लघु। कटुकं दीपनं ग्राहि स्वर्यं श्लेष्मानिलापहम्॥ निहन्ति मुखवैरस्यमलदौर्गन्ध्यकृष्णताः। कृमिकासवमिश्वासज्वरपीनसहृद्रुजः॥ जातीपत्री लघुः स्वादुः कटूष्णा रुचिवर्णकृत्। कफकासवमिश्वासतृष्णाकृमिविषापहा॥" (भा. प्र.)।

**जायफल** तिक्त, कटु, कषाय, उष्णवीर्य, लघु, तीक्ष्ण, वृष्य, दीपन, रुचिकर, ग्राही, स्वरके लिये हितकर तथा कफ, वात, तृषा, मुँहका क्लेद-दुर्गन्ध और वैरस्य, कृमि, खाँसी, वमन, श्वास, ज्वर, पीनस, कण्ठके रोग, अतिसार, प्रमेह और हृद्रोगका नाश करनेवाला है। **जावित्री** तिक्त, कटु, मधुर, उष्णवीर्य, लघु, रुचिकर, वर्णकर तथा कफ, तृषा, मुखका क्लेद और दुर्गन्ध, खाँसी, वमन, श्वास, कृमि और विषको दूर करनेवाली है।

**नव्यमत**—**जायफल** सुगंधि, दीपन, वातहर, वेदनास्थापन, उत्तेजक, मादक, पौष्टिक और वाजीकर है। इससे आमाशयका पाचक रस बढ़ता है, भूख लगती है,

और अधोवायु सरता है। बड़ी मात्रामें जायफल जोरदार कैफी (नशा लानेवाला) है। मस्तिष्कके ऊपर इसकी कपूरके समान क्रिया होती है। **जावित्री** वेदनास्थापन है। पेटका दर्द, ऐंठन और अतिसारमें जायफल सेंक कर देते हैं। सिरका दर्द और प्रसवोत्तरकालीन कमरके दर्दमें जायफल पानी या मद्यमें घिसकर लगाते हैं। पुराने संधिशोथमें जावित्रीके तेलकी मालिश करते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**यूनानी मत**—**जायफल** दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, सौमनस्यजनन, बल्य, मुखदौर्गन्ध्यहर, वाजीकर, संग्राही, स्वापजनन, दीपन, वातानुलोमन और शीघ्र वीर्यस्खलनको दूर करनेवाला है। **जावित्री**–दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, दीपन, पाचन, उष्णताजनन, वातानुलोमन, किंचित् संग्राही, सौमनस्यजनन, श्वयथुविलयन, रूक्षण, द्रवशोषणकर्ता, वाजीकर, गर्भाशयसंशोधक, बल्य और कोथप्रतिबन्धक है।

**उपयुक्त अंग**—बीज (जायफल) और बीजके ऊपरका कोश (जावित्री)।

**मात्रा**—४ रत्तीसे १ माशा।

---

## कर्पूरादि वर्ग ७७.

### N. O. Lauraceæ. (लोरेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश; पर्ण उपपत्ररहित, सादे, तैलग्रन्थियुक्त, सदाहरित; पुष्प शाखाग्रोद्भूत; पुंकेशर २–३; फल मांसल।

---

### (२६९) कर्पूर।

**नाम**—(सं.) कर्पूर, घनसार, चन्द्र; (हिं., म., गु.) कपूर; (अ.) काफ़ूर; (फा.) कापूर; (ले.) सिनेमोम् केम्फोरा (Cinnamum camphora)।

**वर्णन**—कर्पूरके नामसे भारतवर्षमें तीन भिन्न भिन्न वर्गकी वनस्पतियोंसे प्राप्त उड़नेवाला द्रव्य मिलता है। (१) **भीमसेनी कपूर** अथवा **बरास कपूर**, (२) **चीनी** अथवा **जापानी कपूर** और (३) **पत्री कपूर (हिंदुस्तानी कपूर)**। भीमसेनी कपूरका वर्णन इसी खण्डमें पृ. १०७, १०८ पर दिया गया है। पत्री कपूर भारतवर्षमें कुकुरौंधासे बनाया जाता है। भीमसेनी कपूर इस समय बाजारमें प्रायः कृत्रिम मिलता है, अतः औषधमें जापानी कपूरका व्यवहार करना अच्छा है।

**गुण-कर्म**—"धार्याण्यास्येन वैशद्यरुचिसौगन्ध्यमिच्छता। × × × कर्पूरनिर्यासः × ×।" (च. सू. अ. ५)। "कर्पूरं कटु तिक्तं च मधुरं शिशिरं विदुः। तृण्मेदोविषदोषघ्नं चक्षुष्यं मदकारकम्॥" (ध. नि.)। "चीनकः कटुकस्तिक्तो

हृद्यः शीतः कफापहः । कण्ठदोषहरो मेध्यः पाचनः क्रिमिनाशनः ॥" (रा. नि.)। "कर्पूरो मधुरस्तिक्तः सुरभिः शीतलो लघुः । चक्षुष्यो लेखनो वृष्यः कफमेदोविषापहः ॥ दाहतृष्णास्यवैरस्यमलदौर्गन्ध्यनाशनः ।" (कै. नि.)।

कपूर कटु, तिक्त, मधुर, लघु, शीतवीर्य, हृद्य, मेध्य, पाचन, सुगन्धी, चक्षुष्य, लेखन, वाजीकर, रुचिकर तथा कफ, तृषा, मेदोरोग, दाह, कण्ठरोग, कृमि और मुखका वैरस्य-मल और दुर्गंधको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—कपूर वातहर, दीपन, पूतिहर, रक्तगत श्वेत कणोंकी वृद्धि करनेवाला, कफघ्न, कासहर, ज्वरघ्न, स्वेदजनन, दाहशामक, वाजीकर (अल्प मात्रामें), कामावसादक (बड़ी मात्रामें), स्तन्यनाशन, नाड्युत्तेजक, संकोचविकासप्रतिबन्धक, हृदयोत्तेजक, हृदयसंरक्षक, रक्तवाहिनीसंकोचक और श्वासहर है। कपूरकी क्रिया मात्राके न्यूनाधिक्यानुसार भिन्न भिन्न होती है। साधारण औषधीय मात्रामें कपूर प्रारम्भमें स्वेदजनन, सार्वाङ्गिक उत्तेजन, नाड्युत्तेजन, रक्ताभिसरणोत्तेजन और श्वासोच्छ्वासोत्तेजन कार्य करता है। पीछे उसके अवसादन, वेदनास्थापन और संकोचविकासप्रतिबन्धक गुण देखनेमें आते हैं। औषधीय मात्रासे अधिक मात्रामें कपूर दाहजनक और मादक विष है। कपूर मुँहमें रखनेसे लालास्राव अधिक होता है, उष्णता उत्पन्न होती है और कुछ समयके बाद मुँहकी श्लेष्मल त्वचामें सुन्नता आती है। कपूर आमाशयमें जानेपर वहाँ उष्णता उत्पन्न होती है, आमाशयकी श्लेष्मल त्वचाका रक्ताभिसरण बढ़ता है, आमाशयरस अधिक उत्पन्न होता है, अन्नका सड़ान (पूतिभाव) कम होता है, पेटमें हवा भरती नहीं और पाचन बढ़ता है। कपूर उत्तम वातहर, दीपन और पूतिहर है। कपूरका कुछ अंश शरीरमें वैसा ही रहता है और कुछ अंश शरीरगत शर्करामें मिल जाता है। कपूरसे शरीरकी उष्णता कम होती है। कपूर त्वचाके मार्गसे बाहर आता है और बाहर आते समय रक्तवाहिनियोंका विकासन होता है और स्वेदग्रन्थियाँ उत्तेजित होती हैं। इन दो कारणोंसे पसीना आता है, त्वचामें कपूरका वास आता है और त्वचा ठंढी मालूम होती है। कपूर कुछ भी रूपान्तर हुए विना फुप्फुसद्वारा उत्सर्जित होता है और कफको पतला और ढीला करता है। श्वासोच्छ्वासके केन्द्रस्थानपर कपूरकी जोरदार उत्तेजक क्रिया होती है और कफ आसानीसे गिरने लगता है। कपूरकी खुद हृदयपर और हृदयगतनाड़ीकेन्द्रपर उत्तेजक क्रिया होती है, इसलिये हृदय अपना कार्य ठीक करने लगता है। कपूरसे रक्तवाहिनियोंका संकोचन होता है और धमनीगत रक्तका दबाव बढ़ता है, इससे नाड़ी भरी हुई और जोरसे चलती है। अति उष्णता किंवा कुछ अन्य कारणोंसे हृदयमें कुछ विकृति होती है वह कपूर देते रहनेसे उत्पन्न नहीं होती, इसलिये कपूरको **हृदयसंरक्षक** कहा गया है। मस्तिष्क, सुषुम्णा और नाडियोंपर कपूरकी क्रिया मद्यके समान होती है। नाड़ीतन्त्रके सब स्थानोंपर कपूरकी प्रारम्भमें उत्तेजक और पीछे अवसा-

दक-शामक क्रिया होती है । मात्रा–१–३ रत्ती गोलीके रूपमें देना चाहिये (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (२७०) दालचीनी ।

**नाम**—(सं.) त्वक्, त्वचा, वराङ्ग, भृङ्ग, चोच; (हिं.) दालचीनी, दारचीनी, तज; (म., गु.) तज; (बं.) दारुचिनि; (अ.) दारसीनी, किर्फा; (फा.) दारचीनी; (ले.) सिनेमोमम् झेलेनिकम् (Cinnamomum zeylanicum)।

**वर्णन**—दालचीनी तीन प्रकारकी बाज़ारमें मिलती है—(१) **भारतीय**—इसको हिंदीमें **तज**, बंगालीमें **नालुका**, अरबीमें **सलीखा** और इसके वृक्षको लॅटिनमें **सिनेमोमम् टमाल** (Cinnamomum tamala) कहते हैं । ये वृक्ष चकरोता, गढ़वाल, कुमाऊं आदिमें ५००० से ६००० फुटकी ऊँचाईपर होते हैं। इसकी पत्तीका **तेजपात** या **तमालपत्र** नामसे व्यवहार होता है । इसके अपक्व सूखे फलका '**काला नागकेशर**' नामसे दक्षिण भारतमें व्यवहार होता है । (२) **चीनी**—यह चीन और सिंगापुरसे आती है । (३) **सिंहली**-सिलोनी । सिलोनी सबसे पतली, स्वादमें चीनीसे विशेष मधुर और तेजीमें कम होती है । भारतीय सबसे मोटी, तेजीमें कम और जलके साथ पीसनेसे पिच्छिलतायुक्त हो जाती है । चीनी और सिलोनी दोनोंको **दाल(र)चीनी** कहते हैं । दालचीनीका तेल चीन और सिंगापुरसे आता है ।

**उपयुक्त अंग**—त्वचा और त्वचासे निकाला हुआ तैल । **मात्रा**—त्वचा ५–१५ रत्ती; तैल—२–५ बूँद ।

**गुण-कर्म**—**सुश्रुते** एलादिगणे त्वक्, पत्रकं च पठ्यते । "वराङ्गं लघु तीक्ष्णोष्णं कफवातविषापहम् । कण्ठवक्त्ररुजो हन्ति कृमिहृद्बस्तिशोधनम् ॥" (ध. नि.)। "त्वचं लघूष्णं कटुकं स्वादु तिक्तं च रूक्षकम् । पित्तलं कफवातघ्नं कण्ड्वामारुचिनाशनम् ॥ हृद्रोगबस्तिवातार्शःकृमिपीनसकासजित्" (भा. प्र.)। "वह्निमान्द्यानिलहरमाध्मानाक्षेपनाशनम् । वान्त्युत्क्लेशप्रशमनं संग्राहि दशनार्तिहृत् ॥ त्वाचं तैलं रजःस्रावि तोये क्षिप्तं निमज्जति ।" (आ. सं.)। "पत्रकं मधुरं किञ्चित्तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलं लघु । निहन्ति कफवातार्शोहृल्लासारुचिपीनसान् ॥" (भा. प्र.)।

दालचीनी कटु, मधुर, तिक्त, उष्णवीर्य, लघु, रूक्ष, पित्तकर तथा कफ, वात, विष, कुष्ठ, मुखरोग, कृमि, हृद्रोग, कण्डू, आम, अरुचि, बस्तिके रोग, अर्श, पीनस और खाँसीको दूर करनेवाली है । दालचीनीका तेल ग्राही, आर्तवप्रवर्तक तथा अग्निमान्द्य, वात, आध्मान, आक्षेप, वमन, उत्क्लेश और दाँतका दर्द–इनको दूर

करनेवाला है। तेजपात कुछ मधुर, पिच्छिल, लघु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य तथा कफ, वात, अर्श, हृल्लास, अरुचि और पीनसको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—दालचीनी उष्ण, सुगन्धि, दीपन, पाचन, वातहर, स्तम्भन, गर्भाशयोत्तेजक, शोणितास्थापन, रक्तगत श्वेत कणोंकी वृद्धि करनेवाली और उत्तेजक है। दालचीनीसे आमाशयकी श्लेष्मल त्वचा उत्तेजित होकर जठररस बढ़ता है और अन्नका परिपाक अच्छा होता है। आध्मान, पेचिश ( मरोड़ ) और उलटी बंद करनेके लिये दालचीनीका तेल शक्करमें मिलाकर देते हैं। कृमिदन्तमें दालचीनीके तेलकी १-२ बूँद रूईपर डालकर दाँतके नीचे दबाते हैं। राजयक्ष्माके जन्तुसे उत्पन्न व्रणपर दालचीनीका तेल लगानेसे व्रणकी शुद्धि होती है। राजयक्ष्मा और राजयक्ष्माके कीटाणुओंसे उत्पन्न रोगोंमें दालचीनीका तेल देते हैं। किसी भी अवयवसे होनेवाले रक्तस्रावमें दालचीनीका हिम देते हैं। दालचीनीसे गर्भाशयका संकोचन होता है, इसलिये प्रसवकालमें आवीका वेग बढ़ानेके लिये पीपलामूल और भाँगके साथ तथा अत्यार्तवमें अशोककी छालके साथ दालचीनी देते हैं। तेजपात—कफ और आमप्रधान रोगों तथा पेटमें हवा भरना, पेटका दर्द, अतिसार आदि पाचन संस्थानके रोगोंमें और गर्भाशयकी शिथिलतामें तेजपात देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

**यूनानीमत—दालचीनी** तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, सुगन्धि, दोषोंको पतला करनेवाली, कोथप्रतिबन्धक, कामोत्तेजक, ग्राही और उत्तमांगोंको विशेष बल देनेवाली है। **तेजपात** दूसरे दर्जेमें उष्ण एवं रूक्ष, मनःप्रसादकर, मस्तिष्कबलदायक, दीपन, वातहर, मूत्रल, आर्तवजनन, लेखन, कोथप्रतिबन्धक और शीतल शोथहर है।

---

## ( २७१ ) मैदालकड़ी।

**नाम**—( हिं. ) मैदालकड़ी; ( पं. ) मेदासक; ( मा. ) कर्कमेदा, मैदा लकडी; ( गु., म. ) मेदालकड़ी; ( अ. ) मगासे हिंदी; ( फा. ) किल्ज; ( ले. ) लिट्सिआ चायनेन्सिस ( Litsea chinensis ), लिट्सिआ पोलिएन्था ( Litsea polyantha )।

**वर्णन**—मैदालकड़ीके मध्यम ऊँचाईके सदाहरित वृक्ष होते हैं। औषधके लिये इसकी छालका उपयोग होता है। छाल ऊपरसे धूसरवर्ण, भीतरसे रक्ताभ और मुलायम होती है। छालका चूर्ण पानीमें भिगोनेसे लुआब उत्पन्न होता है।

**यूनानी मत**—मैदालकड़ी दूसरे दर्जेमें उष्ण और पहले दर्जेमें रूक्ष, शोथविलयन, संग्राही, दीपन, नाड़ीबलदायक और कामोत्तेजक है। अस्थिभग्न, मोच, चोट और अंगकी कड़ाईको दूर करनेके लिये इसका लेप करते हैं। कटिशूल, आमवात, गृध्रसी, आक्षेप जैसे कफ-वातज रोगोंमें इसे शहदमें मिलाकर खिलाते हैं।

**नव्यमत**—मैदालकड़ी स्नेहन, किंचित् स्तम्भन और शोथघ्न है। इससे सूक्ष्म रक्तवाहिनियोंका संकोचन होता है, त्वचा मृदु होती है और पीड़ा शांत होती है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**मात्रा**—१–२ माशा।

---

## अगुर्वादि वर्ग ७८.

### N. O. Thymelaeaceæ. (थायमेलिएसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश; गर्भाशय २ खण्ड-वाला; फल शुष्क और विदारी।

---

### (२७२) अगुरु।

**नाम**—(सं.) अगुरु, कृमिजग्ध, लोह; (हिं., म., गु.) अगर; (अ.) ऊद; (ले.) एक्किलेरिआ एगेलोका (Aquilaria agallocha)।

**वर्णन**—बाजारमें अगरकी लकड़ीके श्यामतालिये भूरे रंगके बेडौल टुकड़े मिलते हैं। जो कोयलोंकी आगपर जलानेसे सुगन्धित धुआँ दे, पानीमें डूब जावे और रंगमें काला हो वह अगर उत्तम होता है।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) श्वासहरे, शीतप्रशमने च महाकषाये, तिक्तस्कन्धे (वि. अ. ८), शिरोविरेचनद्रव्येषु (अगुरुनिर्यासः) च अगुरु पठ्यते। सुश्रुते—(सू. अ. ३८) एलादिगणे, सालसारादिगणे तथा (सू. अ. ३९) श्लेष्मसंशमने च वर्गे अगुरु पठ्यते। "रास्नागुरूणि शीतापनयनप्रलेपनानाम्" (च. सू. अ. २५)। "×× अगुरु ×× सारस्नेहास्तिक्तकटुकषाया दुष्टव्रणशोधनाः कृमिकफकुष्ठानिलहराश्च।" (सू. अ. ४५)। "अगुरूष्णं कटु त्वच्यं तिक्तं तीक्ष्णं च पित्तलम्। लघु कर्णाक्षिरोगघ्नं शीतवातकफप्रणुत्॥ कृष्णं गुणाधिकं तत्तु लोहवद्वारि मज्जति॥" (भा. प्र.)।

अगर कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, लघु, तीक्ष्ण, पित्तकर, श्वासहर, शीतप्रशमन, शिरोविरेचन, कफप्रशमन, त्वच्य तथा कर्णरोग, नेत्ररोग, शीत, वात और कफका नाश करनेवाला है। अगरके काष्ठका तैल (इत्र) तिक्त, कटु, कषाय, दुष्टव्रणशोधन तथा कृमि, कुष्ठ, कफ और वायुका नाश करनेवाला है।

**यूनानी मत**—अगर दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, उत्तमांगोंको बल देनेवाला, दीपन, दोषोंको पतला करनेवाला, मुखको सुगन्धित करनेवाला, वाजीकर और वातानुलोमन है। मूत्राशयकी दुर्बलता दूर करने और गर्भकी रक्षाके लिये इसका उपयोग करते हैं।

**नव्यमत**—अगर उत्तेजक और नाड्युत्तेजक है । वातरक्त और आमवातमें अगर खानेको देते हैं और सूजी हुई संधिपर लेप करते हैं । ज्वरमें अगरका फांट देनेसे तृषा कम होती है और स्फूर्ति मालूम होती है । वमन, अतिसार आदि पचननलिकाके रोगोंमें अगरका चूर्ण खिलाते हैं । अगरके लेपसे कण्डू आदि त्वग्रोग और पीड़ा शांत होती है । मात्रा ५–१५ रत्ती ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

अगरके तैलकी १–२ बूँद पानपर लगाकर खानेसे दमामें आराम मालूम होता है।

---

## बन्दाकादि वर्ग ७९.

## N. O. Loranthaceæ. ( लोरेन्थेसी ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश; पर्णविन्यास प्रायः अभिमुख; पर्ण मांसल, अखण्ड किनारीवाले और उपपत्ररहित; पँखड़ियाँ ४–८, विभक्त किंवा संयुक्त; पुंकेशर ४–८; बीजकोश अधःस्थ; फल मांसल, एकबीज अथवा बहुबीज । इस वर्गके उद्भिज्ज परोपजीवी होते हैं ।

---

### ( २७३ ) बाँदा ।

**नाम**—( सं. ) बन्दाक, वृक्षादनी; ( हिं. ) बाँदा; ( कु. ) बानो; ( म. ) बांडगुळ; ( गु. ) बांदो; ( अ. ) खरक़तान; ( ले. ) लोरेन्थस् लौंगिफोलिआ ( Loranthus longipholia ) ।

**वर्णन**—बाँदा आम, कीकर आदि वृक्षोंपर होता है । शाखाएँ लता जैसी, दृढ, ३–५ फुट लंबी, कुछ शाखायें खड़ी भी होती हैं; पत्ते लम्ब-गोल, ३–६ इंच लंबे, १–२ इंच चौड़े; पुष्प विविध रंगके श्वेत, जामुनी किंवा गुलाबी; फल मांसल, कच्चे हरे, पकनेपर लाल रंगके; बीज स्निग्ध ।

**उपयुक्त अंग**—पत्र और पुष्प ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) मूत्रविरेचनीये महाकषाये तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) वीरतर्वादिगणे वृक्षादनी पठ्यते । "वृक्षादनी वातहरा" ( सु. अ. ४६ ) । "वृक्षादनी हिमा तिक्ता कषाया मधुरा रसे । अश्मरीकफवातास्रक्षोव्रणविषापहा ॥" ( कै. नि. ) ।

बाँदा तिक्त, कषाय, मधुर, शीतवीर्य, मूत्रविरेचन तथा अश्मरी, कफ, वातरक्त, व्रण और विषको मिटानेवाला है ।

**नव्यमत**—बाँदा शीत, तिक्त, कषाय, मधुर, ग्राही, कफघ्न, वातहर, रक्तविकारनाशक और व्रणरोपण है । इसके पुष्प और पत्रका कल्क गरम करके सूजनपर बांधनेसे सूजन उतर जाती है । हृद्रोगसे उत्पन्न दमा, कफके साथ रक्त गिरना,

अपस्मार, उन्माद और तरुणशोथमें इसके फूल देते हैं। हृद्रोगमें वमन और मूत्रदाह इससे कम होता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

**यूनानी मत**—बाँदा शीत, रूक्ष, संग्राही, रक्तस्तंभन, दीपन और मस्तिष्कसंशोधक है।

---

## ( २७४ ) किशमिश कावली।

**नाम**—( फा. ) मवीजक असली, अंगूरे कौली; ( अ. ) दिब्क, मवीजजे असली; ( ले. ) विस्कम् आल्बम् ( Viscum album )।

**उत्पत्तिस्थान**—ईरान और भारतवर्षमें कश्मीरसे नेपालतकका प्रदेश।

**वर्णन**—यह एक प्रकारका बांदा है जो सेव, नाशपाती आदिके वृक्षोंपर होता है। बाजारमें **किशमिश कावली** के नामसे मटर जितने बड़े, नरम, झुर्रीदार और भूरे रंगके सूखे फल मिलते हैं। इनके अंदर एक छोटा बीज और चेपदार पदार्थ होता है।

**गुण-कर्म**—इसकी क्रिया रक्ताभिसरण पर डिजिटेलिसके समान होती है। इससे छोटी रक्तवाहिनियोंका संकोच होता है, हृदयको शक्ति मिलती है और मूत्रका प्रमाण बढ़कर जलोदर अच्छा होता है। गर्भाशयपर इसकी क्रिया अर्गटके समान होती है। इससे गर्भाशयका संकोच होता है। सगर्भावस्थामें देनेसे गर्भपात हो जाता है। यह आनुलोमिक और शोथघ्न है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

**यूनानी मत**—किशमिश कावली दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, दोषोंको पतला करनेवाली, शोथविलयन, सारक, ज्ञानेन्द्रियोंको बलप्रद और अंगोंकी सर्दी दूर करनेवाली है।

**उपयुक्त अंग**—फल। मात्रा ५–१५ रत्ती।

---

# चन्दनादि वर्ग ८०.

## N. O. Santalaceæ. ( सॅन्टेलेसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश; पर्ण उपपत्ररहित; फूल जामुनी रंगके; पुष्पबाह्यकोशके दल ४–५; पुंकेशर ४–५; बीजकोश अधःस्थ।

---

## ( २७५ ) चन्दन।

**नाम**—( सं. ) चन्दन, श्वेतचन्दन, भद्रश्री, श्रीखण्ड; ( हिं. ) सफेद चंदन; ( गु. ) सुखड; ( अ. ) संदले अब्यज; ( फा. ) संदले सफेद; ( ले. ) सॅन्टलम् आल्बम् ( Santalum album )।

**उत्पत्तिस्थान**—मैसूर, कुर्ग, मलाबार ।

**वर्णन**—श्वेतचंदन बाजारमें मिलता है और प्रसिद्ध है । जो चंदन हलके पीले रंगका, सुगन्धित और भारी हो वह उत्तम है । चंदनका तेल स्वच्छ, हलका पीला, चंदनकी गन्धयुक्त तथा स्वादमें कुछ तिक्त और चरपरा होता है ।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) वर्ण्ये, कण्डूघ्ने, विषघ्ने, तृष्णानिग्रहणे, दाहप्रशमने, अङ्गमर्दप्रशमने च महाकषाये तथा तिक्तस्कन्धे (वि. अ. ८); सुश्रुते (सू. अ. ३८) सालसारादौ, पटोलादौ, सारिवादौ, प्रियङ्ग्वादौ, गुडूच्यादौ च गणे तथा पित्तसंशमने वर्गे चन्दनं पठ्यते । "चन्दनं दुर्गन्धहर-दाहनिर्वापणलेपनानाम्" (च. सू. अ. २५)। "श्रीखण्डं शीतलं स्वादु तिक्तं पित्तविनाशनम् । रक्तप्रसादनं वृष्यमन्तर्दाहापहारकम् ॥ पित्तास्रविषतृड्दाहकृमिघ्नं गुरु रूक्षणम् ॥" (ध. नि.)। "भद्रश्रियं हिमं तिक्तं हृद्यमाह्लादनं लघु । वर्ण्यं बलासपित्तघ्नं दाहतृष्णाविषप्रणुत् ॥" (कै. नि.)।

श्वेत चंदन वर्ण्य, कण्डूघ्न, विषघ्न, तृषाको कम करनेवाला, दाहप्रशमन, अंगमर्दप्रशमन, पित्तसंशमन, तिक्त, मधुर, शीतवीर्य, रक्तप्रसादन, वृष्य, हृद्य, आह्लाद उत्पन्न करनेवाला तथा अन्तर्दाह, विष और कृमिका नाश करनेवाला है । चंदनका लेप दुर्गन्धहर तथा दाहनिर्वापण है ।

**नव्यमत**—जलमें घिसा हुआ चंदन तिक्त, शीतल, स्वेदजनन, दाहशामक, पिपासाहर, ग्राही, हृदयसंरक्षक और रक्ताभिसरणको शान्तिप्रद है। चंदनका तेल उत्तम मूत्रजनन, मूत्रनलिकाके लिये पूतिहर, मूत्रपिण्ड( गुर्दे )का उत्तेजक, त्वग्दोषहर तथा कृमिघ्न है । ज्वरमें हृदय शिथिल होता है और उसमें विकृति होती है वह चंदन देते रहनेसे नहीं होती तथा अति उष्णतासे हृदयका रक्षण होता है । चंदनसे हृदयकी गति कम होती है, परंतु शक्ति कम नहीं होती । पित्तज्वर, जीर्णज्वर और तीव्रज्वरमें चंदन देनेसे पसीना आता है और शरीरका दाह कम होता है । चंदन जलमें घिसकर देनेसे तृषा, कफमें रक्त आना, दुर्गन्धयुक्त कफ आना और रक्तातिसार ये रोग अच्छे होते हैं । पूयमेह ( सुजाक ) और जीर्णबस्तिशोथमें चंदनका तेल देते हैं । विसर्प, खुजली, फोड़े-फुन्सी, पैत्तिक शोथ आदिमें चंदन कपूरके साथ घिस कर लगाते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**यूनानी मत**—चंदन तीसरे दर्जेमें शीत और प्रथम दर्जेमें रूक्ष, शीतजनन, उष्णतानिवारण, मनःप्रसादकर, रक्तप्रसादन तथा मस्तिष्क-यकृत्-अन्त्र और आमाशयको बल देनेवाला है । हृदयदौर्बल्य, उष्ण हृत्स्पन्दन, रक्तातिसार और मूत्रदाहको दूर करनेके लिये चन्दन देते हैं । गरम सिरदर्दमें सिरपर और हृत्संतापमें हृदयप्रदेशपर इसका लेप करते हैं ।

---

# एरण्डादि वर्ग ८१.

## N. O. Euphorbiaceæ. ( युफोर्बिएसी ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश; पर्णविन्यास एकान्तर किंवा अभिमुख; पर्ण उपपत्रयुक्त किंवा उपपत्ररहित, बहुधा सादे, क्वचित् खण्डित किनारीवाले, विभक्त किंवा संयुक्त होते हैं; पुष्प क्षुद्र; बीजकोश उपरिस्थ, तीन खण्डोंवाला; बीज चिकने, चमकीले, चित्रित और गोलाई लिये हुए लम्बे होते हैं। इस वर्गके उद्भिज्जोंको तोड़नेसे प्रायः क्षीर-दूध निकलता है।

---

### ( २७६ ) एरण्ड ।

**नाम**—( सं. ) एरण्ड, गन्धर्वहस्त, रुबु, उरुबूक, पञ्चाङ्गुल; ( हिं. ) रेंडी, अरंड, अरंडी; ( बं. ) भेरेंडा; ( म. ) एरंडी; ( गु. ) एरंडो, एरंडियो; ( अ. ) खिर्वअ; ( फा. ) वेदअंजीर; ( लै. ) रिसिनस् कॉम्युनिस् ( Ricinus communis ) ।

**वर्णन**—एरंड भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है। एरंड छोटा और बड़ा दो प्रकारका होता है। छोटे एरंडके बीजोंके छिलके निकाल और दबाकर निकाला हुआ तेल और मूल तथा बड़े एरंडके पत्र औषधार्थ प्रयुक्त होते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) भेदनीये, स्वेदोपगे, अङ्गमर्दप्रशमने च गणे तथा मधुरस्कन्धे; सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) विदारिगन्धादौ गणे, तथा ( सू. अ. ३९ ) अधोभागहरे, वातसंशमने च वर्गे एरण्डः पठ्यते। "एरण्डमूलं वृष्यवातहराणां" ( च. सू. अ. २५ )। "लघु भिन्नशकृत्तिक्तं लाङ्गलक्युरुबूकयोः (शाकं) ( च सू. २७ )। "×× उरुबूक ×× प्रभृतीनि। उष्णानि स्वादु-तिक्तानि वातप्रशमनानि च।" ( सु. सू. अ. ४६ )। "एरण्डतैलं मधुरं गुरु श्लेष्माभिवर्धनम्। वातासृग्गुल्महृद्रोगजीर्णज्वरहरं परम्॥" ( च. सू. अ. २७ )। "एरण्डतैलं मधुरमुष्णं तीक्ष्णं कटु-कषायानुरसं सूक्ष्मं स्रोतोविशोधनं त्वच्यं वृष्यं मधुरविपाकं वयःस्थापनं योनिशुक्रविशोधनमारोग्यमेधाकान्तिस्मृति-बलकरं वातकफहरमधोभागदोषहरं च।" ( सु. सू. अ. ४५ )। "एरण्डो मधुरो वृष्यो गुरूष्णो मार्गशोधनः। कफपित्तानिलश्वासकासब्रध्नाश्मनाशनः॥ गुल्मप्लीहोदरानाहकटिबस्तिशिरोरुजि। मेहज्वरामवातास्रशूलशोथेषु शस्यते॥" ( कै. नि. )।

एरंड मधुर, गुरु, उष्णवीर्य, भेदन, स्वेदोपग, अङ्गमर्दप्रशमन, अधोभागहर, वातसंशमन, वृष्य, मार्गशोधन तथा कफ, पित्त, वात, श्वास, कास, ब्रध्न, अश्मरी, गुल्म, प्लीहरोग, उदर, आनाह, कटि-बस्ति और सिरकी पीड़ा, प्रमेह, ज्वर, आमवात, रक्तविकार, शूल और शोथको दूर करनेवाला है। एरंडपत्रका शाक तिक्त, मधुर, उष्ण-

वीर्य, वातप्रशमन और मलको पतला करनेवाला है। एरंडतैल मधुर, कटुकषायानुरस, मधुरविपाक, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, स्रोतोविशोधन, त्वच्य, वाजीकर, वयःस्थापन, मेधा-आरोग्य-कान्ति और बलको बढ़ानेवाला, योनि ( गर्भाशय ) और शुक्रशोधन, गुरु, कफवर्धक, अधोभागदोषहर तथा वातरक्त, गुल्म, हृद्रोग और जीर्ण ज्वरको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—एरंडतैल सौम्य, स्रंसन, स्तन्यजनन, दाहशामक और वातहर है; एरंडमूल वातहर है। २-४ ड्राम एरंडतैल रातको सोते समय देनेसे सवेरमें साधारण पतले पीले रंगके एक-दो दस्त होते हैं। एरंडतैलसे आँतोंकी श्लेष्मल त्वचा मृदु होती है और उससे मलकी गाँठें ( सुद्दे ) नीचे आती हैं। इस प्रकार मलको नीचे सरकानेवाले द्रव्योंको **स्रंसन ( सारक, आनुलोमिक )** कहते हैं। एरंडतैल सवेरमें खाली पेट अदरकके रसके अनुपानसे देना चाहिये। एक ड्राम मात्रामें एरंडतैल रोज रातको सोते समय लेनेसे पुराना कब्ज दूर होता है और अर्शमें तथा गुदामें चीरे पड़े हों तो उसमें लाभ होता है। बड़ी आँतके सिरे पर एक अवशिष्ट भाग रहता है उसमें कभी कभी शोथ होता है, इससे पेडूमें दाहिनी ओर दर्द होता है, उलटियाँ होती हैं, ज्वर आता है, नाड़ी जल्दी चलती है और बारीक होती है इस ( एपेन्डिसाइटिस् ) रोगमें प्रारंभसे ही एरंडतैल देते रहनेसे शस्त्रक्रियाकी आवश्यकता नहीं पड़ती। इसमें एरंडतैल पीनेको देनेके साथ हींगमिश्रित जल और एरंडतैलका बस्ति देना चाहिये। इस व्याधिमें दर्द बहुत होता है उसको दबानेके लिये अफीम नहीं देना चाहिये, खुरासानी अजवायन दे सकते हैं। कटिशूल, गृध्रसी, पार्श्वशूल, हृदयशूल, आमवात और संधिशोथमें एरंडमूल और सोंठका क्वाथ सवेर-शाम और रातको सोते समय एरंडतैल और थोड़ा शिलाजीत मिलाकर देते हैं और पीड़ित स्थानपर एरंडतैलकी मालिश करते हैं। स्तनपर एरंडतैल लगाकर एरंडपत्र बाँधनेसे स्तनशोथ कम होता है और दूधका प्रमाण बढ़ता है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

---

## ( २७७ ) स्नुही।

**नाम**—( सं. ) स्नुक्, स्नुही, गुडा, सुधा, सेहुण्ड, महावृक्ष, वज्री; ( हिं. ) थूहर, सेहुँड; ( पं., मा., गु. ) थोर; ( बं. ) मनसा, सिज्; ( म. ) निवडुंग, ( ले. ) युफोर्बिआ निवुलिया ( Euphorbia nivulia ), युफोर्बिआ नेराइफोलिआ ( Euphorbia neriifolia )।

**वर्णन**—थूहर-सेहुंड भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है। इसकी डंडा, तिधारा, चौधारा, अंगुलिया आदि कई जातियाँ होती हैं।

**उपयुक्त अंग**—मूल, पत्र और क्षीर ( दूध )।

**गुण-कर्म**—"स्नुक्पयस्तीव्रविरेचनानाम्" (च. सू. अ. २५)। "विद्यात् स्नुहीक्षीरं विरेचने।" (च. सू. अ. १)। "विरेचनानां सर्वेषां सुधा तीक्ष्णतमा मता। संघातं हि भिनत्त्याशु दोषाणां कष्टविभ्रमा॥ तस्मान्नैषा मृदौ कोष्ठे प्रयोक्तव्या कदाचन। न दोषनिचये चाल्पे सति चान्यपरिक्रमे॥ पाण्डुरोगोदरे गुल्मे कुष्ठे दूषीविषार्दिते। श्वयथौ मधुमेहे च दोषविभ्रान्तचेतसि॥ रोगैरेवं-विधैर्ग्रस्तं ज्ञात्वा सप्राणमातुरम्। प्रयोजयेन्महावृक्षं सम्यक्स ह्यवचारितः॥ सद्यो हरति दोषाणां महान्तमपि सञ्चयम्॥ (च. क. अ. १०)। "सा श्रेष्ठा कण्टकैस्तीक्ष्णैर्बहुभिश्च समाचिता। द्विवर्षां वा त्रिवर्षां वा शिशिरान्ते विशेषतः॥ तां पाटयित्वा शस्त्रेण क्षीरमुद्धारयेत्ततः।" (अ. सं. क. अ.)। सुश्रुते (सू. अ. ३८) श्यामादिगणे सुधा तथा (सू. अ. ३९) अधोभागहरे गणे स्नुक्, महावृक्षश्च पठ्यते।

पांडुरोग, उदर, गुल्म, कुष्ठ, दूषीविष, शोथ, मधुमेह और दोषज उन्मादमें बलवान् रोगीको थूहरका प्रयोग कराना चाहिये। थूहरका क्षीर-दूध तीक्ष्ण विरेचक है, इसलिये मृदु कोष्ठवालेको, दोष अल्प हो और अन्य उपायसे रोगी अच्छा हो सकता हो तो इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। तीक्ष्ण और अधिक काँटेवाले सेहुँडके दो या तीन वर्षके वृक्षमें शस्त्रसे छेद करके क्षीर लेना चाहिये।

**नव्यमत—तिधारा थूहर** कफघ्न, ज्वरघ्न, रेचन और रक्तशोधक है। इससे कफ पतला होकर मुख और गुदाके द्वारा निकल जाता है। बालकके कफरोगमें तिधारे थूहरका बहुत उपयोग करते हैं। इसके साथ अडूसा, शहद और शुद्ध सोहागा दे सकते हैं। मूलका क्वाथ जीर्ण आमवात और उपदंशमें देते हैं। थूहरकी जातिमें जो दाहजनक द्रव्य होता है वह इसमें अल्प प्रमाणमें होता है। **उपयुक्त अंग**—मूल और डंडा। डंडेके टुकड़ेको गरम कर, कुचल और निचोड़कर रस निकालना चाहिये। **मात्रा**—बच्चोंके लिये १॥-३ माशा, बड़ोंके लिये १॥-२ तोला। **सेहुँड** (डंडा थूहर) थूहरकी जातिमें जो दाहजनक विष होता है वह इसमें अधिक होता है। सेहुंडका दूध तीव्र रेचन है। इससे वमन और पानीके समान दस्त होते हैं। उदर रोगमें काली मिर्चके चूर्णको सेहुँडके दूधमें भिगो, गोली बनाकर देते हैं। सेहुँडके मूल और कालीमिर्चका चूर्ण सूतिकाज्वरमें देते हैं। **मात्रा**—मूलचूर्ण २-४ रत्ती, पत्रस्वरस २-५ बूँद, क्षीर ‐॥-१ रत्ती (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**वक्तव्य**—सुश्रुतने (सू. अ. ३९) अधोभागहरवर्गमें थूहरके मूल और क्षीर दोनोंका उपयोग करनेको लिखा है। चरक (सू. अ. १) में षोडशमूलिनी ओषधियोंमें **अधोगुडा** शब्द आया है। उसका अर्थ आयुर्वेदाचार्य **पं. भागीरथजी स्वामीने** "गुडायाः (स्नुहेः) अधः (अधोभागः मूलं) इति **अधोगुडा**"

( संदिग्धवनौषधिनिर्णय पृ. १७६ पर ) यह लिखा है, वह ठीक मालूम होता है। प्राचीनोंका सुही-सेहुंड डंडा थूहर होगा ऐसा प्रतीत होता है।

---

## ( २७८ ) आँवला।

**नाम**—( सं. ) आमलकी, धात्री, वयःस्था; ( हिं. ) आँवला, आमला; ( ब. ) आमलकी, आमला; ( म., गु. ) आंवळा; ( फा. ) आम्लज, आमलः; ( ले. ) फाइलेन्थस् एम्ब्लिका ( Phyllanthus emblica )।

**वर्णन**—आँवला भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है।

**उपयुक्त अंग**—परिपक्व फल।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) विरेचनोपगे, वयःस्थापने च महाकषाये तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) परूषकादौ, त्रिफलागणे च आमलकं पठ्यते । "विद्यादामलके सर्वान् रसान् लवणवर्जितान् ।" ( च. सू. अ. २७ ) । "अम्लं समधुरं तिक्तं कषायं कटुकं सरम् । चक्षुष्यं सर्वदोषघ्नं वृष्यमामलकीफलम् ॥ हन्ति वातं तदम्लत्वात् पित्तं माधुर्यशैत्यतः । कफं रूक्षकषायत्वात् फलेभ्योऽभ्यधिकं च तत् ॥" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "हरीतकीं पञ्चरसामुष्णामलवणां शिवाम् । दोषानुलोमनीं लघ्वीं विद्याद्दीपनपाचनीम् ॥ आयुष्यां पौष्टिकां धन्यां वयसः स्थापनीं पराम् । कुष्ठं गुल्ममुदावर्तं शोषं पाण्ड्वामयं मदम् ॥ अर्शांसि ग्रहणीदोषं पुराणं विषमज्वरम् । हृद्रोगं सशिरोरोगमतिसारमरोचकम् ॥ कासं प्रमेहमानाहं प्लीहानमुदरं नवम् । कफप्रसेकं वैस्वर्यं वैवर्ण्यं कामलां क्रिमीन् ॥ श्वयथुं तमकं छर्दिं क्लैब्यमङ्गावसादनम् । स्रोतोविबन्धान् विविधान् प्रलेपं हृदयोरसोः ॥ स्मृतिबुद्धिप्रमोहं च जयेच्छीघ्रं हरीतकी । तान् गुणांस्तानि कर्माणि विद्यादामलकीष्वपि ॥ यान्युक्तानि हरीतक्या वीर्यस्य तु विपर्ययः ।" ( च. चि. अ. ३ ) ।

आँवलेमें लवणरसको छोड़कर अन्य छः रस विद्यमान हैं। आँवले अपने अम्ल रससे वातको; मधुर रस और शीतवीर्यसे पित्तको तथा कषाय रस और रूक्षवीर्यसे कफको दूर करते हैं। आँवले शीतवीर्य, विरेचनोपग, श्रेष्ठ वयःस्थापन, चक्षुष्य, रसायन और सर्वदोषघ्न हैं। आँवले दोषानुलोमन, लघु, दीपन, पाचन, आयुष्य, पौष्टिक तथा कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त, शोष, पाण्डुरोग, मद, अर्श, ग्रहणीरोग, पुराना विषमज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतिसार, अरुचि, कास, प्रमेह, आनाह, प्लीहाके रोग, नया उदररोग, प्रतिश्याय, वैवर्ण्य, स्वरभंग, कामला, कृमि, शोथ, तमकश्वास, वमन, नपुंसकता, हृदय और छातीका लेप तथा स्मृति और बुद्धिके प्रमोहका नाश करनेवाले हैं।

**नव्यमत**—ताजे पके आँवले दीपन, पाचन, पित्तशामक, आनुलोमिक, रोचन, बल्य, पौष्टिक, कान्तिवर्धक, लघ्रोगनाशक और वाजीकर हैं। सूखे आँवले स्तम्भन, श्लेष्मघ्न, शोणितस्थापन और बड़ी मात्रामें पित्तस्रावक और स्रंसन हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

**यूनानी मत**—आँवला पहले दर्जेमें शीत, दूसरे दर्जेमें रूक्ष, उत्तमांगोंको बलप्रद, दीपन, ग्राही, पित्तरक्तसंशमन, चक्षुष्य तथा बालोंकी जड़ मजबूत करनेवाला और उन्हें काला करनेवाला है। बुद्धि-स्मरणशक्ति और दृष्टिको बल देने, हृत्स्पन्दन-हृदयदौर्बल्य और अग्निमांद्यको दूर करने, पित्त एवं रक्तका उद्वेग शमन करने, प्यास बुझाने तथा अतिसार दूर करनेके लिये इसका उपयोग करते हैं। उक्त गुण-कर्मके लिये आँवलेके मुरब्बेका भी उपयोग करते हैं।

---

## ( २७९ ) भूम्यामलकी ।

**नाम**—भूम्यामली, भूधात्री, तामलकी; ( हिं. ) भूईआँवला; ( म. ) भुईं आंवळी; ( गु. ) भोंयआंवळी; ( बं. ) भुंईं आमूला ( ले. ) फायलेन्थस् युरिनेरिआ ( Phyllanthus urinaria )।

**वर्णन**—भूँईआँवलेका १ बित्ताभर ऊँचा क्षुप वर्षाऋतुमें सर्वत्र होता है। इसमें आँवले जैसे छोटे पत्र और सरसों बराबर छोटे फल लगते हैं। फलोंका स्वाद आँवलेके सदृश होता है।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) कासहरे, श्वासहरे च महाकषाये तामलकी पठ्यते। "भूधात्री तु कषायाऽम्लपित्तमेहविनाशिनी । शिशिरा मूत्ररोगार्तिशमनी दाहनाशिनी ॥" ( रा. नि. )। "तामलकी हिमा तिक्ता कषाया मधुरा लघुः। रोचनी पाण्डुपित्तास्रकफकुष्ठविषापहा ॥ जयेच्छ्वासतृषादाहहिध्माकासक्षतक्षयान् ॥" ( कै. नि. )।

भुईआँवली कषाय, अम्ल, तिक्त, मधुर, शीतवीर्य, लघु तथा कास, श्वास, पित्त, प्रमेह, मूत्ररोग, दाह, पाण्डुरोग, रक्तविकार, कफ, कुष्ठ, विष, तृषा, हिक्का, क्षत और क्षयको दूर करनेवाली है।

**नव्यमत**—भुईआँवला दीपन, पाचन, मूत्रजनन, स्रंसन, दाहप्रशमन, शोथघ्न और नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक है । भुईआंवलाके पंचांगका क्वाथ शीतज्वरमें देनेसे दस्त साफ होता है, पसीना आता है, निद्रा आती है, ज्वरकी बारी रुकती है और यकृत् तथा प्लीहाकी वृद्धि कम होती है। भुई आँवलीसे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है और पेशाबकी जलन कम होती है, इसलिये सुजाकमें इसे देते हैं। भुँई आँवलाके लेपसे स्तनकी सूजन उतर जाती है ( डॉ. वा. ग. देसाई )

**उपयुक्त अंग**—पंचांग। **मात्रा**—स्वरस १–२ तोला। भुँईआँवलाका स्वरस कामलामें देते हैं।

---

## ( २८० ) जमालगोटा ।

**नाम**—( सं. ) जयपाल, जेपाल, दन्तीबीज; ( हिं. ) जमालगोटा ( बं. ) जयपाल; ( पं. ) जपो( ब्बो )लोटा; ( गु. ) नेपाळो; ( अ. ) हब्बुस्सलातीन, दंदुस्सीनी; ( फा. ) तुख्म बेदअंजीर खताई; ( ले. ) क्रोटन् टिग्लिअम् ( Croton tiglium )।

**वर्णन**—जमालगोटेका सदाहरित छोटा वृक्ष होता है। पत्र लम्बगोल, कुण्ठिताग्र, किनारी कटी हुई; फूल हरे पीले रंगके मंजरीके रूपमें; फल तीन खंडवाला। यह दंती और नागदंतीसे भिन्न उसी जातिका अन्य वृक्ष-गुल्म है। संभव है यह द्रवन्ती हो।

**उपयुक्त अंग**—बीज और बीजतैल।

**गुण-कर्म**—"जेपालः कटुरुष्णश्च कृमिहारी विरेचनः। दीपनः कफवातघ्नो जलोदरविनाशनः॥" ( रा. नि. )।

जमालगोटा कटु, उष्णवीर्य, विरेचन, दीपन तथा कफ, वात, क्रिमि और जलोदरका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—जमालगोटा तीव्र रेचन और बड़ी मात्रामें विष है। इसके तैलकी एक बूँद देनेसे जोरसे पाँच-पचीस पानी जैसे दस्त हो जाते हैं, पेटमें मरोड़ आते हैं और अन्त्रकलामें शोथ हो जाता है। इससे पेटके कृमि भी मरते हैं, परन्तु कृमिनाशनके लिये इसका उपयोग नहीं करना चाहिये। जब रक्तका जलांश कम करना अभीष्ट हो अथवा हृदयोदरमें जब हृदयपरके पानीका दबाव कम करना हो तब जमालगोटा देते हैं। सिरकी रक्तवाहिनी टूटकर अर्धाङ्गवात होता है, उस समय जमालगोटा देकर रक्तका जलांश कम न किया जाय तो मस्तिष्कमें रक्तका स्राव अधिक होकर रोग असाध्य होजाता है। रोगी निःसंज्ञ हो तो तेलकी एक बूँद मक्खनमें मिलाकर जीभपर रखना चाहिये। यदि विरेचन अधिक हों तो कत्था पानीमें मिलाकर या नीमूका शर्बत पिलावें ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

**यूनानी मत**—जमालगोटा चौथे दर्जेमें गरम और खुष्क है। बीज तीव्र विरेचन और विस्फोटजनन हैं। तेल त्वचापर लगानेसे विस्फोटजनन और खिलानेसे आमाशय और अन्त्रमें संक्षोभ करके तीव्र विरेचन करता है। बीज आमवात, जलोदर, संन्यास जैसे कफ और सौदाके रोगोंमें विरचनार्थ देते हैं और हस्तमैथुनीके लिये प्रयुक्त तिलाओंमें विस्फोटजननार्थ प्रयुक्त होते हैं।

**वक्तव्य**—आयुर्वेदमें जमालगोटेका शोधन करके ही व्यवहार किया जाता है। **जमालगोटेकी शोधनविधि**—जमालगोटेके छिलके और दो दलोंके बीचकी जीभ ( अंकुर ) निकाल, जल मिलाये हुए भैंसके गोबर, दूध या पँवाड़-चकवड़के ताजे पत्ते और पानीमें मंदाग्निपर तीन घंटे तक पका, शीतल होनेपर गरम जलसे धो, नीबूके रसमें पीस, मिट्टीके कोरे तवेपर बिछाकर सुखा लेनेसे जमालगोटा शुद्ध हो जाता है।

---

## ( २८१ ) दन्ती और द्रवन्ती ।

**नाम**—दन्ती—( सं. ) दन्ती, प्रत्यक्श्रेणी, उदुम्बरपर्णी, निकुम्भा, मुकूलका; ( हिं. ) दंती; ( म. ) दांती; ( ले. ) बॅलिओस्पर्मम् मोन्टेनम् ( Baliospermum montanum ), क्रोटन् पोलिएन्ड्रम् ( Croton polyandrum )। नाम—द्रवन्ती—( सं. ) द्रवन्ती, पुत्रश्रेणी ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. १ ) षोडशमूलिनीषु दन्ती ( 'प्रत्यक्श्रेणी' नाम्ना ), द्रवन्ती, नागदन्ती च; विरेचनद्रव्येषु ( सू. अ. २ वि. अ. ८ ) दन्ती, द्रवन्ती च; तथा एकादशमूलासवेषु ( सू. अ. २५ ) दन्ती, द्रवन्ती च पठ्यते । सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) श्यामादिगणे दन्ती 'पुत्रश्रेणी' नाम्ना, द्रवन्ती च; तथा विरेचनवर्गे ( सू. अ. ३९ ) दन्ती, द्रवन्ती च पठ्यते। "दन्तिदन्तस्थिरं स्थूलं मूलं दन्तीद्रवन्तिजम् । आताम्रश्यावतीक्ष्णोष्णमाशुकारि विकाषि च ॥ गुरु प्रकोपि वातस्य पित्तश्लेष्मविलायनम् । तत्क्षौद्रपिप्पलीलिप्तं स्वेदयेन्मृत्कुशान्तरे । शोषयेच्चातपेऽग्न्यर्कौ हतो ह्येषां विकाषिताम् ॥" ( अ. सं., क. अ. २ )। "दन्ती द्रवन्तिका चोष्णा कटुपाकरसा लघुः । विकाशिनी सरा तीक्ष्णा दीपनी पाचनी हरेत् ॥ कफपित्तोदरानाहशोथशूलगुदाङ्कुरान् । विदाहकण्डूकुष्ठास्रप्लीहगुल्माश्मरीकृमीन् ॥" ( कै. नि. ) " × × × दन्तीद्रवन्तीस्नेहास्तिक्तकटुकषाया अधोभागदोषहराः कृमिकुष्ठकफानिलहरा दुष्टव्रणशोधनाश्च ।" ( सु. सू. अ. ४५ ) । " × × × दन्तीद्रवन्तीस्नेहाः × × × विरेचयन्ति ( सु. चि. अ. ३१ )। "सैन्धवाजमयोदायुक्तं वा निकुम्भतैलम् ॥" ( सु. चि. अ. १४ )।

दन्ती और द्रवन्ती रस और विपाकमें कटु, उष्णवीर्य, विरेचन, तीक्ष्ण, आशुकारी, विकाशी, दीपन, पाचन ( मूल अल्प मात्रामें ) तथा कफ, पित्त, उदर, आनाह, शोथ, गुल्म, अश्मरी, कृमि, शूल, अर्श, विदाह, कण्डू, कुष्ठ, रक्तविकार और प्लीहाके रोगोंको दूर करनेवाली है। दन्ती और द्रवन्तीके बीजके तैल तिक्त, कटु, कषाय, अधोभागदोषहर तथा कृमि, कुष्ठ, कफ, वात और दूष्योदरको दूर करनेवाले और दुष्ट व्रणका शोधन करनेवाले हैं ।

**नव्यमत**—दन्तीके बीज जमालगोटेके जैसे तीव्र रेचन हैं । दंतीमूल शोथघ्न, रेचन और ज्वरघ्न हैं । दंतीमूलसे यकृत्की क्रिया सुधरकर दूषित पित्त मलद्वारा निकल जाता है। ज्वरमें इसे छाछके साथ देना चाहिये। जलोदर, हृदयोदर, यकृदुदर और वृक्कोदर आदि उदर रोगोंमें तथा कामलामें दंतीमूलका विरेचन देते हैं। शरीरमें जीवनविनिमयक्रियामें कुछ दूषित द्रव्य जमा होकर नाना प्रकारके त्वग्रोग होते हैं, उनमें दंतीमूल देते हैं। **मात्रा** मूल १॥-३ माशा; सुगन्धि द्रव्योंके साथ क्वाथ करके देना चाहिये ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

---

## ( २८२ ) नागदन्ती ।

**नाम—( सं. )** हस्तिदन्ती, नागदन्ती; **( म. )** घणसर; **( ले. )** क्रोटन् ओब्लोंगिफोलिआ ( Croton oblongifolia )।

**वर्णन**—नागदन्तीका मध्यम ऊँचाईका वृक्ष होता है । पत्ते सवृन्त, ५-१० इंच लंबे, एकान्तर, शाखाग्रपर एकत्र जमे हुए; दोनों बाजूपर मसृण, पत्रप्रान्त दन्तुर, फूल फीके हरे-पीले रंगके मंजरीमें लगे हुए; पुंकेसर १०-१२; फल गोलाई लिये हुए तीन खण्डोंवाला होता है ।

**उपयुक्त अंग**—मूलकी छाल । **मात्रा** १॥-३ माशा सुगन्धि द्रव्योंके साथ देना चाहिये ।

**गुण-कर्म—चरके ( सू. अ. १ )** षोडशमूलिनीषु हस्तिदन्ती, शिरोविरेचनद्रव्येषु ( वि. अ. ८ ) नागदन्तीमूलं च पठ्यते । "नागदन्तीत्रिवृद्दन्तीद्रवन्तीस्नुक्पयःफलैः । साधितं माहिषं सर्पिः सगोमूत्राढकं पिबेत् ॥ सर्पकीटविषार्तानां गरार्तानां च शान्तये ॥" ( च. चि. अ. ३० ) । "नागदन्ती कटुस्तिक्ता रूक्षा वातकफापहा । मेधाकृद्विषदोषघ्नी पाचनी शोथनाशिनी ॥ गुल्मशूलोदरव्याधिकुष्ठदोषनिकृन्तनी ॥" ( रा. नि. )

नागदन्ती विरेचक, शिरोविरेचन, कटु, तिक्त, रूक्ष, पाचन, मेधाकर तथा वात, कफ, विषविकार, शोथ, गुल्म, शूल, उदररोग और कुष्ठको दूर करनेवाली है ।

**नव्यमत**—नागदन्तीके मूलकी छाल शोथघ्न, ज्वरघ्न और बड़ी मात्रामें रेचन तथा विषनाशक है । किसी भी प्रकारकी सूजन वह भीतरी हो या बाहरी नागदंती देनेसे अच्छी होती है । फुप्फुसशोथ, फुप्फुसावरणकलाशोथ, वृषणशोथ, सन्धिशोथ और यकृच्छोथमें नागदन्ती बहुत हितावह है । शोथकी प्रारंभिक अवस्थामें इससे जितना विशेष लाभ होता है उतना जीर्णावस्थामें नहीं होता । इसके साथ संभालू और करंजुआ देना अच्छा है । ज्वरमें नागदन्तीके साथ नोशादर देना अच्छा है । इस मिश्रणसे यकृतकी क्रिया सुधरकर दूषित पित्त मलके साथ निकल जाता है और यकृद्वृद्धि कम होती है । मूलकी छाल खानेको देते हैं और मूलको जलमें घिसकर शोथ पर लगाते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

**वक्तव्य**—चरकमें **दन्ती, द्रवन्ती** और **नागदन्ती** तीनोंका एकत्र उल्लेख मिलता है । अतः इन तीनोंके भिन्न होनेमें संदेह नहीं हो सकता । जिसको मराठीमें **घणसर** और लेटिनमें **क्रोटन् ओब्लोंगिफोलिआ** कहते हैं उसको **डॉ. वा. ग. देसाई** और **प्रो. बलवंतसिंहजीने नागदन्ती** माना है, वह ठीक है । दन्ती और द्रवन्तीका चरक और सुश्रुतमें प्रायः साथ ही उल्लेख पाया जाता है । दंती वैद्योंमें प्रसिद्ध है, परंतु द्रवन्तीके विषयमें मतभेद पाया जाता है । कई लोग जिसको हिंदीमें **बा( ब )घरेंड**, मराठीमें **मोगलाई एरंड** और लेटिनमें

**जेट्रोफा कर्कस्** कहते हैं उसको द्रवन्ती मानते हैं। परंतु यह ठीक नहीं हैं, क्योंकि बघरेंडके मूलमें रेचक गुण नहीं है। मेरे विचारमें प्राचीनोंने जमालगोटाके वृक्षको **द्रवन्ती** माना है। चरक (सू. अ. १) में षोडश मूलिनियोंमें हस्तिदन्ती, द्रवन्ती और प्रत्यक्‌श्रेणी शब्द आये हैं वहाँ **प्रत्यक्‌श्रेणी** दन्तीका पर्याय जानना चाहिये, (अ. ३८) सुश्रुतमें श्यामादि गणमें दन्ती और पुत्रश्रेणी ये शब्द आये हैं, वहाँ **पुत्रश्रेणी** शब्द द्रवन्तीका पर्याय जानना चाहिये।

---

## (२८३) कम्पिल्लक।

**नाम**—(सं.) कम्पिल्लक; (हिं.) कमीला, कंबीला; (म.) कपिला; (गु.) कपीलो; (बं.) कमलागुँडि; (अ.) कं(किं)बील; (फा.) कंबील; (ले.) मेलोटस फिलिपाइनेन्सिस (Mallotus philippinensis)।

**वर्णन**—कमीला भारतवर्षके सभी प्रांतोंमें होता है। कमीलेका मध्यम कदका सदाहरित वृक्ष होता है। फल त्रिखण्ड, आकारमें झड़बेरीके समान और गुच्छोंमें लगते हैं। पक्व फल पर रक्त वर्णकी रज होती है। इसे **कमीला** कहते हैं। यह रज औषधार्थ प्रयुक्त होती है (कम्पिल्लकफलरजः–सु. सू. अ. ३९)। कमीला जलमें अविलेय और जलानेसे बारूद जैसा जलता है। शुद्ध कमीलेको जलमें भिगोई हुई अंगुलीसे उठाकर सफेद कागजपर अंगुली रगड़नेसे पीले रंगकी रेखा उठती है और स्पर्श मृदु माल्म होता है।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. २) विरेचनद्रव्येषु तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) श्यामादिगणे, विरेचनद्रव्येषु च कम्पिल्लकः पठ्यते। "कम्पिल्लको विरेची स्यात् कटूष्णो व्रणनाशनः। गुल्मोदरविबन्धाध्मश्लेष्मक्रिमिविनाशनः॥" (ध. नि.)।

कमीला कटु, उष्णवीर्य, रेचक तथा व्रण, गुल्म, उदर, मलावरोध, पेटका अफारा, कफ और कृमिका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—सब प्रकारके पेटके कृमिके लिये कमीला उत्तम औषध है। इससे कृमि मर कर विरेचनद्वारा निकल जाते हैं। कमीला तेलमें मिलाकर व्रण, अग्निदग्ध व्रण और कण्डूपर लगाते हैं। **मात्रा**—१॥–३ माशा, बालकको ५ रत्ती (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**यूनानी मत**—कमीला दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, उदरकृमिनाशन एवं निःसारक, पिच्छिल एवं द्रवदोषविरेचन तथा व्रणशोषण–रोपण है।

---

## वटादि वर्ग ८१.

## N. O. Urticaceæ. ( अर्टिकेसी ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश; पत्रविन्यास एकान्तर; पत्र उपपत्रयुक्त; पुष्प छोटे और कर्णिकाके अंदर एकत्र जमे हुए ( नतोदर स्तबक ); बीजकोश एक खण्डवाला ।

---

### ( २८४ ) वट ।

**नाम**—( सं. ) वट, न्यग्रोध; ( हिं. ) बड़, बरगद; ( पं. ) बोड़, बोहड़; ( म. ) वड; ( गु. ) वड, वडलो; ( अ. ) कबिरुल् अश्जार; ( फा. ) दरख्तेरीशः; ( ले. ) फाईकस् बेन्गालेन्सिस् ( Ficus bengalensis ) ।

**वर्णन**—बड़ भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) मूत्रसंग्रहणीये महाकषाये, कषायस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) च तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) न्यग्रोधादौ गणे वटः पठ्यते । "वटः शीतः कषायश्च स्तम्भनो रूक्षणात्मकः । तथा तृष्णाच्छर्दिमूर्च्छारक्तपित्त-विनाशनः ॥" ( ध. नि. ) । "वटः शीतो गुरुर्ग्राही कफपित्तव्रणापहः । वर्ण्यो विसर्पदाहघ्नः कषायो योनिदोषहृत् ॥" ( भा. प्र. ) ।

बड़ कषाय, शीतवीर्य, गुरु, ग्राही, स्तम्भन, रूक्षण, वर्ण्य, मूत्रसंग्रहणीय तथा तृष्णा, वमन, मूर्च्छा, रक्तपित्त, विसर्प, दाह और योनिदोषको दूर करनेवाला है ।

**नव्यमत**—बड़का क्षीर वेदनास्थापन और व्रणरोपण, सूखे पत्र स्वेदजनन, कोमल पत्र श्लेष्मघ्न और छाल स्तम्भन है । बहुमूत्रमें मूलकी छालका क्वाथ और मधुमेहमें फल देते हैं । सड़े हुए दाँतोंमें बड़का दूध भरनेसे पीड़ा शांत होती है, कमर और जोड़ोंके दर्दमें वटक्षीर लगाते हैं—( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

**यूनानी मत**—बड़ पहले दर्जेमें शीत, दूसरे दर्जेमें खुश्क और वटक्षीर तीसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष है । बड़ शीतसंग्राही, व्रणलेखन, शुक्रस्तम्भन और उत्तमांगबलदायक है । अर्श, स्वप्नदोष और शीघ्रपतनमें बड़का दूध देते हैं । कर्णगत व्रण और कृमिकर्णमें कानमें बड़का दूध टपकाते हैं । हाथ-पाँवके तलोंका फटना और शोथ, विशेषकर वंक्षणशोथपर वटक्षीरका लेप करते हैं । वटजटाके लेपसे स्तन कठोर होते हैं । कोंपल और वटजटाका चूर्ण शुक्रमेहमें खिलाते हैं ।

---

### ( २८५ ) अश्वत्थ ।

**नाम**—( सं. ) अश्वत्थ, पिप्पल; ( हिं. ) पीपल; ( बं. ) आशुद्; ( म. ) पिंपळ; ( गु. ) पीपळो; ( अ. ) शज्रतुल् मुर्तअश; ( फा. ) दरख्ते लर्जा ( ले. ) फाइकस् रिलिजिओझा ( Ficus religiosa ) ।

**वर्णन**—पीपलका वृक्ष भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है ।

**गुण-कर्म—चरके**—( सू.अ. ४ ) मूत्रसंग्रहणीये महाकषाये, कषायस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) च तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) न्यग्रोधादिगणे अश्वत्थः पठ्यते । "अश्वत्थफलमूलत्वक्शुङ्गसिद्धं पयो नरः । पीत्वा सशर्कराक्षौद्रं कुलिङ्ग इव हृष्यति ॥" ( सु. चि. अ. २६ ) । "अश्वत्थः शीतलो रूक्षः कषायो दुर्जरो गुरुः । व्रणपित्तकफास्रघ्नो वर्ण्यो योनिविशोधनः ॥" ( कै. नि. ) ।

पीपल कषाय, शीतवीर्य, रूक्ष, गुरु, मूत्रसंग्रहण, वर्ण्य, योनिविशोधन, दुर्जर तथा व्रण, पित्त, कफ और रक्तविकारको दूर करनेवाला है । पीपलके फल, मूल, त्वचा और कोंपलके साथ दूध पका, उसमें शक्कर और शहद गेर कर पीनेसे वाजीकर गुण होता है ।

**नव्यमत**—पीपलकी छाल स्तंभन, रक्तसांग्राहिक और पौष्टिक; पत्र आनुलोमिक, कोमलपत्र पहिले रेचन और पीछे स्तंभन; फल पाचन, आनुलोमिक, संकोचविकास-प्रतिबंधक और रक्तशोधक हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

**यूनानी मत**—पीपल गरम, खुश्क, श्वयथुविलयन, रूक्षण, तथा वमन और उबकाईको दूर करनेवाला और फोड़ेको बैठानेवाला है ।

---

### ( २८९ ) प्लक्ष ।

**नाम**—( सं. ) प्लक्ष; ( हिं. ) पाकर, पाखर; ( कु. ) काभड़ो; ( ने. ) कावरो; ( बं. ) पाकुड; ( म. ) पिंपरी; ( गु. ) पीपळी, पीपर; ( ले. ) फाईकस लेकोर ( Ficus lacor ) ।

**वर्णन**—पाकरका बड़से छोटा, बहुशाखायुक्त वृक्ष होता है । इसमें जटायें क्वचित् ही लगती हैं । पत्र गूलरके सदृश परंतु उससे छोटे होते हैं ।

**गुण-कर्म-चरके** ( सू. अ. ४ ) मूत्रसंग्रहणीये महाकषाये, कषायस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) च तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) न्यग्रोधादिगणे प्लक्षः पठ्यते । "प्लक्षः कषायः शिशिरो व्रणयोनिगदापहः । दाहपित्तकफामघ्नः शोथहा रक्तपित्त-हृत् ॥ रक्तदोषहरो मूर्च्छाप्रलापभ्रमनाशनः ।" ( भा. प्र. ) ।

पाकर कषाय, शीतवीर्य, मूत्रसंग्रहणीय तथा व्रण, योनिरोग, दाह, पित्त, कफ, आम, शोथ, रक्तपित्त, रक्तदोष, मूर्च्छा, प्रलाप और भ्रमको दूर करनेवाला है ।

---

## वटादि वर्ग ८१.

### N. O. Urticaceæ. ( अर्टिकेसी ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश; पत्रविन्यास एकान्तर; पत्र उपपत्रयुक्त; पुष्प छोटे और कर्णिकाके अंदर एकत्र जमे हुए ( नतोदर स्तवक ); बीजकोश एक खण्डवाला ।

---

### ( २८४ ) वट ।

**नाम**—( सं. ) वट, न्यग्रोध; ( हिं. ) बड़, बरगद; ( पं. ) बोड़, बोहड़; ( म. ) वड; ( गु. ) वड, वडलो; ( अ. ) कबिरुल् अश्जार; ( फा. ) दरख्तेरीशः; ( ले. ) फाईकस् वेन्गालेन्सिस् ( Ficus bengalensis ) ।

**वर्णन**—बड़ भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) मूत्रसंग्रहणीये महाकषाये, कषायस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) च तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) न्यग्रोधादौ गणे वटः पठ्यते। "वटः शीतः कषायश्च स्तम्भनो रूक्षणात्मकः । तथा तृष्णाच्छर्दिमूर्च्छारक्तपित्त-विनाशनः ॥" ( ध. नि. ) । "वटः शीतो गुरुर्ग्राही कफपित्तव्रणापहः । वर्ण्यो विसर्पदाहघ्नः कषायो योनिदोषहृत् ॥" ( भा. प्र. ) ।

बड़ कषाय, शीतवीर्य, गुरु, ग्राही, स्तम्भन, रूक्षण, वर्ण्य, मूत्रसंग्रहणीय तथा तृष्णा, वमन, मूर्च्छा, रक्तपित्त, विसर्प, दाह और योनिदोषको दूर करनेवाला है ।

**नव्यमत**—बड़का क्षीर वेदनास्थापन और व्रणरोपण, सूखे पत्र स्वेदजनन, कोमल पत्र श्लेष्मघ्न और छाल स्तम्भन है । बहुमूत्रमें मूलकी छालका क्वाथ और मधुमेहमें फल देते हैं । सड़े हुए दाँतोंमें बड़का दूध भरनेसे पीड़ा शांत होती है, कमर और जोड़ोंके दर्दमें वटक्षीर लगाते हैं—( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

**यूनानी मत**—बड़ पहले दर्जेमें शीत, दूसरे दर्जेमें खुश्क और वटक्षीर तीसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष है । बड़ शीतसंग्राही, व्रणलेखन, शुक्रस्तम्भन और उत्तमांग-बलदायक है । अर्श, स्वप्नदोष और शीघ्रपतनमें बड़का दूध देते हैं । कर्णगत व्रण और कृमिकर्णमें कानमें बड़का दूध टपकाते हैं । हाथ-पाँवके तलोंका फटना और शोथ, विशेषकर वंक्षणशोथपर वटक्षीरका लेप करते हैं । वटजटाके लेपसे स्तन कठोर होते हैं । कोंपल और वटजटाका चूर्ण शुक्रमेहमें खिलाते हैं ।

---

### ( २८५ ) अश्वत्थ ।

**नाम**—( सं. ) अश्वत्थ, पिप्पल; ( हिं. ) पीपल; ( बं. ) आशुद्; ( म. ) पिंपळ; ( गु. ) पीपळो; ( अ. ) शज्रतुल् मुर्तअश; ( फा. ) दरख्ते लर्जां ( ले. ) फाइकस् रिलिजिओज़ा ( Ficus religiosa ) ।

**वर्णन**—पीपलका वृक्ष भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है ।

**गुण-कर्म**—**चरके**—( सू.अ. ४ ) मूत्रसंग्रहणीये महाकषाये, कषायस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) च तथा **सुश्रुते** ( सू. अ. ३८ ) न्यग्रोधादिगणे अश्वत्थः पठ्यते । "अश्वत्थफलमूलत्वक्शुङ्गसिद्धं पयो नरः । पीत्वा सशर्कराक्षौद्रं कुलिङ्ग इव हृष्यति ॥" ( सु. चि. अ. २६ ) । "अश्वत्थः शीतलो रूक्षः कषायो दुर्जरो गुरुः । व्रणपित्तकफास्रघ्नो वर्ण्यो योनिविशोधनः ॥" ( कै. नि. ) ।

पीपल कषाय, शीतवीर्य, रूक्ष, गुरु, मूत्रसंग्रहण, वर्ण्य, योनिविशोधन, दुर्जर तथा व्रण, पित्त, कफ और रक्तविकारको दूर करनेवाला है। पीपलके फल, मूल, त्वचा और कोंपलके साथ दूध पका, उसमें शक्कर और शहद गेर कर पीनेसे वाजीकर गुण होता है ।

**नव्यमत**—पीपलकी छाल स्तंभन, रक्तसांग्राहिक और पौष्टिक; पत्र आनुलोमिक, कोमलपत्र पहिले रेचन और पीछे स्तंभन; फल पाचन, आनुलोमिक, संकोचविकास-प्रतिबंधक और रक्तशोधक हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

**यूनानी मत**—पीपल गरम, खुश्क, श्वयथुविलयन, रूक्षण, तथा वमन और उबकाईको दूर करनेवाला और फोड़ेको बैठानेवाला है ।

---

## ( २८६ ) प्लक्ष ।

**नाम**—( सं. ) प्लक्ष; ( हिं. ) पाकर, पाखर; ( कु. ) काभड़ो; ( ने. ) काबरो; ( बं. ) पाकुड; ( म. ) पिंपरी; ( गु. ) पीपळी, पीपर; ( ले. ) फाईकस् लेकोर् ( Ficus lacor ) ।

**वर्णन**—पाकरका बड़से छोटा, बहुशाखायुक्त वृक्ष होता है । इसमें जटायें क्वचित् ही लगती हैं । पत्र गूलरके सदृश परंतु उससे छोटे होते हैं ।

**गुण-कर्म**-**चरके** ( सू. अ. ४ ) मूत्रसंग्रहणीये महाकषाये, कषायस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) च तथा **सुश्रुते** ( सू. अ. ३८ ) न्यग्रोधादिगणे प्लक्षः पठ्यते । "प्लक्षः कषायः शिशिरो व्रणयोनिगदापहः । दाहपित्तकफामघ्नः शोथहा रक्तपित्त-हृत् ॥ रक्तदोषहरो मूर्च्छाप्रलापभ्रमनाशनः ।" ( भा. प्र. ) ।

पाकर कषाय, शीतवीर्य, मूत्रसंग्रहणीय तथा व्रण, योनिरोग, दाह, पित्त, कफ, आम, शोथ, रक्तपित्त, रक्तदोष, मूर्च्छा, प्रलाप और भ्रमको दूर करनेवाला है ।

---

## ( २८७ ) उदुम्बर ।

**नाम**—( सं. ) उदुम्बर, भद्रोदुम्बर, हेमदुग्ध, यज्ञाङ्ग; ( हिं. ) गूलर; ( बं. ) यज्ञडुमुर; ( म. ) उंबर; ( गु. ) उंबरो, उमरडो; ( फा. ) अंजीरे आदम, अंजीरे अहूमक; ( ले. ) फाईकस् ग्लोमिरेटा ( Ficus glomerata )।

**वर्णन**—गूलर भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है ।

**गुण-कर्म-चरके**—( सू. अ. ४ ) मूत्रसंग्रहणीये महाकषाये, कषायस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) च तथा सुश्रुते न्यग्रोधादिगणे उदुम्बरः पठ्यते । "उदुम्बरो हिमो रूक्षः कषायो मधुरो गुरुः । भग्नसंधानकृद्वर्ण्यो व्रणशोधनरोपणः ॥" ( कै. नि. ) । "औदुम्बरं कषायं स्यात् पक्कं तु मधुरं हिमम् । कृमिकृत् पित्तरक्तघ्नं मूर्च्छा-दाहतृषापहम् ॥" ( ध. नि. ) ।

गूलर कषाय, मधुर, शीतवीर्य, गुरु, रूक्ष, मूत्रसंग्रहण, भग्नसंधानकर, वर्ण्य तथा व्रणका शोधन और रोपण करनेवाला है । गूलरका कच्चा फल कषाय; पक्क फल मधुर, शीतवीर्य, कृमिकर तथा पित्त, रक्तविकार, मूर्च्छा, दाह और तृषाको मिटानेवाला है ।

**नव्यमत**—गूलरकी छाल स्तम्भन; पक्क फल शीतल, स्तम्भन और रक्तसांग्राहिक; दूध शीतल, स्तम्भन, रक्तसांग्राहिक, पौष्टिक और शोथहर है । जिन रोगोंमें रक्तस्राव होता हो किंवा शोथ हो उन रोगोंमें गूलरका उपयोग करते हैं । मधुमेहमें फल पाचन और पौष्टिक गुणके लिये देते हैं । छोटे बच्चे जब सूखते जाते हों, खाया पीया गुण नहीं देता हो, उलटी और दस्त होते हो और हलका ज्वर रहने लगता हो तब गूलरका दूध ५–१० बूँद दूधमें मिलाकर देते हैं । गंडमाला, बद आदि सूजे हुए स्थानपर एवं कमर तथा वक्षःस्थलके दर्द पर गूलरका दूध लगाते हैं । गूलरका मूल आँवमें देते हैं । ताजे मूलका रस शीतल, स्तम्भन, रक्तस्तम्भन और उत्तम पौष्टिक है तथा सुजाकमें देनेसे मूत्रनलिकाका शोथ कम करता है । गूलरकी छालका फांट अत्यार्तवमें देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## ( २८८ ) काकोदुम्बर ।

**नाम**—( सं. ) काकोदुम्बर, मलपू, जघनेफला; ( हि. ) कठूमर, कठगूलर; ( बं. ) काकडुमुर; ( म. ) भुईउंबर, बोखाडा; ( गु. ) ढेडउंबरो; ( ले. ) फाई-इकस् हिस्पिडा ( Ficus hispida ) ।

**वर्णन**—कठगूलरका छोटा झाड़ी जैसा वृक्ष होता है । पत्रपृष्ठ खर, इसके काण्डमें गूलर जैसे रोमावृत फल लगते हैं ।

**गुण-कर्म**—"मलपूः स्तम्भकृत्तिक्ता शीतला तुवरा जयेत् । कफपित्तव्रण-श्वित्रकुष्ठपाण्डुस्रकामलाः ॥" ( भा. प्र. ) ।

कठगूलर तिक्त, कषाय, स्तम्भन तथा कफ, पित्त, व्रण, श्वित्र, कुष्ठ, रक्तविकार और कामलाको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—कठगूलरमें एक साबुन जैसा पदार्थ है, उससे वमन होता है। इसके फल वामक और विरेचक हैं। छाल नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक और स्तम्भन, अल्पमात्रामें पौष्टिक और बड़ी मात्रामें वामक और विरेचक है। **मात्रा**–फल ॥ से १ नग; छाल २०–३० रत्ती (डॉ. वा. ग. देसाई)।

**सुश्रुत** (चि. अ. ९) में लिखा है कि–श्वित्रवालेको गूलर और कठगूलरके मूलका सुखोष्ण क्वाथ पिलाकर धूपमें बैठानासे श्वित्रमें फोड़े उठेंगे। उनको फोड़ कर उस पर चीते या हाथीका चमड़ा जला, तैलमें मिलाकर लेप करे। इससे श्वित्र अच्छा होता है (भद्रासंज्ञोदुम्बरीमूलतुल्यं दत्त्वा मूलं क्षोदयिलाः मलप्वाः। सिद्धं तोयं पीतमुष्णे सुखोष्णं स्फोटाञ्छ्वित्रे पुण्डरीके च कुर्यात् ॥ द्वैपं दग्धं चर्म मातङ्गजं वा भिन्ने स्फोटे तैलयुक्तं प्रलेपः)।

---

## (२८९) अंजीर।

**नाम**—(सं.) फल्गु; (हिं., फा.) अंजीर; (अ.) तीन; (ले.) फाइकस केरिका (Ficus carica)।

**वर्णन**—प्रसिद्ध फल है।

**गुण-कर्म**—"तर्पणं बृंहणं फल्गु गुरु विष्टम्भि शीतलम्।" (च. सू. अ. २७)। "विष्टम्भि मधुरं शीतं फल्गुजं तर्पणं गुरु।" (सु. सू. अ. ४६)।

अंजीर मधुर, गुरु, शीतवीर्य, तर्पण, बृंहण और विष्टम्भि है।

**नव्यमत**—अंजीर स्नेहन और स्रंसन है। सूखे अंजीर स्नेहन, कफघ्न और आनुलोमिक हैं। मलावष्टम्भ और मधुमेहमें सूखे अंजीर खानेको देते हैं।

**यूनानी मत**—अंजीर पहिले दर्जेमें उष्ण, दूसरे दर्जेमें तर, दोषमार्दवकर, कोष्ठमृदुकर, दोषपाचन, स्वेदन, कफनिःसारक, मूत्रल, पौष्टिक और कब्जको दूर करनेवाला है। मोतीझरा और मसूरिकामें दानोंको बाहर लानेके लिये खूबकलाँ और अंजीरका क्वाथ देते हैं। प्लीहाकी वृद्धिमें जामुनके सिरकेमें अंजीरको ५–७ दिन भिगोकर खानेको देते हैं।

---

## (२९०) तूत।

**नाम**—(सं.) तूत, तूद; (हिं.) तूत, शहतूत; (क.) तूल; (गु.) शेतूर, सेतूर; (मा.) सहतूत; (कु.) किमु; (फा.) तूत नव्ती (मीठा-सफेद), तूत स्याह (मधुराम्ल-रक्ताभ श्याम); (ले.) मोरस इन्डिका (Morus indica)।

**वर्णन**—तूत एक प्रसिद्ध फल है। इसकी दो जातियाँ होती हैं–(१) पिलाई लिये सफेद, १–१॥ इंच लंबा और मीठा होता है; (२) लम्बगोल, मधुराम्ल और रक्ताभ काला होता है।

**गुण-कर्म**—"तूदस्य तु फलं स्वादु बलवर्णाग्निवृद्धिकृत्। तूदं तु मधुराम्लं स्याद्वातपित्तहरं सरम्॥ दाहप्रशमनं वृष्यं कषायं कफनाशनम्।" (ध. नि.)। "तूदं गुरु सरं साम्लमामं तद्रक्तपित्तलम्। उष्णं पक्वं तु मधुरं शीतं पित्तानिलापहम्।" (कै. नि.)।

मीठा तूत बल–वर्ण और अग्निको बढ़ानेवाला, शीतवीर्य तथा पित्त और वायुका शमन करनेवाला है। मधुराम्ल तूत गुरु, सारक, वातपित्तहर, दाहप्रशमन तथा वृष्य है।

**यूनानी मत—सफेद (मीठा) तूत** पहले दर्जेमें गरम और तर, अवरोधोद्घाटक, मस्तिष्कस्नेहन, उरःफुप्फुसबलदायक और दोषपाचन है। **स्याह तूत**—शीत, तर, शीतसंग्राही, दोषविलोमकर्ता, दोषोंको पतला करनेवाला, रक्तकी तीक्ष्णताका शमन करनेवाला, पिपासाघ्न, कण्ठके उष्ण शोथका विलयन तथा जड़की छाल उदरकृमिनाशन है। कण्ठशोथ, रोहिणी, जिह्वामूलशोथ, जिह्वाशोथ और मुखपाकमें शहतूतका शर्बत पिलाते हैं तथा इसकी पत्तियोंके क्वाथका गण्डूष कराते हैं। जड़का क्वाथ व्रधाकारकृमिनाशन है।

---

## (२९१) भांग और गाँजा।

**नाम**—(सं.) भंगा, विजया, शक्राशन; (हिं) भाँग, भंग; (म., गु.) भांग; (बं.) भाङ, सिद्धि; (अ.) किन्नुब; (ले.) केनेबिस् सेटाइवा (Cannabis sativa)।

**वर्णन**—भाँग भारतवर्षमें सर्वत्र होती है और प्रसिद्ध है। पत्र और बीजयुक्त कोमल शाखाओंको **भाँग**, मादा पौधेकी रालदार पुष्पमंजरीको **गाँजा** और कोमल शाखाओंपर जमे हुए लेसदार रालसदृश द्रव्यको **चरस** (मारवाड़में **सुल्फा**) कहते हैं। इन तीनों और बीजोंका औषधके लिये उपयोग करते हैं।

**गुण-कर्म**—"भङ्गा तु दीपनी रुच्या ग्राहिणी पाचनी लघुः। निद्रापित्तप्रदोष्णा च कामदा कफवातजित्॥" (शो. नि.)।

भाँग उष्णवीर्य, दीपन, पाचन, लघु, ग्राही, रुचिकर, निद्राकर, कामोत्तेजक तथा कफ और वातको दूर करनेवाली है।

**यूनानी मत**—भाँग तीसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष, संग्राही, दीपन, सौमनस्यजनन, वाजीकर, शुक्रस्तम्भन, वीर्यशोषण, वेदनास्थापन, स्वापजनन, आक्षेपहर, प्रलापजनक

और मादक है। पाचनविकृति, अतिसार, प्रवाहिका, काली खाँसी, अनिद्रा और आक्षेपमें भाँगका उपयोग करते हैं। बवासीर( अर्श )की पीड़ा शान्त करनेके लिये भाँगको दूधमें उबाल, पीसकर उसकी टिकिया बाँधते हैं।

**नव्यमत**—गाँजेकी क्रिया प्रधानतः मस्तिष्कपर होती है। गाँजा उत्तेजक, वेदनास्थापन, शांतिकारक, क्षुधावर्धक, पित्तद्रावी, मूत्रजनन, आल्हादकारक, कफघ्न, स्वापजनन, शोणितास्थापन, संकोचविकासप्रतिबंधक, गर्भाशयसंकोचक, बल्य, वाजीकर और त्वचाकी ज्ञानग्राहक शक्ति कम करनेवाला है। **मात्रा**—शुद्ध भाँग १–२ रत्ती, शुद्ध गाँजा ½–१ रत्ती, चरस ¼ रत्ती ( डॉ. वा. ग. देसाई )। भाँग और गाँजेको दूधमें दोलायन्त्रसे पका, जलसे धोकर सुखा लेनेसे शुद्ध होजाता है।

---

## कट्फलादिवर्ग ८२.

### N. O. Myricaceæ. ( माइरिकेसी )।

**वर्ग लक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश; पर्ण एकान्तर और सादे; बीजकोश उपरिस्थ, एक खण्डवाला; फल मांसल, एकबीज।

---

### ( २९२ ) कट्फल।

**नाम**—( सं. ) कट्फल; ( कु., ग., ने. ) काफल, ( हिं., म., गु. ) कायफल; ( बं ) कट्फल, कायछाल; ( अ. ) अजूरी, उदुलबर्क, कन्दूल; ( फा. ) दारशीशआन; ( ले ) माइरिका नेगी ( Myrica nagi )।

**उत्पत्तिस्थान**—उत्तर पंजाब, गढ़वाल, कुमाऊँ, नेपाल।

**वर्णन**—बाजारमें कायफलके नामसे रक्ताभ, भारी, स्वादमें चरपरी और कुछ कषाय-तिक्त स्वादवाली छाल मिलती है। इसके फल खिरनीकी आकृतिके ·॥· इंच लम्बे, अण्डाकार–कुछ चिपट, रक्ताभ और स्वादमें खट-मीठे होते हैं। फलमें मांस कम होता है और गुठली बड़ी होती है। छालका चूर्ण सूँघनेसे छींकें आती हैं।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) सन्धानीये, शुक्रशोधने, वेदनास्थापने च महाकषाये तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) लोध्रादौ, सुरसादौ च गणे कट्फलः पठ्यते। "कट्फलः कटुरुष्णश्च कासश्वासज्वरापहः। प्रतिश्यायहरो रुच्यो मुखरोगशमप्रदः॥" ( रा. नि. )।

कायफलकी छाल कटु, उष्णवीर्य, संधानीय, शुक्रशोधन, वेदनास्थापन, रुचिकर तथा खाँसी, श्वास, ज्वर, प्रतिश्याय और मुखरोगका नाश करनेवाली है।

**यूनानी मत**—कायफलकी छाल दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, ग्रन्थिविलयन, संग्राही, उदरवातहर, वातनाड़ीबलप्रद, प्रकोथनाशक, छींक लानेवाली, मस्तिष्कके द्रवोंको आकर्षित करनेवाली तथा कफको पकाकर निकालनेवाली है।

**नव्यमत**—कायफलकी छाल कटु, तिक्त, सुगन्धि, ग्राही, स्वेदजनन, कफघ्न, उत्तेजक, वातहर, शोथघ्न और गर्भाशयोत्तेजक है। ज्वरमें कायफलसे पसीना आता है, शरीरकी पीड़ा कम होती है, सरदी और सिरका दर्द कम होता है और छातीमें कफ हो तो ढीला होकर पड़ने लगता है। अग्निमान्द्य, अरुचि, कुपचन, अतिसार, गलेकी सूजन, खाँसी और दमामें कायफल देते हैं। पीड़ितार्तवमें कायफल, केशर और काले तिलकी गुड़में गोली बनाकर खिलानेसे लाभ होता है। कायफलके चूर्णकी कपड़ेमें पोटली बनाकर योनिमें रखनेसे गर्भाशयकी संकोचविकाशक्रिया बढ़कर आर्तव ठीक आने लगता है। मूर्च्छा, जुकाम और सिरके दर्दमें कायफलका चूर्ण सूँघनेको देते हैं। कायफलका चूर्ण छिड़कनेसे अथवा इसके क्वाथसे व्रणको धोनेसे व्रणका शोधन-रोपण होता है। शरीर ठंडा पड़नेपर कायफलके चूर्णकी मालिश करते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**उपयुक्त अंग**—वृक्षकी छाल। छालका चूर्ण या क्वाथ बनाकर उपयोग किया जाता है। **मात्रा** १–२ माशा।

---

## मायाफलादि वर्ग ८३.

### N. O. Cupuliferæ. ( क्युप्युलिफेरी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प, द्विबीजपर्ण; बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश; पर्ण एकान्तर, पक्षाकार; पुंकेशर ५–१०; बीजकोश अधःस्थ; फल कवचवाला; बीज १–२।

---

### (२९३) माजूफल।

**नाम**—(सं.) मायाफल; (हिं.) माजूफल; (म.) मायफळ; (गु.) कांटाळुं मायुं, मायुं, माजुफळ; (अ.) अफ्स, अफ्सुल बुल्त; (फा.) माजू; (ले.) क्वेर्कस इन्फेक्टोरिआ ( Quercus infectoria )।

**उत्पत्तिस्थान**—ईरान, एशिया मायनर, सीरिया।

**वर्णन**—यह फल नहीं परंतु एक प्रकारका कीटगृह है। जो माजूफल गोल, वजनदार, बड़ा, छिद्ररहित और हरे-पीले रंगका हो वह अच्छा होता है। इसका स्वाद अतिकषाय होता है।

**यूनानीमत**—माजूफल पहले दर्जेमें शीत और दूसरेमें रूक्ष, संग्राही, उपशोषण, रक्तस्तम्भन, कोथप्रतिबन्धक और बालोंको काला करनेवाला है। अन्त्रव्रण, पुराने अतिसार और श्वेतप्रदरमें इसका चूर्ण खिलाते हैं। दाँतों और मसूढ़ोंके शैथिल्यको दूर करने और उनके रक्तस्रावको बंद करनेके लिये माजूफलको दंतमंजनोंमें डालते हैं और इसके काढ़ेसे कुल्ले भी कराते हैं। रक्तस्तम्भन होनेके कारण सद्योव्रणोंपर इसका चूर्ण छिड़कते हैं। श्वेत और रक्तप्रदरमें इसके चूर्णकी कपड़ेमें पोटली बांधकर योनिमें रखवाते हैं और इसके क्वाथकी उत्तरबस्ति देते हैं। गुदभ्रंश और गुदव्रणमें माजूफलके क्वाथसे गुदप्रक्षालन कराते हैं। यह बालोंको काला करता है, इसलिये केशकल्पों( खिजाबों )में प्रयुक्त होता है।

**नव्यमत**—माजूफलमें **गेलिक् एसिड्** और **टेनिक् एसिड्** ये दो अम्ल द्रव्य हैं। माजूफल उत्तम स्तम्भन, श्लेष्मघ्न, शोणितास्थापन और विषघ्न है। दालचीनी आदि इतर सहायक औषधोंके साथ माजूफलका चूर्ण पुराने अतिसार और संग्रहणीमें देते हैं। पुराने सुजाक और तन्तुमेहमें माजूफलका चूर्ण १० रत्तीकी मात्रामें देते हैं। जब बिना पीड़ाके पूय आता हो तब यह देना चाहिये। कुचला, धतूरा, बछनाग, अफीम आदि विषद्रव्य खाये गये हों तब प्रथम वमन कराकर पीछे विष-प्रशमनार्थ माजूफलका तेज काढ़ा बड़ी मात्रामें बार-बार देना चाहिये। माजूफल जलमें घिस कर व्रण पर लगानेसे व्रणका संकोचन होता है और वह शीघ्र भर आता है। माजूफल जलमें घिसकर गलेमें लगानेसे गलेकी गाँठों( टॉन्सिल )की सूजन उतरती है और कागलिया बढ़ा हो तो संकुचित होकर सूखी खाँसी आना बंद होता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

## वेतसादि वर्ग ८४.

### N. O. Salicaceæ. ( सेलिकेसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; बाह्याभ्यन्तरसंयुक्तकोश; पर्णविन्यास एकान्तर; बीजकोश उपरिस्थ और एक खण्डवाला; बीज पुष्कल और रोमयुक्त।

---

### ( २९४ ) वेतस-बेदमुश्क।

**नाम**—( सं. ) वेतस, वानीर, गन्धपुष्प; ( क. ) ब्रेडमुष्क; ( पं. ) बेदमुश्क; ( अ. ) खिलाफुल बलखी; ( ले. ) सेलिक्स् केप्रिआ ( Salix caprea )।

**उत्पत्तिस्थान**—ईरान और उत्तरपश्चिम सीमाप्रान्त।

**वर्णन**—बेदमुश्कका १५–३० फुट ऊँचा वृक्ष होता है। पत्र एकान्तर, हरे रंगके, लंबगोल, नोकदार और दन्तुर; पुष्प पीले और सुगन्धि।

**गुण-कर्म**—"वेतसः शीतलो दाहशोथार्शोयोनिरुक्प्रणुत्। हन्ति वीसर्पकृच्छ्रास्रपित्ताश्मरिकफानिलान्॥" (भा. प्र.)।

बेदमुश्क शीतवीर्य तथा दाह, शोथ, अर्श, योनिरोग, विसर्प, मूत्रकृच्छ्र, रक्तविकार, पित्त, अश्मरी कफ और वातको दूर करनेवाला है।

**यूनानी मत**—बेदमुश्क पहले दर्जेमें शीत, दूसरे दर्जेमें तर, हृदयबलदायक, मेध्य, संतापहर, मूत्रल, वेदनास्थापन, सारक, शिरःशूलनाशक और वाजीकर है। हृत्स्पन्दन और उष्ण ज्वरोंमें इसका अर्क पिलाते हैं। **मात्रा**—अर्क ५–१० तोला। मुक्ता आदि रत्नोंकी पिष्टी बनानेके लिये इसके अर्ककी भावना दी जाती है।

**नव्यमत**—बेदमुश्ककी छाल ग्राही, शीतल, ज्वरघ्न और दाहप्रशमन है; फूल रोचक हैं। छालका क्वाथ और फूलोंका अर्क उपयोगमें लेना चाहिये। छालका क्वाथ विषमज्वर, पित्तज्वर, तरुण आमवात और क्षयमें देते हैं। इससे ज्वरमें दाह और सिरका दर्द, क्षयमें छातीसे रक्त आना और संधिवातमें सन्धिकी सूजन और पीड़ा–कम होते हैं। नेत्राभिष्यन्द और सिरके दर्दमें अर्क बेदमुश्कमें कपड़ा भिगोकर रखनेसे लाभ होता है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## (२९५) जलवेतस-बेदसादा।

**नाम**—(सं.) वञ्जुल, जलवेतस; (म.) वालुंज; (फा.) बेद, बेदसादा; (क.) वीर; (ले.) सेलिक्स् टेट्रास्पर्मा (Salix tetrasperma)।

**वर्णन**—इसके वृक्ष कश्मीर आदिमें नदी–नालोंके किनारे होते हैं। पत्र एक बित्तातक लंबा, पत्रपृष्ठ सफेद, पत्रोदर हरा; पुष्प सफेदी लिये पीले और कुछ सुगन्धि होते हैं। इसकी टहनियोंसे टोकरे आदि बनाते हैं।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) वेदनास्थापने महाकषाये, आसवयोनिसारवृक्षेषु (सू. अ. २५) च वञ्जुलः पठ्यते।

**यूनानी मत**—बेदसादा पहले दर्जेमें सर्द और खुश्क; फूल पहले दर्जेमें सर्द और दूसरेमें तर, संतापहर, हृद्य, मूत्रल, वेदनास्थापन, मस्तिष्कबलदायक तथा उष्ण ज्वरके लिये गुणकारक हैं। रक्तातिसार, यकृत् और प्लीहाके शोथ एवं कामलामें इसके ताजे पत्तोंका रस देते हैं।

**नव्यमत**—बेदसादा पौष्टिक, ज्वरघ्न और नियतकालिकज्वरप्रतिबन्धक है। **मात्रा**—छाल क्वाथके लिये ॥–१ तोला (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**वक्तव्य**—चरक( क. अ. १, ८ )में "वञ्जुल-वानीरोपशोभिततीराभिः सरिद्भिरुपगतभूमिभागः" तथा ( सि. अ. १०, २१ ) "नलवञ्जुलवानीरशतपत्राणि शैवलम् ॥" इन स्थानोंमें **वञ्जुल** और **वानीर** दोनोंका उल्लेख एकत्र देखनेमें आता है। अतः ये दो भिन्न वनस्पतियाँ हैं। कई निघण्टुकारोंने इनको पर्याय माना है वह ठीक नहीं है। हकीम लोग अर्क बेदमुश्कका पुष्कल उपयोग करते हैं, वैद्योंको भी इसका प्रयोग करना चाहिये।

---

## सोमादि वर्ग ८५.

### N. O. Gnetaceæ. ( नेटेसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तकोश; पर्ण अभिमुख, अखंड और सिराजालयुक्त।

---

### ( २९६ ) सोम।

**नाम**—( सं. ) सोम; ( हिं. ) टूटगंठा ( चकरौरोता ); ( पं. ) असमानी बूटी; ( क. ) असमानिया; ( ईरान ) होम; ( ले. ) एफेड्रा वल्गेरिस् ( Ehpedra vulgaris ), एफेड्रा गेरेर्डिआना ( Ephedra gerardiana )।

**उत्पत्तिस्थान**—ईरान, काश्मीर, नेपाल, सिक्किम आदि।

**वर्णन**—इसका छोटा और भंगुर क्षुप होता है। शाखायें हरी, खड़ी और रेखायुक्त; पत्र अल्प; पुष्प अवृन्त मंजरीके रूपमें। स्वाद कषाय, सुगन्धित। पारसी लोग अपनी धार्मिक क्रियाओंमें अबतक **होम**( सोम )के नामसे इसका प्रयोग करते हैं।

**उपयुक्त अंग**—समग्र क्षुप। इसका चूर्ण या अर्धावशेष क्वाथ बनाकर उपयोग करना चाहिये। **मात्रा**—चूर्ण ५-१० रत्ती; क्वाथ २-४ तोला।

**गुण-कर्म**—सोम पाचन, आनुलोमिक, मूत्रजनन, यकृदुत्तेजक, ज्वरघ्न, आमनाशक, वातहर, शोथहर, मस्तिष्कोत्तेजक, तारकाविकाशि और श्वासावरोधको कम करनेवाला है। सोमका क्वाथ तरुण आमवातमें देनेसे पीड़ा और शोथ कम होता है, भूख बढ़ती है, मूत्रका प्रमाण बढ़ता है, दस्त साफ होता है और ज्वर उतरता है। थोड़ा उत्तम मद्य पीनेसे जैसे मस्तिष्कमें उत्तेजना मालूम होती है ऐसी इससे भी मालूम होती है, परन्तु नशा नहीं आता ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

तमकश्वासका वेग कम करनेके लिये यह उत्तम औषध है।

---

# देवदार्वादि वर्ग ८६.

## N. O. Coniferæ. ( कोनिफेरी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; संयुक्तकोश; पत्र सरल, सकड़े, नोकदार।

---

### ( २९७ ) देवदार।

**नाम**—( सं. ) देवदारु, भद्रदारु, सुराह्व, किलिम; ( हिं., म., गु. ) देवदार; ( कु. ) दयार; ( पहाड़ी ) केलोन; ( पं. ) दियार; ( क. ) दीवदार; ( ले. ) केड्रस् डिओडोरा ( Cedrus deodara )।

**वर्णन**—हिमालयमें ७०००-९००० फुटकी ऊँचाई पर देवदारुके महावृक्ष होते हैं। इसका सार-काष्ठ और काष्ठको जलाकर निकाला हुआ तेल औषधार्थ प्रयुक्त होता है। गुजरात और दक्षिण भारतमें प्रायः देवदारके नामसे सरल( चीड़ )की लकड़ी बिकती है।

**गुण-कर्म-चरके**—( सू. अ. ४ ) स्तन्यशोधने, अनुवासनोपगे च महाकषाये तथा कटुकस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) ( 'किलिम'नाम्ना ) देवदारु पठ्यते। सुश्रुते ( सू. अ. ३९ ) वातसंशमने वर्गे 'भद्रदारु'नाम्ना देवदारु पठ्यते। "देवदारु लघु स्निग्धं तिक्तोष्णं कटुपाकि च। विबन्धाध्मानशोथामतन्द्राहिक्काज्वरास्रजित्॥ प्रमेहपीनसश्लेष्मकासकण्डूसमीरनुत्" ( भा. प्र. )। "× × देवदारुस्नेहास्तिक्त-कटुकषाया दुष्टव्रणशोधनाः क्रिमिकफकुष्ठानिलहराश्च।" ( सु. सू. अ. ४५ )।

देवदार कटु, तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, लघु, स्निग्ध, स्तन्यशोधन, अनुवास-नोपग तथा विबन्ध, आध्मान, शोथ, आम, तन्द्रा, हिक्का, ज्वर, रक्तविकार, प्रमेह, पीनस, कफ, खाँसी, कण्डू और वायुका नाश करनेवाला है। देवदारुका तेल तिक्त, कटु, कषाय, दुष्टव्रणशोधन तथा क्रमि, कुष्ठ और वातको मिटानेवाला है।

**नव्यमत**—देवदार स्वेदजनन, मूत्रजनन, वातनाशक और त्वग्दोषहर है। देवदारका तेल उत्तम व्रणशोधन और व्रणरोपण है। जीर्णत्वग्रोगमें देवदारका तेल खाने और लगानेको देते हैं। ज्वरमें देवदार देनेसे स्वेद आता है, मूत्रका प्रमाण बढ़ता है, शोथ कम होता है और कफकी दुर्गन्ध कम होकर ज्वर नष्ट होता है। जीर्ण संधिवातमें देवदारसे लाभ होता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

### ( २९८ ) सरल।

**नाम**—( सं. ) सरल, श्याह्व; ( हिं. ) चीड, चीढ; ( क. ) चीर; ( कु. ) सल्ल; ( गु. ) तेलियो देवदार; ( ले. ) पाइनस् लोन्गिफोलिआ ( Pinus longifolia )।

**वर्णन**—हिमालयमें ३०००-६००० फुटकी ऊँचाई पर चीड़के वृक्ष होते हैं। वृक्ष सीधा (सरल) होता है। इसके कांडमें क्षत करनेसे एक प्रकारका निर्यास निकलता है, उसको **गंधाबिरोजा** कहते हैं। गंधाबिरोजासे तिर्यक् पातन द्वारा जो तैल निकाला जाता है उसको **तारपीनका तेल** (टर्पेन्टाइन) कहते हैं। समभाग दूध और जल भरे हुए पात्र पर कपड़ा बाँध, उस पर गन्धाबिरोजा डाल कर नीचे आँच देनेसे बिरोजा कपड़ेसे टपक कर नीचेके पात्रमें जम जाता है, उसको **बिरोजेका सत्त्व** या **सत बिरोजा** कहते हैं । **गंधाबिरोजाके नाम**—(सं.) श्रीवास, श्रीवेष्ट, सरलनिर्यास; (हिं.) गन्धाबिरोजा, बिहरोजा; (क.) यारिकांगुलुन; (ग., कु.) लीसा; (अ.) किन्न; (फा.) बा(बे)जद; (गु.) बेरजो।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. ४) पुरीषविरजनीये गणे तथा सुश्रुते (सू. अ. ३८) एलादिगणे श्रीवेष्टकः पठ्यते। "सरलः कटुतिक्तोष्णः कफवातविनाशनः। त्वग्दोषशोथकण्डूतिव्रणघ्नः कोष्ठशुद्धिदः ॥" (रा. नि.)। "सरल × × × सारस्नेहास्तिक्तकटुकषाया दुष्टव्रणशोधनाः कृमिकफकुष्ठानिलहराश्च।" (सु. सू. अ. ४५)।

चीड़ कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, कोष्ठशुद्धिकर तथा कफ, वात, त्वग्रोग, शोथ, कण्डू और व्रणका नाश करनेवाला है। सरलके काष्ठका तैल तिक्त, कटु, कषाय, दुष्टव्रण-शोधन तथा कृमि, कफ, कुष्ठ और वायुका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—गन्धाबिरोजा खानेसे मुँहमें लाल छुटती है, पेटमें गरमी मालूम होती है, डकार आते हैं, वायु सरता है, नाड़ी भरी हुई चलती है, श्वासोच्छ्वासका प्रमाण बढ़ता है, शरीरमें गरमी आती है, मूत्रका प्रमाण बढ़ता है और मस्तिष्क तथ नाड़ियोंमें उत्तेजन आता है। बड़ी मात्रामें देनेसे उलटी और जुलाब होते हैं, नाड़ी पतली होती है, जी घबराता है, शरीर ठंढा पड़ता है, पेशाबमें जलन होती है और रक्त आता है तथा सर्व शरीरमें शिथिलता आती है। इसलिये गंधाबिरोजा अथवा चीढ़का तेल (टार्पिन तेल) अल्प प्रमाणमें देना चाहिये। गंधाबिरोजा अथवा चीड़का तेल वातनाशक, पित्ताश्मरीघ्न, कफघ्न, स्वेदजनन, मूत्रजनन, रक्तसंग्राहक, उत्तेजक, कृमिघ्न, शोथघ्न, व्रणशोधन-रोपण और दुर्गन्धनाशक है। आध्मानमें तार-पीनका तेल पेटपर लगाते हैं। चीड़का तेल गोंदके साथ मर्दन कर, उसमें थोड़ी चीनी और पानी मिलाकर देनेसे पेटके कृमि मरते हैं और आँतोंसे रक्तस्राव होता हो तो वह बंद होता है। जीर्ण कास और राजयक्ष्मामें गन्धाबिरोजा बहुत उपयोगी होता है। इससे फुप्फुस और श्वासनलिकाका रक्ताभिसरण बढ़ता है, कफ कम होता है, कफकी दुर्गन्ध नष्ट होती है, कफ शीघ्र गिरने लगता है और कफके साथ रक्त आता हो तो वह बंद होता है। जीर्ण बस्तिशोथ और पुराने सुजाकमें गंधाबिरोजासे लाभ होता है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**यूनानी मत—चीड़की** लकड़ी तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, दोषविलोमकर्ता, शीतशोथविलयन, वेदनास्थापन तथा व्यंगनाशक है। अर्दित, पक्षवध, अंगघात, संन्यास, अपस्मार तथा अन्य शीतल मस्तिष्क और वातव्याधियोंमें इसे जलमें घिसकर पीने और लगानेसे उपकार होता है। इससे अश्मरी खंड-खंड होकर निकल जाती है, श्लेष्मातिसार, वातज हिक्का, आध्मान, कफज्वर और कफका नाश होता है। कण्ठमाला और शीतल शोथोंको विलीन करनेके लिये इसका लेप करते हैं। **गंधाबिरोजा** दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, उष्णताजनन, शोथ और ग्रन्थिविलयन, सर, वातानुलोमन, व्रणशोधन-रोपण, वातज और कफज रोगोंमें लाभकारी, श्लेष्मनिःसारक, मूत्रजनन, आर्तवजनन, आवीजनन और कृमिनाशन है। गंधाबिरोजाको अधिकतया सुजाकमें गोलीके रूपमें या इसका तेल निकालकर उपयोग करते हैं। व्रणशोधन-रोपण मरहमोंमें इसका उपयोग करते हैं।

---

## (२९९) तालीसपत्र।

**तालीसपत्रके** नामसे इस समय नीचे लिखे हुए तीन द्रव्योंका व्यवहार हो रहा है।

### तालीसपत्र १।

**नाम—(सं.)** तालीसपत्र; **(हिं.)** तालीसपत्र, बर्मी, बिर्मी; **(गढ़वाल)** थुनेर; **(कश्मीर)** पोस्तुल, पोस्तिल; **(अ.)** जर्नब; **(ले.)** **टेक्सस् बॅकेटा** (Taxus baccata)।

**उत्पत्तिस्थान**—हिमालयके कश्मीर, पूर्वी पंजाबका पहाड़ी प्रदेश, गढ़वाल आदिमें ६०००-१०००० फुटकी ऊँचाईपर इसके सदाहरित वृक्ष होते हैं।

**वर्णन**—पत्तियाँ दो कतारोंमें निकली हुईं; १-१॥ इंच लंबी, $\frac{१}{१०}$ इंच चौड़ी, रेखाकार, चिपटी, नोकीली, ऊपरी पृष्ठपर गहरे हरे रंगकी, अधःपृष्ठपर हलके पीले या मुरचई रंगकी; पत्रवृन्त छोटा; इसमें लाल कोशसे घिरा हुआ हरिताभ बीज होता है, जो शीर्षपर खुला रहता है **(वनौषधिदर्शिका)**। युक्तप्रान्त, राजपूताना, महाराष्ट्र, गुजरात आदिके वैद्य **तालीसपत्रके** नामसे इसका व्यवहार करते हैं।

**गुण-कर्म**—तालीसके पत्र और बीजमें एक जहरीला द्रव्य होता है, जो बीजके ऊपरके लाल कोशमें नहीं होता। तालीसपत्र अवसादक, संकोचविकासप्रतिबन्धक और आर्तवजनन है। अल्पमात्रामें देनेसे नाड़ी और श्वासकी गति कम होती है; मध्यम मात्रासे श्वासोच्छ्वास शीघ्र चलता है और हृदय धड़कता है; बड़ी मात्रासे चक्कर आते हैं, आक्षेप होता है और प्राणनाश होता है। तालीसपत्रका जहर चढ़नेपर वमन होता है, नशा चढ़ता है, आँखकी तारकाएँ संकुचित होती हैं और श्वासोच्छ्वास मन्द होता है। आक्षेपयुक्त रोग, श्वासनलिकाके जीर्णशोथ और दममें तालीसपत्र देते हैं **(डॉ. वा. ग. देसाई)**।

**यूनानी मत**—तालीसपत्र दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, सौमनस्यजनन, हृदय-मस्तिष्क और नाडियोंको बलप्रद, उष्णताजनन, दीपन और वातानुलोमन है। मन्दाग्नि, अरुचि, कफज कास, कृच्छ्रश्वास और कफज हिक्कामें इसका प्रयोग करते हैं।

---

## (३००) तालीसपत्र २।

**नाम**—(कश्मीर) बुदुल, बुदिल; (ले.) एबिस् वेबिआना (Abies webbiana)।

**वर्णन**—इसके सदाहरित ऊँचे वृक्ष होते हैं। नवीन शाखाएँ प्रायः सूक्ष्म और भूरे रोमोंसे ढकी और झुकी हुई; पत्तियाँ १–२ इंच लंबी, १/१० इंच चौडी, पतली, रेखाकार, कांडसे पेचदार क्रममें निकली हुई परंतु देखनेमें दो कतारोंमें निकली हुई; पत्रका ऊपरी पृष्ठ चमकीला और गहरे हरे रंगका, पत्ती नताग्र और अग्रपर दो तीक्ष्ण और कठोर नोकेंवाली; फल लंबगोल, पकने पर गहरे बैंगनी रंगके होते हैं (वनौषधिदर्शिका)। बंगालके वैद्य इसका **तालीसपत्र**के नामसे व्यवहार करते हैं।

**गुण-कर्म**—यह कोष्ठवातप्रशमन, दीपन, श्लेष्मनिःसारक और ग्राही है (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## (३०१) तालीसपत्र ३।

**नाम**—(कश्मीर) तालीशफर; (नेपाल) तालीसपत्र; (ले.) रोडोडेन्ड्रोन् एन्थोपोगोन् (Rhododendron anthopogon)। यह एरिकेसी N. O. ericaceæ. हेमन्तहरितादिवर्ग की वनस्पति है।

**वर्णन**—यह हिमालयके १०००० से १४००० फुटकी ऊँचाई पर कश्मीरसे नेपाल तकके प्रदेशोंमें होता है। इसका सदाहरित क्षुप १–२॥ फुट ऊँचा होता है। पत्र सादे, एकान्तर, पत्रका अधःपृष्ठ रक्ताभ, भूरे रंगका (ब्राउन), ऊपरका पृष्ठ चिकना; पुष्प किंचित् पीताभ। नेपाल और पंजाबके कुछ वैद्य[१] इसका **तालीस-पत्र**के नामसे व्यवहार करते हैं। Wild flowers of Kashmir (By B. O. Coventry) नामक ग्रन्थके दूसरे खंडमें पृ. ६५ पर तथा Flora Kashmere (By J. Forbes Royle) नामक ग्रन्थके दूसरे खंडमें प्लेट नं. ६२ में इसका रंगीन चित्र दिया गया है।

**आयुर्वेदमें वर्णित तालीसपत्रके गुण-कर्म**—सुश्रुते (सू. अ. ३९) शिरोविरेचनद्रव्येषु तालीसपत्रं पठ्यते। "तालीसं श्वासकासघ्नं दीपनं श्लेष्म-वातजित्। मुखरोगहरं हृद्यं" (ध. नि.)। "तालीसपत्रं तिक्तोष्णं मधुरं कफ-

---

१ यह तालीयपत्र अमृतसरके वैद्य हरिशरणानंदजीसे मिल सकता है।

वातनुत् । कासहिक्काक्षयश्वासच्छर्दिदोषविनाशकृत् ॥" (रा. नि.) । "तालीसं लघु तीक्ष्णोष्णं श्वासकासकफानिलान् । निहन्त्यरुचिगुल्मामवह्निमान्द्यक्षयामयान् ॥" (भा. प्र.) । "तालीसं तिक्तकटुकं कृमिवातकफापहम् ॥' (कै. नि.)।

तालीसपत्र तिक्त, कटु, मधुर, उष्णवीर्य, लघु, तीक्ष्ण, शिरोविरेचन तथा कफ, वात, कास, श्वास, हिक्का, क्षय, वमन, अरुचि, गुल्म, आम, अग्निमान्द्य और कृमिका नाश करनेवाला है ।

**वक्तव्य**—डह्लण, भावमिश्र आदिने **स्थौणेयक**का भाषानाम थुनेर-थुणेर लिखा है । प्रथमोक्त तालीस( ले. टेक्सस् बॅकेटा ) को आजकल चकरौता-गढ़वाल आदिमें **थुनेर** कहते हैं; अतः इसको शास्त्रोक्त **स्थौणेयक** मानना उचित मालूम होता है । स्थौणेयकका उल्लेख **चरक** चि. अ. ३. **अगुर्वादितैल**में, चि. अ. २३. **मृतसंजीवन अगद**में, चि. अ. २८ बलातैलमें तथा कल्पस्थान अ. १ में मदनफल-उत्कारिका-मोदकयोगमें और **सुश्रुत** सू. अ. ३८ में एलादिगणमें मिलता है। स्थौणेयकके **गुण-कर्म**—"स्थौणेयं कफवातघ्नं सुगन्धि कटुतिक्तकम् । पित्तप्रकोपशमनं बलपुष्टिविवर्धनम् ॥" (ध. नि.) । "स्थौणेयकं कटु स्वादु तिक्तं स्निग्धं त्रिदोषनुत् । मेधाशुक्रकरं रुच्यं रक्षोऽश्रीज्वरजन्तुजित् । हन्ति कुष्ठास्रतृड्दाहदौर्गन्ध्यतिलकालकान् ॥" (भा. प्र.)। स्थौणेयक कटु, तिक्त, मधुर, स्निग्ध, सुगन्धि, पित्तप्रकोपको शांत करनेवाला, त्रिदोषहर, रुचिकर, बल-पुष्टि-मेधा-शुक्रकर तथा ज्वर, कृमि, कुष्ठ, रक्तविकार, तृषा, दाह, दुर्गन्ध और तिलकालकका नाश करनेवाला है । **तृतीय तालीसपत्र**को आधुनिक लेखकोंने सुगन्धि, उत्तेजक और छिक्काजनन लिखा है ।

---

## (३०२) हपुषा ।

**नाम**—(सं.) हपुषा, हवुषा; (हिं.) हाऊबेर; (क.) यठुर; (अ.) अबहल; हब्बुल अरअर; (ले.) जुनिपरस् कोम्युनिस् (Juniperus communis)

**उत्पत्तिस्थान**—उत्तर-पश्चिम हिमालय और ईरान ।

**वर्णन**—बाजारमें इसके मटरके समान बड़े, कुछ श्यामतालिये किरमिजी रंगके और सुगन्धि फल मिलते हैं ।

**उपयुक्त अंग**—फल ।

**गुण-कर्म**—"हपुषा कटुतिक्तोष्णा गुरुर्वातबलासजित् । प्रदरोदरविड्बन्धशूलगुल्मार्शसां हिता ॥" (रा. नि.) । "हपुषा तुवरा तिक्ता कटूष्णा दीपनी गुरुः । ग्रहणीशूलगुल्मार्शोवातपित्तोदरापहा ॥" (कै. नि.) ।

हाऊबेर कटु, तिक्त, कषाय, उष्णवीर्य, गुरु, दीपन, तथा वायु, कफ, प्रदर, उदर, मलावरोध, शूल, गुल्म, अर्श और ग्रहणीको दूर करनेवाली है।

**नव्यमत**—हाऊबेर वातनाशक, उत्तेजक और मूत्रजनन है। हाऊबेर उत्तम उत्तेजक मूत्रजनन है। इसकी क्रिया साक्षात् वृक्कपर होती है और इससे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है। यकृदुदर, जलोदर, हृदयोदर, पुराना सुजाक, श्वेतप्रदर और पेटके दर्दमें इसका प्रयोग करते हैं।

**यूनानीमत**—हाऊबेर दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, श्वयथुविलयन, उपशोषण, लेखन, हलका संग्राही, दीपन, वातानुलोमन, मूत्रजनन और आर्तवजनन है।

---

## मुञ्जातकादि वर्ग ८७.

### N. O. Orchidaceæ. ( ओर्चिडेसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; एकबीजपर्ण; पर्ण सादे, अखंड; पुष्पबाह्यकोशके दल ६, तीन-तीनके दो चक्रोंमें; पुंकेशर १; बीजकोश अधःस्थ, ३ खंडवाला; मूल कन्दमय।

---

### ( ३०३ ) मुञ्जातक।

**नाम**—( सं. ) मुञ्जातक; ( हिं. ) सालममिश्री; ( कु. ) हथजोडी; ( अ. ) साल( लि )बमिश्री ( ले. ) युलोपिआ कोम्पेस्ट्रिस् ( Eulophia compestris )।

**वर्णन**—सालममिश्री एक प्रसिद्ध कंद है। इसकी दो जातियाँ बाजारमें मिलती हैं—( १ ) **पंजासालम** और ( २ ) **लहसुनी या लहसुनिया सालम**। मुञ्जातक पंजासालम है। कन्दकी आकृति हाथके पंजेके समान होती है, इसलिये इसको पंजासालम कहते हैं।

**गुण-कर्म**—"बल्यः शीतो गुरुः स्निग्धस्तर्पणो बृंहणात्मकः। वातपित्तहरः स्वादुर्वृष्यो मुञ्जातकः परम्॥" ( च. सू. अ. २७ )।

सालम मधुर, गुरु, स्निग्ध, शीतवीर्य, बलकारक, तृप्तिकारक, पौष्टिक, श्रेष्ठ वाजीकर और वात तथा पित्तका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—सालम मस्तिष्क और नाडियोंका उत्तेजक और पौष्टिक, संग्राहक, स्तंभन, जीवन, बृंहण और वयःस्थापन है। पचननलिकाके दाहयुक्त रोगोंमें सालम हितकर है। इससे श्लेष्मा कम होता है, व्रणका रोपण होता है और अशक्तपन कम होता है। सालम पचनेमें हलका और संग्राहक है। अतिसार, आँव, गर्भिणीका अतिसार और कुपचन—इन रोगोंमें यह गुणकर अन्न है। प्रसूतिके अनन्तर तथा अति

अभ्यास, अतिमैथुन आदिसे जो थकावट आती है उसमें सालम लाभप्रद है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

**मात्रा**—१॥-३ माशा । इसका चूर्ण बकरी या गायके दूधमें पका, उसमें मिश्री और इलायचीके बीजका चूर्ण मिलाकर देना चाहिये ।

---

## हरिद्रादि वर्ग ८८.

## N. O. Scitaminaceæ. ( स्किटेमिनेसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; एकबीजपर्ण; पर्णक्रम एकान्तर; पत्र काण्डको परिवेष्टित; पुष्पबाह्यकोश और पुष्पाभ्यन्तरकोशके दल २-३; पुंकेशर १; बीजकोश अधःस्थ और तीन खण्डवाला ।

---

### ( ३०४ ) हरिद्रा ।

**नाम**—( सं. ) हरिद्रा, रजनी, निशा, गौरी; ( हिं. ) हलदी, हल्दी; ( पं. ) हरदल, हरधल; ( क. ) लेदिर, लिधर; ( कु. ) हल्दो; ( बं. ) हलुद; ( म. ) हळद; ( गु. ) हळदर; ( अ. ) उरूकुस्सफर; ( फा. ) जर्दचोब; ( ले. ) कर्क्युमा लोन्गा ( Curcuma longa )।

**वर्णन**—हलदी भारतवर्षमें सर्वत्र होती है और प्रसिद्ध है ।

**गुण-कर्म**-चरके( सू. अ. ) लेखनीये, कुष्ठघ्ने, कण्डूघ्ने, विषघ्ने च महाकषाये; तिक्तस्कन्धे ( वि. अ. ८ ), शिरोविरेचनद्रव्येषु ( सू. अ. २ ) च तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) हरिद्रादौ, मुस्तादौ च गणे तथा श्लेष्मसंशमने वर्गे ( सू. अ. ३९ ) च हरिद्रा पठ्यते । "हरिद्रा तु रसे तिक्ता रूक्षोष्णा विषकुष्ठनुत् । मेहकण्डू-व्रणान् हन्ति देहवर्णविधायिनी ॥ विशोधनी कृमिहरा पीनसारुचिनाशिनी ॥" ( ध. नि )। "निशा तिक्ता कटू रूक्षा वर्ण्योष्णा कफपित्तहा । पाण्डुव्रणापचीमेह-त्वग्दोषविषशोथजित् ।" ( कै. नि. )।

हलदी तिक्त, कटु, उष्णवीर्य, रूक्ष, वर्ण्य, लेखन, कुष्ठघ्न, कण्डूघ्न, विषघ्न, शोधन तथा कफ, पित्त, पीपनस, अरुचि, कुष्ठ, कण्डू, विष, प्रमेह, व्रण, कृमि, पाण्डुरोग और अपचीको दूर करनेवाली है ।

**नव्यमत**—हलदी कटु, तिक्त, उष्ण, दीपन, श्लेष्मघ्न, शोथघ्न, ग्राही, वातनाशक, त्वग्दोषहर, कांतिवर्धक, व्रणशोधन, व्रणरोपण और स्तन्यशोधन है । हलदी श्लेष्मल-त्वचामें रूक्षता लाती है और कफ कम करती है, इसलिये जब श्लेष्मकलासे आवश्यक-तासे अधिक कफका स्राव होता हो तब हलदी देते हैं । प्रमेहमें जब मूत्र गदला, थोड़ा-थोड़ा और बार-बार होता हो तब हलदी और आँवलेके क्वाथसे बहुत लाभ

होता है । प्रदरमें हलदी और गूगल किंवा हलदी और रसौत देते हैं । नेत्राभिष्यन्दमें एक भाग हलदीको दश भाग जलमें पका, कपड़ेसे छानकर उसका नेत्रमें आश्च्योतन करने और उसमें भिगोये हुए कपड़ेकी घड़ी नेत्रपर रखनेसे आँखमें ठंडक मालूम होती है, पीड़ा कम होती है तथा कीचड़ और पूय आना कम हो जाता है । सूजे हुए मस्सेपर हलदीको घीकुवारके रसमें पीसकर लगानेसे लाभ होता है । हलदीका चूर्ण मक्खनमें मिलाकर मलनेसे त्वचा नरम होती है और बहुतसे त्वग्रोग नष्ट होते हैं । व्रणपर हलदीका चूर्ण छिड़कनेसे व्रण संकुचित होता है और भर आता है । मार-चोट आदि अपघातोंमें हलदी और गुड़ खानेको देते हैं और उसका लेप करते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## ( ३०५ ) कर्चूर ।

**नाम**—( सं. ) कर्चूर; ( हिं. ) कचूर, नरकचूर; ( कु. ) वन आदो; ( ब. ) शटी; ( म. ) कचोरा; ( गु. ) पत्कचूरो, कचूरो; ( अ. ) झरंबाद; ( ले. ) कर्क्युमा झेडोरिआ ( Curcuma zedoaria ) ।

**वर्णन**—कचूरेके कंदको काटकर सुखाये हुए टुकड़े बाजारमें मिलते हैं ।

**उपयुक्त अंग**—कन्द । मात्रा १–२ माशा । इसका चूर्ण या फांट बनाकर उपयोग करना चाहिये ।

**गुण-कर्म**—"रोचनो दीपनो हृद्यः सुगन्धिस्त्वग्विवर्जितः । कर्चूरः कफवातघ्नः श्वासहिक्कार्शसां हितः ॥" ( च. सू. अ. २७ ) । "कर्चूरः कटुतिक्तोष्णो रूक्षो वातबलासजित् । दीपनः प्लीहगुल्मार्शःशमनः कुष्ठकासहा ॥" ( ध. नि. ) ।

कचूर कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, रोचन, दीपन, हृद्य, सुगन्धि तथा कफ, वात, श्वास, हिक्का, अर्श, प्लीहा, गुल्म, कुष्ठ और खाँसीको दूर करनेवाला है ।

**यूनानी मत**—कचूर वातानुलोमन, सौमनस्यजनन, यकृत् और आमाशयको बल देनेवाला, लेखन, मुखको सुवासित करनेवाला, श्लेष्मनिःसारक, मूत्रजनन, आर्तवजनन, वाजीकर और श्वयथुविलयन है ।

---

## ( ३०६ ) शटी-कपूरकचरी ।

**नाम**—( सं. ) शटी; ( हिं. ) कपूरकचरी; ( म., गु. ) कपूरकाचरी; ( ले. ) हेडिचिअम् स्पाइकेटम् ( Hedychium spicatum ) ।

**वर्णन**—कपूरकचरीके कन्दके काटकर सुखाये हुए टुकड़े बाजारमें मिलते हैं ।

**गुण-कर्म**—चरकके ( सू. अ. ४ ) हिक्कानिग्रहणे, श्वासहरे च महाकषाये शटी पठ्यते । "शटी स्यात् कटुतीक्ष्णोष्णा सन्निपातज्वरापहा । कफास्रव्रणकासघ्नी वक्र-

शुद्धिविधायिनी ॥" (ध. नि.)। "शटी तिक्ता कटुस्तीक्ष्णा कषाया ग्राहिणी लघुः। अनुष्णा मुखवैरस्यमलदौर्गन्ध्यनाशिनी ॥ छर्दिकासव्रणश्वासशूलहिध्माज्वरापहा ॥" (कै. नि.)।

कपूरकचरी कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, लघु, ग्राही तथा मुखका वैरस्य-मल और दुर्गन्ध, उलटी, कास, व्रण, श्वास, शूल, हिक्का और ज्वरको दूर करनेवाली है।

**नव्यमत**—कपूरकचरी दीपन और वातनाशक है। दाँतका दर्द दूर करनेके लिये इसका मंजन किया जाता है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## (३०७) कुलञ्जन।

**नाम**—(सं.) कुलञ्जन, मलयवचा; (हिं.) कुलंजन; (म., गु.) कुलिंजन; (अ.) खुलिंजान; (फा.) खुशखेदारू; (ले.) अल्पिनिआ ओफिसिनेरम् (Alpinia officinarum)।

**वर्णन**—कुलिंजनके मूल-कंदके सुखाए अंगूठे जितने मोटे और १-३ इंच लंबे टुकड़े बाजारमें मिलते हैं। इसमें सुगन्ध और चरपरा (कटु) स्वाद होता है।

**उपयुक्त अंग**—मूल। **मात्रा**—१-२ माशा।

**गुण-कर्म**—"कुलञ्जः कटुतीक्ष्णोष्णो दीपनो मुखदोषहृत्।" (रा. नि.)। "सुगन्धाऽप्युग्रगन्धा च विशेषात् कफवातनुत्। सुस्वरत्वकरी रुच्या हृत्कण्ठमुखशोधिनी ॥" (भा. प्र.)।

कुलंजन कटु, तीक्ष्ण, सुगंधि, दीपन, रुचिकर, स्वरको सुधारनेवाला, छाती-कण्ठ और मुखका शोधन करनेवाला तथा कफकी खाँसीको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—कुलंजन उष्ण, दीपन, पाचन, वातनाशक, उत्तेजक और वाजीकर है। बच्चे बोलते न हों या स्पष्ट उच्चार न कर सकते हों तो उनको कुलंजन चबानेको देते हैं। मुखकी दुर्गन्धि दूर करने तथा वाजीकरणके लिये इसको मुँहमें रखते हैं। मधुमेहमें पेशाब कम करनेकेलिये कुलंजनका फांट देते हैं। पसीना अधिक आकर शरीर ठंढा हो तो कुलंजनका चूर्ण शरीरपर मलते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**यूनानी मत**—कुलंजन दूसरे दर्जेमें गरम और रूक्ष, सौमनस्यजनन, हृदय-आमाशय और शीतल यकृत्को बल देनेवाला, उष्णताजनन, सौदा और कफज रोगनाशक, वातानुलोमन, मुखको सुवासित करनेवाला, कफनिःसारक, लालाप्रसेकजनन, शीतजन्यवेदनाहर, लेखन और वाजीकर है।

---

## (३०८) इलायची-एला।

**नाम**—(सं.) एला, त्रुटि; (हिं.) इलायची; (बं.) एलाइचू; (म.) वेलची, वेलदोडे; (गु.) एलची; (पं.) एलाची; (सिं.) एलाची, फोटा;

(अ.) काकुलः; (फा.) हील; (ले.) इलेटेरिआ कार्डेमोमम् (Elettaria cardamomum)।

**वर्णन**—इलायची प्रसिद्ध सुगन्धि द्रव्य है। इसकी दो जातियाँ होती हैं—(१) छोटी और (२) बड़ी। **नाम छोटी-इलायचीके** (सं.) सूक्ष्मैला, द्राविडी; (हिं.) छोटी इलायची, गुजराती इलायची, सफेद इलायची; (गु.) एलची, मलबारी एलची, कागदी एलची; (अ.) काकुलः सिगार, शूसमीर; (फा.) हील बवा, हील उन्सा, इलायची खुर्द, इलायची सफेद। **नाम-बड़ी इलायचीके** (सं.) स्थूलैला, भद्रैला; (हिं.) बड़ी इलायची, लाल इलायची; (गु.) एलचा; (अ.) काकुले कुबार; (फा.) हील कलाँ, इलायची सुर्ख; (ले.) एमोमोम् सब्युलेटम् (Amomum subulatum)।

**गुण-कर्म**—चरके (सू. अ. २) शिरोविरेचनद्रव्येषु; (सू. अ. ४) श्वासहरे, अङ्गमर्दप्रशमने च महाकषाये तथा कटुकस्कन्धे (वि. अ. ८) एला पठ्यते। सुश्रुते (सू. अ. ३८) एलादिगणे एला पठ्यते। "सूक्ष्मैला मूत्रकृच्छ्रघ्नी श्वासकासक्षये हिता। सूक्ष्मैला शीतला स्वाद्वी हृद्या रोचनदीपनी॥" (ध. नि.)। "भद्रैला कटुका पाके रसे पित्ताग्निकृल्लघुः। रूक्षोष्णा रोचनी श्वासकासवातास्रपित्तहा॥ हन्ति हृल्लासतृट्कण्डूशिरोबस्त्यास्यरुग्वमीः॥" (कै. नि.)

**छोटी इलायची**—कटु, मधुर, शीतवीर्य, शिरोविरेचन, हृद्य, रोचन, दीपन तथा श्वास, अंगमर्द, मूत्रकृच्छ्र, खाँसी और क्षयको दूर करनेवाली है। **बड़ी इलायची** रस और विपाकमें कटु, पित्त और अग्निवर्धक, लघु, रूक्ष, उष्णवीर्य तथा श्वास, खांसी, वात, रक्तपित्त, हृल्लास, तृषा, कण्डू, शिरोरोग, बस्तिरोग, मुखरोग और वमनको दूर करनेवाली है।

**नव्यमत**—इलायची सुगन्धि, रोचन, दीपन, पाचन, वातनाशक और उत्तेजक है। **मात्रा** ५–१० रत्ती। पचननलिकाके शैथिल्यप्रधान किंवा दाहप्रधान रोगोंमें इलायचीसे बहुत लाभ होता है। अम्लरस कम उत्पन्न होता हो और पित्तस्राव ठीक न होता हो तब इलायची देते हैं। हृल्लास, वमन, उदरशूल और आध्मानमें इलायची देते हैं। नाड़ीशूलमें इलायची १५ रत्ती थोड़ा (२–३) ग्रेन कुनैन मिलाकर देनेसे बहुत लाभ होता है।

**यूनानीमत—छोटी इलायची**—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, दीपन, वातानुलोमन, सौमनस्यजनन और अवसादक है। वातज उदर शूल, शीतल हृत्स्पन्दन, उबकाई (उत्क्लेश) और वमन निवारणके लिये छोटी इलायचीका उपयोग करते हैं। **बड़ी इलायची**—दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, दीपन, पाचन, वातानुलोमन, मनःप्रसादकर और मुखको सुगन्धित करनेवाली है। मन्दाग्नि, आध्मान, उदरशूल और अतिसारमें इसका प्रयोग करते हैं।

---

## ( ३०९ ) आर्द्रक और शुण्ठी ।

**नाम—आर्द्रक**—( सं. ) आर्द्रक, शृङ्गवेर, विश्वभेषज; ( हिं. ) अदरक, आदी; ( कु. ) आदी; ( बं. ) आदा; ( म ) आलें; ( गु. ) आदु । **नाम—सोंठ**—( सं. ) शुण्ठी, शृङ्गवेर, नागर, विश्वभेषज; ( हिं. ) सोंठ; ( म. ) सुंठी; ( गु. ) सुंठ; ( अ., फा. ) जंजबील; ( फा. ) शंगवीर, ( ले. ) झिन्जिबर ओफिशिनेल ( Zingiber officinale ) ।

**वर्णन**—अदरक भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है । सुखाये हुए अदरकको **सोंठ** कहते हैं ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) दीपनीये, शूलप्रशमने च महाकषाये शृङ्गवेरं पठ्यते । सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) पिप्पल्यादिगणे, त्रिकटुकगणे च शृङ्गवेरं पठ्यते । "नागरं कफवातघ्नं विपाके मधुरं कटु । वृष्योष्णं रोचनं हृद्यं सस्नेहं लघु दीपनम् ॥ कफानिलहरं स्वर्यं विबन्धानाहशूलनुत् । कटूष्णं रोचनं हृद्यं वृष्यं चैवार्द्रकं स्मृतम् ॥" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "रोचनं दीपनं वृष्यमार्द्रकं विश्वभेषजम् । वातश्लेष्मविबन्धेषु रसस्तस्योपदिश्यते ॥" ( च. सू. अ. २७ ) ।

**सोंठ**—कटु, मधुरविपाक, किंचित् स्निग्ध, लघु, उष्णवीर्य, दीपन, रोचन, हृद्य तथा कफ और वातनाशक है । **अदरक** कटु, उष्णवीर्य, स्वरको हितकर, रोचन, हृद्य, वृष्य, दीपन तथा विबन्ध, आनाह और शूलको दूर करनेवाला है । वात, कफ और विबन्धमें अदरकका रस देना चाहिये ।

**नव्यमत**—सोंठ सुगन्धि, उष्ण, वातनाशक, संकोचविकासप्रतिबन्धक, उत्तेजक और कफघ्न है । **मात्रा**—५–१० । सोंठसे पचनक्रिया अच्छी होती है और पेटमें वायुका संचय नहीं होता । सब प्रकारकी पीड़ाको शांत करनेकेलिये सोंठका उपयोग करते हैं । जीर्ण संधिशोथमें एक तोला सोंठका फांट रातको सोते समय पीनेसे नींद आती है । पेटके फूलनेसे छातीमें दर्द होता हो तो सोंठ देनेसे वायु सरता है और छातीकी पीड़ा शांत होती है ( डॉ. वा.ग. देसाई )

---

## ( ३१० ) वनहरिद्रा ।

**नाम**—( सं. ) वनहरिद्रा, अरण्यहरिद्रा; ( हिं. ) आमाहलदी, आँबाहलदी; ( म. ) आंबेहळद; ( गु. ) आंबाहळदर; ( ले. ) कर्क्युमा एरोमेटिका ( Curcuma aromatica ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—मैसूर और मलाबार ।

**वर्णन**—यह जंगलोंमें स्वयंजात होती है और लगाई भी जाती है । इसके बाजारमें हलदीके रंगके मोटे कंद मिलते हैं । गंध हलदीकी अपेक्षया तीक्ष्ण और किंचित् कर्पूरसदृश होती है ।

**गुण-कर्म**—"अरण्यरजनीकन्दः कुष्ठवातास्रनाशनः । सर्वदोषविषघ्नश्च हिध्माश्वसनकासजित् ॥" ( कै. नि. ) ।

आमाहलदी कुष्ठ, वातरक्त, सर्वदोष, विष, हिक्का, श्वास और कासको दूर करनेवाली है ।

**नव्यमत**—इसके गुण-कर्म हलदीके समान हैं । कण्डू, मार, चोट, सूजन आदिमें इसका लेप करते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

**उपयुक्त अंग**—कन्द । **मात्रा**—१॥–३ माशा ।

---

## ( ३११ ) आम्रगन्धिहरिद्रा ।

**नाम**—( सं. ) आम्रगन्धिहरिद्रा; ( बं. ) आम आदा; ( म. ) पांढरी हळद; ( गु. ) सफेद ( धोळी ) हळदर; ( ले. ) कर्क्युमा आमाडा ( Curcuma amada ) ।

**वर्णन**—कलकत्ता, बंबई आदिमें सफेद हलदीके अदरक जैसे कंद मिलते हैं । इनका अचार, चटनी आदि बनाया जाता है ।

**गुण-कर्म**—आम्रगन्धिहरिद्रा तु शीतला वातपित्तहृत् । पाचनी स्वादुतिक्ता च वृष्या कण्डूविनाशिनी ॥

सफेद हलदी मधुर, तिक्त, शीतल, पाचन, वृष्य तथा वात, पित्त और कण्डूको मिटानेवाली है ।

**नव्यमत**—सफेद हलदी दीपन और वातनाशक है । इसके गुण-धर्म अदरकके समान हैं । परंतु अदरक उष्ण और यह शीतल है । जब दीपन, वातनाशक और शीतल द्रव्यकी आवश्यकता हो तब इसका उपयोग करते हैं । इसका लेह बनाकर देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## ( ३१२ ) कदली-केल ।

**नाम**—( सं. ) कदली, मोचा, रम्भा; ( हिं. ) केला; ( बं. ) कला; ( म. ) केळ; ( गु. ) केळा; ( अ., फा. ) मौज, तल्ह; ( ले. ) म्युसा सेपिएन्टम् ( Musa sapientum ) ।

**वर्णन**—केला भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है ।

**गुण-कर्म**—"मोचं स्वादुरसं प्रोक्तं कषायं नातिशीतलम् । रक्तपित्तहरं वृष्यं रुच्यं श्लेष्मकरं गुरु ॥" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "कदल्यास्तु फलं स्वादु कषायं नातिशीतलम् । रक्तपित्तहरं रुच्यं वृष्यं कफकरं गुरु ॥ कन्दस्तु वातलो रूक्षः शीतोऽसृक्कृमिकुष्ठनुत् ।" ( ध. नि. ) । "मोचा गुर्वी हिमा स्निग्धा स्वाद्वी पित्तास्र-

नाशनी । योनिदोषभ्रमहरा तत्काण्डं गुरुशीतलम् ॥ बल्यः कदल्याः कन्दस्तु कफपित्तहरो लघुः । वातलो रक्तशमनः कषायो रूक्षशीतलः ॥ कर्णशूलं रजोदोषं सोमरोगं नियच्छति । रम्भातोयं शीतलं ग्राहि तृष्णाकृच्छ्रान्मेहान् कर्णरोगातिसारान् । अस्थिस्रावं स्फोटकास्रक्तपित्तं दाहं हन्यादस्रयोनिं विशेषात् ॥ कदलीकुसुमं तिक्तं कषायं ग्राहि दीपनम् । उष्णवीर्यं बलासघ्नं" ( कै. नि. ) ।

केला रसमें मधुर, कषायानुरस, किंचित् शीतल, रुचिकारक, वृष्य, गुरु, कफकारक, स्निग्ध तथा रक्तपित्त, पित्त, रक्तप्रकोप, योनिरोग और भ्रमको दूर करनेवाला है । केलेका कन्द कषाय, रूक्ष, शीतवीर्य, बलकारक, वातकर तथा रक्तविकार, कृमि, कुष्ठ, कफ, पित्त, कर्णशूल, रजोदोष और सोमरोगको दूर करनेवाला है । **केलेका काण्डस्तम्भ** गुरु और शीतल है । **केलेका जल** शीतवीर्य ग्राहि तथा तृषा, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, कर्णरोग, अतिसार, अस्थिस्राव, विस्फोटक, रक्तपित्त, दाह और रक्तप्रदरको दूर करनेवाला है । केलेके फूल तिक्त, कषाय, ग्राही, दीपन, उष्णवीर्य और कफनाशक हैं ।

**नव्यमत**—केलेके पंचांगको जलाकर बनाये हुए क्षारमें अधिकांश यवक्षार होता है । पक्का केला छाल समेत जलानेसे कोयला ७॥, चूना ७, यवक्षार ४५, सर्जिकाक्षार ६, लवणाम्ल और यवक्षारका मिश्रण २५ तथा तेजोवहाम्लक्षार ( पोटेशिअम् फोस्फेट ) ५। प्रतिशत मिलता है । काण्डके स्वरसमें यवक्षार २५।, सर्जिकाक्षार ९॥, चूना १५॥। और मेग्निशिया ५ प्रतिशत होता है । अच्छे पके केलेमें २२ प्रतिशत शर्करा होती है । पका हुआ केला बल्य, रक्तपित्तप्रशमन, शोणितास्थापन, संग्राहक और जीवनीय है । कच्चे केलेकी छाल निकाल, सुखाकर बनाया हुआ आटा बल्य और संग्राहक है । काण्डका स्वरस स्वेदजनन और तृष्णानिग्रहण है ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## केशरादि वर्ग ८९.

### N. O. Iridaceæ. ( इरिडेसी ) ।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; एकबीजपर्ण; पर्ण एकान्तर, पतले, लंबे; पुष्प विविध रंगके; पुष्पबाह्यकोशके दल ३; नरकेशर ३; बीजकोश ३ खण्डवाला और अधरस्थ ।

---

### ( ३१२ ) केशर ।

**नाम**—कुङ्कुम, रुधिर, संकोच; ( हिं., म., गु. ) केस(श)र; ( क. ) कुंग, कोंग; ( बं. ) कुम्कुम्; ( अ. ) जाफरान; ( फा. ) करकीमास; ( ले. ) क्रोकस् सेटाइवस् ( Crocus sativus ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—काश्मीर, ईरान और स्पेन ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) शोणितास्थापने महाकषाये ( 'रुधिर' नाम्ना ) तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) एलादिगणे कुङ्कुमं पठ्यते । "कुङ्कुमं कटुकं तिक्तमुष्णं श्लेष्मसमीरजित् । व्रणदृष्टिशिरोरोगविषहृत् कायकान्तिदम् ॥" ( ध. नि. ) । "कुङ्कुमं कटुकं स्निग्धं शिरोरुग्व्रणजन्तुजित् । तिक्तं वमिहरं वर्ण्यं व्यङ्गदोषत्रयापहम् ॥" ( भा. प्र. ) ।

केसर कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, स्निग्ध, शरीरकी कांति सुधारनेवाला तथा कफ, वात, व्रण, नेत्ररोग, शिरोरोग, विष, व्यंग, कृमि और तीनों दोषोंको दूर करनेवाला है ।

**नव्यमत**—केसर दीपन, पाचन, रुचिकर, वेदनास्थापन, संग्राहक, संकोचविकास-प्रतिबन्धक और कामोत्तेजक है । मात्रा—५-२० रत्ती; पीड़ितार्तवमें केशर पूर्ण मात्रामें देनेसे पीड़ा शांत होती है और रक्त ठीक पड़ने लगता है । इस रोगमें केशरकी गोली बनाकर योनिमें रखवाते हैं । स्तनपर केसरका लेप करनेसे दूध बढ़ता है । बच्चोंके सरदी-जुकाममें केसर दूधमें मिलाकर पिलाते हैं और कपाल, नाक तथा छातीपर केसरका लेप करते हैं । मसूरिका-रोमान्तिका आदिमें दाने बाहर आनेके लिये केसर देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

**यूनानी मत**—केसर दूसरे दर्जेमें गरम, पहले दर्जेमें खुश्क, मनःप्रसादकर, मूत्रजनन, आर्तवजनन, संग्राही, श्वयथुविलयन, लेखन, कामोत्तेजक, हृदय-मस्तिष्क और शरीरको बलप्रद, तथा अन्य औषधियोंके अहितकर गुणोंको दूर करनेवाला है ।

---

## ( ३१४ ) हैमवतीवचा-बालवच ।

**नाम**—( सं. ) हैमवती, पारसीकवचा; ( क. ) मज़ारपोश, मज़ारमुंड; ( हिं. ) बालवच; ( म. ) बाळवेखंड; ( गु. ) बालवज; ( अ. ) ईर्सा, सोसन; ( ले. ) आइरिस् वर्सिकलर् ( Iris versicolor ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—ईरान और कश्मीर ।

**वर्णन**—कश्मीरमें यह अधिकतया मुसलमानोंकी कब्रपर लगाई हुई देखनेमें आती है, इसलिये वहाँ उसको मजारपोश ( मज़ार-कब्र, पोश-फूल ) या मजारमुंड ( मुंड-मूल ) कहते हैं । इसका क्षुप देखनेमें वचके जैसा होता है । यह सफेद, लाल और आसमानी पुष्पोंवाली होती है । हकीमोंने सफेद फूलवालीको **सोसन** और आसमानी फूलवालीको **ईरसा** माना है ।

**उपयुक्त अंग**—मूल । यह यूनानी दवा बेचनेवाले पनसारियोंके यहाँ **बेखसोन** नामसे मिलती है ।

**गुण-कर्म**—चरके षोडशमूलिनीषु ( सू. अ. १ ), लेखनीये महाकषाये ( सू. अ. ४ ) तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) मुस्तादौ गणे हैमवती पठ्यते ।

**यूनानीमत**—सोसन दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, दोषोंको पतला करनेवाली, कफ-पित्तविरेचन, श्वयथुविलयन, लेखन, कफनिःसारक, व्रणशोधनरोपण, छिक्काजनन तथा प्रतिश्याय, कास, कृच्छ्रश्वास, फुप्फुसशोथ, पार्श्वशूल, उरःशूल, सुन्नता, पक्षवध, आमवात और कण्ठमालामें गुणकारक है ।

---

## तालमूल्यादि वर्ग ९०.

### N. O. Amaryllidaceæ. ( ॲमेरिलिडेसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; एकबीजपर्ण; पत्र लोमयुक्त; पुष्पबाह्यकोशके दल ६; पुंकेशर ६; बीजकोश ३ खण्डवाला और अधःस्थ ।

---

### ( ३१५ ) तालमूली ।

**नाम**—( सं. ) तालमूली, मुसली; ( हिं. ) काली मुशली, स्याह मुसली; ( म., गु. ) काळी मुसळी; ( लॅ. ) कर्क्युलिगो ऑर्किओइडिस् । ( curculigo orchioides ) ।

**गुण-कर्म**—"मुसली मधुरा शीता वृष्या पुष्टिबलप्रदा । पिच्छिला कफदा पित्तदाहश्रमहरा परा ॥" ( रा. नि. ) । "मुसली मधुरा गुर्वी तिक्ता वृष्या रसायनी । वीर्योष्णा बृंहणी हन्ति दुर्नामानि प्रभञ्जनम् ॥" ( कै. नि. ) ।

काली मुसली मधुर, तिक्त, शीतवीर्य, गुरु, पिच्छिल, वाजीकर, रसायन, पौष्टिक, बल्य, कफकर तथा पित्त, दाह, थकावट, अर्श और वायुका नाश करनेवाली है ।

**नव्यमत**—काली मुसलीमें स्निग्धद्रव्य १$\frac{1}{8}$, राल और कषायद्रव्य ४, लुआब २०, पिष्ट ( श्वेतसार ) ४३$\frac{1}{2}$ और जल ४$\frac{1}{2}$ प्रतिशत होता है । सूखे कंदसे ८$\frac{1}{2}$ प्रतिशत राख मिलती है, उसमें चूना होता है । काली मुसली स्नेहन, मूत्रजनन, बल्य और वृष्य है । इसकी क्रिया विशेषकर मूत्रमार्गपर होती है । काली मुसलीकी दूधके साथ बनाई हुई पेया सुज़ाक, मूत्रकृच्छ्र और अत्यार्तवमें देते हैं ।

---

## वराहकन्दादि वर्ग ९१.

### N. O. Taccaceæ. ( टेकेसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; एकबीजपर्ण; पुष्प गुच्छोंमें लगते हैं ।

---

### ( ३१६ ) वाराहीकन्द ।

**नाम**—( सं. ) वराहकन्द; ( हिं. ) वाराहीकंद; ( म. ) डुकरकन्द; ( गु. ) डुक्करकन्द; ( ले. ) टेक्का एस्पेरा ( Tacca aspera )।

**वर्णन**—वाराहीकन्दकी लता होती है। पत्र नागर पानके समान; कन्द लम्बा, काला, वराहलोमसदृश लोमसे आवृत होता है। छिलका निकालनेपर कन्दका रंग पिलाईलिये सफेद होता है। कई लोग गेंठीको वाराहीकंद मानते हैं; परंतु वह इससे भिन्न है।

**गुण-कर्म**—"वराहकन्दः श्लेष्मघ्नः कटुको रसपाकतः। मेहकुष्ठकृमिहरो बल्यो वृष्यो रसायनः॥" ( सु. सू. अ. ४६ )।

वराहकंद रस और विपाकमें कटु, बल्य, वृष्य, रसायन तथा कफ, प्रमेह, कुष्ठ और कृमिका नाश करनेवाला है।

---

## रसोनादि वर्ग ९२.

### N. O. Liliaceæ. ( लिलीएसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; एकबीजपर्ण; पर्णविन्यास अभिमुख; पत्र सादे, अवृन्त; फूल मध्यदंडके सिरेपर लगे हुए; पुंकेशर ६ दो चक्रोंमें; बीजकोश उपरिस्थ ६ खण्डवाला।

---

### ( ३१७ ) रसोन।

**नाम**—( सं. ) रसोन, लशुन; ( हिं. ) लहसुन; ( क. ) रोहन; ( बं. ) रशुन; ( कु. ) लासण; ( म. ) लसूण; ( गु. ) लसण; ( मा. ) लहसण; ( पं., सिं. ) थूम; ( अ. ) सूम, फूम; ( फा. ) सीर; ( ले. ) एलिअम् सेटाइवम् ( Allium sativum )।

**वर्णन**—लहसुन भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है।

**गुण-कर्म**—"कृमिकुष्ठकिलासघ्नो वातघ्नो गुल्मनाशनः। स्निग्धश्चोष्णश्च वृष्यश्च लशुनः कटुको गुरुः॥" ( च. सू. अ. २७ )। "स्निग्धोष्णतीक्ष्णः कटुपिच्छिलश्च गुरुः सरः स्वादुरसश्च बल्यः। वृष्यश्च मेधास्वरवर्णचक्षुर्भग्नास्थिसन्धानकरो रसोनः॥ हृद्रोगजीर्णज्वरकुक्षिशूलविबन्धगुल्मारुचिकासशोषान्। दुर्नामकुष्ठानलसादजन्तुसमीरणश्वासकफांश्च हन्ति॥" ( सु. सू. अ. ४६ )।

लहसुन कटु, मधुर, गुरु, स्निग्ध, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, पिच्छिल, सर, बल्य, वृष्य, मेधा-स्वर और नेत्रकी ज्योतिको बढ़ानेवाला, भग्न अस्थिका सन्धान करनेवाला तथा कफ, वात, कृमि, कुष्ठ, किलास, गुल्म, हृद्रोग, जीर्णज्वर, उदरशूल, विबन्ध, कास, अरुचि, राजयक्ष्मा, अर्श, अग्निमान्द्य और श्वासको मिटानेवाला है।

**नव्यमत**—लहसुनमें एक उड़नेवाला तैल होता है। लहसुन उष्ण, लघु, दीपन, वातनाशक, कृमिघ्न, उत्तेजक, कफघ्न, कोथप्रशमन, मूत्रजनन और बल्य है। लहसुनका तैल त्वचा, फुप्फुस और मूत्रपिंडद्वारा उत्सृष्ट होता है। इससे श्वासनलिकाका कफ शिथिल होकर सरलतासे निकलने लगता है, कफकी दुर्गन्ध कम होती है और रोगजन्तुओंका नाश होता है। नाड़ीव्यूहपर इसकी जोरदार उत्तेजक क्रिया होती है। गृध्रसी, पृष्ठग्रह, अर्दित, पक्षवध, एकांगरोग, ऊरुस्तम्भ, सन्धिवात आदि वातरोगोंमें लहसुनका क्षीरपाक करके देते हैं और लेप करते हैं। लेप अधिक समयतक रखना नहीं चाहिये, क्योंकि इससे शरीरपर फोड़ा हो जाता है। हृद्रोगमें लहसुन देनेसे पेटका फूलना कम होकर हृदयपरका दबाव कम होता है, हृदयको शक्ति मिलती है और पेशाब छुटने लगता है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**काश्यपसंहिता** के कल्पस्थानमें **लशुनकल्प** नामक स्वतन्त्र अध्याय है। इसमें अम्ल रसको छोड़कर अन्य पाँचों रस विद्यमान हैं, इसलिये इसको **रसोन** कहते हैं।

---

## (३१८) पलांडु-प्याज।

**नाम**—(सं०) पलाण्डु; (हिं.) प्याज; (पं.) गंडा; (क.) प्राण; (बं.) पेंयाज; (म.) कांदा; (गु.) डुंगळी, डुंगरी, कांदो; (सिं.) बसर; (अ.) बस्ल; (फा.) पियाज; (ले.) एलियम् सेपा (Allium cepa)।

**वर्णन**—प्याज भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है।

**गुण-कर्म**—"**श्लेष्मलो मारुतघ्नश्च पलाण्डुर्न च पित्तनुत्। आहारयोगी बल्यश्च गुरुर्वृष्योऽथ रोचनः॥" (च. सू. अ. २७)। "नात्युष्णवीर्योऽनिलहा कटुश्च तीक्ष्णोऽगुरुर्नातिकफावहश्च। बलावहः पित्तकरोऽथ किञ्चित् पलाण्डुरग्निं परिवर्धयेत्तु॥" (सु. सू. अ. ४६)**)

प्याज गुरु, कुछ उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, कुछ कफ और पित्तकर, बलकारक, आहारयोगी, वाजीकर, रोचक, अग्निवर्धक तथा वातघ्न है।

**नव्यमत**—प्याजमें एक कटु और उग्रगन्धि तेल तथा गन्धक होता है। प्याज उष्ण, लघु, कटु, उत्तेजक, आनुलोमिक, कफघ्न और मूत्रजनन है। इससे कफ पतला होकर गिरने लगता है और नया कफ उत्पन्न होना बंद होता है। आँतोंकी शक्ति बढ़कर दस्त साफ होनेके लिये तथा अर्श, गुदभ्रंश और कामलामें प्याज देते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**यूनानी मत—प्याज** तीसरे दर्जेमें गरम और पहलेमें खुश्क, श्वयथुविलयन, दोषपाचन, छेदन, श्लेष्मनिःसारक, लेखन, वाजीकर, मूत्रजनन, आर्तवजनन और

व्रणशोथपाचन है। हैजेमें प्याजके रसके साथ चूनेका पानी मिलाकर पिलाते हैं। प्याजके बीज दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, वाजीकर और लेखन हैं। इन्हें शहदके साथ पीसकर खालित्य, व्यंग और झाईंपर लगाते हैं।

---

## ( ३१९ ) कुमारी।

**नाम**—( सं. ) कुमारी, गृहकुमारी; ( हिं. ) घीकुआँर, ग्वारपाठा; ( कु. ) पतकुंवार; ( पं. ) कुवारगंदल; ( म. ) कोरफड, कोरकांड; ( गु. ) कुंवार; ( कच्छ ) लेपरी; ( अ. ) सब्बारत; ( ले. ) एलोवेरा ( Aloevera )।

**कुमारीसार**—( हिं. ) एलुआ, एलुवा, मुसब्बर; ( म. ) एळिया, काळा बोळ, ( गु. ) एळियो; ( अ. ) सिब्र; ( फा. ) सबयार; ( अ. ) एलोज् ( Aloes )।

**वर्णन**—ग्वारपाठा भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है।

**गुणकर्म**—"कुमारी भेदनी तिक्ता शीता नेत्र्या रसायनी। मधुरा बृंहणी बल्या वृष्या वातविषप्रणुत् ॥ गुल्मप्लीहयकृद्वृद्धिकफज्वरहरी हरेत्। ग्रन्थ्यग्निदग्धविस्फोटपित्तरक्तत्वगामयान् ॥" ( भा. प्र. )।

ग्वारपाठा तिक्त, मधुर, शीतवीर्य, भेदन, नेत्रके लिये हितकर, रसायन, बलकारक, वाजीकर तथा वात, विष, गुल्म, प्लीहवृद्धि, यकृद्वृद्धि, कफ, ज्वर, ग्रन्थि, अग्निदग्ध, विस्फोटक, पित्त, रक्तविकार और त्वचाके रोगोंको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—ग्वारपाठाका रस कडुआ, शीतल, दीपन, पाचन, विरेचन, मूत्रजनन, बल्य, शोणितास्थापन, श्वयथुहर, दाहप्रशमन और व्रणरोपण है। अल्पमात्रामें एलुआ तिक्त, दीपन, पाचन और बल्य है। इससे पचननलिका और यकृत्‌की क्रिया सुधरती है। बड़ी मात्रामें एलुआ विरेचन, मूत्रजनन, आर्तवजनन और कृमिघ्न है। एलुआका लेप शोथहर और व्रणरोपण है। ग्वारपाठाका रस नेत्राभिष्यन्द, स्तनशोथ, विद्रधि, अर्श और अग्निदग्ध पर हलदीका चूर्ण मिलाकर या विना हलदी मिलाये लगानेसे शोथ और दाह कम होता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

## ( ३२० ) कोलकंद–जंगली प्याज।

**नाम**—( सं. ) कोलकन्द, वनपलाण्डु; ( क. ) बनप्राण; ( हिं. ) जंगली प्याज, काँदा; ( म. ) रानकांदा, कोलकांदा; ( गु. ) जंगली कांदो, पाणकंदो; ( अ. ) उन्सुल; ( फा. ) पियाज सहराई; ( ले. ) अर्जिनिआ इन्डिका ( Urginea indica )।

**वर्णन**—जंगली प्याजका कंद देखनेमें प्याजके समान होता है। पत्र प्याजसे बड़े और चौड़े होते हैं। ताजा कंद खानेसे जीभ पर कण्डू मालूम होती है। स्वाद कटु और तिक्त होता है। औषधार्थ प्रथम वर्षका नीमू जितना बड़ा कांदा लेना चाहिये।

**गुणकर्म**—कोलकन्दः कटुश्चोष्णः कृमिकासकफापहः। उत्क्लेशवान्तिजननो हृद्यः श्वासनिवारणः॥

जंगली प्याज कटु, उष्णवीर्य, उत्क्लेश और वमन करानेवाला, हृद्य तथा कफ, कृमि, कास और श्वासको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—जंगली प्याजकी क्रिया डिजिटेलिसके समान होती है। यह अल्पमात्रामें स्वेदजनन, मूत्रजनन, कफघ्न और हृदयबल्य है। बड़ी मात्रामें इससे वमन और विरेचन होता है तथा आमाशय और अन्त्रका दाह होता है। जंगली प्याज अन्त्र, वृक्क और फुप्फुसद्वारा उत्सृष्ट होता है। आँतोंसे निकलते समय मलको पतला करता है, वृक्कसे निकलते समय मूत्रका प्रमाण बढ़ाता है और फुप्फुससे निकलते समय कफको पतला करता है। इससे हृदयको शक्ति मिलती है और हृदयका स्पन्दन स्पष्ट मालूम होने लगता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

**यूनानी मत**—जंगली प्याज गरम, खुश्क, श्वयथुविलयन, दोषपाचन, व्रणकारक, शोणितोत्क्लेशक, विषघ्न, मूत्रजनन, आर्तवजनन, कफनिःसारक और उदरकृमिनाशक है।

---

## ( ३२१ ) लाङ्गली।

**नाम**—( सं. ) लाङ्गली, कलिहारी, विशल्या; ( हिं. ) कलिहारी; ( बं. ) विषलाङ्गुलिया, ईशलाङ्गल; ( म. ) खड्या नाग, कळलावी; ( गु. ) दूधियो बछनाग; ( लॅ. ) ग्लोरिओझा सुपर्बा ( Gloriosa superba )।

**वर्णन**—वर्षाके आरम्भमें इसकी लता होती है। श्रावण-भाद्रपदमें इसमें पिलाई लिये हुए लाल रंगके ५–६ अंगुल लंबे पुष्प लगते हैं। कन्द सरल नहीं परंतु एक बाजूपर हलवत् कुंचित होता है। कन्द श्वेत, मृदु, मांसल और स्वादमें तिक्त होता है।

**उपयुक्त अंग**—कन्द।

**गुण-कर्म**—"लाङ्गली कटुरुष्णा च कफवातविनाशनी। तिक्ता सरा च श्वयथुगर्भशल्यव्रणापहा॥" ( ध. नि. )। "लाङ्गली कटुका तिक्ता सक्षारा पित्तला सरा। तीक्ष्णोष्णा गर्भहा लघ्वी बस्तिशूलनिबर्हणी॥ बलासकुष्ठशोफार्शोव्रणजन्तुविनाशिनी॥" ( कै. नि. )।

कलिहारी कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, लघु, सारक, गर्भपात करनेवाली तथा कफ, वात, शोथ, व्रण, बस्तिशूल, कुष्ठ, अर्श और कृमिका नाश करनेवाली है।

**नव्यमत**—कलिहारी कटु, उष्ण, दीपन, बल्य, वामक, रेचन और गर्भनाशक है। इससे आक्षेप और पचननलिका तथा गर्भाशयका दाह होता है। १–२ गुंजाकी

मात्रामें देनेसे भूख और शक्ति बढ़ती है। कलिहारीके कंदके टुकड़े कर, चार-पाँच दिन तक्रमें भिगो, गरम जलसे धोकर सुखा लेनेसे इसका विष कम हो जाता है। छाछ प्रतिदिन नया डालना चाहिये ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

## ( ३२२ ) जंगली उश्वा ( उशबा )।

**नाम**—( हिं. ) रामदातून, जंगली उशूबा; ( म. ) घोटवेल; ( ले. ) साइलेक्स झेलिनिका ( Smilax zeylanica )।

**वर्णन**—इसकी विशाल काँटेदार आरोही लता होती है। पत्र लंबे, चौड़े, नोकदार और ५–७ मोटी शिराओंसे युक्त होते हैं। मूल रक्ताभ होता है।

जंगली उशबा स्वेदजनन, मूत्रजनन, पौष्टिक और रसायन है। उपदंशकी द्वितीयावस्था, जीर्ण आमवात, संधिशोथ, फोड़े–फुन्सी, अस्थिशोथ, जीर्ण त्वग्रोग, सुजाक और गण्डमालामें जंगली उशबा देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

**उपयुक्त अंग**—मूल। **मात्रा**—१–२ तोला चूर्णका क्वाथ करके देना चाहिये।

---

## ( ३२३ ) चोपचीनी।

**नाम**—( सं. ) द्वीपान्तरवचा; ( हिं. ) चोब(प)चीनी; ( गु., म. ) चोपचीनी; ( बं. ) तोपचिनि; ( अ. ) अस्लुस्सीनी; ( फा. ) चोबचीनी; ( ले. ) साईलेक्स चायना ( Smilax china )।

**उत्पत्तिस्थान**—चीन और जापान। **उपयुक्त अंग**—कन्द। **मात्रा**—३–६ माशा। चोपचीनीके चूर्णका प्रयोग करना चाहिये, इसके क्वाथसे चूर्ण जितना लाभ नहीं होता।

**गुण-कर्म**—"द्वीपान्तरवचा किञ्चित्तिक्तोष्णा वह्निदीप्तिकृत्। विबन्धाध्मानशूलघ्नी शकृन्मूत्रविशोधिनी॥ वातव्याधीनपस्मारमुन्मादं तनुवेदनाम्। व्यपोहति विशेषेण फिरङ्गामयनाशिनी॥" ( भा. प्र. )।

चोपचीनी कुछ तिक्त और उष्ण, अग्निदीपन, मल और मूत्रको साफ लानेवाली तथा विबन्ध, आध्मान, शूल, वातरोग, अपस्मार, उन्माद, शरीरकी पीड़ा और फिरंगरोगको दूर करनेवाली है।

**नव्यमत**—चोपचीनी स्नेहन, स्वेदजनन, वातहर, वेदनास्थापन, रक्तशुद्धिकर, पौष्टिक और रसायन है। चोपचीनीकी मुख्य क्रिया त्वचा, स्नायु ( सन्धिबन्धन ) और रसग्रन्थियोंपर होती है। उपदंश और सुजाकसे उत्पन्न सन्धिशोथ, सन्धिबन्धनकी दृढ़ता, उपदंशकी द्वितीय और तृतीयावस्था—इन रोगोंमें चोपचीनीसे विशेष लाभ होता है। इससे प्रथम पीड़ा कम होती है और पीछे सूजन उतरती है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

**यूनानी मत**—चोबचीनी दोषोंको पतला करनेवाली, स्वेदन, रक्तप्रसादन, उत्तमांगोंको बलप्रद, मूत्रजनन, आर्तवजनन, वाजीकर, निद्राजनक और संशमन है। कुष्ठ, फिरंग, व्रण, दद्रू, कच्छू, वातज शोथ, पुराना शिरःशूल और प्रतिश्याय, वृद्धि, विभ्रम, उन्माद, मद, पक्षवध, कंपवात, अर्श, भगंदर, अर्शोजात अतिसार, गर्भाशयके रोग, आमवात और वातज्वरमें चोपचीनीका प्रयोग किया जाता है।

---

## ( ३२४ ) सुरंजान मीठा और कडवा।

**नाम**—( हिं., म., गु. ) सुरंजान; ( फा. ) सूरिंजान; ( क. ) विरक्युम; ( ले. ) कोल्चिकम् ल्युटिअम् ( Colchicum luteum )।

**वर्णन**—सुरंजानकी दो जातियाँ होती हैं-( १ ) **सुरंजान मीठा** ( फा. सूरिंजाने शीरीं ) और ( २ ) **सुरंजान कडुआ** ( फा. सूरिंजाने तल्ख )। सुरंजान कड़वा कश्मीरसे और सुरंजान मीठा ईरानसे यहाँ आता है। सुरंजान मीठा सिंघाड़ेके मग्जके जैसा होता है। सुरंजान कडुआ, पीला, स्वादमें तिक्त और आकारमें मीठेसे छोटा होता है। हकीम लोग मीठे सुरंजानको खाने और कडुएको बाह्य प्रयोगके काममें लेते हैं।

**गुण-कर्म**—सुरंजान कडुआ पचननलिकाका उत्तेजक है, इसलिये इससे वमन और विरेचन होता है; यकृत्‌का उत्तेजक होनेसे पित्तका स्राव ठीक होता है और वृक्कोत्तेजक होनेसे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है। बड़ी मात्रामें देनेसे दाह हो कर कैफ ( मद ) चढ़ता है और ग्लानि आती है। अल्प प्रमाणमें देनेसे जीवनविनिमयक्रिया सुधरती है। इसको सुगन्धि द्रव्योंके साथ देना चाहिये। जीवनविनिमयक्रिया बिगड़ कर कभी कभी संधियोंमें क्षार जमता है तथा उनमें शोथ और असह्य पीड़ा होती है; रक्तवाहिनियाँ मोटी होनेसे हृदय शिथिल हो कर बढ़ता है तथा उदर और शोथ होता है, मूत्र गाढ़ा होता है और उसमें लाल रंगके क्षार आते है। ऐसी स्थितिमें सुरंजान कडुआ देते हैं ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

## ( ३२५ ) शतावरी।

**नाम**—( सं. ) शतावरी, शतमूली, नारायणी, अतिरसा; ( हिं. ) सतावर, ( कु. ) कैरुवा; ( म., गु. ) श(स)तावरी; ( ले. ) एस्पेरेगस रेसिमोसस ( Asparagus racemosus )।

**वर्णन**—शतावरी भारतवर्षमें सर्वत्र होती है और वैद्योंमें प्रसिद्ध है।

**गुण-कर्म चरके**—( सू. अ. ४ ) बल्ये, वयःस्थापने च महाकषाये ( 'अतिरसा' नाम्ना ), मधुरस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) च तथा **सुश्रुते** ( सू. अ. ३९ ) विदारिगन्धादौ, कण्टकंपञ्चमूले गणे, पित्तप्रशमने वर्गे ( सू. अ. २९ ) च

शतावरी पठ्यते। "वातपित्तहरी वृष्या स्वादुतिक्ता शतावरी। महती चैव हृद्या च मेध्याऽग्निबलवर्धिनी ॥ ग्रहण्यर्शोविकारघ्नी वृष्या शीता रसायनी। कफपित्तहरास्तिक्तास्तस्या एवाङ्कुराः स्मृताः ॥" (सु. सू. अ. ४६)। "शतावरी हिमा तिक्ता स्वाद्वी गुर्वी रसायनी। सुस्निग्धा शुक्रला बल्या स्तन्यमेदोऽग्निपुष्टिदा ॥ चक्षुष्या वातपित्तास्रगुल्मातीसारशोथजित् ॥" (कै. नि.)।

शतावरी मधुर, तिक्त, गुरु, बल्य, वृष्य, रसायन, स्निग्ध, शुक्र-स्तन्य और अग्निवर्धक, पौष्टिक, चक्षुष्य तथा वात, पित्त, रक्तविकार, गुल्म, अतिसार और शोथका नाश करनेवाली है। महाशतावरी हृद्य, मेध्य, अग्निवर्धक, बल्य, वयःस्थापन, वाजीकर, शीतवीर्य, रसायन तथा ग्रहणीरोग और अर्शको दूर करनेवाली है। शतावरीके अंकुर तिक्त तथा कफपित्तहर हैं।

**नव्यमत**—शतावरी और महाशतावरीके ताजे कन्दमें जलविलेय भाग ५२½, सीठी ३३½ और जल ९ प्रतिशत होता है। जलविलेय भागमें शर्करा ७ प्रतिशत होती है। शतावरी मधुर, शीत, गुरु, स्नेहन, स्तन्यजनन, मूत्रजनन, शुक्रजनन, बल्य और वृष्य है (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## (३२६) सफेद मुसली।

**नाम**—(सं.) श्वेतमुसली; (हिं.) सफेद मुसली; (गु.) धोळी मुसळी; (अ., फा.) सकाकुले हिंदी; (ले.) एस्पेरेगस एड्स्केन्डेन्स् (Asparagus adscendens)।

**उपयुक्त अंग**—मूल। **मात्रा**—३-६ माशा चूर्णके रूपमें देना चाहिये।

**गुण-कर्म**—सफेद मुसलीमें जलविलेय भाग ७७½, सीठी १२½ और जल ६ प्रतिशत होता है। जलविलेय भागमें मांसल द्रव्य (प्रोटीन) होता है; श्वेतसार (स्टार्च) बिल्कुल नहीं होता। इसलिये इसका मधुमेहमें प्रयोग हो सकता है। सफेद मुसली मधुर, शीतवीर्य, स्नेहन और उत्तम बल्य है। सर्वप्रकारकी अशक्ततामें सफेद मुसली शक्कर और दूधके साथ देते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

**यूनानी मत**—सफेद मुसली पहले दर्जेमें गरम और खुश्क तथा वाजीकर है। नपुंसकता और शुक्रमेहमें इसका उपयोग करते हैं।

---

## नारिकेलादिवर्ग ९३.

### N. O. Palmae. (पामी)।

**वर्गलक्षण**—

---

## ( ३२७ ) नारिकेल ।

**नाम**—( सं. ) नारिकेल, नालिकेर; ( पं. ) नरेल, खोपा; ( हिं. ) नारियल, नरियल; ( म. ) माड ( वृक्ष ), नारळ ( फल ); ( गु. नारिअ(य)ल; ( अ. ) नारजील; ( फा. ) नारगील; ( ले. ) कोकोस् न्युसिफरा ( Cocos nucifora )।

**वर्णन**—नारियल भारतवर्षमें सर्वत्र प्रसिद्ध है ।

**गुण-कर्म**—"× × नारिकेलफलानि च । बृंहणस्निग्धशीतानि बल्यानि मधुराणि च ॥" ( च. सू. अ. २७ ) । "नालिकेरं गुरु स्निग्धं पित्तघ्नं स्वादु शीतलम् । बलमांसप्रदं हृद्यं बृंहणं बस्तिशोधनम् ॥" ( सु. सू. अ. ४६ )। "स्निग्धं स्वादु हिमं हृद्यं दीपनं बस्तिशोधनम् । वृष्यं पित्तपिपासाघ्नं नालिकेरोदकं गुरु ॥" ( सु. सू. अ. ४५ ) ।

नारियल मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, गुरु, बृंहण, बल्य, मांसवर्धक, हृद्य, बस्तिशोधन ( मूत्रल ) और पित्तघ्न है । नारियलका जल मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, गुरु, हृद्य, दीपन, वृष्य तथा पित्त और तृषाको दूर करनेवाला है ।

**नव्यमत**—नारियलके कवचको जलाकर पातालयन्त्रसे निकाला हुआ तेल कुष्ठघ्न है । नारियलका तेल केश्य, कृमिघ्न, व्रणरोपण, कफघ्न, शोषघ्न और कर्शन है । कच्चे नारियलका पानी शीतल, मूत्रजनन, मूत्रविरजन और पिपासाहर है । कोमल नारियलका दूध ( स्वरस ) आश्वासजनन, तृप्तिकर, मूत्रजनन और स्रंसन है । नारियलका मद्य बल्य, सौमनस्यजनन, दीपन, पाचन, बृंहण, कोष्ठवातप्रशमन, ज्वरहर, निद्रा लानेवाला और वाजीकर है । पुराने नारियलका स्वरस स्रंसन और पौष्टिक है । खोपड़ा ( सूखा नारियल ) कृमिघ्न है । पके हुए ताजे नारियलका जलके साथ पकाकर निकाला हुआ तैल क्षयरोगमें कॉडलिवर ऑइलके समान लाभ पहुँचाता है । मेदोवृद्धिमें खोपड़ेका तैल खानेसे मेद कम होता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )

---

## ( ३२८ ) दरियाई नारियल ।

**नाम**—( हिं. ) दरियाई नारियल; ( गु. ) झेरी नारियेल; ( अ. ) नारजीले बहरी; ( फा. ) नारगीले दरियाई; ( ले. ) लोडोसिआ सिचेलेरम् ( Lodoicea seychellarum ) ।

**वर्णन**—बाजारमें इसके सूखे मज्जके कटे हुए सफेद रंगके टुकड़े मिलते हैं। इसके कवचका कमण्डलु बनाते हैं ।

**मात्रा**—४-८ रत्ती; यह बड़ा कठिन होता है, अतः इसको अर्कगुलाबमें घिसकर पिलाते हैं ।

**यूनानीमत**—दरियाई नारियल गरम और तर, प्रकृत देहोष्माका वर्धक, विसूचिकाहर और विषनाशक है । इसको विसूचिका( हैजा )में तथा अफीम और बछनाग खाये हुएको जहरमोहरा खताईके साथ अर्क गुलाबमें घिसकर पिलाते हैं ।

वृश्चिक, भीड़ आदि विषधर प्राणियोंके दंशस्थानपर इसको जलमें घिसकर लगानेसे सूजन, दाह और विषको दूर करता है। प्रकृत देहाग्निको उद्दीप्त करनेके कारण इसको नवाहरमोहराके योगमें डालते हैं।

---

## (३२९) दम्म उल अखवैन।

**नाम**—(सं.) रक्तनिर्यास; (क.) खूनखारा; (हिं.) हीरादोखी, खुन खराबा; (म.) हिरादखण; (गु.) हीरादखण; (अ.) दम्मुलअख्वैन; (फा.) खून सियावशाँ; (ले.) केलेमस् ड्रेको (Calamus draco)।

**वर्णन**—यह एक प्रकारका अति रक्तवर्णका गोंद है जो अरबस्तान और अफ्रीकासे आता है। जो गोंद गोल डलियोंके आकारका, पीसनेपर अति रक्त वर्णका और काष्ठ रहित हो उसको औषधकेलिये काममें लेना चाहिये।

**गुण-कर्म—यूनानी मतसे**—खूनखराबा दूसरे दर्जेमें रूक्ष और शीत, उत्तम रक्तस्तम्भन, ग्राही और व्रणरोपण है। उरःक्षत, रक्तार्श, रक्तप्रवाहिका और रक्तप्रदरमें इससे विशेष लाभ होता है। सद्योव्रणपर इसका चूर्ण छिड़कनेसे रक्तस्रावको रोकता और व्रणको शीघ्र सुखाता है। **मात्रा**–१–१॥ माशा।

---

## (३३०) ताड़।

**नाम**—(सं.) ताल, ताड; (हिं., म., गु.) ताड़; (ले.) बोरेसस् फ्लेबेलिफरा (Borassus flabellifera)।

**वर्णन**—ताड सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है।

**गुण-कर्म—सुश्रुते** (सू. अ. ३८) सालसारादिगणे तालः पठ्यते। "ताल-शस्यानि सिद्धानि ××× । बृंहणस्निग्धशीतानि बल्यानि मधुराणि च ॥" (च. सू. अ. २७)। "फलं स्वादुरसं तेषां तालजं गुरु पित्तजित्। तद्बीजं स्वादुपाकं च मूत्रलं वातपित्तजित् ॥ ताल-नारिकेल-खर्जूरप्रभृतीनां मस्तकमज्जानः। स्वादुपाक-रसान्याहू रक्तपित्तहरांस्तथा। शुक्रलाननिलघ्नांश्च कफवृद्धिकरानपि ॥" (सु. सू. अ. ४६)।

तालका फल मधुर, शीतवीर्य, गुरु, स्निग्ध, बल्य, बृंहण तथा पित्तहर है। बीज विपाकमें मधुर, मूत्रल तथा वात-पित्तहर हैं। ताल–नारियल और खजूरके वृक्षकी मज्जा (चोटी पर होनेवाला मीठा गूदा) रस और विपाकमें मधुर, शुक्रल, वातहर तथा कफवर्धक है।

---

## ( ३३१ ) खर्जूर।

**नाम**—( सं. ) खर्जूर; ( हिं., म., गु. ) खजूर; ( बं. ) खेजुर; (अ.) तम्र; ( फा. ) खुर्मा।

**वर्णन**—एक प्रसिद्ध फल है। इसकी दो जातियाँ होती हैं ( १ ) पिण्डखजूर और ( २ )छु(छो) हारा, खारि(र)क; ( म. खारीक, गु. खारेक )। इसके वृक्षको खजूरी, सेंधी, सेंदी; लेटिनमें फिनिक्स् डेक्टिलिफरा ( Phoenix dactylifera ) कहते हैं।

**गुण-कर्म**—"मधुरं बृंहणं वृष्यं खर्जूरं गुरु शीतलम्। क्षयेऽभिघाते दाहे च वातपित्ते च तद्धितम्॥" ( च. सू. अ. २७ )। "क्षतक्षयापहं हृद्यं शीतलं तर्पणं गुरु। रसे पाके च मधुरं खार्जूरं रक्तपित्तनुत्॥" ( सु. सू. अ. ४६ )। "खर्जूरिका-वृक्षतोयं मदपित्तकरं परम्। वातश्लेष्महरं रुच्यं दीपनं बलशुक्रकृत्॥" ( कै. नि. )।

खजूर ( फल ) रस और विपाकमें मधुर, गुरु, शीतल, हण, वृष्य, हृद्य, तर्पण, वातपित्तहर तथा क्षय, अभिघात, क्षतक्षय, दाह और रक्तपित्तको दूर करने वाला है। खजूरकी ताड़ी मादक, पित्तकर, रुचिकर, दीपन, बलकारक, वीर्यवर्धक तथा वातकफहर है।

**यूनानी मत**—खजूर दूसरे दर्जेमें गरम और पहले दर्जेमें तर, जीवनीय, रक्तजनक, वाजीकर, शुक्रल, बृंहण, उष्णताजनन, वातनाड़ीबलदायक तथा उष्ण प्रकृतिवालोंको असात्म्य है।

**नव्यमत**—नारियल ( म. माड़ ), ताड़ और खजूरके वृक्षसे बहनेवाले रसको क्रमशः **माड़ी** ( मराठीमें ), **ताड़ी** और **खजूरी** कहते हैं। यह रस ताजा होनेपर शीतल, मूत्रजनन और पौष्टिक होता है। इसको सड़ानेसे इसमें अम्लत्व और मद्य उत्पन्न होता है। इसको भपकेमें खिंच कर मद्य तैयार करते हैं। यह मद्य दीपन, पाचन और उत्तेजक होता है। विदेशी मद्यसे यह मद्य विशेष अच्छा है। रोगीको मद्य देनेकी आवश्यकता होनेपर विलायती मद्य देनेकी अपेक्षया यह देना अधिक प्रशस्त है। नारियल, ताड़ और खजूरके रससे गुड़ तैयार करते हैं। यह गन्नेकी चीनीसे अधिक पौष्टिक और सारक है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

---

## ( ३३२ ) पूग-सुपारी।

**नाम**—( सं. ) पूग, पूगफल; ( हिं. ) सुपारी, छालिया; ( बं. ) सुपारी; ( म. ) सुपारी, पोफळ; ( गु. ) सोपारी; ( अ. ) फोफल; ( फा. ) पोपल; ( ले. ) एरेका केटेच्यु ( Areca catechu )।

**वर्णन**—सुपारी भारतवर्षमें सर्वजनपरिचित है। सुपारी अकेली या पानके साथ खाई जाती है। सुपारीको बालुमें भूनकर या कच्ची सुपारीको जलमें उबाल और सुखा कर खानेसे उसके अवगुणोंका परिहार हो जाता है।

**गुण-कर्म**—"कफपित्तहरं रूक्षं वक्त्रक्लेदमलापहम्। कषायमीषन्मधुरं किञ्चित् पूगफलं सरम्॥" (सु. सू. अ. ४६)। "पूगं गुरु हिमं रूक्षं कषायं कफपित्तजित्। मोहनं दीपनं रुच्यमास्यवैरस्यनाशनम्॥" (भा. प्र.)।

सुपारी कषाय, किंचित् मधुर, गुरु, रूक्ष, शीतवीर्य, मादक, रुचिकर, कुछ सारक तथा कफ, पित्त और मुखके क्लेद-मल एवं वैरस्यको दूर करनेवाली है।

**यूनानी मत**—सुपारी दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष, संग्राहक, दोषविलोमकर्ता और उष्ण श्वयथुविलयन है।

**नव्यमत**—एक कच्ची सुपारी दूधमें घिसकर पीनेसे चपटे कृमि मर जाते हैं (डॉ॰ वा॰ ग॰ देसाई)।

---

## केतक्यादि वर्ग ९४.

### N. O. Pandanaceæ. (पेन्डेनेसी)।

---

### (३३३) केतकी।

**नाम**—(सं.) केतकी, तृणशून्य; (हिं., म.) केवड़ा; (गु.) केवडो; (बं.) केया; (अ.) कादी, कदिर; (फा.) गुलकेरी, गुलकबदी; (ले.) पेन्डेनस् टेक्टोरिअस् (Pandanus tectorius)।

**वर्णन**—केवड़ा अपने सुगन्धि पुष्पके कारण भारतवर्षमें सर्वत्र प्रसिद्ध है। इसकी दो जातियाँ होती हैं (१) सफेद केवड़ा और (२) पीला केवड़ा (सुवर्णकेतकी)।

**गुणकर्म**—"केतकी कटुका पाके लघुतिक्ता कफापहा।" (ध. नि.)। "केतकीकुसुमं वर्ण्यं केशदौर्गन्ध्यनाशनम्। तस्य स्तनोऽतिशिशिरः कटुः पित्तगदापहः।" (रा. नि.)।

केवड़ा तिक्त, कटु, कटुविपाक, शीतवीर्य, वर्ण्य तथा पित्त, कफ और केशकी दुर्गन्धताको दूर करनेवाला है।

**यूनानी मत**—केवड़ा अनुष्णाशीत, सौमनस्यजनन, रक्तकी तीक्ष्णताका प्रशमन करनेवाला, ज्ञानेन्द्रिय-हृदय तथा मस्तिष्कको बल देनेवाला और दिलकी धड़कनको दूर करनेवाला है। केवड़ेके तेलकी मालिश करनेसे कटिशूल, आमवात और अंगोंकी

थकावट दूर होती है; सूँघनेसे मन प्रसन्न होता है, कानमें डालनेसे कर्णशूल आराम होता है और व्रणपर लगानेसे उसका रोपण होता है। केवड़ेके फूलोंका अर्क और शर्बत बनाया जाता है।

---

## सूरणादि वर्ग ९५.

## N. O. Araceæ. ( एरेसी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; द्विबीजपर्ण; पत्र एकान्तर, विभिन्न वर्णके, प्रायः सादे, क्वचित् विभक्त; पुष्प एकजातीय ( नर या मादा ), छोटे, अवृन्त; बीजकोश १–३ खण्डवाला; फल मांसल—रसाल, बहुबीज।

---

### ( ३३४ ) सूरण।

**नाम**—(सं.) सू ( शू ) रण, अर्शोघ्न; ( हिं. ) सूरन, जमींकन्द, ओल; ( बं. ) ओल; ( म., गु. ) सूरण; ( ले. ) एमोर्फोफेलस् कॅम्पेन्युलेटस् ( Amorphophallus campanulatus )।

**वर्णन**—सूरन प्रसिद्ध कन्दशाक है और भारतवर्षमें सर्वत्र होता है। सूरन **ग्राम्य** ( खेतोंमें लगाया हुआ ) और **वन्य** ( अरण्यमें स्वयंजात–जंगली ) भेदसे दो प्रकारका होता है। सागके लिये ग्राम्य और औषधके लिये वन्य सूरनका उपयोग करना चाहिये।

**गुण-कर्म**—"सूरणो गुदकीलहा।" ( सु. सू. अ. ४६ )। "सूरणः कटुको रुच्यो दीपनः पाचनस्तथा। क्रिमिदोषहरो वातशूलगुल्मार्शसां हितः॥ श्वासं कासं च प्लीहानं निवारयति सेवितः।" ( ध. नि. )।

सूरन कटु, रुचिकर, दीपन, पाचन तथा क्रमि, वात, शूल, गुल्म, अर्श, श्वास, कास और प्लीहाके रोग–इनमें गुणकारक है।

**नव्यमत**—सूरनका साग खानेसे यकृत्की क्रिया सुधरती है, दस्त साफ होता है और अर्श( मस्से )की रक्तवाहिनियोंका संकोचन होता है; इसलिये सूरन अर्शमें लाभ पहुंचाता है ( डॉ. वा. ग. देसाई )।

---

### ( ३३५ ) मान(ण)कन्द।

**नाम**—( सं. ) मानकन्द, कासालु ( रा. नि. ); ( हिं. ) मानकन्द; ( बं. ) मानकचू; (म.) कासालू; (ले.) एलोकेसिआ इन्डिका ( Alocasia indica )।

**वर्णन**—मानकंदका क्षुप अरवी( घुंईया )के सदृश परंतु उससे बड़ा होता है। कंद लम्बगोल, १-२ फुट लंबा होता है। यह कडुआ और मीठा दो प्रकारका होता है। कलकत्तामें **सत्रागाछी मान** नामसे जो मीठा मानकंद मिलता है उसका प्रयोग करना चाहिये।

**गुणकर्म**—"मानकं स्वादु शीतं च गुरु चापि प्रकीर्तितम्।" ( सु. सू. अ. ४६ )। "कासालुरुग्रकण्डूतिवातश्लेष्मामयापहः। अरोचकहरः स्वादुः पथ्यो दीपनपाचनः॥" ( रा. लि. )। "मानकः शोथहृच्छीतो रक्तपित्तहरोऽलघुः।" ( भा. प्र. )।

मानकंद मधुर, शीतवीर्य, गुरु, पथ्य, दीपन, पाचन तथा उग्र कण्डू, वात, कफ, अरुचि, शोथ और रक्तपित्तको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—मानकन्दके चूर्णमें चांगेर्यम्लक्षार ( पोटेशिअम् ऑग्झेलेट ), चूना और पिष्ट ( स्टार्च ) पुष्कल होता है। कंद पचनेमें हलका, स्नेहन, पौष्टिक, मूत्रजनन और थोड़ा सारक है। डंडेका स्वरस रक्तसंग्राहक और व्रणरोपण है। कंदका साग कब्ज और अर्शमें लाभ पहुँचाता है। सूखे कंदके चूर्णका मंड देनेसे जलोदर और शोथमें लाभ होता है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

**उपयुक्त अंग**—कंद। **मात्रा**—॥-१ तोला।

---

## ( ३३६ ) वचा।

**नाम**—(सं) वचा, उग्रगन्धा, षड्ग्रन्था; ( पं. ) वर्च, वरच; ( क. ) वय; ( हिं. ) बच, घोड़बच; ( ब. ) बच; ( म ) वेखंड; ( गु. ) वज, घोडावज; ( अ. ) वज्ज, ऊदुल वज्ज; ( फा. ) अगरे तुर्की, कारूनक; ( सिं ) किनी काठी; ( ले ) एकोरस् केलेमस् ( Acorus calamus )

**वर्णन**—बचकी जड ( कन्द ) अंगुलीतुल्य स्थूल, ५-६ पर्ववाली, खुरदरी, झुरींदार, रोमावृत, अरुणवर्ण, सुगन्धित तथा स्वादमें तिक्त और चरपरी होती है।

**उपयुक्त अंग**—जड़ ( कन्द )। **मात्रा**-१-५ रत्ती; वमनार्थ १५-३० रत्ती।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. २ ) विरेचनद्रव्येषु; ( सू. अ. ४ ) लेखनीये, अर्शोघ्ने, तृप्तिघ्ने, आस्थापनोपगे, शीतप्रशमने, संज्ञास्थापने च महाकषाये; तथा ( वि. अ. ८ ) तिक्तस्कन्धे, शिरोविरेचनद्रव्येषु च वचा पठ्यते। सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) पिप्पल्यादौ, वचादौ, मुस्तादौ च गणे; तथा ( सू. अ. ३९ ) ऊर्ध्वभागहरे वर्गे वचा पठ्यते। "वामनी कटुतिक्तोष्णा वातश्लेष्मरुजापहा। कण्ठ्या मेध्या च कृमिहृद्विबन्धाध्मानशूलनुत्॥" ( ध. नि. )। "वचा तिक्ता कटुः पाके कटु-

रुष्णाऽऽमपाचनी। दीपनी वामनी मेध्या जीवनी वाक्स्वरप्रदा ॥ हन्त्युन्माद-मपस्माररक्षोजन्तुकफानिलान् । शूलं विबन्धमाध्मानं शकृन्मूत्रविशोधनी ॥" (कै. नि.)।

बच तिक्त, कटु, कटुविपाक, उष्णवीर्य, वामक, विरेचन, लेखन, अर्शोघ्न, तृप्तिघ्न, आस्थापनोपग, शीतप्रशमन, संज्ञास्थापन, मेध्य, कण्ठ्य, कृमिहर वाणी और स्वरको देने-सुधारने-वाली, आमपाचन, दीपन, मल-मूत्रविशोधन तथा उन्माद, अपस्मार, विबन्ध, आध्मान, शूल, कफ और वातका नाश करनेवाली है।

**नव्यमत**—बच उष्ण, स्वेदजनन, कासहर, कफघ्न, वामक, सुगन्धि, दीपन, वातनाशक, उत्तेजक, वेदनास्थापन और कृमिघ्न है। प्रतिश्याय–जुकाम, गलेके अंदरकी सूजन और श्वासनलिकाके शोथमें बचका क्वाथ देते हैं। बचका टुकड़ा मुँहमें रखनेसे सूखी खाँसी और गलेकी सूजन कम होती है। दमेमें ४० रत्ती बचका चूर्ण, ॥-१ तोला सैंधव और आध सेर पानी मिलाकर एक साथ पीनेसे उलटी होकर दमेका जोर कम होता है। बच्चोंको दाँत आते समय तथा अपस्मार, उन्माद, लकवा और सन्निपातज्वरमें बच देनेसे लाभ होता है। बचसे गर्भाशयका संकोचन होता है इस-लिये प्रसवके समय आवीका जोर बढ़ानेके लिये केशर और पीपलामूलके साथ बच देते हैं। पीड़ायुक्त अर्शको बच, भाँग और अजवायनकी धूनी देते हैं (डॉ. वा. ग. देसाई)।

---

## मुस्तादिवर्ग ९६.

### N. O. Cyperaceæ (साइपरेसी)।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; एकबीजपर्णी; क्षुप तृणसमान; कांड भरा हुआ, त्रिकोण, पर्वरहित; पर्ण अवृन्त; पुष्प छोटे, हरे रंगके, कांडके अग्रभागमें गुच्छोंमें लगते हैं।

---

### (३२७) मुस्ता।

**नाम**—(सं.) मुस्ता(स्त), अम्भोद, भद्रमुस्ता, नागर (नागरमोथा), कुटन्नट, प्लव, वन्य, वितुन्नक, परिपेलव (केवटी मोथा); (क.) मोस्त; (पं.) मुथ्रां, मुथरां; (हिं.) नागरमोथा, मोथा; (बं.) मुता; (म.) नागरमोथा; (गु.) मोथ, नागरमोथ; (अ.) सोअद् कूफी; (फा.) मुश्के जमीं; (ले.) साइपरस् स्केरिओस् (Cyperus scariosus), साइपरस् रोटन्डस् (Cyperus rotundus)।

**वर्णन**—मोथामें तीन जातियाँ होती हैं-(१) कैवर्तमुस्ता (हिं.) केवटी-मोथा, (गु.) चगीमोथ, (इसके छोटे ग्रन्थिसदृश कन्द होते हैं); (२) भद्रमुस्ता

(इसके कंद लंबगोल ॥-१॥ लंबे होते हैं और अग्रभागपर पत्तियोंका अवशेष लगा रहता है); (३) **नागरमुस्ता**—इसके मूल लंबे, कुछ दबे हुए, टेढे और कालापन लिये होते हैं। तीनोंके गुणोंमें विशेष अन्तर नहीं है। एकके अभावमें दूसरेका प्रयोग कर सकते हैं।

**गुण-कर्म चरके**—(सू. अ. ४) लेखनीये, तृप्तिघ्ने, कण्डूघ्ने, स्तन्यशोधने, तृष्णानिग्रहणे च महाकषाये तथा **सुश्रुते** (सू. अ. ३८) वचादौ, मुस्तादौ च गणे मुस्ता पठ्यते। "मुस्ता तिक्तकषायाऽतिशिशिरा श्लेष्मरक्तजित्। पित्तज्वरातिसारघ्नी तृष्णाकृमिविनाशिनी ॥" (ध. नि.)। "**भद्रमुस्ता** कषाया च तिक्ता शीता च पाचनी। पित्तज्वरकफघ्नी च ज्ञेया संग्रहणी च सा ॥ तिक्ता **नागरमुस्ता** कटुः कषाया च शीतला कफनुत्। पित्तज्वरातिसारारुचितृष्णादाहनाशनी श्रमहृत् ॥ **जलजं** तिक्तकटुकं कषायं कान्तिदं हिमम्। मेध्यं वातान्ध्यवीसर्पकण्डूकुष्ठविषापहम् ॥" (रा. नि.)। "मुस्तं तिक्तं हिमं ग्राहि दीपनं पाचनं कटु। कषायं कफपित्तास्रतृड्ज्वरारुचिजन्तुजित् ॥ **परिपेलं** हिमं तिक्तं कषायं कटु कान्तिदम्। कफपित्तास्रवीसर्पकुष्ठकण्डूविषप्रणुत् ॥" (कै. नि.)।

मोथा तिक्त, कषाय, कटु, शीतवीर्य, लेखन, तृप्तिघ्न, कण्डूघ्न, स्तन्यशोधन, तृष्णानिग्रहण, ग्राही, दीपन, पाचन तथा कफ, रक्तविकार, पित्त, ज्वर, अतिसार, तृषा, अरुचि और कृमिका नाश करनेवाला है। **भद्रमुस्ता** कषाय, तिक्त, शीतवीर्य, पाचन, ग्राही तथा पित्त, ज्वर और कफको दूर करनेवाला है। **नागरमोथा** तिक्त, कटु, कषाय, शीतवीर्य तथा पित्त, ज्वर, अतिसार, अरुचि, तृषा, दाह, और श्रमका नाश करनेवाला है। **केवटीमोथा** तिक्त, कषाय, कटु, कान्तिवर्धक, शीतवीर्य, मेध्य तथा वात, विसर्प, कण्डू, कुष्ठ, कफ, पित्त, रक्तविकार और विषको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—नागरमोथा कटु, तिक्त, कषाय, शीतल, दीपन, पाचन, ग्राही, स्वेदजनन, कफघ्न, तृष्णानिग्रहण, स्तन्यजनन, स्तन्यशोधन, कण्डूनाशक, मूत्रजनन, उत्तेजक और जन्तुघ्न है। अरुचि, आमातिसार, रक्तार्श और कुपचन रोगमें नागरमोथा गुणकारक है। पित्तज्वर और प्रसूतिज्वरमें देनेसे पसीना आता है, तृषा कम होती है, जीभ सुधरती है, पेशाब साफ होता है और गर्भाशयका संकोचन होता है। नागरमोथा कृमिघ्न है, परंतु यह गुण बड़ी मात्रामें देनेसे देखनेमें आता है। दूध बढ़ाने और दूधकी शुद्धि होनेके लिये नागरमोथा खानेको देते हैं और उसका स्तनपर लेप भी करते हैं (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## ( ३३८ ) कसेरुक।

**नाम**—( सं. ) कसे( शे )रुक; (हिं.) कसेरू; ( म. ) कचरा; ( ले. ) स्किर्पस् काय्सूर ( Scirpus kysoor )।

**वर्णन**—कसेरू आर्द्रभूमिमें होता है। इसका कन्द जायफलके बराबर या उससे कुछ मोटा और गोल होता है। ऊपरका छिलका काला, काटनेसे भीतर सफेद, स्वादमें मधुर और कुछ सुगन्धित होता है। इसका ताजा कंद भूनकर, जलमें उबालकर या वैसा ही खाया जाता है।

**गुण-कर्म**—"गुरू विष्टम्भिशीतौ च शृङ्गाटककशेरुकौ।" ( सु. सू. अ. ४६ )। "कसेरुकं हिमं रूक्षं मधुरं तुवरं गुरु। संग्राहि शुक्रलं स्तन्यकफमारुतवर्धनम्॥ पित्तशोणितदाहघ्नं नयनामयनाशनम्। वृष्यं स्नेहतृषां हन्याद्विष्टम्भि कृमिकारि च॥ कसेरुकस्य पुष्पं तु पित्तघ्नं कामलापहम्।" ( कै. नि. )।

कसेरू मधुर, कषाय, शीतवीर्य, रूक्ष, गुरु, विष्टम्भि, ग्राही, शुक्रल, स्तन्य ( दूध )-कफ और वातको बढ़ानेवाला, वृष्य, कृमिकारक तथा पित्त, रक्तविकार, दाह, नेत्ररोग, प्रमेह और तृषाको दूर करनेवाला है।

**नव्यमत**—कसेरूमें पिष्ट ( स्टार्च ) ६३, मांसवर्धक द्रव्य ७, गोंद ७, सीठी ६ और राख २॥ प्रतिशत होती है।

**यूनानी मत**—कसेरू शीत, रूक्ष, संग्राही और हृद्य है। कसेरू तृषा, आमाशय-यकृत् आदि अंगोंका दाह, रक्तातिसार, पित्तातिसार, हृदयदौर्बल्य, हृत्स्पन्दन और हैजेमें गुणकारक है। हैजेमें वमन और विरेचन द्वारा दूषित दोष निकल जानेके बाद कसेरूको गुलाबके अर्कमें पीस, कपड़ेसे छान, उसमें मिश्री मिलाकर पिलाते हैं।

---

# यवादि(तृण)वर्ग ९७.

## N. O. Gramineæ. ( ग्रेमिनी )।

**वर्गलक्षण**—सपुष्प; एकबीजपर्ण; पत्र अखण्ड; पुष्प देखनेमें वल्कलसदृश; पुंकेशर ३; बीजकोश पक्षाकार दो रजोवाहिनी नलियोंसे आवृत; बीज मांसल।

---

## ( ३३९ ) यव।

**नाम**—( सं. ) यव; ( हिं. ) जौ, जव; ( गु. ) जव; ( म. ) सातु; ( अ. ) शईर; ( ले. ) होर्डिअम् वल्गेर् ( Hordeum vulgare )।

**वर्णन**—जौ एक प्रसिद्ध धान्य है।

**गुण-कर्म**—"रूक्षः शीतोऽगुरुः स्वादुर्बहुवातशकृद्यवः । स्थैर्यकृत् सकषायश्च बल्यः श्लेष्मविकारनुत् ॥" (च. सू. अ. २७) । "यवः कषायो मधुरो हिमश्च कटुर्विपाके कफपित्तहारी । व्रणेषु पथ्यस्तिलवच्च नित्यं प्रबद्धमूत्रो बहुवातवर्चाः ॥ स्थैर्याग्निमेधास्वरवर्णकृच्च सपिच्छिलः स्थूलविलेखनश्च । मेदोमरुत्तृड्हरणोऽतिरूक्षः प्रसादनः शोणितपित्तयोश्च ॥" (सु. सू. अ. ४६) । "हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहानाहगलग्रहान् । कासं कफजमर्शांसि यावशूको व्यपोहति ॥" (च. सू. अ. २७) ।

जव मधुर, कुछ कषाय, कटुविपाक, शीतवीर्य, रूक्ष, लघु, मल और उदरवायु अधिक उत्पन्न करनेवाला, शरीरको स्थिर-दृढ करनेवाला, बलकारक, व्रणमें पथ्य, मूत्र कम करनेवाला, अग्निवर्धक, मेध्य, स्वरको अच्छा करनेवाला, शरीरके वर्णको अच्छा करनेवाला, स्थूलको पतला करनेवाला, रक्तशोधक, पित्तशामक तथा कफ, मेदोवृद्धि, वातविकार और तृषाको मिटानेवाला है । जवखार हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी, प्लीहवृद्धि, आनाह, गलग्रह, कफज कास और अर्शको दूर करनेवाला है ।

**नव्यमत**—यवक्षार अम्लतानाशक, दीपन, रक्तशोधक, पांडुनाशक, मूत्रजनन, स्वेदजनन, कफशामक और पित्तक्रियाको सुधारनेवाला है । भोजनके पहिले देनेसे यह दीपन और आमाशयकी पीड़ाको कम करता है, भोजनके बाद देनेसे आमाशयकी अम्लताको कम करता है और वहाँके कफको विलीन करता है, रक्तमें मिलनेपर रक्तकणोंकी संख्या और रंग बढ़ाता है । रक्तशुद्धिके लिये जवखार कसीस और सुगन्धि द्रव्योंके साथ देते हैं । जवखार वृक्कको उत्तेजित करके मूत्रका प्रमाण बढ़ाता है । जवखार त्वचाको उत्तेजित करके पसीना लाता है । जवखारसे कफ पतला होकर छुटने लगता है और श्वासनलिकाका शोथ कम होता है । इससे पित्त पतला होता है और पित्तनलिकाका शोथ कम होता है, इसलिये कामला और यकृच्छोथमें जवखार देते हैं । जवकी राखमें सेलिसिलिक एसिड् २९, फास्फरिक एसिड ३२$\frac{1}{3}$, पॉटेश २२$\frac{1}{2}$ और चूना ३$\frac{1}{2}$ प्रतिशत होता है । फुप्फुसके रोगोंमें जवखारकी अपेक्षया जवकी राखका उपयोग करना अच्छा है ( डॉ. वा. ग. देसाई ) ।

---

## ( ३४० ) इक्षु ।

**नाम**—( सं. ) इक्षु; ( हिं. ) ईख, ऊख, गन्ना; ( कु. ) रिखु; ( बं ) आक; (म.) ऊँस; (मा.) सांठा; ( गु. ) शेरडी; ( सिं. ) कमंद; ( अ. ) कसबुस्सुक्कर; (फा.) नैशकरः (ले.) सेकेरम् ओफिसिनेरम् (Saccharum officinarum)।

**वर्णन**—गन्ना भारतवर्षमें सर्वत्र होता है । गन्ना चूसकर खाया जाता है और उसके रससे फाणित ( हिं. राब, म. काकवी ), गुड, शक्कर-खाँड, मिश्री, सिरका आदि बनाये जाते हैं ।

**गुण-कर्म**—"इक्षवो मधुरा मधुरविपाका गुरवः शीताः स्निग्धा बल्या वृष्या मूत्रला रक्तपित्तप्रशमनाः कृमिकराश्चेति।" (सु. सू. अ. ४५)। "वृष्यः शीतः सरः स्निग्धो बृंहणो मधुरो रसः। श्लेष्मलो भक्षितस्येक्षोर्यान्त्रिकस्तु विदह्यते,।" (च. सू. अ. २७)। "अविदाही कफकरो वातपित्तनिबर्हणः। वक्त्रप्रह्लादनो वृष्यो दन्तनिष्पीडितो रसः॥ गुरुर्विदाही विष्टम्भी यान्त्रिकस्तु प्रकीर्तितः।" (सु. सू. अ. ४५)। "मूलाग्रजन्तुजग्धादिपीडनान्मलसंकरात्। किञ्चित्कालं विधृत्या च विकृतिं याति यान्त्रिकः॥" (वा. सू. अ. ३५)। "गुडः सक्षारमधुरो नातिशीतः स्निग्धो मूत्ररक्तशोधनो नातिपित्तजिद्वातघ्नो मेदःकृमिकफकरो बल्यो वृष्यश्च। पित्तघ्नो मधुरः शुद्धो वातघ्नोऽसृक्प्रसादनः। स पुराणोऽधिकगुणो गुडः पथ्यतमः स्मृतः॥ मत्स्यण्डिका-खण्ड-शर्करा विमलजाता उत्तरोत्तरं शीताः स्निग्धा गुरुतरा मधुरतरा वृष्या रक्तपित्तप्रशमनास्तृष्णाप्रशमनाश्च।" (सु. सू. अ. ४५)।

गन्ना मधुर, मधुरविपाक, शीतवीर्य, गुरु, स्निग्ध, बल्य, वृष्य, मूत्रल, रक्तपित्त-प्रशमन तथा कृमि और कफको उत्पन्न करनेवाला है। दाँतोंसे दबाकर चूसा हुआ गन्नेका रस मधुर, शीतवीर्य, वृष्य, सारक, स्निग्ध, बृंहण, कफकर, अविदाही, मुखको आह्लाद देनेवाला तथा वात-पित्तनाशक है। यंत्रसे निकाला हुआ रस गन्नेके मूल, अग्रभाग (तथा पर्व-सन्धि), कीड़ा लगा हुआ भाग—इनका भी पीडनद्वारा रस आने, बाह्यमलके संसर्ग और कुछ समय खुला पड़ा रहनेसे विकृत हो जानेके कारण गुरु, विदाही और विष्टम्भी होता है। गुड़ कुछ क्षारधर्मी, मधुर, कुछ शीत, स्निग्ध, मूत्रल, रक्तशोधक, कुछ पित्तशामक, वातघ्न, मेद—कृमि और कफको बढ़ानेवाला, बल्य और वृष्य होता है। साफ किया हुआ गुड़ मधुर, रक्तप्रसादन तथा पित्त-वातनाशक होता है। पुराना (एक सालके ऊपर और दो सालके भीतरका) गुड़ अधिक गुणवाला और पथ्य होता है। मत्स्यण्डिका, खाँड और मिश्री उत्तरोत्तर निर्मल, शीत, स्निग्ध, मधुर, गुरु, वृष्य तथा रक्त—पित्त और तृषाको शमन करनेवाली हैं।

**नव्यमत**—गुड़से बनी हुई देशी शक्कर जिसको ही **बनारसी शक्कर** कहते हैं आर्योंकी यही असली शक्कर है। इसीका औषधार्थ प्रयोग करना चाहिये। राब सौम्य रेचन है। राब इतर पदार्थमें मिलानेसे उसको सड़ने नहीं देती। वनस्पतियोंके घन क्वाथोंको कुछ समय उसी स्थितिमें रखना हो और उसमें मद्य न डालना हो तो उसमें राब मिलाकर रखना चाहिये। शक्कर शीतल, पौष्टिक, स्नेहन, मूत्रजनन, उत्तेजक, कासहर, पाचन, आश्वासकर, श्रमहर, जीवन, कोथप्रशमन, व्रणरोपण और कण्ठ्य है। शक्कर हृदयको पुष्टि देनेवाली है, इसलिये वृक्क और हृदयके रोगोंमें शक्कर देना चाहिये (**डॉ. वा. ग. देसाई**)।

---

## ( ३४१ ) वंश ।

**नाम**—( सं. ) वंश, वेणु, त्वक्सार, कीचक; ( हिं. ) बाँस; ( बं. ) बाँश; ( गु. ) वांस; ( म. ) बांबू; ( अ. ) कसब; ( ले. ) बेम्बुझा एरन्डीनेसिआ ( Bambusa arundinacea )।

**नाम—वंशलोचन**—( सं. ) वंशरोचन; ( हिं. ) बंसलोचन; ( गु. ) वंशलोचन, वांसकपूर; ( अ., फा. ) तबाशीर ।

**वर्णन**—बाँस भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है । स्त्रीजातिके बाँसमें एक प्रकारका मद-रस जमकर सूख जाता है, उसको **बंशलोचन** कहते है । बंसलोचन जावा और सिंगापोरसे आता है । इस समय बाजारमें कृत्रिम बंसलोचन मिलता है ।

**गुणकर्म**—"वंशस्तु शीतलः स्वादुः कषायो बस्तिशोधनः । छेदनः कफपित्तास्रकुष्ठशोथव्रणापहः ॥ तद्यवास्तु सरा रूक्षाः कषायाः कटुपाकिनः । उष्णाः पित्तानिलकरा बद्धमूत्राः कफापहाः ॥" ( कै. नि. ) । "वेणोः करीरा गुरवः कफमारुतकोपनाः । रूक्षा वेणुयवा ज्ञेया वीर्योष्णाः कटुपाकिनः ॥ बद्धमूत्राः कफहराः कषाया वातकोपनाः ।" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "रूक्षः कषायानुरसो मधुरः कफपित्तहा । मेदःक्रिमिविषघ्नश्च बल्यो वेणुयवो मतः ॥" ( च. सू. अ. २७ ) । "कषाया मधुरा शीता कासघ्नी वंशरोचना । मूत्रकृच्छ्रक्षयश्वासहिता बल्या च बृंहणी ॥" ( ध० नि. ) ।

बाँस मधुर, कषाय, शीतवीर्य, बस्तिशोधन ( मूत्रल ), छेदन तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, कुष्ठ, शोथ और व्रणको दूर करनेवाला है । बाँसके अंकुर गुरु तथा कफ और वायुका प्रकोप करनेवाले हैं । बाँसके बीज ( वेणुयव ) मधुर, कषायानुरस, कटुविपाक, उष्णवीर्य, मूत्रको कम करनेवाले, बल्य, वातकोपन तथा कफ, पित्त, मेद, कृमि और विषको दूर करनेवाले हैं । वंशलोचन कषाय, मधुर, शीतवीर्य, बल्य, बृंहण तथा खाँसी, मूत्रकृच्छ्र, क्षय और श्वासमें हितकर है ।

**यूनानी मत–बाँस** शीत एवं रूक्ष, लेखन, मूत्रल और आर्तवजनन है । **वंसलोचन** दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष, हृद्य, संग्राही, सौमनस्यजनन, रूक्षण, प्यासको बुझानेवाला और व्रणरोपण तथा उष्ण हृत्स्पंदन, पित्तज वमन, पित्तज अतिसार, शुक्रमेह, रक्तार्श, ज्वर और मुखपाकमें गुणकारी है ।

---

## ( ३४२ ) दर्भ और कुश ।

**नाम**—( सं. ) दर्भ, कुश; ( हिं. ) डाभ, दाभ, कुशा; ( पं. ) दभ, द्रभ; ( गु. ) दरभ, दाभडो; ( ले. ) डिस्मोटेच्यिआ बाईपाइनेटा ( Desmostachya bipnnata ) ।

**वर्णन**—दर्भ भारतवर्षमें सर्वत्र होता है और प्रसिद्ध है। इसकी छोटी जातिको कुश और बड़ी जातिको दर्भ कहते हैं।

**गुण-कर्म**—**चरके** ( सू. अ. ४ ) स्तन्यजनने, मूत्रविरेचनीये च महाकषाये तथा मधुरस्कन्धे ( वि. अ. ८ ); **सुश्रुते** ( सू. अ. ३८ ) तृणपञ्चमूले गणे दर्भकुशौ पठ्येते। "दर्भः स्निग्धो हिमः स्वादुः कषायः कफपित्तहा। विसर्पदाहकृच्छ्राश्मतृष्णाबस्तिविकारनुत् ॥" ( कै. नि. )। "दर्भद्वयं त्रिदोषघ्नं मधुरं तुवरं हिमम्। मूत्रकृच्छ्राश्मरीतृष्णाबस्तिरुक्प्रदरास्रजित् ॥" ( भा. प्र. )।

दर्भ और कुश मधुर, कषाय, शीतवीर्य, स्निग्ध, स्तन्यजनन, मूत्रविरेचन तथा कफ, पित्त, विसर्प, दाह, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, तृषा, बस्ति( मूत्राशय )के रोग और प्रदरका नाश करनेवाले हैं। **उपयुक्त अंग**—मूल।

**नव्यमत**—दर्भ और कुश शीतल, मूत्रजनन और पिपासाहर हैं। आँव और अत्यार्तवमें इसका प्रयोग करते हैं **( डॉ. वा. ग. देसाई )**।

---

## ( ३४३ ) दूर्वा।

**नाम**—( सं. ) दूर्वा, शाद्वल, शतपर्वा; ( हिं. ) दूब, हरियाली; ( कु. ) दुबो; ( पं. ) खबल, दुबडा; ( म. ) दुरू, हरळी; ( गु. ) ध्रो, धरो, ध्रोखड; ( सिं. ) छब(ब्ब)र; ( अ. ) उश्ब; ( फा. ) मर्ग; ( ले. ) साइनोडोन् डेक्टीलोन् ( Cynodon dactylon )।

**वर्णन**—दूर्वा भारतवर्षमें सर्वत्र होती है और प्रसिद्ध है।

**गुण-कर्म**—**चरके** ( सू. अ. ४ ) वर्ण्ये ( 'सिता-लता' इति नामभ्यां ) प्रजास्थापने ( 'शतवीर्या-सहस्रवीर्या' इति नामभ्यां ) श्वेतदूर्वा, नीलदूर्वा च पठ्येते। "दूर्वा शीता कषाया च रक्तपित्तकफापहा।" ( ध. नि. )। "दूर्वा स्वाद्वी हिमा तिक्ता कषाया जीवनी जयेत्। कफपित्तास्रवीसर्पतृष्णादाहत्वगामयान् ॥" ( कै. नि. )।

दूर्वा मधुर, कषाय, तिक्त, शीतवीर्य, जीवनीय, वर्ण्य, प्रजास्थापन तथा कफ, पित्त, रक्तविकार, विसर्प, दाह, रक्तपित्त, तृषा और त्वचाके रोगोंका नाश करनेवाली हैं।

**नव्यमत**—दूर्वा शीतल, रक्तस्कन्दन, व्रणरोपण और मूत्रजनन है। मूलका क्वाथ वेदनास्थापन और मूत्रजनन है; इसलिये बस्तिशोथ, सुजाक और मूत्रमार्गके दाहमें देते हैं। त्वग्रोगमें मूलका क्वाथ पीनेको देते हैं। नाकसे रक्तस्राव होनेपर स्वरस नाकमें टपकाते हैं। सद्योव्रण, नेत्राभिष्यन्द और अर्शकी जलनपर कल्कका लेप करते हैं। अतिसार, आँव, पैत्तिक वमन, उदर, जलोदर, अत्यार्तव, उन्माद और अपस्मारमें स्वरस पीनेको देते हैं **( डॉ. वा. ग. देसाई )**।

---

## ( ३४४ ) उशीर।

**नाम**—( सं. ) उशीर, सेव्य, वीरण, अभय, अमृणाल; ( हिं. ) खस; ( बं. ) वेणारमूल, खश; ( म. ) वाळा; ( गु. ) वाळो; ( ले. ) वेटिवेरिआ झाइजेनिओइडस् ( Vetiveria zizanioides )।

**वर्णन**—यह **गाँडर** नामक घासकी सुगन्धित जड़ है ।

**वक्तव्य**—**लामज्जक** भी उशीर( खस ) की जातिका तृणविशेष है ऐसा **भावमिश्र** कहते हैं–"लामज्जकमुशीरवत् पीतच्छवि तृणविशेषः" । **चरकने** लामज्जक और उशीरके लेपको दाह, त्वचाके रोग और स्वेदको दूर करनेवाला लिखा है–"लामज्जकोशीरं दाहत्वग्दोषस्वेदापनयनप्रलेपनानाम् ।" ( च. सू. अ. २५ )। **कैयदेवनिघण्टुमें** लामज्जकके गुण इस प्रकार लिखे हैं–"लामज्जकं हिमं तिक्तं लघु दोषत्रयापहम् । निहन्ति दाहपित्तास्रस्वेदकृच्छ्रत्वगामयान् ॥–लामज्जक शीतवीर्य, लघु, त्रिदोषहर तथा दाह, पित्त, रक्तविकार, मूत्रकृच्छ्र और त्वचाके रोगोंका नाश करनेवाला है ।" लामज्ज उशीरका ही एक भेद मालूम होता है । जबतक लामज्जकका विशेष निर्णय न हो तबतक लामज्जकके स्थानमें खसका प्रयोग करना चाहिये । ह्रीबेर ( उदीच्य-बालक ) यह उशीरसे भिन्न द्रव्य है ।

**गुण-कर्म**—**चरके** (सू. अ. ४) वर्ण्ये, स्तन्यजनने ( 'वीरण'नाम्ना ) छर्दिनिग्रहणे, दाहप्रशमने च महाकषाये तथा तिक्तस्कन्धे ( वि. अ. ४ ) उशीरं पठ्यते । **सुश्रुते** ( सू. अ. ३८ ) सारिवादिगणे, पित्तसंशमने वर्गे ( सू. अ. ३९ ) च उशीरं पठ्यते । "लामज्जकोशीरं दाहत्वग्दोषस्वेदापनयनप्रलेपनानाम्" ( च. सू. अ. २५ )। "उशीरं स्वेददौर्गन्ध्यपित्तघ्नं स्निग्धतिक्तकम् ।" ( ध. नि. )। "उशीरं शीतलं तिक्तं दाहश्रमहरं परम् । पित्तज्वरार्तिशमनं जलसौगन्ध्यदायकम् ॥" ( रा. नि. )। "उशीरं शीतलं रूक्षं स्वादु तिक्तं हिमं लघु । पाचनं स्तम्भनं हन्ति शोषदाहमदज्वरान् ॥ तृष्णास्रविषदौर्गन्ध्यकृच्छ्रकुष्ठवमिव्रणान् ।" ( कै. नि. )।

खस तिक्त, मधुर, शीतल, रूक्ष, लघु, पाचन, स्तम्भन, स्तन्यजनन, छर्दिनिग्रहण, दाहप्रशमन, पित्तसंशमन, जलको सुगन्धित करनेवाला तथा स्वेदकी दुर्गन्ध, श्रम, पित्तज्वर, मुखशोष, मद, तृषा, रक्तविकार, विष, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठ, वमन और व्रणका नाश करनेवाला है ।

**नव्यमत**—खस शीतल, मूत्रजनन, पिपासाहर, मृदु, स्वेदजनन, ज्वरमें त्वचाका दाह कम करनेवाला और रोचन है । खसके फांटसे वमन बंद होता है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

**यूनानी मत**—खस दूसरे दर्जेमें शीत एवं रूक्ष; हृदय और मस्तिष्कको बलप्रद, सौमनस्यजनन, ग्राही, पित्तशामक, रक्तोद्वेगहर, दीपन तथा रक्तज और पित्तज ज़्वरनाशक है। इसका अर्क, हिम, फांट या शर्बतके रूपमें उपयोग करना चाहिये। खसका इत्र सूक्ष्म, सुगन्धी और उष्ण प्रकृतिवालोंके लिये हितकर है। दिलकी धड़कन, हृदयदौर्बल्य और मूर्च्छामें इसका उपयोग करते हैं। तृष्णाधिक्य और वमनमें १॥ माशा खस और तीन दाने कमलगट्टेकी गिरीको अर्क केवड़ामें पीस, कपड़ेसे छानकर पिलानेसे विशेष लाभ होता है।

---

## ( ३४५ ) रोहिष।

**नाम**—( सं. ) रोहिष, कत्तृण; ( हिं. ) रूसा, रूसा घास; मिरचागंध; ( म. ) रोहिसगवत; ( गु. ) रोंसडो; ( ले. ) साइम्बोपोगोन् स्कीनेन्थस ( Cymbopogon schoenanthus )।

**वर्णन**—रोहिषकी पत्तियोंसे एक प्रकारका सुगन्धी तैल निकला जाता है। कोमल तृणसे उत्तम और अधिक तैल निकलता है। तेलका रंग फीका ललाईलिये हुए जामुनी रंगका होता है। इसमें गुलाब जैसी गंध और स्वाद अदरखके समान चरपरा और रोचक होता है।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) स्तन्यजनने महाकषाये कत्तृणं पठ्यते। "कत्तृणं श्वासकासघ्नं हृद्रोगशमनं परम्। विसूच्यजीर्णशूलघ्नं कफवातास्रनाशनम् ॥" ( ध. नि. )। "कत्तृणं कटुकं तिक्तमुष्णं कटु विपाकतः। बलासवातरुधिरकण्डूहृद्रोगनाशनम् ॥ कृमिकासज्वरश्वासशूलाजीर्णारुचिप्रणुत् ॥" ( कै. नि. )।

रोहिषतृण कटु, तिक्त, कटुविपाक, उष्णवीर्य, स्तन्यजनन तथा श्वास, खाँसी, हृद्रोग, विसूचिका, अजीर्ण, शूल, कफ, कण्डू, कृमि, ज्वर, वातरक्त और अरुचिका नाश करनेवाला है।

**नव्यमत**—रूसाका तेल उष्ण, स्वेदजनन, मूत्रजनन, ज्वरघ्न, उत्तेजक और चेतनाकारक है। नूतन आमवात और गंज( खालित्य )में यह लगाया जाता है। सर्दी और कफयुक्त ज्वरमें रूसेके क्वाथसे फायदा होता है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

---

## ( ३४६ ) जम्बीरतृण।

**नाम**—( सं. ) जम्बीरतृण; ( हिं. ) हरी चाय; ( बं. ) गन्धबेणा; ( म. ) ओला चहा, पाती चहा; ( गु. ) लीली चा; ( ले. ) साइम्बोपोगोन् साइट्रेटस ( Cymbopogon citratus ) ( अं. ) लेमन् ग्रास ( Lemon grass )।

**वर्णन**—यह तृण बागोंमें लगाया जाता है। इसको मसलनेसे नीमूके समान गंध आती है। इसमें प्रचुर प्रमाणमें सुगन्धी तैल होता है, जो **चायके तेल ( ओइल लेमनग्रास** या **ओइल वर्बेना )** के नामसे बाजारमें मिलता है। इस तृणका फांट बना, उसमें दूध और चीनी मिलाकर चायके जैसा पिया जाता है। **सुश्रुत**द्वारा शाकवर्गमें और **चरक**समान हरितकवर्गमें लिखा हुआ **जम्बीर** यही है। जंबीरी नीबूको भी **जम्बीर** कहते हैं, **सुश्रुत**द्वारा इसका फलवर्गमें **जम्बीर** नामसे और **चरकने दन्तशठ** नामसे उल्लेख किया है। इस तृणको मसलनेसे इसमें जम्बीरके सदृश गंध आती है, अतः इसका भी **जम्बीर** नाम रखा गया है।

**गुण-कर्म**—"जम्बीरः पाचनस्तीक्ष्णः कृमिवातकफापहः। सुरभिर्दीपनो रुच्यो मुखवैशद्यकारकः॥" ( सु. सू. अ. ४६ )। "रोचनो दीपनस्तीक्ष्णः सुगन्धिर्मुख-शोधनः। जम्बीरः कफवातघ्नः कृमिघ्नो भक्तपाचनः॥" ( च. सू. अ. ४६ )।

हरी चाय पाचन, दीपन, सुगन्धी, रुचिकर, तीक्ष्ण, मुखशुद्धिकर तथा कफ, वात और कृमिका नाश करनेवाली है।

**नव्यमत**—हरी चाय उष्ण, स्वेदजनन, मूत्रजनन, ज्वरघ्न, वातनाशक, उत्तेजक, चेतनाकारक और संकोचविकासप्रतिबन्धक है। सर्दी-जुकाम और वातकफज्वरमें इसकी चाय ( फांट ) बनाकर पीना और इसके क्काथका बाष्पस्वेद लेना हितकर है। जब आमाशयमें कुछ भी ठहरता न हो तब यह उत्तम औषध है। हैजेमें इससे वमन बंद होता है और शरीरमें स्फूर्ति मालूम होती है। आक्षेपकमें इसका उपयोग होता है। शरीरके किसी भी अंगकी पीडामें इसके तेलकी मालिश करते हैं **( डॉ. वा. ग. देसाई )।**

---

## ( ३४७ ) भूतृण।

**नाम**—( सं. ) भूतृण; ( हिं. ) खवी; ( गु. ) अशखर, गंधारुं घास; ( अ. ) इजखिर; (ले.) साइम्बोपोगोन् ज्वरान्कुश ( Cymbopogon jwar-ancusa )।

**वर्णन**—यह हरीचायके जैसा सुगन्धी तृण है। यह १–२ फुट ऊँचा होता है। रोहिष आदि सुगन्धी तृणोंमें ऊँचाईमें यह सबसे छोटा होता है, इसलिये इसको **भूतृण** कहते हैं। यह यूनानी औषधविक्रेताओंके यहाँ **इजखिर**के नामसे मिलता है। कई आधुनिक लेखकोंने इसका **लामज्जक** नाम दिया है वह ठीक नहीं है। लामज्जकको आयुर्वेदमें शीतवीर्य लिखा है, परंतु इजखिर उष्णवीर्य है।

**गुण-कर्म**—"पुंस्त्वघ्नः कटुरूक्षोष्णो भूतृणो वक्त्रशोधनः।" ( च. सू. अ. २७ )। "कफघ्ना लघवो रूक्षास्तीक्ष्णोष्णाः पित्तवर्धनाः। कटुपाकरसाश्चैव सुरसार्जक-

भूतृणाः ॥" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "भूतृणो लघुरुष्णश्च रूक्षः श्लेष्मामयापहः । अस्य प्रयोगः सहसा हन्ति जन्तून् समुद्धतान् ॥" ( ध. नि. ) ।

भूतृण कटु, कटुविपाक, रूक्ष, उष्णवीर्य, मुखशोधक, लघु, तीक्ष्ण, पित्तवर्धक तथा कफ और कृमिनाशक है ।

**यूनानीमत**—इजखिर दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, पाचन, अवरोधोद्घाटक, श्वयथुविलयन, वातानुलोमन, आर्तवजनन, मूत्रल, दीपन और ग्राही है । अंगघात, पक्षाघात, अर्दित, आक्षेप, विस्मृति, जलोदर, आमाशय-यकृत् और प्लीहाका शोथ, आर्तव और मूत्रकी रुकावट, अश्मरी, अग्निमान्द्य, कफज्वर, उत्क्लेश और अतिसारमें इजखिरका उपयोग करते हैं ।

**उपयुक्त अंग**—पंचांग, विशेषतः मूल और पुष्प । **मात्रा**–३–६ माशा ।

**नव्यमत**—इजखिरमें पुष्कल सुगन्धी तैल है । इसके फूल रक्तस्कन्दन; मूल और पत्र कोष्ठवातप्रशमन, उत्तेजक, आर्तवजनन, मूत्रजनन, स्वेदजनन और कफघ्न हैं । रक्तस्राव बंद होनेके लिये इसके ताजे फूल जख्मपर बाँधते हैं । पंचांगके कल्कका शोथपर लेप करते हैं । द्राक्षासवमें पंचांगका चूर्ण मिला, गरम करके देनेसे पुष्कल पेशाब आता है । यह गर्भाशयसंकोचक है, इसलिये प्रसूतिज्वरमें इसका उपयोग करते हैं । आमवात, वातरक्त और कुपचनमें इसका उपयोग करते हैं ( **डॉ. वा. ग. देसाई** ) ।

---

## हंसपद्यादि वर्ग ९८.

### N. O. Filices. ( फिलिसिस् ) ।

**वर्गलक्षण**—अपुष्प ।

---

### ( ३४८ ) हंसपदी ।

**नाम**—( सं. ) हंसप(पा)दी; ( हिं. ) हंसराज, समलपत्ती; ( कु. ) डुमशिणको; ( बं. ) गोयालियालता; ( म., गु. ) हंसराज; ( अ., फा. ) परसियावशाँ; ( ले. ) ॲडिएन्टम् ल्युन्युलेटम् ( Adiantum lunulatum ) ।

**गुण-कर्म**—चरके ( सू. अ. ४ ) कण्ठ्ये महाकषाये, मधुरस्कन्धे ( वि. अ. ८ ) च तथा सुश्रुते ( सू. अ. ३८ ) विदारिगन्धादौ गणे हंसपदी पठ्यते । "हंसपादी हिमा गुर्वी रोपणी हन्ति शोणितम् । दाहातिसारवीसर्पलताशोथविषव्रणान् ॥" ( कै. नि. ) ।

हंसराज मधुर, शीतवीर्य, गुरु, कण्ठ्य, रोपण तथा रक्तविकार, दाह, अतिसार, विसर्प, लूताविष, शोथ, विष और व्रणको दूरकरनेवाला है।

**नव्यमत**—हंसराज तिक्त, कुछ ग्राही, कासहर, कफघ्न, बड़ी मात्रामें वामक और कुछ मूत्रजनन है। **उपयुक्त अंग**—पंचांग। पंचांगका शर्बत बनाकर देना चाहिये। **शर्बतकी मात्रा** ½–१ तोला ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

**यूनानीमत**—हंसराज अनुष्णाशीत, विलयन, दोषोंको पतला करनेवाला, कफपाचन, लेखन, मूत्रजनन, आर्तवजनन, अपरापातन और दोषविरेचन है। उरोवेदना, फुप्फुसशोथ, प्रतिश्याय, कास और कृच्छ्रश्वासमें इसका प्रयोग करते हैं। **मात्रा**—३–६ माशा।

---

## शैलेयादि वर्ग ९९.

### N. O. Lichenes. (लाइचेनिस्)।

**वर्गलक्षण**—अपुष्प।

---

### (३४९) शैलेय।

**नाम**—( सं. ) शैलेय, शिलापुष्प; ( हिं. ) छरी(ड़ी)ला, बुढना, पत्थरफूल; ( कु. ) झोलो; ( मा. ) छाड़छड़ीला; ( म. ) दगडफूल; ( गु. ) छडीलो; ( अ., फा. ) उश्नः; ( ले. ) पार्मेलिआ पर्फोरेटा ( Parmelia perforata )।

**वर्णन**—यह क्षुद्र वनस्पति पत्थरपर होती है। यह हरी पेड़ीसी संचित होकर जब सूखकर उतरती है तब इसके ऊपरका पृष्ठ काला और नीचेका सफेद होता है। स्वाद फीका तिक्त-कषाय होता है। नया और सुगन्धयुक्त छड़ीला औषधके लिये लेना चाहिये।

**गुण-कर्म**—"शैलेयं शिशिरं तिक्तं सुगन्धि कफपित्तजित्। दाहतृष्णावमिश्वासव्रणदोषविनाशनम्॥" ( रा. नि. )। "शैलेयं शीतलं हृद्यं कफपित्तहरं लघु। कण्डूकुष्ठाश्मरीदाहविषहृल्लासरक्तजित्॥" ( भा. प्र. )।

छरीला तिक्त, शीतवीर्य, सुगन्धि, हृद्य, लघु तथा कफ, पित्त, दाह, तृषा, वमन, श्वास, व्रण, कण्डू, कुष्ठ, अश्मरी, विष, हृल्लास और रक्तविकारको दूर करनेवाला है।

**यूनानीमत**—छड़ीला पहले दर्जेमें गरम और खुश्क, हृदयोल्लासकारक, हृदयबलदायक, दीपन, वेदनास्थापन, ग्राही और श्वयथुविलयन है।

**नव्यमत**—छड़ीला मूत्रजनन है। एक तोला छड़ीलेके क्वाथमें मिश्री और जीरेका चूर्ण मिलाकर पिलानेसे पेशाब खुलता है। इसको गरम पानीमें पीसकर सिरपर लगानेसे सिरका दर्द आराम होता है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** )।

# छत्रकवर्ग १००.

## N. O. Fungi. ( फन्गाई )।

### ( ३५० ) छत्रक।

**नाम—**( सं. ) छत्रक; ( हिं. ) खुमी; ( म. ) अळंबें; ( गु. ) बिलाडीनो टोप; ( सिं. ) खुम्भी; (ले.) ॲगेरिकस कॅम्पेस्ट्रिस् ( Agaricus campestris )।

**वर्णन—**यह एक प्रकारका छत्राकार उद्भिज्ज है। इसमें कई जातियाँ सविष और कई निर्विष होती हैं। कश्मीर तथा पंजाबके पहाड़ी प्रदेशोंमें **गुच्छी** और **ढींगरी** ये दो छत्रककी जातियाँ होती हैं जो निर्विष हैं। इनका साग बनाकर खाते हैं, जो स्वादिष्ठ और पौष्टिक होता है।

**गुण-कर्म—**"सर्पच्छत्रकवर्ज्यास्तु बह्वयोऽन्याश्छत्रजातयः। शीताः पीनस-कर्त्यश्च मधुरा गुर्व्य एव च॥" ( च. सू. अ. २७ )।

सर्पछत्रक( साँपके छाते )को छोड़ कर अन्य छत्रकजातियाँ शीतवीर्य, जुकाम करनेवाली, मधुर और गुरु हैं।

**नव्यमत—**यह वनस्पति होनेपर भी मांसके समान किंबहुना मांससे भी अधिक पौष्टिक और वाजीकर है। जब आमाशयकी पचनशक्ति कम हो और रोगी सूखता जाता हो तब इसका साग खिलाते हैं। क्षयरोगमें इसको दूधके साथ पकाकर देते हैं **( डॉ. वा. ग. देसाई )।**

### ( ३५१ ) अर्गट।

**नाम—**( म. ) तांब; ( गु. ) गेरवो; ( अं. ) अर्गट ( Ergot ); ( ले. ) क्लेविसेप्स पर्प्युरिआ ( Claviceps purpurea )।

**वर्णन—**अर्गट गेहूं, मकई, जौ आदि धान्यमें होनेवाला एक प्रकारका रोग है। अर्गट ॥-१ इंच लंबा, ललाई लिये भूरे रंगका, कुछ वक्र, साधारण त्रिकोण, विशेष दुर्गन्धयुक्त कडुआ और अप्रिय स्वादवाला होता है।

**गुण-कर्म—**अर्गटके दो प्रधानकर्म हैं-( १ ) छोटी रक्तवाहिनियोंको संकुचित करके रक्तस्राव बंद करना और ( २ ) गर्भाशयका संकोचन करना। प्रसवोत्तर अपरा ( आँवल-अँवरी ) पतनके बाद अर्गट देनेसे रक्तस्राव नहीं होता, गर्भाशय पूर्व स्थिति पर आता है, पेट दुखता नहीं और ज्वर नहीं आता। प्रसवके अनन्तर पाँच-छः दिन तक प्रतिदिन सवेर-शाम अर्गट देना चाहिये। गर्भपातके बाद कभी-कभी गर्भाशय शिथिल होता है, उससे वार-बार रजःस्राव होता है, कमर तथा पेटमें पीड़ा होती

है और पांडुरोग होता है। ऐसी स्थितिमें अर्गट देते हैं। रक्तमिश्रित प्रदरमें गूगलके साथ अर्गट देते हैं। फुप्फुस किंवा अन्य अवयवोंसे रक्त आता हो तब अर्गट देते हैं। शिश्नोत्थान होनेके बाद तुर्त शैथिल्य मालूम होता हो ऐसे नपुंसकत्वमें अर्गट खानेको देते हैं और जलमें पीसकर उसका शिश्न पर लेप करते हैं। स्वप्नमें वीर्यपात और वीर्यके शीघ्रस्खलनमें अर्गट देनेसे लाभ होता है। सुजाकमें अर्गट देनेसे पूयस्राव बंद होता है। आँतोंकी शिथिलतासे उत्पन्न कब्ज़में अर्गट देनेसे आँतोंकी शक्ति-गति बढ़कर दस्त साफ होता है। बस्तिकी मांसपेशीकी शिथिलतासे पेशाब रुक-रुक कर थोड़ा-थोड़ा होता हो तब अर्गट देते हैं। प्रसवावस्थामें रक्तस्राव बंद करने और गर्भाशयके संकोचन करनेके लिये अर्गटके समान दूसरा औषध नहीं है। वैद्योंको इसका अवश्य उपयोग करना चाहिये। **मात्रा**—१०-२० रत्ती। अर्गटका फांट बनाकर प्रयोग करना चाहिये (डॉ. बा. ग. देसाई)।

यदि गर्भाशयका द्वार-मुख कठिन और अविकसित हो, बस्तिप्रदेशकी आकृतिके विकारसे प्रसवमार्ग छोटा हो, किसी अर्बुदादि द्वारा गर्भाशयका मुख रुका हुआ हो अथवा बालकके बड़े होनेसे उसका सरलतासे बाहर आना असंभव मालूम होता हो, तब अर्गटका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

इति द्रव्यगुणविज्ञाने उत्तरार्धे औषधद्रव्यविज्ञानीये द्वितीये खण्डे
उद्भिज्जद्रव्यविज्ञानीयो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

---

# जाङ्गमद्रव्यविज्ञानीयो नाम तृतीयोऽध्यायः।

पूर्व अध्यायमें उद्भिज्ज द्रव्योंका वर्णन किया गया है; अब इस अध्यायमें जाङ्गम[1] वर्गमेंसे औषधोपयोगी और चिकित्सकोंमें विशेष प्रचलित प्रधान द्रव्योंका वर्णन किया जायगा। जंगम वर्गसे प्राप्त आहार[2] और औषधोपयोगी द्रव्योंको **जाङ्गम, प्राणिज, जान्तव** या **जैव** द्रव्य कहते हैं।

---

## (१) अग्निजार-अंबर।

**नाम—**(सं.) अग्निजार; (अ., हिं) अंबर; (फा.) शाहबू; (अं.) अम्बर् ग्रिस् (Ambergris)।

**उत्पत्तिस्थान—**अंबर विशेषतः हिंद महासागरमें सिलोन, माडागास्कर तथा अफ्रीकाके लामू, मोम्बासा, जंजीबार आदि स्थानोंमें समुद्रतटपर पाया जाता है।

**वर्णन—**अंबर समुद्रचर **केचेलॉट** या **स्पर्म**[3] (Cachalot or Sperm Whale) नामक व्हेलकी आंतोंमें होनेवाली रोगजन्य ग्रन्थि है[4]। स्पर्म व्हेल जब एक प्रकारकी सींग जैसी वनस्पति खाती है तब वह उसकी आंतोंमें पहुंचनेपर वहाँ क्षोभ उत्पन्न करती है जिससे अन्त्ररसका स्राव होकर वह उस वनस्पतिके चारों ओर संचित होता है और ग्रन्थिरूप बन जाता है, यही अंबर है। व्हेलकी आंतोंमें यह ग्रन्थि उत्पन्न होनेपर वह क्रमशः दुर्बल होकर मर जाती है और अंबरकी गांठ आंतोंसे बाहर आकर जलमें अविलेय होनेसे समुद्रकी लहरोंसे किनारे पर आ जाती है अथवा स्पर्म व्हेलका जब शिकार किया जाता है तब उसकी आंतोंसे प्राप्त होती है। अंबर जब ताजा होता है तब उसमें विष्ठाके समान दुर्गन्ध होती है। पर वह सूर्यके तापसे सूखने पर उसमें मिट्टीके समान मीठी सुगन्ध उत्पन्न होती है। जो अंबर बाहरसे श्यामवर्ण, भीतरसे कुछ श्यामतालिये श्वेतवर्ण, बीच-बीचमें खशखाशके जैसे सूक्ष्म दानेदार,

---

१ 'जङ्गम' शब्दकी व्याख्या इस खण्डमें पृ. ३ पर देखें। २ "मधूनि गोरसाः पित्तं वसा मज्जासृगामिषम्। विण्मूत्रचर्मरेतोऽस्थिस्नायुशृङ्गनखाः खुराः॥ जङ्गमेभ्यः प्रयुज्यन्ते केशलोमानि रोचनाः॥" (च. सू. अ. १)। "जङ्गमेभ्यश्चर्मनखरोमरुधिरादयः।" (सु. सू. अ. १)।

३ हिन्दुस्तानी एकेडेमी संयुक्तप्रान्त द्वारा प्रकाशित **जन्तुजगत्** नामक ग्रन्थके पृ. ७८-८० पर स्पर्म व्हेलका वर्णन और रंगीन चित्र दिया हुआ है।

४ प्राचीन रसतत्रकारोंने अंबरको **'अग्निनक्र'** नामक समुद्रके प्राणिका **जरायु** बताया है- "समुद्रेणाग्निनक्रस्य **जरायु**र्बहिरुज्झितः। संशुष्को भानुतापेन **सोऽग्निजार** इति स्मृतः॥" (रसेन्द्रचूडामणि अ. ११)।

वजनमें हलका तथा एक प्रकारकी मीठी सुगन्धवाला हो वह उत्तम होता है। अंबरका विशिष्ट गुरुत्व ०.७८०. से ०.९२५ होता है। १४५ तक अंश फेरन हीटकी उष्णतापर अंबर पिघलकर चरबी या पिघले हुए पीले मोमके जैसा द्रव हो जाता है और २१२ अंश फेरनहीटकी उष्णतापर उसकी श्वेतवर्ण भाप होकर उड़ या जल जाता है। ईथर तथा गरम किये हुए अल्कोहल और तेलमें अंबर विलीन हो जाता है, परंतु जलमें अविलेय है। गरम किये हुए अल्कोहलमें अंबरको मिलानेसे उसमेंसे अल्कोहल ठंढा होनेपर **ॲम्बरीन** नामक श्वेतवर्ण दानेदार सत्त्व २५ प्रतिशत प्राप्त होता है।

**गुण-कर्म**—"अग्निजारस्त्रिदोषघ्नो धनुर्वातादिवातनुत् । वर्धनो रसवीर्यस्य दीपनो जारणस्तथा ॥" (र. चू. अ. ११)। "स्यादग्निजारः कटुरुष्णवीर्यस्तुन्दामयो[१] वातकफापहश्च । पित्तप्रदः सोऽधिकसन्निपातशूलार्तिशीतामयनाशनश्च ॥" (रा. नि. पिप्पल्यादिवर्ग ६)।

अंबर त्रिदोषघ्न, धनुर्वात आदि (आक्षेपप्रधान) वातरोगोंका नाश करनेवाला, पारदके योगोंके साथ देनेसे उसके वीर्य (गुण)को बढ़ानेवाला, दीपन तथा पाचन है (र. चू.); पेटकी व्याधिरूप अंबर कटु, उष्णवीर्य, पित्तकर तथा वात, कफ, सन्निपात, शूल और शीतजन्य रोगोंका नाश करनेवाला है (रा. नि.)।

**यूनानी मत**—अंबर दूसरे दर्जेमें गरम और पहले दर्जेमें रूक्ष, ओज (प्राणशक्ति-अरवाह) और शारीर शक्तियोंका संरक्षक, सौमनस्यजनन, ज्ञानेन्द्रिय-हृदय और मस्तिष्कको बल देनेवाला, दीपन, ग्राही तथा वाजीकर है। पक्षाघात, अर्दित, कम्पवात, धनुःस्तम्भ, स्वाप (सुन्नता), मस्तिष्क-हृदय और नाड़ियोंका दौर्बल्य, हृदय और मस्तिष्कके शीतजन्य व्याधि, हृत्स्पन्दन, नपुंसकता, कफज उन्माद, पुराना नजला (प्रतिश्याय), मूर्च्छा, हिस्टीरिया, अति शोधन (वमन-विरेचन-सिरावेध आदि) से तथा अतिस्त्रीसंगसे उत्पन्न अशक्तता आदि तथा वात-कफ और दौर्बल्यप्रधान रोगोंमें अंबर अकेला या अन्य माजून-मुफर्रेह और याकूतीके योगोंमें संमिलित करके दिया जाता है। मात्रा १-३ रत्ती।

---

## (२) अण्ड-अंडा।

**नाम**—(सं.) अण्ड, डिम्ब; (हिं.) अंडा; (गु.) ईंडां, (बं.) डिम्; (अ.) बैजा; (अं.) एग् (Egg)।

**वर्णन**—अंडा प्रसिद्ध प्राणिज द्रव्य है। मत्स्य और पक्षियोंका विशेषतः कुक्कुट—मुर्गीका अंडा आहार और औषधके लिये उपयोगमें लिया जाता है। अंडेके मुख्य

---

१ राजनिघण्टुकारने अंबरको तुन्दामय (पेटका रोग) यह विशेषण दिया है, इससे मालुम होता है कि उसको अंबर पेटकी व्याधिरूप ग्रन्थि है इस बातका ज्ञान था।

तीन भाग होते हैं-( १ ) अंडेकी जर्दी ( पीला भाग ), ( २ ) सफेदी और ( ३ ) छिलका ( ( सं. ) अण्डकपाल, अण्डत्वक्; ( फा. ) पोस्त बैजा मुर्ग )।

**गुण-कर्म**—"निःस्राव्य मत्स्याण्डरसं भृष्टं सर्पिषि भक्षयेत् । हंसबर्हिणदक्षाणां चैवमण्डानि भक्षयेत् ॥" ( च. चि. अ. २ ) । "नातिस्निग्धानि वृष्याणि स्वादुपाकरसानि च । वातघ्नान्यतिशुक्राणि गुरूण्यण्डानि पक्षिणाम् ॥" ( भा. प्र. मांसवर्ग ) । "धार्तराष्ट्रचकोराणां दक्षाणां शिखिनामपि । चटकानां च यानि स्युरण्डानि च हितानि च ॥ क्षीणरेतःसु कासेषु हृद्रोगेषु क्षतेषु च । मधुराण्यविदाहीनि सद्योबलकराणि च ॥" ( च. सू. अ. २७ ) ।

पक्षियों( तथा मत्स्यादि )के अंडे रस और विपाकमें मधुर, स्निग्ध, गुरु, अविदाही, वृष्य, शुक्रल, वातघ्न, सद्योबलकर तथा शुक्रक्षय, खाँसी, हृद्रोग और व्रणमें हितकर हैं। चरकने अंडेकी जर्दीको गायके घीमें भूनकर वाजीकरणके लिये देनेको लिखा है।

**यूनानी मत**—अंडेकी जर्दी पहले दर्जेमें गरम और तर, सफेदी पहले दर्जेमें सर्द और तर, तथा छिलका दूसरे दर्जेमें सर्द और खुश्क है । **अंडेकी जर्दी** रक्तवर्धक, बलकारक और वाजीकर; **सफेदी** संशमन और दाहप्रशमन; तथा **छिलका** संग्राही, उपशोषण और लेखन है। अंडेको हलका उबाल, उसकी जर्दीको शहद और दूधके साथ मिलाकर कृश और दुर्बल रोगीको पिलाते हैं। शुक्रमेह, श्वेतप्रदर और मधुमेहमें छिलकेकी भस्म बनाकर खिलाते हैं।

**अंडेके छिलकेकी भस्म बनानेकी विधि**-अंडेके छिलकोंको सेंधानमक मिलाये हुए जलमें चार पहर भिगोकर रख छोड़े। पीछे सावधानीसे अंदरका पर्दा ( झिल्ली ) दूर करके स्वच्छ जलसे धो लेवे। बाद सुखा, कपड़छान चूर्ण कर, नीबूका रस-ग्वारपाठाके गूदे या अर्कक्षीरमें एक दिन मर्दन कर, टिकिया बना, सुखा, संपुटमें रख कर गजपुटका अग्नि देवे । श्वेत वर्णकी भस्म होगी । **मात्रा** २-४ रत्ती। **अनुपान**-शहद या ताजा मक्खन। **उपयोग**-श्वेतप्रदरमें इसके सेवनसे अच्छा लाभ होता है। इसके अतिरिक्त दमा, पुरानी खाँसी, रक्तकास, उरःक्षत, राजयक्ष्मा, अतिसार और प्रमेहमें भी इसके सेवनसे लाभ होता है। अंडेके छिलकेका अतिसूक्ष्म चूर्ण नेत्रव्रण, शुक्र ( फूली ) आदि नेत्ररोगोंमें अकेला या अन्य द्रव्योंके साथ प्रयुक्त होता है । अंडेके तेल( रोगन बैजा )की पक्षाघात, अर्दित, वातशूल आदि रोगोंमें मालिश करते हैं तथा श्वसनकज्वर ( न्यूमोनिआ ), नपुंसकता, दौर्बल्य आदि रोगोंमें शहद या दूधके साथ उसको खिलाते हैं । **अंडेका तैल निकालनेकी विधि**—अंडा उबाल, उसकी जर्दी निकालकर एक पात्रमें रखें। फिर उस पात्रको मृदु अग्निपर या तीव्र धूपमें जिस तरफ जर्दी हो उस तरफका सिरा कुछ ऊँचा करके रखें और चमचेसे दबाते रहें । जब संपूर्ण तेल निकल आवे तब कपड़ेसे निचोड़ शीशीमें भर, डाट लगा कर रख छोड़ें।

---

## ( ३ ) इन्द्रगोप-बीरबहूटी ।

**नाम**—( सं. ) इन्द्रगोप; ( हिं. ) बीरबहूटी; ( अ. ) अरूसक, दूदुल्मितर; ( फा. ) किर्मे मखमल; कागनः; ( ले. ) म्युटेला ओक्सिडेन्टेलिस् ( Mutella Oceidentalis ) ।

**वर्णन**—यह एक वर्षारंभमें रेतीली जमीनसे निकलनेवाला रक्तवर्णका, मखमलके समान नरम, रेंगनेवाला कीड़ा है । सूखनेपर केसरिया रंगका हो जाता है । सूखा कीड़ा बाजारमें यूनानी दवा बेचनेवाले पन्सारियोंके यहाँसे 'बीरबहुटी' नामसे मिल सकता है ।

**गुण-कर्म**—आयुर्वेदमें रक्त और आर्तवके वर्णको इन्द्रगोपके वर्णकी उपमा दी गई है । इसका औषधीय उपयोग देखनेमें नहीं आता । हकीम लोग इसका प्रचुर उपयोग करते हैं ।

**यूनानी मत**—तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, वाजीकर तथा वात और कफके व्याधियोंको दूर करनेवाला है । संधिवात, पक्षाघात और उपस्थेन्द्रियके शैथिल्यमें इसका आन्तरिक उपयोग करते हैं और इसके तैलकी मालिश-तिला करते हैं । पाण्डुरोगमें इसको खिलानेसे लाभ होता है । कोई-कोई हकीम मसूरिकाकी उस अवस्थामें जब कि वह प्रकट होकर अंदर चली गई हो उसको बाहर निकालनेके लिये इसको खिलाते हैं ।

---

## ( ४ ) कच्छपपृष्ठ ( कछुएकी पीठ ) ।

**वर्णन**—कछुआ एक प्रसिद्ध जलचर प्राणी है, जिसको ( सं. ) कच्छप, कूर्म; ( बं. ) काछिम; ( म. ) कांसव; ( गु. ) काचबो; कहते हैं । उसकी पीठकी सुखाई हुई हड्डी जो बड़ी सख्त ( कठिन ) होती है, उसका औषधके लिये उपयोग किया जाता है । कछुएकी पीठ बड़ी सख्त होती है । उसका सरलतासे चूर्ण नहीं हो सकता । अतः उसको पत्थरके चकले पर जल या अर्क गुलाबमें चन्दनके समान घिस, सुखाकर चूर्ण किया जाता है या भस्म बनाई जाती है । **मात्रा** २-८ रत्ती । **भस्म बनानेकी विधि**—कछुएकी पीठके टुकड़े कर, उसको मकोयके रस, ग्वारपाठाके रस ( गूदे ) या पत्थरचटा ( जख्म हयात ) के रसमें तीन दिन भिगो, सुखा, मिट्टीके पात्रके संपुटमें रखकर गजपुटकी अग्निमें पकानेसे श्वेत वर्णकी भस्म होती है ।

**गुण-कर्म**—इसमें सुधा( चूने )का अंश अधिक होता है इसलिये जिन रोगोंमें सुधांशकी कमी हुई हो उन रोगोंमें तथा बालशोष ( बालकोंका सूखारोग), खाँसी, श्वास, रक्तकास, उरःक्षत और राजयक्ष्मामें इससे विशेष लाभ होता है ।

यूनानी वैद्य ( हकीम ) तथा पंजाब और मद्रास प्रांतके वैद्य इसका उपयोग करते हैं । अन्य प्रांतके वैद्योंको भी इसका उपयोग करना चाहिये ।

---

## ( ५ ) कपर्दिका-कौड़ी ।

**नाम**—( सं. ) कपर्दिका, वराटिका, चराचर; ( हिं. ) कौड़ी; ( म. ) कवडी; ( गु. ) कोडी; ( अ. ) बद्अ; ( फा. ) कजक, खरमोहरा; ( ले. ) सायप्रिया मोनेटा ( Cyprœa moneta ) ।

**वर्णन**—कौड़ी एक प्रकारके समुद्रमें होनेवाले प्राणीकी अस्थि है । जो कौड़ी पीताभ, पृष्ठभागपर ग्रंथियुक्त, दीर्घवृन्तवाली और तौलमें ३-४॥ मासेकी हो वह औषधके लिये उपयुक्त होती है । कौड़ीको कांजीमें या नीबूका रस मिलाये हुए जलमें एक प्रहर दोलायंत्रमें पकानेसे वह शुद्ध होती है । शुद्ध कौड़ीको मिट्टीके दो तवोंके बीचमें रखकर गजपुटका अग्नि देनेसे उसकी श्वेत वर्णकी भस्म बनती है । यदि केवल भस्मका प्रयोग करना हो तो उसको नीबूके स्वरसकी एक भावना देकर प्रयोग करना चाहिये । योगोंमें भावना दिये विना भी काममें ले सकते हैं ।

**गुण-कर्म**—"कपर्दः कटुतिक्तोष्णः कर्णशूलव्रणापहः । गुल्मशूलामयघ्नश्च नेत्रदोषनिकृन्तनः ॥" ( ध. नि. ) । "परिणामादिशूलघ्नी ग्रहणीक्षयनाशिनी । कटूष्णा दीपनी वृष्या नेत्र्या वातकफापहा ॥" ( र. चू. अ. ११ ) ।

कौड़ी कटु, तिक्त, उष्णवीर्य, दीपन, वृष्य तथा वात, कफ, कर्णशूल, व्रण, गुल्म, शूल, परिणामशूल, नेत्ररोग, ग्रहणीरोग और क्षयका नाश करनेवाली है ।

**यूनानी मत**—कौड़ी दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, तीव्र रूक्षण, लेखन, छेदन, उष्णताजनन और श्लेष्मश्वयथुविलयन है । इसका प्रलेप अवयवोंके द्रवोंको सुखाता और कफज सूजनको उतारता है । यह नेत्रगत व्रणशुक्र ( फूली ) और त्वचाके चिह्नोंको दूर करती है । सिरकेमें पीस कर लेप करनेसे मस्से दूर होते हैं ।

---

## ( ६ ) कर्कटक ।

**नाम**—( सं. ) कर्कटक, कुलीर; ( हिं. ) के( कें )कड़ा; ( बं. ) काँकडा; ( म. ) खेंकडा; ( गु. ) करचलो; ( अ. ) सरतान; ( फा. ) पंजपायः; ( ले. ) सिल्ला सिरेटा ( Seilla Serrata ) ।

**वर्णन**—यह एक शीघ्रगामी जलजन्तु है जो कीचड़वाले स्थानमें रहता है और छोटे पंजेके बराबर होता है । वर्णभेदसे यह श्वेत और कृष्ण दो प्रकारका होता है । बहते हुए मीठे पानीमें रहनेवाला ( सरतान नहरी ) और बड़ा केकड़ा उत्तम होता है ।

---

१ "पीताभा ग्रन्थिला पृष्ठे दीर्घवृन्ता वराटिका । सार्धनिष्कमिता श्रेष्ठा निष्कभारा च मध्यमा ॥ वराटाः काञ्जिके स्विन्ना यामाच्छुद्धिमवाप्नुयुः ॥" ( र. चू. अ. ११ ) ।

**गुण-कर्म**—"कर्कटो बृंहणो वृष्यः शीतलोऽसृग्गदापहः ।" (ध. नि.)। "शङ्खकूर्मादयः स्वादुरसपाका मरुन्नुदः । शीताः स्निग्धा हिताः पित्ते वर्चस्याः श्लेष्मवर्धनाः ॥ कृष्णकर्कटकस्तेषां बल्यः कोष्णोऽनिलापहः । शुक्लः सन्धान-कृत्सृष्टविण्मूत्रोऽनिलपित्तहा ॥" (सु. सू. अ. ४६)।

केकड़ा रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, बृंहण, वृष्य, मल-मूत्र और कफको बढ़ानेवाला, सन्धानीय तथा पित्त, वात और रक्तविकारको दूर करनेवाला है।

**यूनानीमत**—केकड़ा दूसरे दर्जेमें सर्द और तर है । **उपयोग**-केकड़ेकी मसी( सरतान मुहरक )का उरःक्षत, राजयक्ष्मा, अन्त्रक्षय तथा खाँसीमें रक्त और पूय आना-इन रोगोंमें उपयोग करते हैं । इन रोगोंमें इससे अच्छा लाभ होता है । **मात्रा**-२-४ रत्ती । **केकड़ेकी मसी बनानेकी विधि**-बहते हुए मीठे पानीका केकड़ा ला, उसके पैर तथा उदरस्थ अन्त्र-मल आदि अलग करके प्रथम नमक मिलाये हुए जलसे और पीछे स्वच्छ जलसे धो, मिट्टीके कोरे पात्रमें रख, ऊपर कपड़मिट्टी करके खूब गरम तनूरमें चार प्रहर रखे और तनूरका मुँह बंद कर दे या इतना पुट देवे कि श्यामवर्णकी मसी हो, श्वेत वर्णकी भस्म न हो जाय । इसका हकीम लोग उरःक्षत और राजयक्ष्मामें खूब प्रयोग करते हैं । वैद्योंको भी इसका प्रयोग करना चाहिये ।

यह मसी बड़े शहरोंमें यूनानी दवा बेचनेवाले पनसारियोंके यहाँसे **'सरतान मुहरक'** के नामसे तैयार भी मिल सकती है।

---

## (७) कस्तूरी।

**नाम**—( सं. ) कस्तूरी, मृगनाभि, मृगमद; ( हिं., म., गु. ) कस्तूरी; ( अ. ) मिस्क; ( फा. ) मुश्क; ( अं. ) मस्क ( Musk )।

**उत्पत्तिस्थान**—तिब्बत, आसाम, भूटान, नेपाल, गढ़वाल, कश्मीर आदि हिमालय-पर्वत-श्रेणीकी ७०००-८००० फुटसे ऊपरकी चोटियोंपर सघन वनोंमें कस्तूरा मृग मिलता है ।

**वर्णन**—नर कस्तूरा मृगकी नाभिके पास कस्तूरीकी थैली होती है । उसपर बाल होते हैं और बीचमें एक छोटासा छिद्र होता है । एक-दो वर्षकी आयुतक कस्तूरी एक श्वेत रंगका तरल पदार्थ होता है । तत्पश्चात् वह रक्ताभ श्याम वर्णकी गाढ़ी और दानेदार हो जाती है । इसका स्वाद तिक्त तथा गन्ध अतितीक्ष्ण और फैलने-वाली होती है । जो कस्तूरी श्यामवर्ण या रक्ताभ श्याम वर्णकी, गोल बड़े दानेवाली, तीक्ष्णगंधवाली और झिल्लीरहित हो वह उत्तम होती है ।

**गुण-कर्म**—कस्तूरिका रसे तिक्ता कटुः श्लेष्मानिलापहा । उष्णा बल्या तथा वृष्या शीतदौर्गन्ध्यनाशिनी ॥

कस्तूरी रसमें तिक्त और कटु, उष्णवीर्य, बल्य, वृष्य तथा कफ, वात, शीत और दुर्गन्धको दूर करनेवाली है । **मात्रा** १–रत्ती ।

**यूनानी मत**—कस्तूरी तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरेमें रूक्ष, सौमनस्यजनन, आमाशय-हृदय-ज्ञानेन्द्रिय और मस्तिष्कको बलप्रद, प्राकृत देहाग्निको बढ़ानेवाली, दोषोंको पतला करनेवाली, उष्णताजनन, वाजीकर और आक्षेपहर है । हृदय और मस्तिष्ककी दुर्बलता, हृदयकी धड़कन, वातिक उन्माद, अपस्मार, अपतन्त्रक (हिस्टीरिया), संन्यास, विस्मृति, पक्षाघात, अर्दित, स्वाप ( सुन्नता ), कम्पवात, काली खाँसी आदि श्लैष्मिक, वातिक और आक्षेपयुक्त रोगोंमें कस्तूरीका उपयोग करते हैं। **अहित**—उष्णप्रकृतिवालोंके लिये । **निवारण**—अर्क गुलाब । **प्रतिनिधि**—जुंदबेदस्तर, अंबर और जबाद ।

---

## (८) कोश ।

**नाम**—(सं.) कोश; (हिं.) रेशमका कोया, कोसा; (अ.) इब-रेशम; (फा.) अबरेशम, आबरेशम; (अं.) सिल्क पॉड ( Silk pod )।

रेशमके कीड़ेको ( सं. ) कोशकार; ( हिं. ) कुसियारी, किरिम पिल्ला; ( अ. ) दूदुल् हरीर; (फा.) किर्म आबरेशम; ( अं ) सिल्कवर्म ( Silk worm ) कहते हैं।

**उत्पत्तिस्थान**—भारतवर्षमें रेशम कश्मीर, बिहार, बंगाल और महीसूरमें होता है ।

**वर्णन**—अबरेशम एक कीड़े( किरम पिल्ला )का घर है जिसे वह अपने मुखकी लारसे अपने ऊपर बनाता है । यह कीड़ा शहतूतके वृक्षपर पाला जाता है और शहतूतके पत्ते खाकर अपना पोषण करता है । जब वह शहतूतकी पत्तियाँ खाकर पुष्ट होता है तब उसके मुखसे एक तार निकलने लगता है और किरमपिल्ला उस तारसे पत्र पर अपना घर बनानेके लिये उसे बुनना प्रारम्भ करता है, जिसमें वह स्वयं आवृत होजाता है। इस प्रकार इस कीड़ेके बनाये हुए लम्बगोल ( अंडाकार ) कोशको **रेशमका कोया—अबरेशम** कहते हैं। कीड़ा कोयेके भीतर मर जाता है । अब-रेशमका आसानीसे चूर्ण नहीं होता, इस लिये मरा हुआ कीड़ा निकाल, कैंचीसे कतर कर चूर्ण करते हैं। इस प्रकार बनाया हुआ चूर्ण यूनानी दवा बेचनेवाले पन्सारियोंके यहाँ **'अबरेशम मुकरर्ज'** के नामसे मिलता है ।

**गुण-कर्म—यूनानी मत**—पहले दर्जेमें उष्ण और रूक्ष, सौमनस्यजनन, मस्तिष्क-हृदय-यकृत्-फुप्फुस और आमाशयको बल देनेवाला, चेहरेके रंगको

निखारनेवाला, दोषोंको पतला करनेवाला, कफको निकालनेवाला और जलाया हुआ लेखन तथा व्रणरोपण है । ऊपर लिखे हुए गुणोंके कारण इसको मुफर्रह, याकूती, जवाहर मोहरा और माजूनोंके कल्पोंमें डालते हैं । जलाया हुआ ( मसीकृत ) अबरेशम, नेत्रव्रण, नेत्रस्राव, नेत्रकण्डू प्रभृति नेत्ररोगोंमें सुरमेकी भाँति आँखमें लगाया जाता है । **मात्रा**—१॥-३ माशा । रेशमको जलाकर बनाया हुआ चूर्ण सद्योव्रणपर छिड़कनेसे रक्तस्राव बंद होता है और व्रण शीघ्र भर आता है ।

---

## (९) गन्धमार्जारवीर्य ( जबाद ) ।

**नाम**—( सं. ) गन्धमार्जारवीर्य; ( **दक्षिणभारत** )-पुनुगु; ( अ. ) जबाद; ( अं. ) सिवेट[1] ( Civet ) ।

**वर्णन**—यह **गन्धमार्जार** ( मुश्कबिल्ली ) नामक प्राणीकी पूँछके नीचेकी थैलीसे मिलनेवाला सुगन्धि द्रव्य है । नया होनेपर यह पिलाई लिये सफेद रंगका, नरम,

---

१ हिंदुस्तानी एकेडेमी संयुक्तप्रान्त-प्रयागद्वारा प्रकाशित **जन्तुजगत्** नामक ग्रन्थमें पृ. ३६२ पर सिवेट बिल्लीका चित्र तथा पृ. ३७५–३७७ पर उसका वर्णन दिया है। "कद बिल्लीका सा किन्तु दूम बड़ी लम्बी होती है । शरीरपर गहरे रंगके धब्बे होते हैं । ××× पूँछके नीचेकी थैली बहुत बड़ी और दो भागोंमें विभक्त होती है, उसमें जो द्रव पदार्थ बनता है उसको भी **सिवेट** ही नाम दिया जाता है । प्राकृतिक दशामें सिवेटकी गन्ध अत्यन्त तीक्ष्ण या असह्य होती है, किन्तु जब अन्य वस्तुओंके संग मिलाकर तैयार की जाती है, तो उसमें कस्तूरीकी सी सुगन्ध आने लगती है । × × × । सिवेटको एक तंग पिंजरेमें खड़ा कर देते हैं और थैलीमेंसे द्रव पदार्थको निचोड़ लेते हैं ( जन्तुजगत् पृ. ३७६ ) । इस ग्रन्थमें सिवेटकी सिवेटा वाइवेरा ( Civetta viverra ) मालबारकी सिवेट; वाइवेरा झीबेथा ( Viverra Zibetba ) भ्रान; और वाइवेरा मेलेसेन्सिस् ( vievrra Malaccensis ) मुश्कबिल्ली; इन तीन जातियोंका वर्णन किया गया है । विशेष विवरण वहीं देखें ।

कैयदेव निघण्टुमें **कविराज सुरेन्द्रमोहनजी** लिखते हैं कि मालाबारमें कृषक लोग क्षेत्रोंमें बाँस गाड़ देते हैं। यह मार्जार उस पर अपना शिश्न घर्षण करके वीर्य निकाल देता है जो बाँस पर लग जाता है । कृषक लोग उसे संग्रह करके बेच देते हैं। ×××। कई-लोग इस गन्धबिडालको मारकर उसका अण्डकोष उल्टा करके ग्रन्थियाँ फेंक देते हैं और उल्टे हुए कोषमें तृण भरकर शुष्क करके बेच देते हैं । कलकत्तामें यह शुष्ककोष **'खट्टाशी'** नामसे मिलता है । बंगाली वैद्य नारायण तैल आदिको सुगन्धित करनेके लिये खट्टाशी उसमें छोड़कर मंद अग्निसे पकाते हैं । इसे एक रत्तीकी मात्रामें शर्करादिमें मिलाकर खिलाते हैं ( कै. नि. पृ. २४१-२४२ पर पादटिप्पणी ) ।

---

और गाढे मधुके समान होता है । पुराना होनेपर रंगमें कुछ श्यामता आ जाती है । दक्षिण भारतके बेंगलोर, मायसोर, मदुरा आदि शहरोंमें यह **'पुनुगु'** या **'जवादी'** नामसे सुगन्धि द्रव्य बेचनेवालोंके यहाँ मिलता है ।

**गुण-कर्म**—"गन्धमार्जारवीर्यं तु वीर्यकृत् कफवातनुत् । कण्डुकुष्ठहरं नेत्र्यं सुगन्धं स्वेदगन्धनुत् ॥" ( भा. प्र. ) ।

जबाद वाजीकर, नेत्र्य, सुगन्धि तथा कफ, वात, कण्डू और स्वेदकी दुर्गन्धको दूर करनेवाला है ।

**यूनानीमत**—जबाद दूसरे दर्जेमें उष्ण तथा तरी और खुश्कीमें मोतदिल ( समस्निग्धरूक्ष ), सौमनस्यजनन, आवीजनन ( सुखप्रसवकर ), हृदय और ज्ञानेन्द्रियोंको बल देनेवाला और पीड़ाशामक है । १॥ माशे जबादको थोड़ा केशर और मुर्गेके मांसरसके साथ गर्भवती स्त्रीको प्रसवकालमें पिलानेसे सुखपूर्वक प्रसव होता है। प्रसव होनेमें विलंब होनेपर तथा वातज मूत्रावरोधमें जबादका नाभि और पेड़ूपर लेप करनेसे प्रसव शीघ्र होता है और पेशाब छुटता है । इसे सूँघनेसे प्रतिश्याय, शिरःशूल और अर्धावभेदक आराम होता है । इसे बादामके तेलमें मिलाकर कानमें टपकानेसे श्रवणशक्ति बलवान् होती है । शिश्नपर इसका लेप लगाकर संभोग करनेसे अधिक आनंद होता है और गर्भधारणा नहीं होती । इसके मर्दनसे पीड़ा शांत होती है ।

---

## ( १० ) गोरोचन ।

**नाम**—( सं. ) गोरोचना, रोचना, गोपित्त; ( हिं., बं., म. ) गोरो( लो )चन; ( गु. ) गोरोचन, गोरुचंदन; ( उर्दू ) गावरोहन; (अ.) हजरुल बकर; ( फा. ) संगगाव ।

**वर्णन**—यह गाय या बैलके पित्ताशयमें होनेवाली अश्मरी ( पथरी ) है । इसका आकार गोल या अंडे जैसा, रंग श्यामता लिये पीला और स्वाद कड़ुआ ( तिक्त ) होता है । इसमें कुछ सुगन्ध भी होती है ।

**गुण-कर्म**—गोरोचना रसे तिक्ता उष्णवीर्या च पाचनी । हन्ति वातं कफं पाण्डुं कामलां श्वित्रमेव च ॥

गोरोचन रसमें तिक्त, उष्णवीर्य तथा वात, कफ, पाण्डुरोग, कामला और श्वित्रको दूर करनेवाला है ।

**यूनानी मत**—गोरोचन दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, श्वयथुविलयन, वातहर, बृंहण, मूत्रल, आर्तवजनन तथा अश्मरीघ्न है । इसका लेप श्वित्र, चेहरेके काले

दाग और अर्शमें लाभ पहुँचाता है । प्रतिदिन २। माशे गोरोचनको अर्क गुलाबमें पिस कर अपस्मारीको पिलानेसे फिर उम्रभर रोगका पुनराक्रमण नहीं होता। इसके नेत्रमें लगानेसे जाला कट जाता है और दृष्टि तीव्र होती है।

---

## ( ११ ) जुंदबेदस्तर।

**नाम**—( अ. ) जुंद, जुंदबेदस्तर; ( फा. ) गुंदबेदस्तर; ( ले. ) केस्टोरियम् ( Castorium )।

**वर्णन**—यह शशा ( खरगोश ) जातिके कॅस्टर् फाइबर् या **बीवर** ( Castor Fider on Beaver ) नामके कुतरनेवाले जल-स्थलचर प्राणीके दो वृषणोंसे प्राप्त होनेवाला द्रव्य है। ये वृषण २॥ इंच लंबे, भारी और खाकी श्यामवर्णके होते हैं। ऊपरकी त्वचा निकालकर भीतरका द्रव्य काममें लिया जाता है। यह स्वादमें तिक्त और कुछ चरपरा, रंगमें कुछ श्यामता और पिलाई लिये गहरा लाल, कस्तूरीकी सी विशेष सद्गन्धवाला और राल जैसा होता है । ईथर और मद्यमें विलीन होता है । इसमें उड़नेवाला तैल, राल तथा **कॅष्टोरीन्** नामका सत्त्व पाया जाता है।

**गुण-कर्म-यूनानी मत**—तीसरे दर्जेमें उष्ण और दूसरे दर्जेमें रूक्ष, श्वयथु-विलयन, उष्णताजनन, उपशोषण, दोषोंको पतला करनेवाला, नाड़ीबलदायक, वेदना-स्थापन, वातानुलोमन, आर्तवजनन, मूत्रल, वात-कफनाशक और आक्षेपहर है । हिस्टीरिया, अपस्मार ( मृगी ), काली खाँसी ( Hooping-Cough ), श्वास-कास, नाड़ीदौर्बल्य, कम्पवात, स्वाप ( सुन्नता ), अर्दित, पक्षाघात, आमवात, नपुंसकता और मस्तिष्कके शीतजन्य रोगोंमें इससे लाभ होता है । इसका तिला ( पतला लेप ) ध्वजभंगमें लाभ पहुँचाता है। मात्रा-२-४ रत्ती।

---

## ( १२ ) तेलनी मक्खी।

**नाम**—( सं. ) तैलमक्षिका, स्नेहमक्षिका; ( हिं. ) तेलनी मक्खी; ( अ. ) जरारीह; ( ले. ) माइलॅब्रिस् साइकोरिआई ( Mylabris Chicorii. )।

**वर्णन**—यह उत्तर भारतवर्ष और काश्मीरमें वर्षा ऋतुमें पाई जाती है। पाश्चात्य वैद्यकमें युरोपमें पाई जानेवाली केन्थेरिस् वेसिकेटोरिया ( Cantharis Vesicatoria )। नामक इसकी जातिका प्रयोग होता है। यह एक इंच लम्बी और $\frac{३}{८}$ इंच चौडी होती है। इसके काले रंगके दो लंबे पर होते हैं, जिनपर नारगी रंगकी दो

आड़ी रेखाएँ होती हैं। इन परोंकी जड़की ओर एक बड़ा नारंगी रंगका बिन्दु होता है। इन बड़े परोंके नीचे झिल्लीके समान दो भूरे पर और होते हैं।

**गुण-कर्म—यूनानी मत**—यह शोणितोत्क्लेशक, विस्फोटजनन, मूत्रल और वाजीकर है। इसके सूक्ष्म चूर्णको तिलतैलमें खूब मर्दन करके वाजीकरणके लिये शिश्नपर तथा किलास-सफेद कोढ़, छीप वा झाईं, खालित्य और गंजपर इसका तिला (पतला लेप) करते हैं। वाजीकरण तथा मूत्र और आर्तवकी प्रवृत्तिके लिये -॥-२ रत्तीकी मात्रामें चूर्ण खिलाया जाता है।

**नव्यमत**—इसमें कॅन्थेराइडिन् (Cantharadin) नामका सत्त्व, उड़नेवाला तैल, कषाय द्रव्य और चरबी होती है। बाह्य प्रयोगसे यह प्रदाहकारक, प्रत्युग्रतासाधक और त्वचापर फोड़ा उठानेवाली है। आभ्यन्तर प्रयोगसे उत्तेजक, मूत्रकारक और कामोद्दीपक है। इसका वीर्य चर्मद्वारा शरीरमें शोषित होता है। अन्नवह स्रोतस्, मूत्रयन्त्र और जननेन्द्रियपर इसकी क्रिया विशेषरूपसे प्रकाशित होती है। वारंवार पेशाब करनेकी चेष्टा, पौरुषग्रन्थि (Prostate Zland) और मूत्रनलिकामें अत्यन्त वेदना तथा लिङ्गोच्छ्रायमें इसके टिंक्चरकी १ बूंद एक औंस जलमें मिलाकर देनेसे उपकार होता है। मात्रा $\frac{१}{१००}$ से $\frac{१}{२}$ ग्रेन वटिकाके रूपमें देना चाहिये।

---

## (१३) दुग्ध और दुग्धविकार।

**नाम**—(सं.) दुग्ध, क्षीर, पयस्, स्तन्य; (हिं; म., गु.) दूध; (सिं.) खीर; (ता.) पाल; (अ.) लबन; (फा.) शीर; (ले.) लेक्टस् (Lactus); (अं.) मिल्क (milk)।

**वर्णन**—दूध एक प्रसिद्ध द्रव पदार्थ है जो स्तन्यपोषित प्राणियोंकी मादाके स्तनको दबानेसे प्राप्त होता है। आयुर्वेदमें गाय, भैंस, बकरी, भेड़, घोड़ी, गदही, हथिनी, ऊँटनी और नारी-इनके दूधका वर्णन पाया जाता है।

**गुण-कर्म**—प्रायशो मधुरं स्निग्धं शीतं स्तन्यं पयो मतम्। प्रीणनं बृंहणं वृष्यं मेध्यं बल्यं मनस्करम्॥ जीवनीयं श्रमहरं श्वासकासनिबर्हणम्। हन्ति शोणितपित्तं च सन्धानं विहतस्य च॥ सर्वप्राणभृतां सात्म्यं शमनं शोधनं तथा। तृष्णाघ्नं दीपनीयं च श्रेष्ठं क्षीणक्षतेषु च॥ पाण्डुरोगेऽम्लपित्ते च शोषे गुल्मे तथोदरे। अतिसारे ज्वरे दाहे श्वयथौ च विशेषतः॥ योनिशुक्रप्रदोषेषु मूत्रेषु प्रदरेषु च। पुरीषे ग्रथिते पथ्यं वातपित्तविकारिणाम्॥ नस्यालेपावगाहेषु वमनास्थापनेषु च। विरेचने स्नेहने च पयः सर्वत्र युज्यते॥" (च. सू. अ. १)। "तत्र सर्वमेव क्षीरं सर्वप्राणभृतामप्रतिषिद्धं जातिसात्म्यत्वात्, वातपित्तशोणितमानसेष्वपि

विकारेष्वविरुद्धं, जीर्णज्वरकासश्वासशोषक्षयगुल्मोन्मादोदरमूर्च्छाभ्रममददाहपिपासाहृद्बस्तिदोषपाण्डुरोगग्रहणीदोषार्शःशूलोदावर्तातिसारप्रवाहिकायोनिरोगगर्भास्रावरक्तपित्तश्रमक्लमहरं पाप्मापहं बल्यं वृष्यं वाजीकरणं रसायनं मेध्यं वयःस्थापनमायुष्यं जीवनं बृंहणं संधानं वमनविरेचनास्थापनं तुल्यगुणत्वाच्चौजसो वर्धनं बालवृद्धक्षतक्षीणानां क्षुद्व्यवायव्यायामकर्शितानां च पथ्यतमम्।" (सु. सू. अ. ४५)। "स्वादु शीतं मृदु स्निग्धं बहलं श्लक्ष्णपिच्छिलम्। गुरु मन्दं प्रसन्नं च गव्यं दशगुणं पयः॥ तदेवंगुणमेवौजः सामान्यादभिवर्धयेत्। प्रवरं जीवनीयानां क्षीरमुक्तं रसायनम्॥ महिषीणां गुरुतरं गव्याच्छीततरं पयः। स्नेहान्यूनमनिद्राय हितमत्यग्नये च तत्॥ छागं कषायमधुरं शीतं ग्राहि पयो लघु। रक्तपित्तातिसारघ्नं क्षयकासज्वरापहम्॥ जीवनं बृंहणं सात्म्यं स्नेहनं मानुषं पयः। नावनं रक्तपित्ते च तर्पणं चाक्षिशूलिनाम्।" (च. सू. अ. २७)। "अल्पाभिष्यन्दि गोक्षीरं स्निग्धं गुरु रसायनम्। रक्तपित्तहरं शीतं मधुरं रसपाकयोः॥ जीवनीयं तथा वातपित्तघ्नं परमं स्मृतम्। गव्यतुल्यगुणं त्वाजं विशेषाच्छोषिणां हितम्॥ दीपनं लघु संग्राहि श्वासकासास्रपित्तनुत्। अजानामल्पकायत्वात् कटुतिक्तनिषेवणात्॥ नात्यम्बुपानाद्व्यायामात् सर्वव्याधिहरं पयः। आविकं मधुरं स्निग्धं गुरु पित्तकफापहम्॥ पथ्यं केवलवातेषु कासे चानिलसंभवे। महाभिष्यन्दि मधुरं माहिषं वह्निसादनम्। निद्राकरं शीततरं गव्यात् स्निग्धतरं गुरु॥ नार्यास्तु मधुरं स्तन्यं कषायानुरसं हिमम्। नस्याश्च्योतनयोः पथ्यं जीवनं लघु दीपनम्॥ प्रायः प्राभातिकं क्षीरं गुरु विष्टम्भि शीतलम्। रात्र्याः सोमगुणत्वाच्च व्यायामाभावतस्तथा॥ दिवाकराभितप्तानां व्यायामानिलसेवनात्। श्रमघ्नं वातनुच्चैव चक्षुष्यं चापराह्णिकम्॥ पयोऽभिष्यन्दि गुर्वामं प्रायशः परिकीर्तितम्। वर्जयित्वा स्त्रियाः स्तन्यमाममेव हि तद्धितम्॥ धारोष्णं गुणवत् क्षीरं विपरीतमतोऽन्यथा। तदेवातिशृतं शीतं गुरु बृंहणमुच्यते॥ अनिष्टगन्धमम्लं च विवर्णं विरसं च यत्। वर्ज्यं सलवणं क्षीरं यच्च विग्रथितं भवेत्॥" (सु. सू. अ. ४५)। "कासश्वासहरं क्षीरं गार्दभं बालरोगनुत्। मधुराम्लरसं रूक्षं लवणानुरसं गुरु॥" (ध. नि.)।

सर्व प्रकारका दूध प्रायः मधुर, स्निग्ध, शीतवीर्य, प्रीणन (तर्पण), बृंहण, वृष्य, मेध्य, बल्य, मनोबलको बढ़ानेवाला (या मनको प्रसन्न करनेवाला), जीवनीय, श्रमहर, सर्वप्राणियोंको जन्मसे ही सात्म्य, शमन, शोधन, तृषाहर, दीपन, संधानीय, वयःस्थापन, आयुष्य, ओजको बढ़ानेवाला, रसायन, बालक-वृद्ध-क्षतसे क्षीण-तथा भूख-स्त्रीसंग और व्यायामसे कृश हुए-इनके लिये अति पथ्य है। दूध श्वास, खाँसी, रक्तपित्त, पाण्डुरोग, अम्लपित्त, शोष-राजयक्ष्मा, धातुक्षय, उदर, अतिसार, प्रवाहिका(पेचिश),जीर्ण ज्वर, दाह, शोथ, योनि(गर्भाशयके) रोग, शुक्रदोष, मूत्ररोग, प्रदर, मलका ग्रथित

होना ( मलके सुद्दे पड़ना ), वातरोग, पित्तरोग, रक्तविकार, मानसरोग, गुल्म, उन्माद, मूर्च्छा, भ्रम, मद, तृष्णारोग, हृद्रोग, मूत्राशयके रोग, ग्रहणीरोग, अर्श, शूल, उदावर्त, गर्भस्राव, श्रम और क्लमको दूर करनेवाला है। नस्य, आलेपन, अवगाहस्वेद, वमन, आस्थापनबस्ति, विरेचन और स्नेहनक्रियामें दूधका उपयोग होता है। **गायका दूध** अल्प अभिष्यन्दि, रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, स्निग्ध, गुरु, रसायन, उत्तम जीवनीय तथा वात, पित्त और रक्तपित्तको दूर करनेवाला है। **बकरीका दूध**—गायके दूधके समान गुणवाला, कषाय, मधुर, शीतवीर्य, दीपन, लघु, संग्राहि तथा श्वास, खांसी, अतिसार, ज्वर और रक्तपित्तके रोगियोंको-विशेष करके क्षयवालोंको हितकर है। बकरियोंका शरीर छोटा-हलका होनेसे तथा बकरियाँ कटु और तिक्त रसवाली वनस्पतियाँ खाती हैं, पानी कम पीती हैं और अधिक परिश्रम करती हैं इसलिये उनका दूध सर्वव्याधिहर होता है। **भेड़का दूध** मधुर, स्निग्ध, गुरु, पित्त-कफवर्धक तथा केवल वातसे उत्पन्न रोगोंमें और वातिक कासमें हितकर है। **भैंसका दूध** विशेष अभिष्यन्दि, मधुर, जठराग्निको मन्द करनेवाला, गायके दूधसे अधिक शीत और स्निग्ध तथा निद्रा लानेवाला है। जिसका जठराग्नि प्रबल हो उसकेलिये भैंसका दूध हितकर है। **नारी-स्त्रीका** दूध मधुर, कषायानुरस, शीत, जीवनीय, लघु, दीपन, सात्म्य तथा रक्तपित्तमें नस्य और नेत्ररोगोंमें तर्पण और आश्च्योतनमें पथ्य है। गधीका दूध मधुर, अम्ल, लवणानुरस, रूक्ष, गुरु, तथा श्वास, खाँसी और बालकों-के रोगोंको दूर करनेवाला है। दिनकी अपेक्षया रात्रिमें शीत होता है और उस समय पशु व्यायाम नहीं करते इसलिये प्रातःकालका दूध गुरु, विष्टम्भि और शीतल होता है। दिनमें पशु सूर्यके तापमें और खुल्ली हवामें फिरते हैं तथा चलने-फिरनेका परिश्रम करते हैं इसलिये शामका दूध श्रमहर, वातघ्न और चक्षुष्य होता है। धारोष्ण दूध गुणकारक है। कच्चा-ठंढा दूध अवगुण करता है। गरम किया हुआ दूध लघु और अभिष्यंद न करनेवाला होता है। नारीका दूध ठंडा ही हितकर होता है। पकाकर गाढ़ा किया हुआ ( अतिशृत ) दूध शीत, गुरु और बृंहण होता है। जिस दूधमें अप्रिय गंध आती हो, जिसका वर्ण और रस-स्वाद बदल गया हो, तथा जो अम्ल और किंचित् लवण रसवाला तथा फट गया हो ऐसे दूधका उपयोग नहीं करना चाहिये।

---

## ( १४ ) दधि-दही।

**नाम**—( सं. ) दधि; ( हिं. ) दही; ( गु. ) दहीं; ( बं. ) दई : ( अ. ) सुगरात; ( फा. ) जुगराज; ( अं. ) कर्ड्स ( Curds )।

**वर्णन**—दही या किसी खटाईका जामन देकर जमा या दुआ दूध।

**दधिगुणाः**—"रोचनं दीपनं वृष्यं स्नेहनं बलवर्धनम्। पाकेऽम्लमुष्णं वातघ्नं मङ्गल्यं बृंहणं दधि ॥ पीनसे चातिसारे च शीतके विषमज्वरे । अरुचौ मूत्रकृच्छ्रे च कार्श्ये च दधि शस्यते ॥" (च. सू. अ. २७) । "दधि तु मधुरमम्लमत्यम्लं चेति । तत् कषायानुरसं स्निग्धमुष्णं पीनसविषमज्वरातिसारारोचकमूत्रकृच्छ्रकार्श्यापहं वृष्यं प्राणकरं मङ्गल्यं चेति । महाभिष्यन्दि मधुरं कफमेदोविवर्धनम् । कफपित्तकृदम्लं स्यादत्यम्लं रक्तदूषणम् ॥ विदाहि सृष्टविण्मूत्रं मन्दजातं त्रिदोषकृत् । स्निग्धं विपाके मधुरं दीपनं बलवर्धनम् ॥ वातापहं पवित्रं च दधि गव्यं रुचिप्रदम् । दध्याजं कफपित्तघ्नं लघु वातक्षयापहम् ॥ दुर्नामश्वासकासेषु हितमग्नेश्च दीपनम् । विपाके मधुरं वृष्यं वातपित्तप्रसादनम् ॥ बलासवर्धनं स्निग्धं विशेषाद्दधि माहिषम् । वातघ्नं कफकृत् स्निग्धं बृंहणं नातिपित्तकृत् ॥ कुर्याद्भक्ताभिलाषं च दधि यत् सुपरिस्रुतम् । शृतात् क्षीरात्तु यज्जातं गुणवद्दधि तत् स्मृतम् ॥ वातपित्तहरं रुच्यं धात्वग्निबलवर्धनम् । दधि त्वसारं रूक्षं च ग्राहि विष्टम्भि वातलम् ॥ दीपनीयं लघुतरं सकषायं रुचिप्रदम् ।" (सु. सू. अ. ४५) ।

दही मधुर, अम्ल और अत्यम्ल तीन प्रकारका होता है । सब प्रकारके दही सामान्यतः कषायानुरस, विपाकमें अम्ल, उष्णवीर्य, स्निग्ध, रुचिकर, दीपन, वृष्य, बृंहण, बलकर, मङ्गल्य तथा (पक्व) पीनस, अतिसार, शीतपूर्व विषमज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र और कृशताको दूर करनेवाले हैं । मीठा दही अभिष्यन्दि तथा कफ और मेदको बढ़ानेवाला है । खट्टा दही कफ और पित्त करता है । अति खट्टा दही रक्तको दूषित करनेवाला, विदाही और मल-मूत्रको साफ लानेवाला है । कच्चा (बराबर न जमा हुआ) दही तीनों दोषोंको उत्पन्न करता है । गायका दही स्निग्ध, विपाकमें मधुर, दीपन, बलवर्धक, पवित्र, रुचिकर और वातहर है । बकरीका दही लघु, अग्निदीपन तथा कफ-पित्त-वातको हरनेवाला और क्षय, अर्श, श्वास तथा खाँसीमें हितकर है । भैंसका दही विपाकमें मधुर, वृष्य, बलवर्धक, स्निग्ध तथा वात और पित्तका शमन करनेवाला है । कपड़ेमें बाँधकर पानी निकाला हुआ दही वातघ्न, कफकर, स्निग्ध, किंचित् पित्तकर तथा अन्नपर रुचि उत्पन्न करनेवाला है । कढ़ाये हुए दूधसे जमाया हुआ दही गुणकर, वातपित्तहर, रुचिकर तथा रसादि धातु-जठराग्नि और बलको बढ़ानेवाला है । मक्खन (क्रीम) निकाले हुए दूधको जमाकर बनाया हुआ दही रूक्ष, ग्राही, विष्टम्भि, वातकर, दीपन, अति लघु, कुछ कषाय और रुचिकर होता है ।

---

## (१५) तक्र ।

**नाम—(सं.) तक्र, मथित, घोल, उदश्वित्; (बं.) घोल; (हिं) छाछ, मठा, मट्ठा, मही; (म.) ताक; (गु.) छास, छाश, मठो; (अ.) मखीस; (फा.) दोग; (अं.) बटर् मिल्क (Butter Milk) ।**

**वर्णन**—दहीमें जल मिला, मथकर तैयार किये हुए द्रव पदार्थको **तक्र** कहते हैं। दहीमें बिना जल मिलाये मथकर तैयार किये हुए पदार्थको **घोल** या **मथित** कहते हैं। गरम दूधमें खटाई ( मस्तु या नीमूका रस ) डाल, फाड़कर द्रवांश पृथक् किये हुए गाढ़े पदार्थको **कूर्चिका** कहते हैं। दही, छाछ या कूर्चिकाके ऊपरके केवल द्रवांशको **मस्तु** कहते हैं। कूर्चिकाको हिंदीमें **छेना,** अरबीमें जुब्न और फारसीमें **पनीर** कहते हैं। मस्तुको ( अ. ) माउल जुब्न, ( फा. ) आब पनीर और ( अं. ) व्हे ( Whey ) कहते हैं।

**तक्रगुणाः**—'तक्रं तु मधुरमम्लं कषायानुरसमुष्णवीर्यं लघु रूक्षमग्निदीपनं गरशोफातिसारग्रहणीपाण्डुरोगार्शःप्लीहगुल्मारोचकविषमज्वरतृष्णाच्छर्दिप्रसेकशूलमेदःश्लेष्मानिलहरं मधुरविपाकं हृद्यं मूत्रकृच्छ्रस्नेहव्यापत्प्रशमनमवृष्यं च। मन्थनेन पृथग्भूतस्नेहमर्धोदकं च यत्। नातिसान्द्रद्रवं तक्रं स्वाद्वम्लं तुवरं रसे॥ तत् पुनर्मधुरं श्लेष्मप्रकोपणं पित्तप्रशमनं च; अम्लं वातघ्नं पित्तकरं च। वातेऽम्लं सैन्धवोपेतं, पित्ते स्वादु सशर्करम्। पिबेत्तक्रं कफे चापि व्योषक्षारसमन्वितम्॥" ( सु. सू. अ. ४५ )। "तद्वन्मस्तु सरं स्रोतःशोधि विष्टम्भजिल्लघु।" ( अ. हृ. सू. अ. ५ )। "रूक्षमर्धोद्धृतस्नेहं यतश्चानुद्धृतं घृतम्। तक्रं दोषाग्निबलवित्त्रिविधं तत् प्रयोजयेत्॥ स्रोतःसु तक्रशुद्धेषु रसः सम्यगुपैति यः। तेन पुष्टिर्बलं वर्णः प्रहर्षश्चोपजायते॥" ( च. चि. अ. १४ )।

तक्र मधुर, अम्ल, कषायानुरस, मधुरविपाक, उष्णवीर्य, लघु, रूक्ष, दीपन, हृद्य, अवृष्य तथा गर ( कृत्रिमविष ), शोथ, अतिसार, ग्रहणीदोष, पाण्डुरोग, अर्श, प्लीहा, गुल्म, अरुचि, विषमज्वर, तृषा, वमन, प्रसेक, शूल, मूत्रकृच्छ्र, स्नेहव्यापत्ति, मेदोरोग, कफ और वातको दूर करनेवाला है। ये तक्रके गुण जिसमें दहीसे आधा जल डाल, मथकर स्नेहांश निकाल लिया हो, जो न बहुत पतला और न बहुत गाढ़ा हो तथा रसमें मधुर–अम्ल और कषाय हो, ऐसे तक्रके समझने चाहिये। मीठा ( मधुररसाधिक ) तक्र कफप्रकोपक और पित्तप्रशमन तथा खट्टा (अम्लरसाधिक) तक्र वातहर और पित्तकर है। वातप्रकोपमें अम्ल और सैन्धवयुक्त, पित्तप्रकोपमें मधुर और शर्करायुक्त तथा कफप्रकोपमें त्रिकटु और यवक्षारका चूर्ण मिलाया हुआ तक्र देना चाहिये। वैद्य दोष और जठराग्निका बल देखकर सर्व स्नेहांश ( मक्खन ) निकाले हुए, आधा स्नेहांश निकाले हुए या बिल्कुल स्नेहांश न निकाले हुए तक्रका प्रयोग करे। तक्रसे स्रोतस्-मार्ग

---

१ वैदिक साहित्यमें कूर्चिकाको **आमिक्षा** और कूर्चिकामस्तुको **वाजिन** कहते हैं। "आमिक्षा सा शृतोष्णे या क्षीरे स्याद्दधियोगतः।" ( अमरकोश १८ )। "तन्मस्तुनि तु वाजिनम्।" ( अभिधानचिन्तामणि )।

शुद्ध होने पर जो रस सम्यक्तया शरीरमें पहुंचता है उससे पुष्टि, बल, वर्ण और हर्ष उत्पन्न होता है। मस्तु तक्रके समान गुणवाला, सारक, स्रोतोंका शोधन करनेवाला, विष्टम्भको दूर करनेवाला और पचनमें हलका-लघु है।

---

## (१६) नवनीत।

**नाम**—( सं. ) नवनीत, हैयङ्गवीन; ( बं. ) नोनी; ( हिं. ) मक्खन, माखन, मसका; ( म. ) लोणी; ( गु. ) माखण; ( अ. ) जबद; ( अ. ) बटर।

**नवनीतगुणाः**—"नवनीतं पुनः सद्यस्कं लघु सुकुमारं मधुरं कषायमीषदम्लं शीतलं मेध्यं दीपनं हृद्यं संग्राहि पित्तानिलहरं वृष्यमविदाहि क्षयकासव्रणशोषाशोर्ऽर्दितापहं च। क्षीरोत्थितं पुनर्नवनीतमुत्कृष्टस्नेहमाधुर्यमतिशीतं सौकुमार्यकरं चक्षुष्यं संग्राहि रक्तपित्तनेत्ररोगहरं प्रसादनं च।" ( सु. सू. अ. ४५ )।

ताजा मक्खन मधुर, कषाय, कुछ अम्ल, शीतल, लघु, देहको सुकुमार करनेवाला, मेध्य, दीपन, हृद्य, संग्राहि, वृष्य, अविदाहि तथा पित्त, वात, धातुक्षय, खाँसी, व्रण, राजयक्ष्मा, अर्श और अर्दितको दूर करनेवाला है। दूधसे निकाला हुआ मक्खन उत्कृष्ट स्नेह और मधुरतावाला, अति शीत, सुकुमारता लानेवाला, नेत्रके लिये हितकर, प्रसादन तथा रक्तपित्त और नेत्ररोगको दूर करनेवाला है।

---

## (१७) घृत।

**नाम**—( सं. ) घृत, सर्पिस्; ( हिं., गु. ) घी; ( बं. ) घि; ( म. ) तूप; ( अ. ) सम्न; ( फा. ) रोगन जर्द।

**घृतगुणाः**—"शस्तं धीस्मृतिमेधाग्निबलायुःशुक्रचक्षुषाम्। बालवृद्धप्रजाकान्तिसौकुमार्यस्वरार्थिनाम्॥ क्षतक्षीणपरीसर्पशस्त्राग्निग्लपितात्मनाम्। वातपित्तविषोन्मादशोषालक्ष्मीज्वरापहम्॥ स्नेहानामुत्तमं शीतं वयसः स्थापनं परम्।" ( अ. सू. हृ. अ. ५ )। "घृतं पित्तानिलहरं रसशुक्रौजसां हितम्। निर्वापणं मृदुकरं स्वरवर्णप्रसादनम्॥" ( च. सू. अ. १३ )। "स्मृतिबुद्ध्यग्निशुक्रौजःकफमेदोविवर्धनम्। सर्वस्नेहोत्तमं सर्पिर्मधुरं रसपाकयोः॥" ( च. सू. अ. २७ )। "सर्पिर्मण्डस्तु मधुरः सरो योनिश्रोत्राक्षिशिरसां शूलघ्नो बस्तिनस्याक्षिपूरणेषूपदिश्यते।" ( सु. सू. अ. ४५ )।

**घृत** रस और विपाकमें मधुर, शीतवीर्य, सर्व स्नेहोंमें उत्तम, दाहशामक, उत्तम वयःस्थापन, मार्दवकर, स्वर और शरीरके वर्णको अच्छा करनेवाला, बुद्धि-स्मरणशक्ति-मेधा-जठराग्नि-बल-आयुष्य-शुक्र-दर्शन शक्ति-ओज-कफ और मेद–इनको बढ़ानेवाला, बालक-वृद्ध तथा सन्तान और सौकुमार्यकी इच्छा रखनेवालोंके लिये हितकर तथा वात-

पित्त-विष-उन्माद-शोष-अलक्ष्मी और जीर्णज्वरको दूर करनेवाला है। **घृतमण्ड** ( घृतके ऊपरका द्रवांश ) मधुर, सारक तथा योनि-कर्ण और सिरके शूलको दूर करने वाला है। बस्तिकर्म, नस्य और नेत्रपूरणमें घृतमण्डका उपयोग किया जाता है।

**वक्तव्य**—माता या धात्रीका दूध बालक सीधा स्तनसे ही सेवन करता है, उसमें बाह्य वायुस्थित धूलके कण और रोगोत्पादक जीवाणुओंका संसर्ग सर्वथा नहीं होता, इसलिये वह अधिक उत्तम होता है। उससे कुछ न्यून गुणवाला धारोष्ण दूध है। क्योंकि धारोष्ण दूधमें किसी प्रकारका विषम परिवर्तन नहीं होता, उसमें धूलिकण तथा जीवाणु प्रविष्ट नहीं होते, शरीरकी उष्णताके समान गरम होता है, इसलिये पचन-सुलभ होता है और दूधमें होनेवाले शरीरपोषक सर्व उपादान तथा जीवनीय द्रव्य ( विटामिन्स् ) शुद्ध और नैसर्गिक अवस्थामें मिलते हैं। धारोष्ण दूध भी स्वच्छ हाथोंसे स्वच्छ पात्रमें स्वस्थ प्राणीके स्वच्छ स्तनोंसे निकालकर स्वच्छ वस्त्रसे छानकर गरम-गरम पीना चाहिये। अन्यथा उसमें भी कुछ विकृति होनेकी संभावना है। जहाँ धारोष्ण दूध सुलभ हो वहाँ वही पीना चाहिये। धारोष्ण दूध न मिल सके तो अविकृत दूधको कंडे, लकड़ी या लकड़ीके कोयलोंकी निर्धूम मंद अग्निपर उबालकर पीना चाहिये। दूधको तेज अग्निपर और अधिक समय उबालनेसे उसके पोषक तत्त्व न्यून हो जाते हैं। दूध साधारण गरम हालतमें पीना चाहिये। यदि रोगीको दिन भर केवल दूधके पथ्यपर रखना हो तो दूधको एकबार उबाल आवे इतना गरम करके अंगीठीमें पानी गरम रहे इतनी अग्नि रखकर उस पर आधा पानी भरा हुआ बर्तन और उसपर दूधका बर्तन ढक कर रखना चाहिये। इससे दूध पीनेलायक गरम रहता है और गाढ़ा भी नहीं होने पाता।

मिट्टी, काच, पत्थर या स्टेनलेस स्टीलके पात्रमें दही जमाना और रखना चाहिये। दूधको गरम कर, साधारण गरम हो ऐसी हालतमें उसमें किंचित् अम्ल दहीका जामन दे कर दही तैयार करना चाहिये। दही अधिक समय पड़ा रहनेसे अत्यम्ल और

---

१ "लॅक्टिक अम्ल तैयार करनेवाले जीवाणुओंकी प्रतिक्रिया ( Reaction ) दूध पर होनेसे दही बनता है। ये जीवाणु दूधमें अभिषव ( Fermentation ) उत्पन्न करके दुग्धशर्कराका अधिकांश भाग लॅक्टिक अम्लमें परिवर्तित करते हैं। इस अम्लके कारण दूधके मेद और प्रोटीन जम जाते हैं और दही बनता है। पौष्टिकताकी दृष्टिसे दूधके सर्व उपादान दहीमें भी मिलते हैं। केवल दुग्धशर्कराके स्थानमें दुग्धाम्ल तथा दुग्धाम्लजनक जीवाणु होते हैं। ये दुग्धाम्लजनक जीवाणु अन्य जीवाणुओंका नाश करते हैं। यथाविधि दही सेवन करनेसे अन्नमें होनेवाले जीवाणु तथा उनका विष नष्ट हो जाता है। पचन-संस्थानके अनेक विकारोंमें दही बहुत गुणकारक होता है ( सुश्रुतसंहिताकी व्याख्यामें **डॉ. घाणेकरजीके** वक्तव्यसे संक्षेपमें उद्धृत )।

दुर्गन्धयुक्त हो जाता है। ऐसे दहीका उपयोग नहीं करना चाहिये। अतिसार, प्रवाहिका, विसूचिका, आन्त्रिक ज्वर आदि पचनसंस्थानके रोगोंमें दही और छाछ उत्तम पथ्य हैं।

खाद्य द्रव्योंमें मक्खन सबसे अधिक हलका पदार्थ है तथा उसका संपूर्ण पचन और शोषण आँतोंमें होता है। इसलिये क्षय, शरीरकृशता आदि रोगोंमें मक्खन बहुत उपकारी है।

---

## (१८) नख।

**नाम**—(सं.) नख, व्याघ्रनख; (हिं.) नख; (बं.) नखी; (म., गु.) नखला; (अ.) अज्फारुत्तिब; (फा.) नाखून परियाँ।

**वर्णन**—यह एक प्रकारका नखके सदृश सीपकी जातिके दरियाई जानवरका मुखके ऊपरका आवरण है, जो समुद्रके किनारे पर पाया जाता है। इसके दो भेद होते हैं—छोटा और बड़ा। छोटेको **नख** और बड़ेको **व्याघ्रनख** कहते हैं। यह गहरे भूरे रंगका तथा अनेक पटलोंसे बना हुआ होता है। इसको जलानेसे दुर्गन्ध आती है, परन्तु तैलके साथ पकानेसे तैल सुगन्धित होता है। चरकने प्रायोगिक धूमपानकी वर्तिके योगमें (सू. अ. ५. श्लो. २०), श्वयथुचिकित्सा (चि. अ. १६) में शैलेयकादि तैल और प्रदेहमें, महासुगन्धहस्ती नामक अगदके योगमें (चि. अ. २३), अमृतादि तैल (चि. अ. २८) में तथा वातरक्तचिकित्सा (चि. अ. २९) में शतपुष्पादितैलके योगमें अन्य द्रव्योंके साथ नखका प्रयोग करनेको लिखा है।

**गुण-कर्म**—सुश्रुते (सू. अ. ३८) एलादिगणे व्याघ्रनखं पठ्यते। "नखद्वयं ग्रहश्लेष्मवातास्रज्वरकुष्ठनुत्। लघूष्णं शुक्लं वर्ण्यं स्वादु व्रणविषापहम्॥" (भा. प्र.)। "नखः स्वादुष्णकटुको विषं हन्ति प्रयोजितः। कण्डूकुष्ठव्रणघ्नश्च भूतविद्रावणः परः॥"। (रा. नि.)।

नख मधुर, कटु, उष्णवीर्य, लघु, शुक्ल, वर्ण्य तथा ग्रह, कफ, वातरक्त, ज्वर, कुष्ठ, व्रण, विष और कण्डूको दूर करनेवाला है।

**यूनानी मत**—नख दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, शीतजन्य यकृत्-आमाशय और गर्भाशयके दर्दको दूर करनेवाला, यकृत्को शक्ति देनेवाला, अर्शोघ्न, अपस्मार और मूर्च्छाको दूर करने वाला तथा दोषोंको पेशाबके रास्तेसे निकालनेवाला है। इसकी धूनी लेना अपस्मार (मृगी) और अपतन्त्रक (हिस्टीरिया) में लाभप्रद है। मात्रा–३ माशा।

---

## ( १९ ) पारावत ।

**नाम**—( सं. ) पारावत, गृहकपोत; ( हिं. ) परेवा, कबूतर; ( बं. ) पायरा; ( गु. ) पारेवा, कबूतर; ( अं. ) पिजियन ऑर डव ( Pigeon or Dove )।

**वर्णन**—यह एक प्रसिद्ध पक्षी है ।

**गुण-कर्म**—"रक्तपित्तप्रशमनः कषायविशदोऽपि च । विपाके मधुरश्चापि गुरुः पारावतः स्मृतः ॥" ( सु. सू. अ. ४६ ) । "योषितः सततं यस्या गर्भवत्याः स्रवत्यसृक् । पारावतपुरीषं तां पाययेत्तण्डुलाम्बुना ॥" ( गदनिग्रह ) ।

परेवाका मांस कषाय, विपाकमें मधुर, गुरु, विशद और रक्तपित्तको दूर करनेवाला है । जिस गर्भवती स्त्रीको रक्तका अतिस्राव होता हो उसको परेवाकी शुष्क विष्ठा २–५ रत्ती चावल भिगोये हुए जल(तण्डुलोदक)के साथ देनेसे रक्तस्राव बंद होता है ।

---

## ( २० ) पित्त ।

**नाम**—( सं. ) पित्त, मायु; ( अ. ) सफरा; ( अं. ) बाइल ( Bile ) ।

**वर्णन**—पित्तकोषमें संचित कुछ पीले, लाल, भूरे या हरे रंगके द्रवको पित्त कहते हैं । इसका रस तिक्त, कुछ मधुर और प्रतिक्रिया क्षारीय होती है[1] ।

"महिषक्रोडमत्स्यानां छागस्य च शिखण्डिनः । कृष्णाहिरोहितानां च मार्जारस्य च मायुभिः ॥ प्रोक्तः पित्तगणः" ( र. चू. अ. ९ ) । "पित्तं पञ्चविधं मत्स्यगवाश्वनरबर्हिजम् ।" ( रसार्णव ५ पटल ) ।

**रसेन्द्रचूडामणिमें**—पित्तगणमें भैंसा, वराह ( जंगली सूअर ), छाग, मयूर, कृष्णसर्प, रोहू मछली और बिल्लीके पित्तका तथा **रसार्णवमें** मछली, गाय, घोड़ा, मनुष्य और मयूरके पित्तका उल्लेख मिलता है । **चरकमें** उलूक ( चि. अ. ९ ), गाय ( सू. अ. ३, चि. अ. ७-१४-२३- आदिमें ), शृगाल ( चि. अ. ९ ), मयूर ( चि. अ. २३ ), मत्स्य ( चि. अ. ३० ), रोहित ( चि. अ. २३ ) और वराह ( सू. अ. १४, चि. ३० ) के पित्तका उपयोग पाया जाता है । नेपाल, कुमाऊं, गढ़वाल आदि पहाड़ियोंके लोग न्युमोनियामें भाल्ल(रीछ)के पित्तका प्रयोग करते हैं । कई रसयोगोंको मत्स्य आदिके पित्तकी भावना दी जाती है । गोरोचन एक प्रकारका जमा हुआ पित्त ही है ।

पाश्चात्य चिकित्सामें शोधित वृष( बैलके ) पित्त ( Purified ox-bile. ) का औषधार्थ उपयोग किया जाता है । पित्त मृदुविरेचक, पित्तनिःसारक, जीवाणुनाशक, और मूत्रल है । पुरातन मलावरोध विशेषतः पित्तनिःसरणकी अल्पतासे उत्पन्न मलकाठिन्य, पाण्डुरोग और अन्त्रस्थ विषोंको नष्ट करनेके लिये इसका उपयोग किया जाता है ।

---

१ विशेष विवरण शरीरक्रियाविज्ञान अ. २३ में देखें ।

एक औंस मत्स्यपित्त जलमें मिलाकर बस्ति देनेसे मलावरोध दूर होता है।

गोह, नेवला, हाथी, हरिण, रीछ ( भालू ) और गाय इनमेंसे किसी एकके समभाग पित्तसे सिद्ध किया हुआ तेल पान और अभ्यङ्गसे अपस्मार (मृगी)को दूर करता है[1]। पुष्य नक्षत्रमें लिया हुआ कुत्तेके पित्तका अञ्जन करनेसे अपस्मार नष्ट होता है[2]।

---

## ( २१ ) प्रवाल ।

**नाम**—( सं. ) प्रवाल, विद्रुम; ( हिं. ) प्रवाल, मूँगा; ( बं. ) पला; ( म. ) पोंवळें; ( गु. ) परवाळा; ( अ. ) मर्जा ( प्रवालशाखा ), बुसुद ( प्रवालमूल ); ( फा. ) कामः, मर्जा, मर्गां; ( ले. ) कोरेलियम् रुब्रम् ( Corallium Rubrum )। ( अं. ) कोरल ( Coral )।

**वर्णन**—प्रवाल एक प्रकारका प्राणिज द्रव्य है। जो प्रवाल पके हुए बिम्बीफल ( कुँदरूके फल )के समान रक्तवर्ण, गोल, अवक्र ( टेढ़ा न हो ऐसा ), स्निग्ध ( स्पर्शमें चिकना ), व्रण ( छेद ) रहित तथा स्थूल ( मोटा ) हो और कसौटीके पत्थर पर घिसने पर अपना रंग न छोड़े वह उत्तम है। औषधके काममें ऐसा प्रवाल लेना चाहिये। जो प्रवाल सफेद या भूरे रंगका, रूक्षस्पर्श, छेदवाला, पोलवाला ( पोला ) और वजनमें हलका हो वह त्याज्य है[3]। प्रवालको मंगल ग्रहका रत्न माना जाता है।

**रासायनिक संगठन**—प्रवालमें कॅल्शियम् कार्बोनेट्, मेग्नेसिअम् कार्बोनेट् और अल्प प्रमाणमें लोह तथा सिकता होते हैं।

**गुण-कर्म**—"क्षयपित्तास्रकासघ्नं दीपनं पाचनं लघु । विषभूतादिशमनं विद्रुमं नेत्ररोगनुत् ॥" ( र. चू. १२ )। "प्रवालकं सरं शीतं क्षयकासत्रिदोषनुत्।" ( रा. नि. )। "प्रवालं मधुरं साम्लं कफपित्तादिदोषनुत्। वीर्यकान्तिकरं स्त्रीणां धृते मङ्गलदायकम् ॥" ( आ. प्र. अ. १३ )। "पिबेत्तथा तण्डुलधावनेन प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे।" ( च. चि. अ. २६ )।

---

१ "गोधानकुलनागानां पृषतर्क्षगवामपि । पित्तेषु सिद्धं तैलं च पानाभ्यङ्गेषु पूजितम् ॥" (सु. उ. अ. ६१)। २ "पुष्योद्धृतं शुनः पित्तमपस्मारघ्नमञ्जनात्।" ( च. चि. अ. ३१ )। २ "पक्वबिम्बीफलच्छायं वृत्तायतमवक्रकम् । स्निग्धमव्रणकं स्थूलं प्रवालं सप्तधा शुभम् ॥ पाण्डुरं धूसरं रूक्षं सव्रणं कोरकान्वितम् । निर्भारं च तथा सूक्ष्मं प्रवालं नेष्यतेऽष्टधा ॥" ( र. चू. अ. १२ )। "बालार्ककिरणारक्ता सागरसलिलोद्भवा लता याऽस्ति। न त्यजति निजरुचिं निकषे घृष्टाऽपि सा स्मृता जात्या ॥" ( आयुर्वेदप्रकाश )।

प्रवाल मधुर, किंचित् अम्ल, शीतवीर्य, सारक, लघु, त्रिदोषहर, वीर्य और कान्तिको बढ़ानेवाला, पाचन, दीपन और क्षय, पित्तविकार, रक्तविकार, विष, कास और नेत्ररोगको दूर करनेवाला है। प्रवालका सूक्ष्म चूर्ण (पिष्टी) चावल भिगोये हुए जलके साथ पीनेसे मूत्रकृच्छ्र दूर होता है।

**प्रवालभस्मगुणाः**—"प्रवालं सुमृतं क्षारं मधुरं लघु शीतलम्। दीपनं पाचनं चैव दृष्टिरोगनिषूदनम्॥ त्रिदोषशमनं बल्यं विशेषात् कफवातनुत्। क्षयकासहरं चैव रक्तपित्तप्रणाशनम्॥ स्वेदातिनिर्गमहरं रात्रिस्वेदहरं परम्। विषघ्नं भूतशमनं वीर्यवर्णविवर्धनम्॥" (र. त. २३ तरङ्ग)।

**प्रवालभस्म**—क्षारधर्मी, मधुर, शीतल, दीपन, पाचन, विषहर, बल्य, जीवाणुनाशक, वीर्यवर्धक, शरीरका वर्ण अच्छा करनेवाली तथा नेत्ररोग, क्षय, कास, रक्तपित्त, पसीना अधिक आना, रात्रिमें स्वेद आना और तीनों दोष, विशेष कर कफ और वात इनका नाश करनेवाली है।

**यूनानीमत**—प्रवालकी शाखा (शाखे मर्जां) और जड़ (बुसुद) दूसरे दर्जेमें शीत और रूक्ष, संग्राही, रूक्षण, रक्तस्तम्भन, हृदय और मस्तिष्कको बल देनेवाली तथा लेखन है। जीर्ण प्रतिश्याय, खाँसी, रक्तकास, रक्तार्श, रक्तातिसार, अन्त्रव्रण, हृत्स्पन्दन, प्लीहवृद्धि, अश्मरी, प्रमेह और प्रदरमें प्रवालसे लाभ होता है। इसका अंजन दृष्टिवर्धक तथा आँखकी फूली, नेत्रस्राव और नेत्रकण्डूको दूर करता है। व्रणस्थ दुष्ट मांसको नष्ट करने और व्रणको सुखानेके लिये इसका सूक्ष्म चूर्ण व्रणपर छिड़कते हैं। प्रवालकी भस्म या पिष्टी बनाकर उपयोग किया जाता है। **मात्रा**–१–३ रत्ती।

प्रवालको नीमूका रस मिलाये हुए गरम जलमें ३ घंटा भिगोकर जलसे धो लेनेसे उसकी शुद्धि होती है। शुद्ध प्रवालका सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण बना, उसको एक दिन नीमूके रसमें और पीछे ३–४ दिन अर्क गुलाबमें मर्दन करनेसे प्रवालकी पिष्टी बनती है। शुद्ध प्रवालके कपड़छन चूर्णको गायके दूध, अर्कक्षीर या ग्वारपाठेके रसमें मर्दन करके गजपुट देनेसे उसकी श्वेतवर्णकी भस्म बनती है। प्रवालकी पिष्टी सौम्य और भस्म तीक्ष्ण होती है। प्रवालभस्मको एक दिन अर्कगुलाबमें मर्दन करनेसे वह विशेष गुणकारक होती है।

---

## (२२) फादजहर हैवानी।

**नाम**—(अ.) फादजह्र हैवानी (प्राणिज प्रतिविष), (फा.) बादजह्र हैवानी; (बंबई) पेड्डुबझार; (अं.) बेझोर (Bezoar)।

**वर्णन**—यह एक प्रकारकी पथरी ( रोचना ) है जो पहाड़ी बकरी, हिरन, बारह-सिंगा, नीलगाय ( गवय ), ऊँट आदि चतुष्पाद प्राणियोंके आमाशय या आँतोंमें उत्पन्न होती है। यह आकृतिमें प्रायः गोल या लम्बगोल होती है, परंतु कभी चौड़ी-भी होती है। इसका रंग हरा-भूरा होता है। वजन १ से १५ तोला तक होता है। इसमें प्याजके छिलकोंकी तरह परत होते हैं। किसी-किसीके भीतर लकड़ीका टुकड़ा, ऊन या बेर-छुहारे आदिकी गुठली भी होती है। भारतवर्षमें यह आंध्र ( तैलंग ) और मैसूरमें तथा अरबस्तान और ईरानमें ऊपर लिखे हुए चतुष्पाद प्राणियोंसे मिलता है।

**गुण-कर्म-यूनानी मत**—फादजह्र हैवानी दूसरे दर्जेमें गरम और तीसरे दर्जेमें रूक्ष, सर्व प्रकारके विषोंका निवारण, वाजीकर, बलकारक, प्राकृत देहोष्मा-हृदय-मस्तिष्क-और यकृत्को बल देनेवाला, शोकका निवारण करनेवाला और प्रसन्नता तथा आनन्द उत्पन्न करनेवाला है। प्लेग और हैजेमें इससे लाभ होता है। प्लेगकी ग्रन्थि और जहरीले जानवरोंके दंशस्थान पर इसे जल या मद्यमें घिसकर लगाते हैं। **मात्रा**-१-२ रत्ती। अधिक मात्रामें खानेसे शरीरमें जलन होती है और कभी-कभी दस्तमें खून आने लगता है। **निवारण**-शीतल द्रव्य।

---

## ( २३ ) भूनाग ( केंचुआ )।

**नाम**—( सं. ) भूनाग, गण्डूपद; ( हिं. ) केंचुआ; केंचवा; ( म. ) गांडवळ; ( बं.) केंचा; ( गु. ) अणशळिया, अळशियुं; ( अ. ) खरातीन; ( फा. ) किर्मे जमीं; ( अं. ) अर्थ वर्म ( Earth-Worm )।

**वर्णन**—यह वर्षा ऋतुमें होनेवाला, पेटके बल चलनेवाला, एक वित्ता या उससे कम लंबा और लाल रंगका कीड़ा है।

**गुण-कर्म-यूनानी मत**— केंचुआ पहले दर्जेमें गरम और तर, मूत्रल, अश्मरीघ्न, वाजीकर और श्वयथुविलयन है। ९ मासे केंचुएके चूर्णका फांट पीनेसे पेशाब जारी होता है। केंचुएका चूर्ण मांसरसके साथ खिलानेसे वृष्य है । इसके चूर्णका तिला ( पतला लेप ) शिश्नके शैथिल्यको दूर करता है। मात्रा—१-३ माशा।

केंचुएको हलदीके क्वाथसे धो, उसको मिट्टी-विष्ठा आदिसे साफ कर, सुखाकर उप-योगमें लेना चाहिये। केंचुएसे सत्त्वपातन करके ताम्र निकालनेकी कई विधियाँ रसशास्त्रमें वर्णित हैं। इस ताम्रको परम विषहर बताया है । **चरकने** राजयक्ष्मामें केंचुएको आहारके रूपमें देनेको लिखा है ( भृष्टान्मत्स्यान्त्रशब्देन दद्याद्गण्डूपदानपि )।

---

## ( २४ ) मज्जा ।

**नाम—( सं. )** मज्जा; ( अ. ) रेड् बोन् मेरो ( Red Bone Marrow )

**वर्णन**—अस्थियोंके मध्यभागमें रहे हुए स्नेहको **मज्जा** कहते हैं । वह दो प्रकारकी होती है-( १ ) पीली और ( २ ) लाल । नलकास्थियोंके भीतर पीले रंगकी तथा इतर अस्थियोंमें और नलकास्थियोंके छेड़के भागमें रक्तवर्णकी मज्जा होती है[१] ।

**गुण-कर्म**—"बलशुक्ररसश्लेष्ममेदोमज्जाविवर्धनः । मज्जा विशेषतोऽस्थ्नां च बलकृत् स्नेहने हितः ॥" ( च. सू. अ. १३ ) ।

मज्जा बल-शुक्र-वीर्य-रस-कफ-मेद और मज्जाको वढ़ानेवाली, स्नेहन और विशेष करके अस्थियोंको बल देनेवाली है ।

दुर्बल बच्चोंके पाण्डुरोग( रक्ताल्पता ) और फक्करोग ( रिकेटस्—Rickets )में तथा रक्तगत श्वेताणुओंकी वृद्धि ( Leukemia )में मज्जाके सेवनसे लाभ होता है ।

---

## ( २५ ) मधु ।

**नाम—( सं. )** मधु, क्षौद्र, माक्षिक, सारघ; **( हिं. )** मध, शहद( त ); **( बं. )** मधु; **( म., गु. )** मध; **( सिं. )** माखी; **( अ. )** अस्ल; **( फा. )** शहद, अंगबीन; **( ले. )** मेल ( Mel ); **( अं. )** हनी ( Honey ) ।

**वर्णन**—यह एक प्रसिद्ध मीठा पदार्थ है, जिसको अनेक प्रकारकी मधुमक्खियाँ अनेक प्रकारके फूलोंके मकरन्दसे संग्रह करके अपने छत्तोंमें रखती हैं । इसके छत्तेमेंसे शहदको निचोड़नेके बाद उस छत्तेको पानीमें पकाकर छान लेनेसे मोम प्राप्त होता है । **मोम**को ( सं. ) मधूच्छिष्ट, सिक्थ( क ); ( हिं., फा; ) मोम; ( म. ) मेण; ( गु ) मीण; ( अ. ) शमूअ; ( अं. ) वेक्स ( Wax ) कहते हैं ।

**शोधनविधि**—एक जल भरे हुए पात्रके बीचमें शहद भरा हुआ पात्र रखकर जलको उतना गरम करें कि शहद पतला हो जाय । बाद नीचे उतार, ऊपरका गाढ़ा भाग चम्मचसे निकालकर ऊनी कपड़े ( फ्लानेल ) से छाननेसे मधु साफ हो जाता है । हिमालयकी पहाड़ियोंका मधु सफेद रंगका होता है । अन्यत्र पिलाई या ललाई लिये श्वेत वर्णका होता है। मधु पुराना होनेपर दानेदार और कभी–कभी मिश्रीके समान हो जाता है । उसको **मधुशर्करा** कहते हैं । मधुके स्वाद और गन्धपरसे किन पुष्पोंसे वह मधु संगृहीत हुआ है उसका अनुमान हो सकता है । मक्खी पर वह उसमें डूब जावे उतना मधु गेरने पर यदि थोड़ी देर बाद वह उसमेंसे जीती बाहर निकल आवे तो उस मधुको सच्चा और मक्खी मर जाय तो उस मधुको कृत्रिम समझना चाहिये ।

---

१ विशेष विवरण **शरीरक्रियाविज्ञान** अ. २६ में देखें ।

**मधुगुणाः**—"मधु तु मधुरं कषायानुरसं रूक्षमनग्निदीपनं वर्ण्यं स्वर्यं लघु सुकुमारं लेखनं हृद्यं वाजीकरणं शोधनं रोपणं चक्षुष्यं प्रसादनं सूक्ष्ममार्गानुसारि पित्तश्लेष्ममेदोमेहश्वासकासातिसारच्छर्दितृष्णाहिक्काप्रशमनं ह्लादि त्रिदोषशमनं च । तल्लघुत्वात् कफघ्नं, पैच्छिल्यान्माधुर्यात् कषायभावाच्च वातपित्तघ्नम् । बृंहणीयं मधु नवं नातिश्लेष्महरं सरम् । मेदःस्थौल्यापहं ग्राहि पुराणमतिलेखनम् ॥ दोषत्रयापहं पक्वमाममम्लं त्रिदोषकृत् । तद्युक्तं विविधैर्योगैर्निहन्यादामयान् बहून् ॥ नानाद्रव्यात्मकत्वाच्च योगवाहि परं मधु ॥" (सु. सू. अ. ४५)। "कषायानुरसं रूक्षं शीतलं मधुरं मधु । दीपनं लेखनं बल्यं व्रणरोपणमुत्तमम् ॥ सन्धानं लघु चक्षुष्यं स्वर्यं हृद्यं त्रिदोषनुत् ॥ छर्दिहिक्काविषश्वासकासशोषातिसारजित् । रक्तपित्तहरं ग्राहि कृमितृष्मोहहृत् परम् ॥" (ध. नि.)। "वर्ण्यं मेधाकरं वृष्यं विशदं रोचनं हरेत् । कुष्ठार्शःकासपित्तास्रकफमेहक्लमक्रिमीन् ॥ मेदस्तृष्णावमिश्वासहिक्कातीसारविड्ग्रहान् । दाहक्षतक्षयांस्तत्तु योगवाह्यल्पवातलम् ॥ नवं मधु भवेत् पुष्ट्यै नातिश्लेष्महरं सरम् । पुराणं ग्राहकं रूक्षं मेदोघ्नमतिलेखनम् ॥ मधुनः शर्करायाश्च गुडस्यापि विशेषतः । एकसंवत्सरेऽतीते पुराणत्वं स्मृतं बुधैः ॥" (भा. प्र.)। "मधुशर्करा पुनश्छर्द्यतिसारहरी रूक्षा छेदनी प्रसादनी कषायमधुरा मधुरविपाका च ।" (सु. सू. अ. ४५)।

मधु मधुर, कषायानुरस, रूक्ष, लघु, शीतल, दीपन, लेखन, बल्य, सन्धान, चक्षुष्य, स्वर( आवाज )के लिये हितकर, हृद्य, वाजीकर, शोधन, रोपण, प्रसादन, शरीरके सूक्ष्म मार्गोंतक पहुँचनेवाला, मेधाकर, विशद, रोचन, त्रिदोषहर, परम योगवाही तथा मेदोरोग, प्रमेह, हिक्का, श्वास, कास, अतिसार, वमन, तृषा, शोष, रक्तपित्त, कृमि, तृष्णा, मूर्च्छा, क्लम, दाह और क्षतको दूर करनेवाला है। नया मधु बृंहण, सारक और कुछ कफहर तथा पुराना मधु ग्राहि, रूक्ष, मेद और स्थूलताको दूर करनेवाला तथा अति लेखन है। शहद, शर्करा और गुड़ एक साल रखे रहनेपर **पुराने** माने जाते हैं। **मधुशर्करा** मधुर, कषाय, मधुरविपाक, रूक्ष, छेदन, प्रसादन तथा वमन और अतिसारको दूर करनेवाली है।

**यूनानी मत**—ताजा शहद पहले दर्जेमें गरम और दूसरे दर्जेमें रूक्ष है। पुराना शहद तीसरे दर्जेमें गरम और दूसरेमें खुश्क है। शहद कोथप्रतिबन्धक, शोथपाचनविलयन, बल्य तथा कफनिःसारक है। यह आहारपाचनमें सहायता करता, रक्तमें मीठे घटकोंकी वृद्धि करता, मलावरोधनिवारण करता और कफज व्याधियोंमें लाभ करता है। औषधियोंको कोथ( सड़ने )से बचाने, उनका स्वाद रुचिकर बनाने तथा उनकी शक्ति स्थिर रखनेके लिये अवलेह, मुरब्बे आदि बनानेमें मधु प्रयुक्त होता है। बल्य और वाजीकरणके लिये इसे दूधमें मिलाकर पिलाते हैं। दुष्ट एवं प्रकोथयुक्त

व्रणोंको शुद्ध करने और फोड़े-फुन्सियोंको पकाकर फोड़नेके लिये इसे लगाते हैं। दृष्टिप्रसादनके लिये इसे नेत्रमें लगाते हैं। **मात्रा**—२-४ तोला।

**सिक्थकगुणाः**—"सिक्थकं स्निग्धमधुरं भूतघ्नं भग्नसन्धिकृत्। हन्ति वीसर्पकण्ड्वामान् व्रणरोपणमुत्तमम् ॥" (ध. नि.)। "सिक्थकं शोथहृत् स्वादु कुष्ठवातार्तिजिन्मृदु। कटु स्निग्धं च लेपेन स्फुटिताङ्गविरोपणम् ॥" (रा. नि.)।

मोम मधुर, कटु, स्निग्ध, मृदु, भूतघ्न, व्रणरोपण, फटे हुए अङ्गका रोपण करनेवाला, भग्न अस्थिका संधान करनेवाला तथा शोथ-विसर्प-कण्डू आदिको मिटानेवाला है।

**यूनानी मत**—मोम कठिन शोथको विलीन और मृदु करनेवाला, वेदनास्थापन और व्रणरोपण है। शुष्ककास, स्वरभंग और छातीके दर्दमें इसे खिलाते हैं। मोमको अधिकतया मलहमोंमें प्रयुक्त करते हैं। **मात्रा**—४-८ रत्ती।

---

## (२६) मयूर।

**वर्णन**—मयूर एक प्रसिद्ध पक्षी है। उसको भाषा( हिं., म., गु. )में **मोर** कहते है। मयूरके पक्ष ( मोरपंख ), पादनाल और मांसका उपयोग होता है। ऊर्ध्वजत्रुरोगाधिकारमें **मयूराद्यघृत** प्रसिद्ध योग है। रसशास्त्रमें मयूरपिच्छको जला कर उससे ताम्र निकालनेका विधान लिखा हुआ है।

**उपयोग**—"मयूरपक्षं निर्दह्य तद्भस्म मधुमिश्रितम्। लीढा निवारयत्याशु छर्दिं सोपद्रवामपि ॥" (यो. र. वमनाधिकार)। "शिखिपिच्छभस्मकृष्णाचूर्णं मधुमिश्रितं मुहुर्लीढम्। हिक्कां हरति प्रबलां श्वासं चैवातिदुस्तरं छर्दिम् ॥" (यो. र. हिक्काधिकार)। "मयूरपादनालं वा×××दग्ध्वा क्षौद्रघृतान्वितम्। चूर्णं लिहअयेत् कासं हिक्कां श्वासं च दारुणम् ॥" (च. चि. अ. १)।

मोरपंखको जलाकर बनाई हुई भस्म-मसी शहदके साथ मिलाकर चाटनेसे उपद्रवयुक्त उलटी अच्छी होती है। मयूरपिच्छभस्म और पीपलके चूर्णको साथ मिलाकर शहदके साथ चाटनेसे हिक्का, श्वास और वमन दूर होता है। मोरके पादका नाल जला कर शहदके साथ चाटनेसे कास, हिक्का और श्वास निवृत्त होता है। मात्रा-२-५ रत्ती।

---

## (२७) मांस।

**नाम**—(सं.) मांस, आमिष; (अ.) लहम; (फा.) गोश्त; (अं.) मीट (Meat)।

**वर्णन**—मांस शरीरका एक प्रसिद्ध धातु है[१]।

**गुण-कर्म**—"तस्मान्मांसमाप्याय्यते मांसेन भूयस्तरमन्येभ्यः शरीरधातुभ्यः।" (च. शा. अ. ६)। "मांसं बृंहणीयानां" (च. सू. अ. २७)। "शरीरबृंहणे नान्यत् खाद्यं मांसाद्विशिष्यते।" (च. सू. अ. २७)। "××अशनं दद्या-

१ मांसका विशेष विवरण शरीरक्रियाविज्ञान अ. २२ में देखें।

न्मांसरसेन च । बलं ह्यलं निग्रहाय दोषाणां बलकृच्च तत् ॥" ( च. चि. ३. ) "शुष्यतां क्षीणमांसानां कल्पितानि विधानवित् । दद्यान्मांसादमांसानि बृंहणानि विशेषतः ॥ मांसेनोपचिताङ्गानां मांसं मांसकरं परम् ॥" ( च. चि. अ. ८ )। "सर्वप्राणिनां सर्वशरीरेभ्यः प्रधानतमा भवन्ति यकृत्प्रदेशवर्तिनस्तानाददीत । प्रधानालाभे मध्यमवयस्कं सद्यस्कमक्लिष्टमुपादेयं मांसमिति ।" ( सु. सू. अ. ४६ )।

मांससे मांसकी वृद्धि होती है, इसलिये जब मांसका क्षय हुआ हो तब मांस देना चाहिये । शरीरको पुष्ट करनेके लिये मांससे बढ़कर अन्य आहार नहीं है । ज्वरवालेको मांसरस देना चाहिये, क्योंकि वह उत्तम बलकारक है और शरीरबल रोगके बलको दूर करनेमें समर्थ है । राजयक्ष्मावालेको मांस खानेवाले प्राणियोंका मांस खिलाना चाहिये। क्योंकि उनका मांस मांससे पुष्ट हुआ होता है, अतः वह अधिक बृंहण होता है। सर्व प्राणियोंके शरीरमें यकृत्का मांस प्रधानतम-अति उत्तम होता है, अतः वह देना चाहिये । यदि यकृत्का मांस पर्याप्त प्रमाणमें न मिले तो मध्यम वयके और नीरोग प्राणीके अन्य अवयवोंका ताजा मांस देना चाहिये ।

मांसयोनि प्राणियोंके वर्ग, भिन्न भिन्न प्राणियोंके मांसके गुण, शरीरावयव और स्त्री-पुरुष जातिभेदसे मांसके गुण आदि अन्य ज्ञातव्य विषय चरक सूत्रस्थान अ. २७ तथा सुश्रुत सू. ४६ में देखें ।

---

## ( २८ ) मुक्ता ।

**नाम**—(सं.) मुक्ता, मौक्तिक, शुक्तिज; ( बं. ) मुक्ता; ( हिं., म., गु. ) मोती; (अ. ) लूलू; ( फा. ) मरवारीद; ( अं. ) पर्ल ( Pearl ) ।

**उत्पत्तिस्थान**—फारस( ईरान )की खाड़ी, लंका ( सीलोन ) तथा सौराष्ट्रमें जामनगर ।

**वर्णन**—यह एक प्रसिद्ध महारत्न है जो एक प्रकारकी सीपमें उत्पन्न होता है । जो मोती श्वेतवर्ण, पानीदार, वजनदार, गोल, बड़ा, स्निग्धस्पर्श, अनविंध और छिद्ररहित हो उसको औषधके काममें लेना चाहिये ।

**गुण-कर्म**—"मौक्तिकं सुमधुरं सुशीतलं दृष्टिरोगशमनं विषापहम् । राजयक्ष्मपरिकोपनाशनं क्षीणवीर्यबलपुष्टिवर्धनम् ॥" ( रा. नि. ) । "कफपित्तक्षयध्वंसिकासश्वासाग्निमान्द्यनुत् । पुष्टिदं वृष्यमायुष्यं दाहघ्नं मौक्तिकं मतम् ॥" ( र. चू. अ. १२ ) ।

मोती मधुर, शीतवीर्य, आयुष्य, वाजीकर, बलवर्धक, पुष्टिकारक तथा कफ, पित्त, क्षय, कास, अग्निमान्द्य, नेत्ररोग, विष और दाहका नाश करनेवाला है ।

**यूनानी मत**—मोती दूसरे दर्जेमें शीत और रूक्ष, संग्राही, रक्तस्तम्भन, चक्षुष्य तथा हृदय और मस्तिष्कको बल देनेवाला है। हृदय-मस्तिष्क-आमाशय-यकृत् और दृष्टिका दौर्बल्य, उन्माद, हृत्स्पंदन, शुक्रप्रमेह, श्वेत और रक्तप्रदर, रक्तातिसार, रक्तार्श, राजयक्ष्मा और उरःक्षतमें मोतीका उपयोग किया जाता है।

मोतीको नीबूका रस मिलाये हुए गरम जलसे धो, कपड़ेसे पोंछ, सूक्ष्म कपड़छन चूर्ण बना, एक दिन नीबूके रस और ३-४ दिन अर्क गुलावमें मर्दन करके पिष्टी बना ले या एक हलका पुट देकर भस्म बना लेवे। मात्रा १-४ रत्ती।

---

## ( २९ ) मुक्ताशुक्ति ।

**नाम**—( सं. ) शुक्ति, मुक्ताशुक्ति, मुक्तामाता; ( हिं. ) मोतीकी सीप; ( म. ) मोत्याची शिंपी; ( गु. ) मोतीनी छीप; ( फा. ) सदफ मरवारीद; ( अं. ) मदर् ऑफ् पर्ल ( Mother of Pearl )

**वर्णन**—जिस सीपमें मोती उत्पन्न होते हैं उसको **मुक्ताशुक्ति** कहते हैं। जो सीप बड़ी, अंदरकी बाजू चमकदार, श्वेतवर्ण और छिद्ररहित हो उसको औषधके काममें लेना चाहिये।

**गुण-कर्म और उपयोग**-मोतीकी सीपके गुण-कर्म मोतीके समान हैं। परंतु सीप गुण-कर्ममें मोतीसे कम दर्जेकी है। मुक्ताके अभावमें उसके प्रतिनिधिरूपमें इसका व्यवहार करते हैं। मुक्ताशुक्तिकी शुद्धि तथा पिष्टि या भस्म बनानेकी विधि मुक्ताके समान ही है।

---

## ( ३० ) मुष्क और शुक्र ।

**मुष्क नाम**—( सं. ) मुष्क, अण्ड, वृषण; ( अं. ) टेस्टिकल ( Testicle )।

**शुक्र नाम**—शुक्र, वीर्य, रेतस्; ( अ. ) मनी; (अं.) सीमेन् ( Semen )।

**वर्णन**—प्राणियोंके शरीरमें शिश्नके नीचे अण्डकोशमें दो वृषण होते हैं, जिनका प्रधान कार्य शुक्र धातुको उत्पन्न करना है।[1]

**गुण-कर्म**—"शुक्रं ( आप्याय्यते ) शुक्रेण" ( च. शा. अ. ६ )। "घृतं माषान् सबस्ताण्डान् साधयेन्माहिषे रसे। भर्जयेत्तं रसं पूतं फलाम्लं नवसर्पिषि॥ ईषत्सलवणं युक्तं धान्यजीरकनागरैः। एष वृष्यश्च बल्यश्च बृंहणश्च रसोत्तमः॥" (च. चि. अ. २ पा. १)। "चटकानां सहंसानां दक्षाणां शिखिनां तथा। शिशुमारस्य नक्रस्य भिषक् शुक्राणि संहरेत्॥" ( च. चि. अ. २ पा. २ )। "शुक्राणि इति यद्यप्युक्तं तथाऽपि चटकादिशुक्रग्रहणस्याशक्यत्वात् समानगुणानि तदण्डान्यपीह

[1] शुक्र और वृषणका विशेष विवरण शरीरक्रियाविज्ञानके २७ वें अध्यायमें देखें।

गृह्यन्ते।" (चक्रपाणिदत्त)। "पिप्पलीलवणोपेते बस्ताण्डे घृतसाधिते। शिशुमारस्य वा खादेत्ते हि वाजीकरे भृशम् ॥ कुलीरकूर्मनक्राणामण्डान्येवं तु भक्षयेत्। महिषर्षभबस्तानां पिबेच्छुक्राणि वा नरः॥" (सु. चि. अ. २६)।

शुक्रके (या शुक्रोत्पादक वृषणके) भक्षणसे शुक्रकी वृद्धि होती है। अतः शुक्रके क्षयमें अथवा वाजीकरणके लिये शुक्र या वृषण खिलाना चाहिये। जिस प्राणिका शुक्र मिलना कठिन हो उसके अण्ड (अण्डे या वृषण) का उपयोग करना चाहिये ('अण्ड' शब्दका अंडे और वृषण दोनों अर्थ होते हैं जिसके अंडे या वृषण जो मिल सकें उनका उपयोग किया जा सकता है)।

---

## (३१) मूत्र।

**नाम**—(सं.) मूत्र, प्रस्राव; (हिं.) मूत, पेशाब; (बं.) प्रस्राव; (म.) मूत, लघ्वी; (गु.) पेशाब, मूतर; (अ.) बो(बौ)ल; (अं.) युरिन (urine)।

**वर्णन**—आयुर्वेदीय चिकित्सामें मुख्यतया गाय, बकरी, भेड़, भैंस, हाथी, ऊँट, घोड़ा और गधा-इन आठ प्राणियोंके मूत्रोंका प्रयोग होता है। इनमेंसे गाय, बकरी, भेड़ और भैंस-इनकी स्त्रीका तथा हाथी, ऊँट, घोड़ा और गधा-इनके नरका मूत्र प्रयोगमें लिया जाता है[१]।

**गुण-कर्म**—**मूत्रसामान्यगुणाः**—"उष्णं तीक्ष्णमथो रूक्षं कटुकं लवणान्वितम्। मूत्रमुत्सादने युक्तं युक्तमालेपनेषु च ॥ युक्तमास्थापने मूत्रं युक्तं चापि विरेचने। स्वेदेष्वपि च तद्युक्तमानाहेष्वगदेषु च ॥ उदरेष्वथ चार्शःसु गुल्मकुष्ठकिलासिषु। तद्युक्तमुपनाहेषु परिषेके तथैव च ॥ दीपनीयं विषघ्नं च क्रिमिघ्नं चोपदिश्यते। पाण्डुरोगोपसृष्टानामुत्तमं शर्म चोच्यते ॥ श्लेष्माणं शमयेत् पीतं मारुतं चानुलोमयेत्। कर्षेत् पित्तमधोभागमित्यस्मिन् गुणसंग्रहः॥ सामान्येन" (च. सू. अ. १)। "मूत्राणि गोमहिष्यजाविगजहयखरोष्ट्राणां तीक्ष्णान्युष्णानि कटूनि लवणान्युत्सादनानि लघूनि शोधनानि कफवातकृमिमेदोविषोदरगुल्मार्शःकुष्ठशोफारोचकपाण्डुरोगहराणि हृद्यानि दीपनीयानि च सामान्यतः। तत् सर्वं कटुतीक्ष्णोष्णं लवणानुरसं लघु। शोधनं कफवातघ्नं कृमिमेदोविषापहम् ॥ अर्शोजठरगुल्मघ्नं शोफारोचकनाशनम्। पाण्डुरोगहरं भेदि हृद्यं दीपनपाचनम् ॥" (सु. सू. अ.४५)। **मूत्रविशेषगुणाः**—"अविमूत्रं सतिक्तं स्यात् स्निग्धं पित्ताविरोधि च। आजं कषायमधुरं पथ्यं दोषान्निहन्ति च ॥ गव्यं समधुरं किञ्चिद्दोषघ्नं कृमिकुष्ठनुत् ॥ कण्डूं च शमयेत् पीतं सम्यग्दोषोदरे हितम् ॥ अर्शःशोफोदरघ्नं तु सक्षारं माहिषं सरम् ॥ हास्तिकं लवणं मूत्रं हितं तु कृमिकुष्ठिनाम् ॥ प्रशस्तं बद्धविण्मूत्रविषश्लेष्मामयार्शसाम्।

---

१ विशेष विवरण शरीरक्रियाविज्ञान अ. ३२ में देखें।

सतिक्तं श्वासकासघ्नमर्शोघ्नं चौष्ट्रमुच्यते ॥ वाजिनां तिक्तकटुकं कुष्ठव्रणविषापहम् । खरमूत्रमपस्मारोन्मादग्रहविषापहम् ॥" (च. सू. अ. १)। "गोमूत्रं कटु तीक्ष्णोष्णं पित्तलं कफवातनुत् । शूलगुल्मोदरानाहविरेकास्थापनादिषु ॥ मूत्रप्रयोगसाध्येषु गव्यं मूत्रं प्रयोजयेत् । दुर्नामोदरशूलेषु कुष्ठमेहाविशुद्धिषु ॥ आनाहगुल्मशोफेषु पाण्डुरोगे च माहिषम् । कासश्वासापहं शोथकामला-पाण्डुरोगनुत् ॥ कटुतिक्तान्वितं छागमीषन्मारुतकोपनम् । कासप्लीहोदरश्वास-शोषवर्चोग्रहे हितम् ॥ सक्षारं तिक्तकटुकमुष्णं वातघ्नमाविकम् । दीपनं कटु तीक्ष्णोष्णं वातचेतोविकारनुत् ॥ आश्वं कफहरं मूत्रं कृमिदद्रुषु शस्यते । सतिक्तं लवणं भेदि वातघ्नं पित्तकोपनम् ॥ तीक्ष्णं क्षारे किलासे च नागं मूत्रं प्रयो-जयेत् । गरचेतोविकारघ्नं तीक्ष्णं ग्रहणिरोगनुत् ॥ दीपनं गार्दभं मूत्रं कृमिवातकफा-पहम् । शोफकुष्ठोदरोन्मादमारुतक्रिमिनाशनम् । अर्शोघ्नं कारभं मूत्रं, मानुषं च विषापहम् ।" (सु. सू. अ. ४५)।

गाय, भैंस, बकरी, भेड़, हाथी, घोड़ा, गधा और ऊँट इनका मूत्र **सामान्यतः** कटु, लवणानुरस, अरूक्ष, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, लघु, शोधन, विरेचन, भेदन, हृद्य, दीपन, पाचन, विषघ्न तथा कफ, वात, उदररोग, अर्श, गुल्म, कुष्ठ, किलास, पाडुरोग, कृमिरोग, मेदोज रोग, शोथ, आनाह और अरुचिका नाश करनेवाला है। मूत्र पीनेसे कफका शमन करता है, वायुका अनुलोमन करता है और पित्तको अधोमार्गसे निकाल देता है। उत्सादन, आलेपन, आस्थापन बस्ति, स्वेदनक्रिया, अगद (विषहर योग), उपनाह और परिषेकमें मूत्रका प्रयोग किया जाता है। **विशेषतः गायका मूत्र** कटु, किंचित् मधुर, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, पित्तकर तथा कफ, वात, कृमि, कुष्ठ, शूल, गुल्म, उदर, आनाह और कण्डूको दूर करने वाला है। मूत्रप्रयोगसाध्य विरेचन आदिमें गायके मूत्रका प्रयोग करना चाहिये। भैंसका मूत्र किंचित् क्षार, सर तथा अर्श, शोथ, उदर, शूल, कुष्ठ, आनाह, गुल्म, पाण्डुरोग और प्रमेहको दूर करनेवाला है। **बकरी-का मूत्र** कषाय, मधुर, कटु, तिक्त, पथ्य, कुछ वातप्रकोप करनेवाला, दोषहर तथा कास, प्लीहोदर, श्वास, राजयक्ष्मा और मलावरोधमें हितकर है। **भेड़का मूत्र** तिक्त, कटु, कुछ क्षारधर्मा, उष्णवीर्य, स्निग्ध, पित्तमें अविरोधि, तथा वातहर है। **घोड़ेका मूत्र** तिक्त, कटु, तीक्ष्ण, उष्णवीर्य, दीपन तथा वात, कफ, मानसरोग, कृमि, दद्रु, कुष्ठ, व्रण और विषको दूर करनेवाला है। **हाथीका मूत्र** लवण, कुछ तिक्त, भेदन, तीक्ष्ण, वातघ्न, पित्तप्रकोपक, क्षार बनानेमें उपयुक्त तथा कृमि, कुष्ठ, मल-मूत्रका अवरोध, विष, कफके रोग, अर्श और किलासको दूर करनेवाला है। **गधेका मूत्र** दीपन तथा गर (कृत्रिमविष), अपस्मार, उन्माद, ग्रहणीरोग, कृमि और विषका नाश करनेवाला है। **ऊँटका मूत्र** कुछ तिक्त तथा श्वास, कास, अर्श, शोथ, कुष्ठ, उन्माद, वातरोग और कृमिका नाश करनेवाला है। मनुष्यका मूत्र विषहर है।

**नव्यमत**—गोमूत्र यदि स्वस्थ मनुष्यको दिया जाय तो उससे मूत्रका प्रमाण बढ़ता है; परंतु मूत्रपिण्ड ( Kidney ) विकृत हो तो मूत्रका प्रमाण बहुत बढ़ता है। मात्रा–२॥ तोला खालीपेट देना चाहिये। ऐसा कुछ दिन देनेसे धमनियाँ विकसित होती हैं और रक्तका दबाव ( Blood Pressure ) कम होता है। रक्तका दबाव कम होनेसे मूत्रका प्रमाण और भी बढ़ता है। २४ घंटेमें ६०–८० औंस पर्यन्त बढ़ता है और शोथ-उदर आदि लक्षण कम होते हैं। गोमूत्रसे भूख बढ़ती है और रोगीकी जीभ सुधरती है। केवल गोमूत्र देनेसे दस्त १–२ से अधिक नहीं होते, इसलिये उसके साथ घणसर ( नागदन्तीमूल ) देना पड़ता है। यह मूत्रपिण्डके जीर्णशोथ ( Chronic Nephritis ) के लिये उत्तम औषध है। गोमूत्रकी जितनी प्रशंसा की जाय उतनी थोड़ी ही है ( **डॉ. वा. ग. देसाई** कृत **भारतीय रसशास्त्र** )।

गोमूत्रको २–३ वार ऊनी कपड़ेसे छानकर मृत्पात्र या लोहपात्रमें वह गाढ़ा हो जाय इतना पकावे। पीछे नीचे उतार, धूपमें शुष्क हो जाय इतना सुखाकर शीशीमें भर ले। **मात्रा**–१–३ माशा पाँच तोला जलमें मिलाकर देवे। **गुण-कर्म**–गोमूत्रके समान।

जंगलमें चरनेवाली बकरीके २॥ तोले मूत्रमें कालीजीरी ( अरण्यजीरक ) ३ माशा पीस, कपड़ेसे छानकर पिलानेसे राजयक्ष्मामें लाभ होता है।

---

## ( ३२ ) मूषक।

**नाम**—( सं. ) मूष(षि)क, आखु; ( हिं. ) चूहा, मूसा; ( बं. ) इंदूर; ( म. ) उंदीर; ( गु ) उंदर; ( अ. ) फार; ( अं. ) रेट ( Rat )।

**वर्णन**—चूहा एक प्रसिद्ध बिलेशय प्राणी है।

**उपयुक्त अंग**—मांस, वसा और शुष्क मल।

**उपयोग**—"मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदभ्रंशे प्रलेपयेत् । स्विन्नमूषकमांसेन अथवा स्वेदयेद्गुदम् ॥ मूषकान् दशमूलानि गृह्णीयादुभयं समम् । तयोः क्वाथेन कल्केन पचेत्तैलं यथोदितम् ॥ अभ्यङ्गात्तस्य तैलस्य गुदभ्रंशो विनश्यति । विनश्यन्ति तथा तेन गुदशूलभगन्दराः ॥" (यो र.)। "आखोः पुरीषं पयसा विलीय वह्नेर्बलादेकमहद्व्यहं वा। स्त्रियस्त्र्यहं वा प्रदरासनद्याः प्रसह्य पारं परमाप्नुवन्ति ॥" ( यो. र. )।

गुदभ्रंशमें चूहेकी चर्बीका लेप करने तथा चूहेके मांसको गरम करके बाँधनेसे लाभ होता है। चूहेके मांस और दशमूलका क्वाथ २५६ तोला, तिलका तेल ६४ तोला तथा ८ तोले चूहेके मांस और ८ तोले दशमूलके कल्कको तैलपाकविधिसे एकत्र पका-

कर सिद्ध किये हुए तेलके लगानेसे गुदभ्रंश (तथा योनिभ्रंश) अच्छा होता है। चूहेका शुष्क मल ५-१० रत्ती दूधमें मिलाकर पिलानेसे रक्तप्रदर अच्छा होता है।

---

## (३३) मृगशृङ्ग।

**वर्णन**—औषधके लिये **मृगशृङ्ग** के नामसे हरिणके शृंग या हरिणकी जातिके **बारहसिंगा** जिसे (सं.) शम्बर, बहुशृङ्ग, भारशृङ्ग; (हिं.) बारहसिंगा, साँभर; (म.) सांबर; (गु.) साबर; (फा.) गौजन कहते हैं उसके शृङ्ग (सींग) लिये जाते हैं। जो सींग मोटा, वजनदार, छिद्ररहित और ठोस हो वह औषधके लिये उत्तम समझा जाता है। साँभरसींगको घिसकर उसका लेप किया जाता है और भस्म बनाकर खानेको दिया जाता है।

**भस्मनिर्माणविधि**—साँभरसींगके करौतसे १-२ इंचके टुकड़े कर, उनको मृत्पात्रमें रखकर गजपुटकी आँच दे। पीछे ग्वारपाठेके रस या अर्कक्षीरमें मर्दन कर, टिकिया बना, सुखाकर गजपुटमें पकावे। श्वेतवर्णकी भस्म बनेगी। **मात्रा**-२-८ रत्ती। **अनुपान**-गोघृत या शहद।

**गुण-कर्म** और **उपयोग**—साँभरसींग उष्णवीर्य, लेखन, श्वयथुविलयन, पीड़ाशामक और कफवातहर है। फुप्फुसशोथ (न्युमोनिया), फुप्फुसावरणकलाशोथ (प्लूरसी) और पार्श्वशूलमें साँभरसींगको जलमें घिसकर उसका प्रलेप किया जाता है। हृदयशूल[१], पार्श्वशूल, ग्रन्थिशोथ, कमरका दर्द, गृध्रसी, सन्धिवात, खाँसी, श्वास, क्षय, हृद्रोग, मूत्रके साथ फॉस्फेटसका अधिक आना इन रोगोंमें साँभरसींगकी भस्मका आभ्यन्तरिक उपयोग करते हैं।

---

## (३४) यकृत्।

**नाम**—(सं.) यकृत; (अ.) कबिद; (फा.) जिगर; (अं.) लिवर (Liver)।

**गुणकर्म**—"सर्वप्राणिनां सर्वशरीरेभ्यः प्रधाना भवन्ति यकृत्प्रदेशवर्तिनस्तानाददीत॥" (सु. सू. अ. ४६)। "विपाच्य गोधायकृदर्धपाटितं सुपूरितं मागधिकाभिरग्निना। निषेवितं तद्यकृदञ्जनेन निहन्ति नक्तान्ध्यमसंशयं खलु॥ तथा यकृच्छागभवं हुताशने विपाच्य सम्यग्झंगधासमन्वितम्। प्रयोजितं पूर्ववदाश्वसंशयं जयेत् क्षपान्ध्यं सकृदञ्जनान्नृणाम्॥" (सु. उ. अ. १७)।

---

१ "पुटप्रदग्धं हरिणस्य शृङ्गं घृतेन गव्येन निपीयमानम्। हृत्पार्श्वशूलार्तिमपोहति द्राक् नृणां हिताहारविहारभाजाम्॥" (गदनिग्रह, शूलाधिकार)।

सर्व प्राणियोंके शरीरमें यकृत्प्रदेशका मांस श्रेष्ठ होता है। जहाँ मांसका विधान हो वहाँ यह मांस लेना चाहिये। गोह अथवा बकरीके यकृत्के दो टुकड़े कर, बीचमें पीपल रख, पुटपाकविधिसे पकाकर यकृत् खाने तथा पीपलका अञ्जन करनेसे रतौन्धी दूर होती है।

**वक्तव्य**—यकृत्का मांसरस पाण्डुरोग (रक्ताल्पता) में उत्तम आहार और औषध है।

---

## (३५) रक्त।

**नाम**—(सं.) रक्त, रुधिर, शोणित, असृक्; (हिं.) लहू; (अ.) दम; (फा.) खून; (अं.) ब्लड (Blood)।

**वर्णन**—रक्त प्राणियोंके शरीरका रक्तवर्णका एक प्रसिद्ध धातु है[१]।

**उपयोग**—"मृगगोमहिषाजानां सद्यस्कं जीवतामसृक्। पिबेज्जीवाभिसन्धानं जीवं तद्ध्याशु गच्छति॥" (च. सि. अ. ६)। "अतिनिःस्रुतरक्तो वा क्षौद्रयुक्तं पिबेदसृक्। यकृद्वा भक्षयेदाजमामं पित्तसमायुतम्॥" (सु. उ. अ.४५)। "मृगाजाविवराहासृग् दध्यम्लफलसर्पिषा। अरजस्का पिबेत्॥" (च. चि. अ. ३०)।

वमन या विरेचनके अतियोगसे (या अन्य कारणोंसे) जब जीवरक्त (शुद्धरक्त) का अतिस्राव हुआ हो तब हरिण-अजा आदि जीवित प्राणियोंका ताजा रक्त रोगीको पिलाना चाहिये (**चरक**)। रक्तपित्त व्याधिसे जब रक्तका अतिस्राव हुआ हो तब मधुयुक्त ताजा रक्त रोगीको पिलाना चाहिये; अथवा बकरीका पित्तयुक्त कच्चा यकृत् रोगीको खिलाना चाहिये (**सुश्रुत**)। अरजस्का (जिसको आर्तव न आता हो वह) स्त्री बकरी, भेड़ या जंगली सूवरका ताजा रक्त दही, खट्टे फलका रस और गायका घी मिलाकर पीवे।

---

## (३६) रेगमाही (रेतकी मछली)।

**नाम**—(सं.) वालुकामत्स्य; (फा.) रेगमाही।

**वर्णन**—यह एक प्रकारकी मछली है जो रेतमें रहती है। यह रेतमें इस प्रकार चलती है जैसे जलमें साधारण मछलियाँ। इसका पेट फाड़ कर और अन्त्रादिसे शुद्ध करके नमक लगा सुखाकर रखते हैं। यह यूनानी दवा बेचनेवाले पनसारियोंके यहाँ **रेगमाही** नामसे मिलती है।

---

१ रक्तका विशेष वर्णन शरीरक्रियाविज्ञानके १६ वें अध्यायमें देखें।

**उपयोग**—"वालुकासंभवं मत्स्यं सुपक्वं भक्षयेद्घृतैः । षण्ढोऽपि जायते कामी वीर्यस्तम्भः प्रजायते ।" ( रसरत्नाकर, रसायनखण्ड अ. ६ ) ।

रेतकी मछलीको घीमें भुनकर खानेसे नपुंसकको भी कामोत्तेजना होती है और वीर्यस्तम्भ होता है ।

**यूनानीमत**—रेगमाही दूसरे दर्जेमें गरम और खुश्क, नाड़ीबलदायक, उत्तेजक तथा वाजीकर है ।

---

## ( ३७ ) वसा और मेद ।

**नाम**—( सं. ) वसा, मेदस्; ( हिं., म., गु. ) चरबी, चर्बी; ( अ. ) शहम; ( अं. ) फॅट ( Fat ) ।

**वर्णन**—शरीरमें त्वचाके नीचे मेद होता है । मांससूत्रोंके मध्यगत जो मेद होता है उसको **वसा** कहते हैं[1] ।

**गुण-कर्म**—"विद्धभग्नाहतभ्रष्टयोनिकर्णशिरोरुजि । पौरुषोपचये स्नेहे व्यायामे चेष्यते वसा ॥" ( च. सू. अ १३ ) । "व्यायामकर्षिताः शुष्करेतोरक्ता महारुजः । महाग्निमारुतप्राणा वसायोग्या नराः स्मृताः ॥" ( सु. चि. अ. ३१ ) ।

जो बाण आदिसे विद्ध हुए ( वींधे गये ) हों, जिनकी हड्डी टूटी हो, जिनको चोट लगी हो, जिन स्त्रियोंकी योनि-गर्भाशय अपने स्थानसे भ्रष्ट हुई हो, जो अति व्यायामसे कृश हुए हों, जिनका वीर्य और रक्त शुष्क-क्षीण हुआ हो, जिनको बहुत पीड़ा हो, जिनका जठराग्नि—वात और शक्ति प्रबल हो उनको तथा कान और सिरके रोगोंमें, वाजीकरणके लिये तथा शरीरकी पुष्टिके लिये वसा देना चाहिये ।

**यूनानी मत**—चर्बी कठिन शोथ और पीड़ाको कम करती है, अवयवोंमें विशेषतः नाडियों ( पट्ठों ) में स्निग्धता उत्पन्न करती है, तथा शरीरमें स्थूलता और शक्ति उत्पन्न करती है । वाघ-शेर और जंगली सूअरकी चर्बीकी पक्षाघात आदि वात-रोगोंमें मालिश करते हैं तथा वाजीकरणके लिये उसे शिश्नपर लगाते हैं । मलहम बनानेके लिये चरबीका उपयोग किया जाता है ।

---

## ( ३८ ) शङ्ख ।

**नाम**—( सं. ) शङ्ख, कम्बु; ( हिं., म., गु. ) शंख; ( बं. ) शाँख ।

**वर्णन**—शंख समुद्रमें होनेवाले प्राणीका अस्थिमय कोश है । जो शंख बड़ा, वजनदार, श्वेतवर्ण और छिद्ररहित हो उसको औषधार्थ ग्रहण करना चाहिये ।

---

१ मेदका विशेष विवरण **शरीरक्रियाविज्ञान** अ. २३ में देखें ।

**गुण-कर्म**—"शङ्खः शीतः कटुः पाके वीर्ये चोष्णः प्रकीर्तितः । परिणामादि-शूलघ्नश्चक्षुष्यो रक्तपित्तजित् ॥" ( ध. नि. ) । "शङ्खः क्षारो हिमो ग्राही ग्रहणी-रोगनाशनः । नेत्रपुष्पहरो वर्ण्यस्तारुण्यपिटिकाप्रणुत्" ( भा. प्र. ) ।

शंख शीत ( बाह्यप्रयोगसे ), क्षार, कटुविपाक, उष्णवीर्य, चक्षुष्य, वर्ण्य, ग्राही तथा पेटका दर्द ( शूल ), रक्तपित्त, ग्रहणीरोग, आँखकी फूली और तारुण्यपिटिकाको दूर करनेवाला है ।

शंखको नीबूका रस मिलाये हुए जलमें एक दिन भिगोकर रख छोड़नेसे या दोलायन्त्रमें तीन घंटे पकानेसे वह शुद्ध होता है । पीछे उसका चूर्ण बना, नीबूके स्वरसमें मर्दन करके गजपुटमें पकावे । फिर उसी प्रकार एक बार कुमारीस्वरसमें मर्दन करके गजपुट देवे । श्वेतवर्णकी भस्म तैयार होगी । **मात्रा**—२–४ रत्ती ।

अजीर्ण, पेटका शूल, अम्लपित्त, ग्रहणी, यकृत् और प्लीहाकी वृद्धि, कास-श्वास और आमवातमें योग्य अनुपानके साथ शंखभस्मका प्रयोग करनेसे विशेष लाभ होता है ।

---

## ( ३९ ) समुद्रफेन ।

**नाम**—( सं. ) समुद्रफेन, अर्णवफेन, अब्धिफेन; ( हिं. ) समुन्दरफेन, समुन्दरझाग; ( म. ) समुद्रफेण; ( गु. ) समुद्रफीण; ( अ. ) जुब्दुल बहर; ( फा. ) कफे दरिया ।

**वर्णन**—यह एक समुद्रचर प्राणीकी पीठकी हड्डी है जो समुद्रके पानीपर तैरती हुई पाई जाती है, इसलिये इसे **समुद्रफेन** कहते हैं । यह ५–१० इंच लंबा, चपटा, खुरदरा, हलका एवं भंगुर होता है । इसमें केल्सियम कार्बोनेट और केल्सियम फास्फेटके रूपमें चूना पाया जाता है । **चरक**ने ( चि. अ. २६, श्लो. २४८ ) चूर्णाञ्जनमें **अर्णवफेन** ( समुद्रफेन ) डालनेको लिखा है ।

**गुण-कर्म**—"समुद्रफेनः शिशिरः कर्णपाकनिवारणः । लेखनो नेत्ररोगाणां हितो विषविनाशनः ॥ चक्षुष्यो रक्तपित्तघ्नो गुल्मप्लीहहरः स्मृतः ॥ "( ध. नि. ) । "समुद्रफेनश्चक्षुष्यो लेखनः शीतलः सरः । कर्णस्रावरुजागुल्महरः पाचनदीपनः ॥ समुद्रफेनः संपिष्टो निम्बुतोयेन शुद्ध्यति ॥" ( आ. प्र. अ. १० ) । "समुद्रफेनश्चक्षुष्यो लेखनः शीतलस्तथा । कषायो विषपित्तघ्नः कर्णरुक्कफ-हल्लघुः ॥" ( भा. प्र. ) ।

**समुद्रफेन** कषाय, शीतवीर्य, लघु, पाचन, दीपन, लेखन, सर तथा पित्त, कफ, कर्णपाक, कर्णस्राव, नेत्ररोग, विष, गुल्म, प्लीहा और रक्तपित्तको दूर करनेवाला है ।

**समुद्रफेनका** ऊपरका कवच निकाल, नीमूके रसकी एक भावना देकर सुखा लेनेसे शुद्ध होता है ।

**यूनानी मत**—समुद्रफेन तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क तथा लेखन है। आँखकी फूली और जालामें इसका अंजन हितकर है। इसका मंजन दांतोंको साफ और दृढ़ करता है। इसका लेप कफज शोथ और त्वचाके काले दागोंको दूर करता है।

---

## (४०) सर्प-साँप।

**नाम**—(सं.) सर्प, पन्नग, भुजङ्ग, उरग, अहि, नाग; (हिं.) साँप; (अ.) हय्यः; (फा.,) मार; (अं.) स्नेक (Snake); (ले.) सर्पेन्ट (Serpent)।

**साँपकी केंचुलीको**-(सं.) सर्पकंचुक, सर्पनिर्मोक, (अ.) सल्खुल्हय्यः; (फा.) पोस्तमार; कहते हैं।

**वर्णन**—साँप एक प्रसिद्ध जहरीला प्राणी है। काले रंगका साँप (अ. अफई) अधिक जहरीला होता है और यही अधिकतया औषधार्थ व्यवहृत होता है।

**उपयुक्त अंग**—वसा (चर्बी), कञ्चुक, समग्र सर्पको अन्तर्धूम जलाकर बनाई हुई मसी और सर्पविष।

**गुण-कर्म**—"दुर्नामानिलदोषघ्नाः कृमिदूषीविषापहाः। चक्षुष्या मधुराः पाके सर्पा मेधाग्निवर्धनाः॥ दर्वीकरा दीपकाश्च तेपूक्ताः कटुपाकिनः। मधुराश्चाति चक्षुष्याः सृष्टविण्मूत्रमारुताः॥ (सु. सू. अ. ४६)। "यस्मिन् वा कुपितः सर्पो योजयेद्धि फले विषम्। भोजयेत्तदुदरिणं प्रविचार्य भिषग्वरः॥ तेनास्य दोषसंघातः स्थिरो लीनो विमार्गगः। विषेणाशु प्रमाथित्वादाशु भिन्नः प्रवर्तते॥ विषेण हृतदोषं तं शीताम्बुपरिषेचितम्। पाययेत भिषग्दुग्धं यवागूं वा यथाबलम्॥" (च. चि. अ. १३)। "वर्मिशब्देन चोरगान्॥" (च. चि. अ. ८)। "वसाऽथ गृध्रोरगताम्रचूडजा सदा प्रशस्ता मधुकान्विताऽञ्जने।" (सु. उ.अ. १७)। "कृष्णस्य सर्पस्य मसी सुदग्धा बैभीतकं तैलमथ द्वितीयम्। एतत्समस्तं मृदितं प्रलेपाच्छ्वित्राणि सर्वाण्यपहन्ति शीघ्रम्॥" (सु. चि. अ. ९)।

सर्पका मांस रस और विपाकमें मधुर, नेत्रके लिये हितकर, मेधा तथा अग्निको बढ़ानेवाला और अर्श, वातविकार, कृमि और दूषीविषको दूर करनेवाला है। दर्वीकर (फणा वाले) सर्पका मांस रसमें मधुर, कटुविपाक, दीपन, मल-मूत्र और अधोवातको साफ लानेवाला तथा नेत्रको हितकर है।

**चरकने** राजयक्ष्मामें सर्पमांस खानेको देनेके लिये लिखा है। सूचिकाभरण आदि कई रसोंमें सर्पविषका प्रयोग रसग्रन्थोंमें पाया जाता है। काले साँपकी चर्बीमें मुलेठीका चूर्ण मिलाकर अञ्जन करनेसे वातज तिमिर रोग नष्ट होता है। जिस फलमें क्रुद्ध सर्प दंश मारे उस फलको सान्निपातिक उदर रोगीको खिलानेसे विमार्गगामी, स्रोतोंमें लीन और स्थिर दोषसंघात भिन्न होकर विरेचन द्वारा निकल जाता है। विरेचन होनेके बाद रोगीको शीतल जलसे स्नान कराकर दूध अथवा यवागू पीनेके लिये देना चाहिये।

काले साँपको अन्तर्धूम जलाकर बनाई हुई मसी बहेड़ेकी मज्जाके तेलमें मिलाकर लगानेसे श्वित्र नष्ट होता है ।

**यूनानी मत**—साँप तीसरे दर्जेमें गरम और खुश्क है । साँपकी चर्बी और राख बाह्य उपयोगसे लेखन और शोणितोत्क्लेशक है । साँपकी चर्बीको वाजीकरणके लिये शिश्न पर तथा मोतियाबिंदमें नेत्रके भीतर लगाते हैं । काले साँपका पेट चीर, उसमें बावची और पँवाडके बीज भरकर पातालयन्त्रसे निकाला हुआ तेल श्वित्रपर लगाते हैं । अर्शको सुखानेके लिये सर्पकञ्चुककी धूनी देते हैं । सर्पकञ्चुककी मसी जैतूनके तेलमें मिलाकर खालित्यपर लगाते हैं ।

**कृष्णसर्पविषशोधनम्**—"यूनो बलवतो ग्राह्यं कृष्णसर्पाद्विषं नवम् । तत् सार्षपेण तैलेन संप्लुतं परिशोषयेत् ॥ पर्णतोयैर्मुनितरोस्तुलसीपत्रजै रसैः । क्वाथेनापि च कुष्ठस्य भावयेत्त्रिधा त्रिधा ॥ तदेव सर्वदा योज्यं नाविशुद्धं कदाचन ।" ( आ. वि. सू. अ. ६७ ) ।

युवा और बलवान् कृष्णसर्पका विष ले, उसमें थोड़ा सरसोंका तेल मिलाकर सुखा ले । पीछे उसको अगस्त्यपत्रस्वरस, तुलसीपत्रस्वरस और कुष्ठके क्वाथकी तीन-तीन भावना दे, सुखाकर काचकी शीशीमें भरकर डाट लगा दे । इसप्रकार शुद्ध किये हुए सर्पविषका ही औषधार्थ प्रयोग करना चाहिये ।

---

## ( ४१ ) हस्तिदन्त-हाथीके दाँत ।

**नाम**---( सं. ) हस्तिदन्त; ( हिं., म., गु., बं. ) हाथीदाँत; ( अ. ) आज; ( फा. ) दंदाने पी( फी )ल; ( अं. ) आइवरी ( Ivory ) ।[१]

**वर्णन**—भारतवर्षमें स्त्रियां हाथीके दाँतकी चूड़ियाँ पहनती हैं और उसका पहनना सौभाग्यका चिह्न माना जाता है । हाथीके दाँतका खूब बारीक चूर्ण करके या उसको मिट्टीके बरतनमें अन्तर्धूम जलाकर ( मसी बनाकर ) उपयोग किया जाता है । हाथीके चमड़ेका भी औषधके लिये उपयोग किया जाता है ।

**उपयोग**—हाथीके दाँतकी मसी और रसौत ( रसाञ्जन ) को बकरीके दूध या जलमें अच्छी तरह पीसकर १-१ तोलेकी गोलियाँ बना, सुखाकर रख छोड़े । इसको जलमें घिस कर जिस स्थानके बाल ( केश ) उड़ गये हों वहां लगानेसे बाल फिर उग आते हैं ।[२] हाथीके चमड़ेको जलाकर बनाई हुई मसी तेलमें मिलाकर श्वित्रपर लगानेसे लाभ होता है । अर्श ( बवासीर ) के मसोंको हाथी दाँतके चूर्ण या हाथीके

---

१ "हस्तिदन्तमसीं कृत्वा मुख्यं चैव रसाञ्जनम् । रोमाण्यनेन जायन्ते लेपात् पाणितलेष्वपि ॥" ( सु. चि. अ. ५ ) । २ "द्वैपं दग्धं चर्म मातङ्गजं वा भिन्ने स्फोटे तैलयुक्तं प्रदेहः ।" ( सु. चि. अ. ९ ) ।

चमड़ेकी धूनी देनेसे पीड़ा और रक्तस्राव बंद होता है । हाथीका मद तिक्त, स्निग्ध, केश्य तथा अपस्मार, विष, कण्डू, व्रण, दद्रु और विसर्पको दूर करनेवाला है ।[१]

**यूनानीमत**—हाथीका दाँत दूसरे दर्जेमें शीत और रूक्ष है । हाथीदाँतका चूर्ण शहदके साथ खानेसे स्मरणशक्ति बढ़ती है और सन्धिकी पीड़ा, अतिसार तथा रक्तस्राव बंद होता है । हाथीदाँतको जलमें घिस कर अंजन करनेसे आँख साफ होती है और दर्शनशक्ति बढ़ती है ।

---

## प्राणिज द्रव्योंके उपयोगके विषयमें सामान्य सिद्धान्त

"धातवः पुनः शारीराः समानगुणैः समानगुणभूयिष्ठैर्वाऽप्याहारविकारैरभ्यस्यमानैर्वृद्धिं प्राप्नुवन्ति, ह्रासं तु विपरीतगुणैर्विपरीतगुणभूयिष्ठैर्वाऽप्याहारैरभ्यस्यमानैः । ××× । सर्वधातूनां सामान्याद्वृद्धिः, विपर्ययाद्ध्रासः । तस्मान्मांसमाप्याय्यते मांसेन भूयस्तरमन्येभ्यः शरीरधातुभ्यः; तथा लोहितं लोहितेन, मेदो मेदसा, वसा वसया, अस्थि तरुणास्थ्ना, मज्जा मज्ज्ञा, शुक्रं शुक्रेण, गर्भस्त्वामगर्भेण ॥" ( च. शा. अ. ६ ) ।

शारीरधातु ( शरीरको धारण करनेवाले रक्त-मांस आदि ) समानगुणवाले ( समानजातिवाले ) या समानगुणकी अधिकतावाले आहारोंके अभ्यास ( बार-बार सेवन ) से बढ़ते हैं और विपरीत गुणवाले या विपरीत गुणकी अधिकतावाले द्रव्योंके सेवनसे ह्रासको प्राप्त होते हैं । रक्तसे रक्तकी, मांससे मांसकी, मेदसे मेदकी, वसासे वसाकी, तरुणास्थिसे अस्थिकी, मज्जासे मज्जाकी, शुक्रसे शुक्रकी और आम ( कच्चे ) गर्भ ( अंडे आदि ) से गर्भकी वृद्धि होती है ।

**वक्तव्य**—शरीरको धारण करनेवाले पदार्थोंमेंसे जिस पदार्थका क्षय हुआ हो उस पदार्थकी पूर्तिके लिये उसी पदार्थका या उसके समान गुणवाले अन्य द्रव्यका सेवन करनेसे उस धातुकी पूर्ति होती है और उस धातुके क्षयसे उत्पन्न विकार नष्ट होते हैं यह सिद्धान्त इस प्रकरणमें **चरकाचार्यने** प्रतिपादित किया है । इस सिद्धान्तके अनुसार रक्तक्षयमें रक्त और मांसरसका विशेषतः यकृत्के मांसरसका, मूत्रक्षयमें ( पेशाब कम होने पर ) गोमूत्र-अजामूत्र आदि मूत्रोंका, शुक्रक्षयमें शुक्र या शुक्रोत्पादक अवयव-वृषणके रस-क्वाथका, अस्थिक्षयमें तरुणास्थिका या प्रवाल-मुक्ता-मुक्ता-शुक्ति आदि अस्थिप्रधान द्रव्योंका, मेदके क्षयमें मेद ( चर्बी )-घृत आदि द्रव्योंका सेवन कराया जाता है ।

इति द्रव्यगुणविज्ञाने उत्तरार्धे औषधद्रव्यविज्ञानीये द्वितीये खण्डे जाङ्गमद्रव्यविज्ञानीयो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

---

१ "स्निग्धो हस्तिमदस्तिक्तः केश्योऽपस्मारनाशनः । विषहृत्कुष्ठकण्डूतिव्रणदद्रुविसर्पनुद ॥" ( रा. नि. ) ।

# औषधद्रव्यविज्ञानीयखण्डोक्तद्रव्यनाम्नां वर्णानुक्रमणिका ।

द्रव्यनाम — पृष्ठ

### अ

| द्रव्यनाम | पृष्ठ |
|---|---|


## आ

| द्रव्यनाम | पृष्ठ |
|---|---|

# उद्भिज्जाङ्ग-प्रत्यङ्ग-वाचक शब्दोंकी वर्णानुक्रमणिका।

# Index of Latin (botanical) names

## A



## B

T

# औषधद्रव्यविज्ञानखण्डस्य परिशिष्टम् ।

## चरकोक्ताः पञ्चाशन्महाकषायाः ( गणाः )
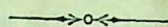
**जीवनीयगणः**—जीवकर्षभकौ मेदा महामेदा काकोली क्षीरकाकोली मुद्गपर्णीमाषपर्ण्यौ जीवन्ती मधुकमिति दशेमानि जीवनीयानि भवन्ति ॥ १ ॥

**बृंहणीयगणः**—क्षीरिणीराजक्षवकाश्वगन्धाकाकोलीक्षीरकाकोलीवाट्यायनीभद्रौदनीभारद्वाजीपयस्यर्ष्यगन्धा इति दशेमानि बृंहणीयानि भवन्ति ॥ २ ॥

**लेखनीयगणः**—मुस्तकुष्ठहरिद्रादारुहरिद्रावचातिविषाकटुरोहिणीचित्रकचिरबिल्वहैमवत्य इति दशेमानि लेखनीयानि भवन्ति ॥ ३ ॥

**भेदनीयगणः**—सुवहार्कोरुबुकाग्निमुखीचित्राचित्रकचिरबिल्वशङ्खिनीशकुलादनीस्वर्णक्षीरिण्य इति दशेमानि भेदनीयानि भवन्ति ॥ ४ ॥

**सन्धानीयगणः**—मधुकमधुपर्णीपृश्निपर्ण्यम्बष्ठकीसमङ्गामोचरसधातकीलोध्रप्रियङ्गुकट्फलानीति दशेमानि सन्धानीयानि भवन्ति ॥ ५ ॥

**दीपनीयगणः**—पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेराम्लवेतसमरिचाजमोदाभल्लातकास्थिहिङ्गुनिर्यासा इति दशेमानि दीपनीयानि भवन्ति ॥ ६ ॥

**बल्यगणः**—ऐन्द्र्यृष्यभ्यतिरसर्ष्यप्रोक्तापयस्याश्वगन्धास्थिरारोहिणीबलातिबला इति दशेमानि बल्यानि भवन्ति ॥ ७ ॥

**वर्ण्यगणः**—चन्दनतुङ्गपद्मकोशीरमधुकमञ्जिष्ठासारिवापयस्यासितालता इति दशेमानि वर्ण्यानि भवन्ति ॥ ८ ॥

**कण्ठ्यगणः**—सारिवेक्षुमूलमधुकपिप्पलीद्राक्षाविदारीकैटर्यहंसपादीबृहतीकण्टकारिका इति दशेमानि कण्ठ्यानि भवन्ति ॥ ९ ॥

**हृद्यगणः**—आम्राम्रातकलिकुचकरमर्दवृक्षाम्लाम्लवेतसकुवलबदरदाडिममातुलुङ्गानीति दशेमानि हृद्यानि भवन्ति ॥ १० ॥

**तृप्तिघ्नगणः**—नागरचव्यचित्रकविडङ्गमूर्वागुडूचीवचामुस्तपिप्पलीपटोलानीति दशेमानि तृप्तिघ्नानि भवन्ति ॥ ११ ॥

**अर्शोघ्नगणः**—कुटजबिल्वचित्रकनागरातिविषाभयाधन्वयासकदारुहरिद्रावचाचव्यानीति दशेमान्यर्शोघ्नानि भवन्ति ॥ १२ ॥

**कुष्ठघ्नगणः**—खदिराभयामलकहरिद्रारुष्करसप्तपर्णारग्वधकरवीरविडङ्गजातीप्रवाला इति दशेमानि कुष्ठघ्नानि भवन्ति ॥ १३ ॥

**कण्डूघ्नगणः**—चन्दननलदकृतमालनक्तमालनिम्बकुटजसर्षपमधुकदारुहरिद्रामुस्तानीति दशेमानि कण्डूघ्नानि भवन्ति ॥ १४ ॥

**कृमिघ्नगणः**—अक्षीवमरिचगण्डीरकेबुकविडङ्गनिर्गुण्डीकिणिहीश्वदंष्ट्रावृषपर्णिकाखुपर्णिका इति दशेमानि कृमिघ्नानि भवन्ति ॥ १५ ॥

**विषघ्नगणः**—हरिद्रामञ्जिष्ठासुवहासूक्ष्मैलापालिन्दीचन्दनकतकशिरीषसिन्धुवारश्लेष्मातका इति दशेमानि विषघ्नानि भवन्ति ॥ १६ ॥

**स्तन्यजननगणः**—वीरणशालिषष्टिकेक्षुवालिकादर्भकुशकाशगुन्द्रेत्कटकत्तृणमूलानीति दशेमानि स्तन्यजननानि भवन्ति ॥ १७ ॥

**स्तन्यशोधनगणः**—पाठामहौषधसुरदारुमुस्तामूर्वागुडूचीवत्सकफलकिराततिक्तककटुरोहिणीसारिवा चेति दशेमानि स्तन्यशोधनानि भवन्ति ॥ १८ ॥

**शुक्रजननगणः**—जीवकर्षभककाकोलीक्षीरकाकोलीमुद्गपर्णीमाषपर्णीमेदावृद्ध(क्ष)रुहाजटिलाकुलिङ्गा इति दशेमानि शुक्रजननानि भवन्ति ॥ १९ ॥

**शुक्रशोधनगणः**—कुष्ठैलवालुककट्फलसमुद्रफेनकदम्बनिर्यासेक्षुकाण्डेक्षिक्षुरकवसुकोशीराणीति दशेमानि शुक्रशोधनानि भवन्ति ॥ २० ॥

**स्नेहोपगगणः**—मृद्वीकामधुकमधुपर्णीमेदाविदारीकाकोलीक्षीरकाकोलीजीवकजीवन्तीशालपर्ण्य इति दशेमानि स्नेहोपगानि भवन्ति ॥ २१ ॥

**स्वेदोपगगणः**—शोभाञ्जनकैरण्डार्कवृश्चीरपुनर्नवायवतिलकुलत्थमाषबदराणीति दशेमानि स्वेदोपगानि भवन्ति ॥ २२ ॥

**वमनोपगगणः**—मधुमधुककोविदारकर्बुदारनीपविदुलबिम्बीशणपुष्पासदापुष्पाप्रत्यक्पुष्पा इति दशेमानि वमनोपगानि भवन्ति ॥ २३ ॥

**विरेचनोपगगणः**—द्राक्षाकाश्मर्यपरूषकाभयामलकबिभीतककुवलबदरकर्कन्धुपीलूनीति दशेमानि विरेचनोपगानि भवन्ति ॥ २४ ॥

**आस्थापनोपगगणः**—त्रिवृद्बिल्वपिप्पलीकुष्ठसर्षपवचावत्सकफलशतपुष्पामधुकमदनफलानीति दशेमान्यास्थापनोपगानि भवन्ति ॥ २५ ॥

**अनुवासनोपगगणः**—रास्नासुरदारुबिल्वमदनशतपुष्पावृश्चीरपुनर्नवाश्वदंष्ट्राग्निमन्थश्योनाका इति दशेमान्यनुवासनोपगानि भवन्ति ॥ २६ ॥

**शिरोविरेचनोपगगणः**—ज्योतिष्मतीक्षवकमरिचपिप्पलीविडङ्गशिग्रुसर्षपापामार्गतण्डुलश्वेतामहाश्वेता इति दशेमानि शिरोविरेचनोपगानि भवन्ति ॥ २७ ॥

**छर्दिनिग्रहणगणः**—जम्ब्वाम्रपल्लवमातुलुङ्गाम्लबदरदाडिमयवयष्टिकोशीरमृल्लाजा इति दशेमानि छर्दिनिग्रहणानि भवन्ति ॥ २८ ॥

**तृष्णानिग्रहणगणः**—नागरधन्वयवासकमुस्तपर्पटकचन्दनकिराततिक्तकगुडूचीहीवेरधान्यकपटोलानीति दशेमानि तृष्णानिग्रहणानि भवन्ति ॥ २९ ॥

**हिक्कानिग्रहणगणः**—शटीपुष्करमूलबदरबीजकण्टकारिकाबृहतीवृक्षरुहाभयापिप्पलीदुरालभाकुलीरशृङ्ग्य इति दशेमानि हिक्कानिग्रहणानि भवन्ति ॥ ३० ॥

**पुरीषसंग्रहणीयगणः**—प्रियङ्ग्वनन्ताम्रास्थिकट्वङ्गलोध्रमोचरससमङ्गाधातकीपुष्पपद्मापद्मकेशराणीति दशेमानि पुरीषसंग्रहणीयानि भवन्ति ॥ ३१ ॥

**पुरीषविरजनीयगणः**—जम्बुशल्लकीत्वक्कच्छुरामधूकशाल्मलीश्रीवेष्टकभृष्टमृत्पयस्योत्पलतिलकणा इति दशेमानि पुरीषविरजनीयानि भवन्ति ॥ ३२ ॥

**मूत्रसंग्रहणीयगणः**—जम्ब्वाम्रप्लक्षवटकपीतनोडुम्बराश्वत्थभल्लातकाश्मन्तकसोमवल्का इति दशेमानि मूत्रसंग्रहणीयानि भवन्ति ॥ ३३ ॥

**मूत्रविरजनीयगणः**—पद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्रमधुकप्रियङ्गुधातकीपुष्पाणीति दशेमानि मूत्रविरजनीयानि भवन्ति ॥ ३४ ॥

**मूत्रविरेचनीयगणः**—वृक्षादनीश्वदंष्ट्रावसुकवशिरपाषाणभेददर्भकुशकाशगुन्द्रेत्कटमूलानीति दशेमानि मूत्रविरेचनीयानि भवन्ति ॥ ३५ ॥

**कासहरगणः**—द्राक्षाभयामलकपिप्पलीदुरालभाशृङ्गीकण्टकारिकावृश्चीरपुनर्नवातामलक्य इति दशेमानि कासहराणि भवन्ति ॥ ३६ ॥

**श्वासहरगणः**—शटीपुष्करमूलाम्लवेतसैलाहिङ्ग्वगुरुसुरसातामलकीजीवन्तीचण्डा इति दशेमानि श्वासहराणि भवन्ति ॥ ३७ ॥

**श्वयथुहरगणः**—पाटलाग्निमन्थश्योनाकबिल्वकाश्मर्यकण्टकारिकाबृहतीशालपर्णीपृश्निपर्णीगोक्षुरका इति दशेमानि श्वयथुहराणि भवन्ति ॥ ३८ ॥

**ज्वरहरगणः**—सारिवाशर्करापाठामञ्जिष्ठाद्राक्षापीलुपरूषकाभयामलकबिभीतकानीति दशेमानि ज्वरहराणि भवन्ति ॥ ३९ ॥

**श्रमहरगणः**—द्राक्षाखर्जूरप्रियालबदरदाडिमफल्गुपरुषकेक्षुयवषष्टिका इति दशेमानि श्रमहराणि भवन्ति ॥ ४० ॥

**दाहप्रशमनगणः**—लाजाचन्दनकाश्मर्यफलमधूकशर्करानीलोत्पलोशीरसारिवागुडूचीह्रीबेराणीति दशेमानि दाहप्रशमनानि भवन्ति ॥ ४१ ॥

**शीतप्रशमनगणः**—तगरागुरुधान्यकशृङ्गवेरभूतीकवचाकण्टकार्यग्निमन्थश्योनाकपिप्पल्य इति दशेमानि शीतप्रशमनानि भवन्ति ॥ ४२ ॥

**उदर्दप्रशमनगणः**—तिन्दुकप्रियालबदरखदिरकदरसप्तपर्णाश्वकर्णार्जुनासनारिमेदा इति दशेमान्युदर्दप्रशमनानि भवन्ति ॥ ४३ ॥

**अङ्गमर्दप्रशमनगणः**—विदारिगन्धापृश्निपर्णीबृहतीकण्टकारिकैरण्डकाकोलीचन्दनोशीरैलामधुकानीति दशेमान्यङ्गमर्दप्रशमनानि भवन्ति ॥ ४४ ॥

**शूलप्रशमनगणः**—पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरमरिचाजमोदाजगन्धाजाजीगण्डीराणीति दशेमानि शूलप्रशमनानि भवन्ति ॥ ४५ ॥

**शोणितास्थापनगणः**—मधुमधुकरुधिरमोचरसमृत्कपाललोध्रगैरिकप्रियङ्गुशर्करालाजा इति दशेमानि शोणितास्थापनानि भवन्ति ॥ ४६ ॥

**वेदनास्थापनगणः**—शालकट्फलकदम्बपद्मकतुम्बमोचरसशिरीषवञ्जुलैल-वालुकाशोका इति दशेमानि वेदनास्थापनानि भवन्ति ॥ ४७ ॥

**संज्ञास्थापनगणः**—हिङ्गुकैटर्यारिमेदवचाचोरकवयस्थागोलोमीजटिलापलङ्क-षाशोकरोहिण्य इति दशेमानि संज्ञास्थापनानि भवन्ति ॥ ४८ ॥

**प्रजास्थापनगणः**—ऐन्द्रीब्राह्मीशतवीर्यासहस्रवीर्याऽमोघाऽव्यथाशिवाऽरिष्टा-वाट्यपुष्पीविष्वक्सेनकान्ता इति दशेमानि प्रजास्थापनानि भवन्ति ॥ ४९ ॥

**वयःस्थापनगणः**—अमृताभयाधात्रीमुक्ताश्वेताजीवन्त्यतिरसामण्डूकपर्णीस्थि-रापुनर्नवा इति दशेमानि वयःस्थापनानि भवन्ति ॥ ५० ॥

(च. सू. अ. ४)

## सुश्रुतोक्ताश्चतुश्चत्वारिंशद्द्रव्यगणाः (वर्गाः)।

**विदारिगन्धादिगणः**—विदारिगन्धा विदारी विश्वदेवा सहदेवा श्वदंष्ट्रा पृथक्-पर्णी शतावरी सारिवा कृष्णसारिवा जीवकर्षभकौ महासहा क्षुद्रसहा बृहत्यौ पुन-र्नवैरण्डो हंसपादी वृश्चिकाल्यृषभी चेति ॥ विदारिगन्धादिरयं गणः पित्तानिलापहः ॥ शोषगुल्माङ्गमर्दोर्ध्वश्वासकासविनाशनः ॥ १ ॥

**आरग्वधादिगणः**—आरग्वधमदनगोपघोण्टाकण्टकीकुटजपाठापाटलामूर्वेन्द्र-यवसप्तपर्णनिम्बकुरुण्टकदासीकुरुण्टकगुडूचीचित्रकशार्ङ्गेष्टाकरञ्जद्वयपटोलकिराततिक्तकानि सुषवी चेति ॥ आरग्वधादिरित्येष गणः श्लेष्मविषापहः ॥ मेहकुष्ठ ज्वरवमीकण्डूघ्नो व्रणशोधनः ॥ २ ॥

**सालसारादिगणः**—सालसाराजकर्णखदिरकदरकालस्कन्धक्रमुकभूर्जमेषशृङ्ग-तिनिशचन्दनकुचन्दनशिंशपाशिरीषासनधवार्जुनतालशाकनक्तमालपूतीकाश्वकर्णा-गुरूणि कालीयकं चेति ॥ सालसारादिरित्येष गणः कुष्ठविनाशनः ॥ मेहपाण्ड्वामयहरः कफमेदोविशोषणः ॥ ३ ॥

**वरुणादिगणः**—वरुणार्तगलशिग्रुमधुशिग्रुतर्कारीमेषशृङ्गीपूतीकनक्तमालमोरटा-ग्निमन्थसैरेयकद्वयबिम्बीवसुकवशिरचित्रकशतावरीबिल्वाजशृङ्गीदर्भा बृहतीद्वयं चेति ॥ वरुणादिर्गणो ह्येष कफमेदोनिवारणः ॥ विनिहन्ति शिरःशूलगुल्माभ्यन्तर-विद्रधीन् ॥ ४ ॥

**वीरतर्वादिगणः**—वीरतरुसहचरद्वयदर्भवृक्षादनीगुन्द्रानलकुशकाशाश्मभेदका-ग्निमन्थमोरटावसुकवशिरभल्लुककुरण्टिकेन्दीवरकपोतवङ्काः श्वदंष्ट्रा चेति ॥ वीरतर्वा-दिरित्येष गणो वातविकारनुत् ॥ अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्राघातरुजापहः ॥ ५ ॥

**लोध्रादिगणः**—लोध्रसावरलोध्रपलाशकुटन्नटाशोकफञ्जीकट्फलैलवालुकशल्ल-कीजिङ्गिनीकदम्बशालाः कदली चेति ॥ एष रोध्रादिरित्युक्तो मेदःकफहरो गणः ॥ योनिदोषहरः स्तम्भी वर्ण्यो विषविनाशनः ॥ ६॥

**अर्कादिगणः**—अर्कालर्ककरञ्जद्वयनागदन्तीमयूरकभार्गीरास्नेन्द्रपुष्पीक्षुद्रश्वेता-महाश्वेतावृश्चिकाल्यलवणास्तापसवृक्षश्चेति ॥ अर्कादिको गणो ह्येष कफमेदोविषा-पहः ॥ कृमिकुष्ठप्रशमनो विशेषाद्व्रणशोधनः ॥ ७ ॥

**सुरसादिगणः**—सुरसाश्वेतसुरसाफणिज्झकार्जकभूस्तृणसुगन्धकसुमुखकाल-मालकुठेरककासमर्दक्षवकखरपुष्पाविडङ्गकट्फलसुरसीनिर्गुण्डीकुलाहलोन्दुरुकर्णिका-फञ्जीप्राचीबलकाकमाच्यो विषमुष्टिकश्चेति ॥ सुरसादिर्गणो ह्येष कफहृत् कृमि-सूदनः ॥ प्रतिश्यायारुचिश्वासकासघ्नो व्रणशोधनः ॥ ८ ॥

**मुष्ककादिगणः**—मुष्ककपलाशधवचित्रकमदनवृक्षकशिंशपावज्रवृक्षास्त्रिफला चेति ॥ मुष्ककादिर्गणो ह्येष मेदोघ्नः शुक्रदोषहृत् ॥ मेहार्शःपाण्डुरोगाश्मशर्करा-नाशनः परः ॥ ९ ॥

**पिप्पल्यादिगणः**—पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकशृङ्गवेरमरिचहस्तिपिप्पली-हरेणुकैलाजमोदेन्द्रयवपाठाजीरकसर्षपमहानिम्बफलहिङ्गुभार्गीमधुरसातिविषावचा-विडङ्गानि कटुरोहिणी चेति ॥ पिप्पल्यादिः कफहरः प्रतिश्यायानिलारुचीः ॥ निहन्या-द्दीपनो गुल्मशूलघ्नश्चामपाचनः ॥ १० ॥

**एलादिगणः**—एलातगरकुष्ठमांसीध्यामकत्वक्पत्रनागपुष्पप्रियङ्गुहरेणुकाव्याघ्र-नखशुक्तिचण्डास्थौणेयकश्रीवेष्टकचोचचोरकवालुकगुग्गुलुसर्जरसतुरुष्ककुन्दुरुकागुरु-स्पृक्कोशीरभद्रदारुकुङ्कुमानि पुन्नागकेशरं चेति ॥ एलादिको वातकफौ निहन्या-द्विषमेव च ॥ वर्णप्रसादनः कण्डूपिडकाकोठनाशनः ॥ ११ ॥

**वचादिगणः**—वचामुस्तातिविषाभयाभद्रदारूणि नागकेशरं चेति ॥

**हरिद्रादिगणः**—हरिद्रादारुहरिद्राकलशीकुटजबीजानि मधुकं चेति ॥ एतौ वचाहरिद्रादी गणौ स्तन्यविशोधनौ ॥ आमातिसारशमनौ विशेषाद्दोषपाचनौ ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥

**श्यामादिगणः**—श्यामामहाश्यामात्रिवृद्दन्तीशङ्खिनीतिल्वककम्पिल्लकरम्यक-क्रमुकपुत्रश्रेणीगवाक्षीराजवृक्षकरञ्जद्वयगुडूचीसप्तलाच्छगलान्त्रीसुधाः सुवर्णक्षीरी चेति ॥ उक्तः श्यामादिरित्येष गणो गुल्मविषापहः ॥ आनाहोदरविड्भेदी तथोदावर्त-नाशनः ॥ १४ ॥

**बृहत्यादिगणः**—बृहतीकण्टकारिकाकुटजफलपाठा मधुकं चेति ॥ पाचनीयो बृहत्यादिर्गणः पित्तानिलापहः ॥ कफारोचकहृद्रोगमूत्रकृच्छ्ररुजापहः ॥ १५ ॥

**पटोलादिगणः**—पटोलचन्दनकुचन्दनमूर्वागुडूचीपाठाः कटुरोहिणी चेति ॥ पटोलादिर्गणः पित्तकफारोचकनाशनः ॥ ज्वरोपशमनो व्रण्यश्छर्दिकण्डूविषा-पहः ॥ १६ ॥

**काकोल्यादिगणः**—काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभकमुद्गपर्णीमाषपर्णीमेदा-महामेदाच्छिन्नरुहाकर्कटशृङ्गीतुगाक्षीरीपद्मकप्रपौण्डरीकर्धिवृद्धिमृद्वीकाजीवन्त्यो

मधुकं चेति ॥ काकोल्यादिरयं पित्तशोणितानिलनाशनः ॥ जीवनो बृंहणो वृष्यः स्तन्यश्लेष्मकरस्तथा ॥ १७ ॥

**ऊषकादिगणः**—ऊषकसैन्धवशिलाजतुकासीसद्वयहिङ्गूनि तुत्थकं चेति ॥ ऊषकादिः कफं हन्ति गणो मेदोविशोषणः ॥ अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्रगुल्मप्रणाशनः ॥ १८ ॥

**सारिवादिगणः**—सारिवामधुकचन्दनकुचन्दनपद्मककाश्मरीफलमधूकपुष्पाण्युशीरं चेति ॥ सारिवादिः पिपासाघ्नो रक्तपित्तहरो गणः ॥ पित्तज्वरप्रशमनो विशेषाद्दाहनाशनः ॥ १९ ॥

**अञ्जनादिगणः**—अञ्जनरसाञ्जननागपुष्पप्रियङ्गुनीलोत्पलनलदनलिनकेशराणि मधुकं चेति ॥ अञ्जनादिर्गणो ह्येष रक्तपित्तनिबर्हणः ॥ विषोपशमनो दाहं निहन्त्याभ्यन्तरं भृशम् ॥ २० ॥

**परूषकादिगणः**—परूषकद्राक्षाकट्फलदाडिमराजादनकतकफलशाकफलानि त्रिफला चेति ॥ परूषकादिरित्येष गणोऽनिलविनाशनः ॥ मूत्रदोषहरो हृद्यः पिपासाघ्नो रुचिप्रदः ॥ २१ ॥

**प्रियङ्ग्वादिगणः**—प्रियङ्गुसमङ्गाधातकीपुन्नागनागपुष्पचन्दनकुचन्दनमोचरसरसाञ्जनकुम्भीकस्रोतोजपद्मकेसरयोजनवल्ल्यो दीर्घमूला चेति ॥

**अम्बष्ठादिगणः**—अम्बष्ठाधातकीकुसुमसमङ्गाकट्वङ्गमधुकबिल्वपेशिकासावररोध्रपलाशनन्दीवृक्षाः पद्मकेशराणि चेति ॥ गणौ प्रियङ्ग्वम्बष्ठादी पक्वातीसारनाशनौ ॥ सन्धानीयौ हितौ पित्ते व्रणानां चापि रोपणौ ॥ २२ ॥ २३ ॥

**न्यग्रोधादिगणः**—न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षमधुककपीतनककुभाम्रकोशाम्रचोरकपत्रजम्बूद्वयप्रियालमधूकरोहिणीवञ्जुलकदम्बबदरीतिन्दुकीशल्लकीरोध्रभल्लातकपलाशा नन्दीवृक्षश्चेति ॥ न्यग्रोधादिर्गणो व्रण्यः संग्राही भग्नसाधकः ॥ रक्तपित्तहरो दाहमेदोघ्नो योनिदोषहृत् ॥ २४ ॥

**गुडूच्यादिगणः**—गुडूचीनिम्बकुस्तुम्बुरुचन्दनानि पद्मकं चेति ॥ एष सर्वज्वरान् हन्ति गुडूच्यादिस्तु दीपनः ॥ हृल्लासारोचकवमीपिपासादाहनाशनः ॥२५॥

**उत्पलादिगणः**—उत्पलरक्तोत्पलकुमुदसौगन्धिककुवलयपुण्डरीकाणि मधुकं चेति ॥ उत्पलादिरयं दाहपित्तरक्तविनाशनः ॥ पिपासाविषहृद्रोगच्छर्दिमूर्च्छाहरो गणः ॥ २६ ॥

**मुस्तादिगणः**—मुस्ताहरिद्रादारुहरिद्राहरीतक्यामलकबिभीतककुष्ठहैमवतीवचापाठाकटुरोहिणीशार्ङ्गेष्टातिविषाद्राविडीभल्लातकानि चित्रकश्चेति ॥ एष मुस्तादिको नाम्ना गणः श्लेष्मनिषूदनः ॥ योनिदोषहरः स्तन्यशोधनः पाचनस्तथा ॥ २७ ॥

**हरीतक्यादिगणः**—( त्रिफला ) हरीतक्यामलकबिभीतकानीति त्रिफला ॥ त्रिफला कफपित्तघ्नी मेहकुष्ठविनाशनी ॥ चक्षुष्या दीपनी चैव विषमज्वरनाशनी ॥२८॥

पिप्पल्यादिगणः—(त्रिकटुकं) पिप्पलीमरिचशृङ्गवेराणीति त्रिकटुकम् ॥ त्र्यूषणं कफमेदोघ्नं मेहकुष्ठत्वगामयान् ॥ निहन्याद्दीपनं गुल्मपीनसाग्न्यल्पता-मपि ॥ २९ ॥

आमलक्यादिगणः—आमलकीहरीतकीपिप्पल्यश्चित्रकश्चेति ॥ आमलक्यादि-रित्येष गणः सर्वज्वरापहः ॥ चक्षुष्यो दीपनो वृष्यः कफारोचकनाशनः ॥ ३० ॥

त्रप्वादिगणः—त्रपुसीसताम्ररजतसुवर्णकृष्णलोहानि लोहमलश्चेति ॥ गणस्त्रप्वादिरित्येष गरक्रिमिहरः परः ॥ पिपासाविषहृद्रोगपाण्डुमेहहरस्तथा ॥ ३१ ॥

लाक्षादिगणः—लाक्षारेवतकुटजाश्वमारकट्फलहरिद्राद्वयनिम्बसप्तच्छदमालत्य-स्त्रायमाणा चेति ॥ कषायतिक्तमधुरः कफपित्तार्तिनाशनः ॥ कुष्ठक्रिमिहरश्चैव दुष्ट-व्रणविशोधनः ॥ ३२ ॥

लघुपञ्चमूलम्—पञ्च पञ्चमूलान्यत ऊर्ध्वं वक्ष्यामः—तत्र त्रिकण्टकबृहतीद्वय-पृथक्पर्ण्यो विदारिगन्धा चेति कनीयः ॥ कषायतिक्तमधुरं कनीयः पञ्चमूलकम् ॥ वातघ्नं पित्तशमनं बृंहणं बलवर्धनम् ॥ ३३ ॥

बृहत्पञ्चमूलम्—बिल्वाग्निमन्थटिण्टुकपाटलाः काश्मरी चेति महत् ॥ सतिक्तं कफवातघ्नं पाके लघ्वग्निदीपनम् ॥ मधुरानुरसं चैव पञ्चमूलं महत् स्मृतम् ॥ ३४ ॥

दशमूलम्—अनयोर्दशमूलमुच्यते ॥ गणः श्वासहरो ह्येष कफपित्तानिलापहः ॥ आमस्य पाचनश्चैव सर्वज्वरविनाशनः ॥ ३५ ॥

वल्लीपञ्चमूलम्—विदारीसारिवारजनीगुडूच्योऽजशृङ्गी चेति वल्लीसंज्ञः ॥

कण्टकपञ्चमूलम्—करमर्दीत्रिकण्टकसैरेयकशतावरीगृध्रनख्य इति कण्टक-संज्ञः ॥ रक्तपित्तहरौ ह्येतौ शोफत्रयविनाशनौ ॥ सर्वमेहहरौ चैव शुक्रदोषवि-नाशनौ ॥ ३६ ॥

तृणपञ्चमूलम्—कुशकाशनलदर्भकाण्डेक्षुका इति तृणसंज्ञकः ॥ मूत्रदोषविकारं च रक्तपित्तं तथैव च ॥ अन्त्यः प्रयुक्तः क्षीरेण शीघ्रमेव विनाशयेत् ॥ ३७ ॥

ऊर्ध्वभागहरगणः—मदनकुटजजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकृतवेधनसर्षपविडङ्ग-पिप्पलीकरञ्जप्रपुन्नाडकोविदारकर्बुदारारिष्टाश्वगन्धाविदुलबन्धुजीवकश्वेताशणपुष्पी-बिम्बीवचामृगेर्वारवश्चित्रा चेत्यूर्ध्वभागहराणि । तत्र, कोविदारपूर्वाणां फलानि, कोविदारादीनां मूलानि ॥ ३८ ॥

अधोभागहरगणः—त्रिवृताश्यामादन्तीद्रवन्तीसप्तलाशङ्खिनीविषाणिकागवा-क्षीच्छगलान्त्रीस्नुक्सुवर्णक्षीरीचित्रककिणिहीकुशकाशतिल्वककम्पिल्लकरम्यकपाटला-पूगहरीतक्यामलकबिभीतकनीलिनीचतुरङ्गुलैरण्डपूतीकमहावृक्षसप्तच्छदार्का ज्योति-ष्मती चेत्यधोभागहराणि । तत्र तिल्वकपूर्वाणां मूलानि, तिल्वकादीनां पाटलान्तानां

त्वचः, कम्पिल्लकफलरजः, पूगादीनामेरण्डान्तानां फलानि, पूतीकारग्वधयोः पत्राणि, शेषाणां क्षीराणीति ॥ ३९ ॥

**उभयतोभागहरगणः**—कोशातकी सप्तला शङ्खिनी देवदाली कारवेल्लिका चेत्युभयतोभागहराणि । एषां स्वरसा इति ॥ ४० ॥

**शिरोविरेचनगणः**—पिप्पलीविडङ्गापामार्गशिग्रुसिद्धार्थकशिरीषमरिचकरवीरबिम्बीगिरिकर्णिकाकिणिहीवचाज्योतिष्मतीकरञ्जार्कालर्कलशुनातिविषाशृङ्गवेरतालीशतमालसुरसार्जकेङ्गुदीमेषशृङ्गीमातुलुङ्गीमुरङ्गीपीलुजातीशालतालमधूकलाक्षाहिङ्गुलवणमद्यगोशकृद्रसमूत्राणीति शिरोविरेचनानि । तत्र करवीरपूर्वाणां फलानि, करवीरादीनामर्कान्तानां मूलानि, तालीशपूर्वाणां कन्दाः, तालीशादीनामर्जकान्तानां पत्राणि, इङ्गुदीमेषशृङ्ग्योस्त्वचः, मातुलुङ्गीमुरङ्गीपीलुजातीनां पुष्पाणि, शालतालमधूकानां साराः, हिङ्गुलाक्षे निर्यासौ, लवणानि पार्थिवविशेषाः; मद्यान्यासुतसंयोगाः, शकृद्रसमूत्रे मलाविति ॥ ४१ ॥

**वातसंशमनगणः**—भद्रदारुकुष्ठहरिद्रावरुणमेषशृङ्गीबलातिबलार्तगलकच्छुराशल्लकीकुबेराक्षीवीरतरुसहचराग्निमन्थवत्सादन्येरण्डाश्मभेदकालर्कार्कशतावरीपुनर्नवावसुकवशिरकाञ्चनकभार्गीकार्पासीवृश्चिकालीपत्तूरबदरयवकोलकुलत्थप्रभृतीनि विदारिगन्धादिर्द्वे चाद्ये पञ्चमूल्याविति समासेन वातसंशमनो वर्गः ॥ ४२ ॥

**पित्तसंशमनगणः**—चन्दनकुचन्दनह्रीबेरोशीरमञ्जिष्ठापयस्याविदारीशतावरीगुन्द्राशैवलकह्लारकुमुदोत्पलकन्द( द )लीदूर्वामूर्वाप्रभृतीनि काकोल्यादिः सारिवादिरञ्जनादिरुत्पलादिर्न्यग्रोधादिस्तृणपञ्चमूलमिति समासेन पित्तसंशमनो वर्गः ॥ ४३ ॥

**श्लेष्मसंशमनगणः**— कालेयकागरुतिलपर्णीकुष्ठहरिद्राशीतशिवशतपुष्पासरलारास्नाप्रकीर्योदकीर्येङ्गुदीसुमनाकाकादनीलाङ्गलकीहस्तिकर्णमुञ्जातकलामज्जकप्रभृतीनि वल्लीकण्टकपञ्चमूल्यौ पिप्पल्यादिर्बृहत्यादिर्मुष्ककादिर्वचादिः सुरसादिरारग्वधादिरिति समासेन श्लेष्मसंशमनो वर्गः ॥४४ ॥

( सु. सू. अ. ३८,३९ )